मराठों का इतिहास

भाग—२

(सन् १७२७ से १७६१ ई० तक)

सरल अध्ययन

(प्रश्नोत्तर रूप में)

विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों की एम० ए० परीक्षा हेतु

लेखक

लक्ष्मीनारायण गुप्त, एम० ए०

(रचयिता यूरुप का इतिहास, मुगलकालीन भारत भाग—१ व २, मध्यकालीन संस्कृति का इतिहास इंगलैण्ड का संवैधानिक इतिहास आदि)

प्रेम बुक डिपो

हॉस्पिटल रोड, आगरा—३

प्रकाशक—
प्रेम बुक डिपो
हास्पिटल रोड
आगरा-३

मूल्य
आठ रुपये

मुद्रक
अनिल प्रेस मोतीकटरा आगरा।

विषय-सूची

प्रकाशक—
प्रम बुक डिपो
हास्पिटल रोड
आगरा–३

मूल्य
आठ रुपये

विषय-सूची

अध्याय १

पेशवा बाजीराव का शासन युग

Q Critically examine (a) Baji Rao's attitude towards the Maratha confedracy and (b) his policy of Maratha expansion (R U 1955)

Or

Examine critically the policy of Maratha expansion initiated by Baji Rao and indicate its effect on the Maratha Condfedracy later on

Or (R U 1960 1963)

Explain fully Baji Rao's policy towards the Mughal empire In the light of Criticism and subsequent events Judge the merits of his policy (R U 1962)

Or

Give a critical estimate of the character and the policy of Peshwa Baji Rao

प्रश्न—(अ) मराठा शासकों के प्रति तथा (ब) मराठा शक्ति विस्तार की ओर बाजीराव के दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए। (रा० वि० वि० १९५५)

अथवा

बाजीराव द्वारा आरम्भ की गई मराठा शक्ति विस्तार की नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए और साथ ही उसके पश्चात् काल में इस नीति का मराठा संघ पर क्या प्रभाव पड़ा इसका स्पष्टीकरण कीजिए।

(रा० वि० वि० १९६० १९६३ ई०)

अथवा

मुगल साम्राज्य के विषय में बाजीराव की नीति का पूर्ण स्पष्टीकरण कीजिए। समकालीन तथा आधुनिक इतिहासकारों की आलोचनाओं तथा परवर्ती घटनाओं के आधार पर उसकी नीति के गुणों का मूल्यांकन कीजिए।

(रा० वि० वि० १९६२ ई०)

अथवा

बाजीराव की नीति एवं चरित्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—मराठा संघ की ओर बाजीराव का दृष्टिकोण—सैयद बंधुओं के पतन के पश्चात् मराठों के सम्मुख निजाम उल मुल्क के विरोधों के कारण बड़ा विषम समस्या उत्पन्न हुई। वह मुगल दरबार में मराठों का एक मात्र प्रतिद्वन्द्वी था। वह कर्नाटक में मराठों के चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकार का प्रबल विरोधी सिद्ध हुआ और उसने चन्द्रसेन जाधव को कोल्हापुर के शासक शम्भाजी द्वि० के पास भेजकर शम्भाजी को इस ओर प्रोत्साहित करने का प्रयास किया कि वह छत्रपति शाहू के विरुद्ध कर्नाटक में अपने चौथाई और सरदेशमुखी के अधिकारों की प्रबल माँग करे। शम्भाजी इस दिशा में अभी कोई ठोस कार्यवाही कर पाने में तो सफल न हुआ किन्तु वह निजाम उल मुल्क को अब अपना हितचिंतक अवश्य समझने लगा था। तथापि ३० दिसम्बर १७२५ ई० को छत्रपति शाहू ने शम्भाजी को अपना पत्र भेजकर उसे सहयोगपूर्वक मुगल क्षेत्रों को हस्तगत करने की प्रेरणा दी। इस पत्र में उसने लिखा था कि—

"आओ हम दोनों मिलकर मुगलों के क्षेत्रों को पुनः अधीनस्थ करने का प्रयास करें और फिर अपने पूर्वजों की भाँति उनमें अपनी स्वराज्य व्यवस्था भी स्थापित कर दें। आप दक्षिण भारत में अपना कार्य कर सकते हैं और हम लोग उत्तर भारत में कार्यवाही करेंगे। जो कुछ भी हम उत्तर भारत में विजित करेंगे उसमें से आपको भी हिस्सा देंगे। अतः आपको भी जो कुछ दक्षिण में विजित कर मिले उसमें से हमें समुचित भाग देना चाहिए।"

परन्तु शम्भाजी पर इस पत्र का कोई प्रभाव न पड़ सका और वह पूर्ववत् निजाम उल मुल्क के अभिकर्ताओं के ही प्रभाव में चलता रहा। उसे इस दिशा में उसके मंत्री नीलकान्त त्र्यम्बक ने विशेष रूप से प्रेरित किया था। इसके अतिरिक्त चिमनाजी दामोदर मोघे भी अब शाहूजी का पक्ष छोड़कर उसी से जा मिला था। चन्द्रसेन जाधव, रम्भाजी निम्बालकर तथा कान्होजी चवन बहुत पहले से ही उसके विरुद्ध शम्भाजी की शत्रुता को प्रेरित करने में संलग्न थे। चिमनाजी दामोदर मोघे को निजाम ने शम्भाजी पेशवाई स्वीकार करने की प्रेरणा दी जिससे प्रोत्साहित होकर उसने शाहूजी का पक्ष छोड़कर जिसकी उसने पिछले २० वर्षों से स्वामिभक्ति पूर्ण सेवा की थी शम्भाजी की नौकरी करना आरम्भ कर दिया। किन्तु अन्तत उसे अपने इस अदूरदर्शितापूर्ण कृत्य के उपलक्ष में भीषण क्षति का भागी बनना पड़ा।

Let us both exert ourselves in co-operation to recapture Mughal territories and add them to our swarajya in the way our ancestors did You may work in the south and we will work in the north We shall give you a fare share of what we acquire in the north and you should also similarly give us a share of you would acquire in the south

—Patre Yadi—14

सन् १७२६ ई० म दस्तूरे व अवसर पर शम्भाजी कोल्हापुर का शासन व्यवस्था अपनी माता राजसबाई के हाथों म छोडकर निजाम उल मुल्क से जा मिला। फलत छत्रपति के विरुद्ध दक्षिण भारत क विभिन्न क्षेत्रों म निजाम की सेनाओं न अपनी शत्रुतापूर्ण कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। शम्भाजी लगभग तीन वर्ष तक वहीं बना रहा। १७२६—२७ ई० म संगमनेर के पास निजाम क एक प्रमुख सेनानायक तुर ताजखां न भापण नृशंसतापूर्ण कुकृत्य किय। इसी मध्य निजाम न शाहू को अपनी स्वार्थपूर्ण नीति से निःशंक बनाये रखने के उद्देश्य से उनके सुम न्त तथा प्रतिनिधि क माध्यम स उनके पास अपने अनेक मत्री पूर्ण समाचार भिजवाये। इन पत्रों म उसने सदव ही यह व्यक्त किया कि उसका शाहूजी से कोई व्यक्तिगत विरोध न था किन्तु उनका पेशवा ही दोनों के सम्बन्धों का जटिल बना रहा था। तुर ताज का साथ लेकर राव रम्भा आदि निम्बालकरों तथा कन्ताजी चवन न सतारा के आस पास भी भापण अशान्ति उत्पन्न कर रखी थी। उन्होंने सतारा के पूव म रहमनपुर क स्थान पर शाहूजी की एक सनिक टुकडी स भयकर सघष भी किया और उसम एक मराठा सरदार रावजी जाधव का अपन प्राणों तक स हाथ धाना पडा। सौभाग्य वश इसी समय शाहूजी ने कोल्हापुर के एक सेनापति धारराव निम्बालकर की सहायता स वहाँ के प्रधान सेनानायक पीराजी घोरपडे तथा च द्रसेन जाधव के भाई शम्भूसिंह को अपन पक्ष म मिलाने म सफलता प्राप्त कर ली। उसे धनाजी जाधव क एक विश्वास पात्र अनुयायी श्यामराव स भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण लाभ हुए। तथापि निजाम उल मुल्क की प्रेरणा से शम्भाजी न १७२७ ई० के प्रारम्भ म पूना जिले का दौरा करके स्थानीय पदाधिकारियो के नाम अपनी ओर से सनदें और अ या य सुविधायें प्रदान करके उन्हें अपना अनुयायी बनाने का प्रयास किया। इस सूचना को पाकर शाहू जी को तीव्र चिन्ता हुई और उसन निजाम क कुचक्र का अनुमान लगाकर कर्नाटक म व्यस्त अपनी सेनाओं का अविलम्ब पूना चले आने की आज्ञा न द सकन के कारण उत्तर भारत क सनिक अभियानों म संलग्न अपन मराठा सरदारों को दक्षिण आन का आदेश भेजा।

पालखेद के युद्ध मे निजाम की पराजय – शाहू जी को उनके कुछ अनुयायियो ने परामर्श दिया कि निजाम उल मुल्क से इस विषम स्थिति म समझौता करना ही लाभकर हो सकता है। फलत शाहू न अपने सुमन्त तथा प्रतिनिधि को निजाम से संधि करने की कार्यवाही करने का आदेश दे दिया। अब निजाम न इस प्रकार की वार्ता क प्रत्युत्तर म शाहू का चौथाई की नकद धन राशि प्रदान करने का वचन देते हुए उससे यह अनुरोध किया कि वह उसके विभिन्न क्षेत्रों म अवस्थित अपनी मराठा सेनाओं को भी शीघ्र वापस बुला ले। उसने शाहू जी को अपनी मत्री प्रदर्शित करते हुए यह परामर्श भी दिया कि किसी प्रकार कोंकन म स्थित अपने पेशवा क घातक प्रभाव स छुटकारा पाने की चेष्टा करे।

शाहू इन शर्तों को ही स्वीकार करने वाला था कि तत्काल बाजीराव अपने अभियान से वापस लौटा और उसने इस विषय में छत्रपति की भर्त्सना करते हुए उन्हें यह समझाने की सफल चेष्टा की कि इस प्रकार का पग उठाने में मराठों को अपने सभी विजित क्षेत्रों से वंचित होने की पूर्ण आशंका थी। इसी प्रकार की वार्ता शाहू के दरबार में चल रही थी कि उसे निजाम उल मुल्क की ओर से समाचार मिला कि चूंकि शम्भाजी मराठा राज्य के छत्रपति के रूप में चौथ का धन स्वयं प्राप्त करने की माँग कर रहा था, अतः अब वह इस धन का भुगतान शाहू जी को न कर सकेगा। अस्तु शाहू जी को अत्यन्त क्रोध आया और उसने अब अविलम्ब निजाम के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। इस युद्ध में भाग लेने के लिये उसने २७ अगस्त १७२७ ई० के दिन सतारा से स्वयं भी प्रस्थान कर दिया।

इस भयंकर स्थिति में शाहू जी को केवल अपने पेशवा बाजीराव से ही कुछ आशा थी। बाजीराव को जिसे मल्हारराव होल्कर तथा राणोजी सिंधिया पर इस सम्बन्ध में पूर्ण सहायता प्राप्त करने का अत्यन्त विश्वास था इस सम्बन्ध में पुरन्दरे से सूचना मिली। बाजीराव को सेनापति खाण्डेराव दाभाडे से तीव्र प्रतिद्वंदिता चल रही थी अतः उससे उसे कोई आशा न थी। बाजीराव को पवार बन्धुओं की भी स्वामिभक्ति उपलब्ध थी। ऐवाज खाँ ने पूना की ओर प्रस्थान किया किन्तु मार्ग में सिन्नार के स्थान पर उसकी तुकाजी पवार से मुठभेड़ हो गई। यह व्यक्ति मुगलों के आधीन स्थानीय देशमुख कुंवर बहादुर की सेना में था किन्तु उसे मराठों ने परास्त कर दिया था। इसी प्रकार रघुजी तथा फतहसिंह भोसले ने चन्द्रसेन जाधव पर आक्रमण करके भीषण संघर्ष के पश्चात् उसे भी परास्त कर दिया।

परन्तु निजाम उल मुल्क ने अपनी आक्रामक कार्यवाहियों का केन्द्र पूना को ही बनाकर अपने अनेक विश्वस्त मराठा सरदारों की सहायता से उस स्थान पर भयंकर लूट-पाट मचाई। उन्होंने लोहगढ़ पर धावा बोला और चिंचवाड़ तथा पूना में अत्यन्त विनाशकारी कृत्य किये। फलतः शाहू की सनायें परास्त होकर यत्र तत्र भागने लगीं। शम्भाजी को साथ लेकर निजाम ने पूना के राजमहल में प्रवेश किया जहाँ पर फरवरी १७२७ ई० में उसका रामनगर की सीसोदिया वंश राजपूत कन्या के साथ विवाह किया गया तथा उसे अब मराठों का छत्रपति भी घोषित कर दिया गया। निजाम उल मुल्क ने पूना में उसके साथ फाजलबेग को नियुक्त करके लोनी पार गाँव पाता, सूपा तथा बारामती के क्षेत्रों की ओर प्रस्थान कर दिया और इन सभी स्थानों में उसने अपने तोपखाने की सहायता से भयंकर अग्निकांड मचाये।

उसका विपक्षी बाजीराव अपने पास तोपखाने के अभाव के कारण अपनी गुरीलायुद्ध प्रणाली पर ही निर्भर था जिसे क्रियान्वित करने के हेतु उसे लम्बी यात्रायें करने के पश्चात् ही शत्रुओं पर अचानक आक्रमण करने का अवसर मिल पाता था। उसने पूना से प्रस्थान किया तथा पुनतम्बा नामक स्थान पर गोदावरी नदी को पार

करके ५ नवम्बर को ऐवाजखाँ को पराम्त कर दिया। अब उसने जलना तथा सिंद खेद मे लूटपाट करके बरार के भाग ने माहुर, मंगरील तथा वसीम का भी रौंद डाला। तत्पश्चात् वाजीराव ने उत्तर पश्चिम के भाग मे खानदेश मे प्रवेश किया और कोकर मुण्ड के समीप ताप्ती को लाँघकर उसने पूर्वी गुजरात होते हुए जनवरी १७२८ ई० में छोटा उदयपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। यहाँ उसे सूचना मिली कि निजाम ने पूना की ओर सैनिक अभियान कर दिया है अतः उसने यह घोषणा कर दी कि वह बुरहानपुर के मुगल केन्द्र को ध्वस्त कर देगा अन्यथा निजाम पूना को आक्रान्त करना समाप्त कर दे। तथापि अब पेशवा ने गुजरात के मुगल सूबेदार सरबुलन्द खाँ से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके, १४ फरवरी को खानदेश स्थित बेतवाड़ की ओर प्रस्थान कर दिया।

वाजीराव ने यह ठीक ही समझा था कि बुरहानपुर तथा औरंगाबाद पर सैनिक अभियान करने का फल यह होगा कि निजाम अपने इन उत्तरी क्षेत्रों की रक्षा करने की चिन्ता से पूना पर आक्रमण करने का विचार छोड़ देगा। यही हुआ भी और उसने वाजीराव को युद्ध मे परास्त करके उसकी सत्ता को नष्ट भ्रष्ट कर देने का निश्चय कर लिया। चिमनाजी अप्पा दक्षिण मे निजाम की गति विधि का अवलोकन करने के लिये नियुक्त किया गया था और उसने तथा उसके भाई पेशवा वाजीराव दोनो ने पूर्ण सचेष्ट हो तत्परता से अपना दायित्व वहन किया। उनके गुप्तचरों ने इस समय पर विशेष सराहनीय कार्य किया। उन्होंने दोनो सेनानायकों को शत्रुओं के विषय मे महत्वपूर्ण बातों से अवगत कराकर निजाम को भीषण स्थिति मे डाल दिया। वह अपने को चतुर्दिक मराठा सेनाओं से घिरा हुआ पाने लगा और २५ फरवरी के दिन औरंगाबाद से १५ मील पर स्थित पालखेद के स्थान पर मराठा सेनाओं द्वारा बुरी तरह से घेर लिया गया जहाँ से उसका बच निकलना किसी प्रकार भी सम्भव न था।

निजाम की स्थिति को उत्तरोत्तर निराशाजनक ही बनते देख उसके सरदारों चन्द्रसेन जाधव तथा स्वयं ऐवाजखाँ ने वाजीराव से सन्धि याचना की। इस सम्बन्ध में किसी कार्यवाही के पूर्व पेशवा ने उनसे प्रतिबन्धकों की माँग की अन्ततः ६ मार्च १७२८ ई० को दोनो पक्षों के मध्य एक सन्धि हुई जिसकी शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) छहो मुगल सूबो की शासन व्यवस्था से सम्बन्धित सभी प्रशासकीय एवं प्रदेशिक बातें मराठो के माध्यम से ही निर्धारित की जायेंगी और वे उन प्रदेशों मे मुगलो की हित रक्षा करते रहेंगे।

(२) आनन्दराव सुमन्त पेशवा का विश्वास पात्र न होने के कारण भविष्य मे मराठों के राजनैतिक सम्बन्धो मे मध्यस्थ न बनाया जाय।

(३) नवाब राजा शम्भाजी का संरक्षण करना त्याग देगा और उसे चुप चाप आने देगा।

(४) नवाब हैदराबाद (निजाम) महाराजा शाहू के पक्ष में पूना सैन्य वारा मती तालगाँव तथा अपने अन्य विजित क्षेत्रों को छोड़ देगा। शाहूजी के राज्य में स्वराज्य तथा सरदेश मुखी के सारे अधिकार भी स्थाई कर दिये जाने थे। आधीनता स्वीकार कर लेने में ही कल्याण की आशा थी। इसी मध्य उन्हें महाराजा शाहू द्वारा भेजा गया पत्र भी उपलब्ध हो गया जिसके उत्तर में शम्भाजी राजा ने यह समाचार भेजा—

'आपका मेरे लिये अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण और सच्ची कामनाओं का जो हमारे दोनों के मध्य स्थाई एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों से सम्बन्धित हैं तथा जो श्रद्धेय राजमाता (मातुश्रीसाहेब ताराबाई) द्वारा मुझे प्रेषित की जा चुकी हैं समाचार पाकर मेरे हृदय को असीम प्रसन्नता मिली है। आप जैसे सम्भ्रान्त एवं वयोवृद्ध व्यक्ति के इस सन्देश का जो (मेरी और आपकी दोनों परिस्थितियों के सर्वथा उपयुक्त है मैं अभिनन्दन करता हूँ। मैं आपकी भावनाओं से उतनी ही सहानुभूति पूर्वक पूर्णतया प्रभावित हूँ । [1]

शम्भाजी ने अपने इस पत्र के साथ नावाजी प्रभु नामक अपने एक विश्वास पात्र कर्मचारी को शाहूजी के दरबार में भेजा। यह एक चतुर एवं अनुभवी राज नीतिज्ञ था और इसके माध्यम से रक्खी गईं सभी शर्तें शाहूजी द्वारा स्वीकार कर ली गईं। छत्रपति ने उसके हाथ शम्भाजी के लिये भेंट उपहार आदि भेजे जिन्हें पाकर शम्भाजी को अत्यन्त हर्ष हुआ और उसने छत्रपति के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसे यह पत्र लिखा –

आपकी देवोपम उदारता तथा मेरे प्रति आपके असाधारण प्रेम ने मुझे पूर्णतया प्रभावित कर दिया है। आप मेरे लिये पिता तुल्य हैं। उस रूप में आपका मेरा ध्यान रखना स्वाभाविक ही है। आपका यह व्यवहार आपकी स्थाई कीर्ति का प्रतीक होगा।

---

(1) Your very warm greetings and your sincere and hearty wishes for a cordial and lasting understanding between us conveyed by the revered Matuhsrisaheb (Tarabai) have reached me and gladdened my heart immensely Coming from an elderly person of your eminence the message is most welcome and in the fitness of things I reciprocate your sentiments with equal warmth

(2) 'Your divine grace and extraordinary affection have touched me to the quick You are a father to me It behaves you in that capacity to take of care me This conduct will rebound to your lasting credit'

See—Sardesais— New History of the Marathas Vol 2 P 118 19

नवम्बर १७३० ई० में शाहू जी ने शम्भाजी का सम्मान पन्हालगढ़ से सतारा लाने के लिये अपने उच्च बड़े पदाधिकारियों को भेजा जिन्होंने दुर्ग में ही शम्भाजी का अपना अनेक भेंटें दीं।

(५) बलवन्तसिंह तथा अन्य सरदारों को उनकी जागीरें वापस की जायें।

(६) महाराजा शाहू ने कृष्णा तथा पचगंगा नदियों के मध्यवर्ती जिस प्रदेश को राजा शम्भाजी को पहले ही प्रदान किया था उसके अतिरिक्त उस अन्य कोई क्षेत्र न दिया जाय तथा अभी तक अनुचित रूप से वसूल की गई कर की धन राशि भी उसे शाहूजी को वापस लौटानी थी। उसे कृष्णा नदी के उत्तरी भागों से कोई चौथ न मिलनी थी।

(७) पिताजी जाधव के शाहूगढ़ सम्बन्धी अधिकार चलते रहने दिये जाने थे और निजाम के पक्ष में जा मिलने वाले मराठा सरदार सुल्तानजी निम्बालकर को कोई दुष्कर्म आदि विद्रोही कार्यों के करने का अवसर मिलने से सदैव रोके रक्खा जाना था। इसके अतिरिक्त पवार बन्धुओं को पटा निम्बोन के पाँच ग्राम जागीर के रूप में प्रदान होने थे।

इस प्रकार इस सन्धि पत्र के तैयार हो जाने के पश्चात् पेशवा तथा निजाम के मध्य भेंट उपहारों के आदान प्रदान के पश्चात् इसकी शर्तों को कार्यान्वित कर दिया गया।

शम्भाजी को आधीनस्थ किया जाना—शम्भाजी के सेनापति रानोजी घोरपड़े तथा अमात्य भगवन्तराव उसकी शाहूजी के प्रति प्रतिद्वन्दितापूर्ण कार्यवाही में निष्क्रियता देखकर शाहूजी से ही जा मिले थे, किन्तु अब निजाम से छुट्टी पाकर बाजीराव तथा चिमनाजी आप्पा दोनों ही मालवा तथा बुन्देलखण्ड से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने में व्यस्त थे अतः शम्भाजी ने उदाजी चवन को भेजकर शाहू के क्षेत्रों में लूट-पाट मचवा दी। इस अवसर पर उदाजी को दण्डित करने के लिये १७३० ई० के प्रारम्भ में शाहूजी को स्वयं प्रस्थान करना पड़ा। अवसर पाकर ऊदाजी के कुछ सैनिकों ने छत्रपति की हत्या करने का एक असफल प्रयास भी किया। इससे क्रुद्ध होकर शाहू जी ने त्र्यम्बकराव दाभाडे के नेतृत्व में ऊदाजी चवन के विरुद्ध एक विशाल सेना भेजी जिसने विभिन्न स्थानों पर शम्भाजी तथा ऊदाजी दोनों को परास्त करके उन्हें पन्हालगढ़ में शरण लेने को विवश कर दिया। शम्भाजी के शिविर को भी लूट लिया गया और वहाँ से मराठा राजवंश की अनेक महिलाओं—शम्भाजी की चाची ताराबाई तथा उसकी पत्नी जीजाबाई आदि को पकड़कर वार्ना नदी के किनारे डेरा डाले हुए राजा शाहू के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उन्हें पन्हालगढ़ में ठहरे हुए शम्भाजी के पास वापस भेज दिया गया किन्तु ताराबाई शाहूजी के ही साथ रही। वे दोनों शम्भाजी की खोज में जाने के बहाने सम्भवतः सतारा चले आये थे। इसी मध्य जीजा बाई ने अपने पति शम्भाजी को इस सम्बन्ध में काफी समझाया बुझाया।

दोनों मराठा शासकों का सम्मेलन और पारस्परिक समझौता—इस प्रकार शाहूजी के उच्च पदाधिकारियों—फतहसिंह भोसले, नारबाबा (मन्त्री,) भवानीशंकर (मुंशी) तथा बालाजी बाजीराव—आदि से भेटें नजरें हाथी घोड़े बहुमूल्य मणि माणिक्य तथा वस्त्रादि को प्राप्त करके शम्भा जी ने अपने कुछ अनुयायियों को साथ लेकर उनके संरक्षण में धीरे धीरे वाड़गाँव के पास वारना नदी को पार किया और फिर वे सभी लोग जखिन नामक पूर्व निश्चित स्थान पर आ पहुँचे जहाँ पर शाहूजी पहले से ही उनसे भेंट करने हेतु आ चुके थे। दोनों चचेरे भाइयों की इस ऐतिहासिक भेंट के लिए कहन में कुछ दूर जाखिनवाड़ी नामक स्थान पर भव्य व्यवस्था की गई। इस सम्बन्ध में दोनों ओर से एकत्र हुए सरदारों और सामन्तों की संख्या दो लाख से भी ऊपर पहुँच गई थी। वे २७ फरवरी १७३१ ई० के दिन मिले। शाहूजी तथा शम्भा जी अपने अपने सुसज्जित हाथियों पर बैठ कर अपने दोनों ओर पंक्तिबद्ध अनुयायियों द्वारा वन्दित होते हुए दो विपरीत दिशाओं से आये और ज्यों ही उन्होंने एक दूसरे को देखा वे अपने अपने हाथियों से नीचे उतर पड़े। अब वे पैदल चल कर एक दूसरे के समीप पहुँचे और परस्पर गले मिले। दोनों के मध्य वारना की प्रसिद्ध सन्धि हुई और उनके राज्यों की सीमा भी यहीं निर्धारित की गई। दोनों बन्धुओं ने एक-दूसरे के साथ होली का राष्ट्रीय उत्सव मनाया और समस्त महाराष्ट्र आनन्द समारोहों से चकाचौंध हो गया। इस स्थान का ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है और यहाँ पर की गई सन्धि की शर्तें संक्षेप में इस प्रकार हैं—

इस नदी के दक्षिण से तुंगभद्रा तक के समस्त क्षेत्र शम्भा जी की आधीनता में प्रदान किये गये किन्तु सुरक्षा तथा वाणिज्य विषयों में इस राज्य का प्रबन्ध शाहू की सरकार द्वारा ही किया जाता था। तुंगभद्रा के उस पार के दक्षिणी प्रदेश दोनों शासकों के प्रभावान्तर्गत रखे गये। शाहूजी द्वारा दिया गया यह राज्य शम्भाजी और उनके वंशजों ने अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् और भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति काल तक अपने अधिकार में सुरक्षित रक्खा और उसका विस्तार करने की उसने कोई भावी चेष्टा भी न की। इस प्रकार कोई २३ वर्षों से चला आने वाला यह गृह युद्ध १७३१ ई० में समाप्त हो गया। यद्यपि इसके पहले १७०८ तथा १७२५ ई० में दो बार इन दोनों मराठा शासकों के मध्य मेल स्थापित करने के असफल प्रयास भी किये जा चुके थे। परन्तु १७४० ई० में शाहूजी के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर कुछ कुछ आशंका अवश्य उत्पन्न हुई जिसको संयोगवश सन्तोषजनक निराकरण कर लिया गया।

मराठों के शक्ति विस्तार की नीति तथा उसके परिणाम—सन् १७२८ ई० में बाजीराव ने अपने सत्तारूढ़ होने के आठ वर्ष पश्चात् निजाम उल मुल्क जंग नीति

शाली मुगल सरदार के विरुद्ध यह अप्रत्याशित सफलता (पालखेड के युद्ध में) प्राप्त करने के पश्चात् अपना ध्यान मालवा तथा बुन्देलखण्ड की ओर केन्द्रित किया। उसे अपने छत्रपति को जो इस समय ऋणग्रस्त था, आर्थिक सहायता पहुँचाना आवश्यक था। इस कार्य में उसे अपने सरदारों मल्हारराव होलकर तथा रानोजी सिंधिया से विशेष सहायता मिली। मालवा का मुगल सूबेदार गिरधरबहादुर बड़ा ही योग्य एवं चतुर सेनानी था और उसे अपने भाई दयाबहादुर की सैनिक सहायता भी सुलभ थी। मालवा पर अभियान करने के पूर्व पेशवा ने सवाई जयसिंह के पास अपना एक दूत दादू भीमसेन को भेज कर उससे आवश्यक मन्त्रणा माँगी। उसने बाजीराव को मालवा पर अभियान करने के पक्ष में ही परामर्श दिया। इसी मध्य बाजीराव को छत्रपति ने अपनी तुलजापुर की तीर्थ यात्रा के सम्बन्ध में वापिस बुला लिया इससे उसके मालवा अभियान में कुछ विलम्ब अवश्य हुआ किन्तु नवम्बर १७२८ ई० में अमझेरा के स्थान पर दो विभिन्न दिशाओं में पेशवा तथा उसके भाई के नेतृत्व में पहुँची हुई दो विशाल मराठा सेनाओं ने गिरधरबहादुर को भीषण पराजय दी। वह तथा उसका भाई दयाबहादुर दोनों ही युद्ध में मौत के घाट उतार दिये गये।

इसी समय पर इन दोनों मराठा सेनापतियों से छत्रसाल बुन्देले ने भी जिस पर मुहम्मदखाँ बंगाश ने आक्रमण कर दिया था, सहायता की माँग की। उन्होंने छत्रसाल की रक्षा की और मुहम्मदखाँ बंगाश को परास्त कर दिया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड के विशाल भू भाग पर मराठों के नेतृत्व में छत्रसाल का प्रभुत्व स्थापित हो गया और उसने पेशवा को अपनी मृत्यु के पश्चात् अपने पुत्रों का स्थाई संरक्षक नियुक्त किया। उसने पेशवा को पारितोषिक रूप में १ लाख १५ हजार रुपये की मालगुजारी का विशाल भू क्षेत्र भी प्रदान किया था। इसमें कालपी हाटा सागर झांसी सीराज कौंच गढ़ा कोटा तथा हिरदे नगर के प्रदेश सम्मिलित थे। इनके प्रबन्ध के लिये पेशवा की ओर से गोविन्द पन्त भी नियुक्त की गई थी।

जंजीरा के सिद्दियों का दमन तथा बाजीराव और निजाम की भेंट—सन् १७२७ ई० में शिवरात्रि के उत्सव के समय चिपलून के समीप एक पहाड़ी पर स्थित परशुराम मन्दिर पर जो शाहूजी के गुरु ब्रह्मेन्द्र स्वामी की कुटी में सम्मिलित था सिद्दियों ने भीषण आक्रमण कर दिया। उन्हें इन यवनों ने भीषण कष्ट और यातनायें दीं। ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने शाहूजी से इन शत्रुओं को मार भगाने का अनुरोध किया। अन्ततः १७३२ ई० में बाजीराव ने कोंकन पहुँच कर वहाँ के मराठा सरदार सेखोजी आंग्रे से परामर्श करके सिद्दियों पर जल तथा स्थल दोनों मार्गों से आक्रमण करने की योजना बनाई। अन्तत कुछ सामयिक असफलताओं का सामना करने के पश्चात् १७३६ ई० में 'चारगाँव नामक स्थान के समीप चिमनाजी अप्पा ने उस

विद्रोही सिद्दी की सेनाओं को भयंकर पराजय दी तथा उनके १३०० सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। सिद्दियों से ग्वालकोट तथा अजनवेल (Amganvel) के प्रदेशों को छोड़कर सारे क्षेत्र छीन लिये गये और १७४६ ई० में वे इन प्रदेशों से भी बहिष्कृत कर दिये गये। ये सिद्दी मुगलों के सामन्त थे।

२७ दिसम्बर १७३२ ई० में मराठों के साथ मुगल सम्राट के पारस्परिक सम्बन्धों के प्रश्न पर निजाम उल मुल्क तथा पेशवा बाजीराव की भेंट हुई। इस सम्मेलन में पेशवा का निजाम ने यथेष्ट स्वागत सत्कार किया तथा दोनों के मध्य एक गुप्त समझौता हो गया जिसके अनुसार मराठों ने दक्षिण भारत को आक्रान्त न करते हुए वहाँ से केवल चौथ और सरदेशमुखी ही वसूल करने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त मराठों की उत्तर भारत सम्बन्धी प्रमुख विस्तार नीति के विषय में निजाम उल मुल्क ने तटस्थ रहना भी स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार मराठों को अपनी चरम शक्ति पर पहुँचने के मार्ग पर अग्रसर करके पेशवा बाजीराव ने महाराष्ट्र की महान प्रगति की।

बाजीराव का दिल्ली अभियान—मालवा की सूबेदारी के प्रश्न पर १७३३ से १७३५ ई० तक सवाई जयसिंह मुगल वजीर तथा मुगलों के मीर बख्शी आदि के साथ मिलकर बाजीराव का तीव्र प्रतिरोध किया था किन्तु उन्हें उसमें कोई सफलता न मिल सकी। सवाई जयसिंह ने सम्राट से अनुरोध किया कि वह पेशवा से स्वयं भेंट करके अपने पारस्परिक हितों के विषय में विचार विमर्श कर ले। इस दिशा में उसने पेशवा को तो राजी कर लिया किन्तु सम्राट ने अपनी अनस्थिर बुद्धि के कारण पहले उस मिलने की अनुमति दे दी और बाद में अपने वचनों का पालन करने से इन्कार कर दिया। अस्तु पेशवा ने सम्राट को दिल्ली पर आक्रमण करके अपने साथ समझौता करने को विवश करने का निश्चय कर लिया। उसके विरुद्ध सम्राट ने सादत खाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी किन्तु मराठों के विरुद्ध उसकी विजय स्थायी न सिद्ध हो सकी। अन्तत ३० मार्च १७३७ ई० के दिन दिल्ली के समीप एक झील के पास मुगलों और मराठों के मध्य भीषण युद्ध हुआ। मुगलों को घोर पराजय का मुख देखना पड़ा। मराठों की विजय हुई और कालान्तर में उन्होंने निजामुल मुल्क को भी, जिसने मालवा में उनकी सत्ता का उन्मूलन करने के उद्देश्य से स्वयं प्रस्थान कर दिया था और जिसने अब दिल्ली आकर सम्राट से १ करोड़ रुपये तथा ५ सूबों की सूबेदारी की माँग की थी, विभिन्न स्थानों पर आक्रान्त करने के पश्चात् भूपाल के दुर्ग में आश्रय लेने को विवश कर दिया। नासिर जंग उसका पुत्र भी उसकी सहायता करने के निमित्त वहाँ न पहुँच सका। अस्तु उसने सिरोंज से ६४ मील की दूरी पर स्थित दोराहा सराय से ७ जनवरी १७३८ ई० को पेशवा से संधि करने की माँग की। संधि की शर्तें थीं—कि (१) निजाम ने शाही

मोहर लगाकर एक आज्ञापत्र द्वारा मराठों को मालवा की सूबेदारी प्रदान की। (२) नर्मदा तथा जमुना के मध्यवर्ती क्षेत्र मराठों को दे दिये जाने थे और (३) उन्हें सम्राट की ओर से ५० लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में मिलने थे। अपनी अपनी भूमियों से वंचित विभिन्न मराठे सरदार तथा सामन्त भी जो निजाम के हाथों इस संघर्ष में बन्दी हुए थे। वे पेशवा की सेवा में वापस भेज दिये गये। उनकी भूमियों को भी उन्हें वापस दे दिया गया।

इस प्रकार बाजीराव ने उत्तर भारत के एक सुविशाल भाग पर मराठों की सत्ता स्थापित की और साथ ही साथ उत्तर तथा दक्षिण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक आदान प्रदान की प्रक्रिया का भी सूत्रपात कर दिया।

पेशवा बाजीराव का चारित्रिक मूल्यांकन—पेशवा बाजीराव शिवाजी प्रथम के बाद मराठों का एक अत्यन्त शक्तिशाली सुयोग्य एवं चतुर सेनापति माना जाता है। उसके वीरोचित कार्यों का ही परिणाम यह हुआ कि शाहूजी जो पहले मुगल सत्ता की आधीनता स्वीकार करने को उद्यत दिखाई पड़ता था एक पूर्ण सत्तासम्पन्न मराठा छत्रपति के रूप में मुगल सम्राट के सहायक मित्र के स्तर का शासक बन गया। इसके अतिरिक्त पेशवा ने अपने पिता बालाजी विश्वनाथ द्वारा प्रारम्भ किये गये उत्तर भारत में मराठा शक्ति विस्तार के कार्य क्रम को अपने विजय कार्यों द्वारा अधिकांश रूप में सफल बनाया तथा उसकी भावी सफलता के लिये भी अपने उत्तरा धिकारियों के पक्ष में प्रबल पृष्ठ भूमि का सृजन कर दिया। वह एक महान शासक तथा कूटनीतिज्ञ भी था। उसने अपने शत्रुओं दाभाडे चन्द्रसेन जाधव, निम्बालकर तथा शम्भाजी जैसे असन्तुष्ट मराठा सत्ताधारियों के साथ ऐसा कूटनीतिक व्यवहार किया कि वे शाहूजी के शक्ति विस्तार में भविष्य में किसी रूप में बाधक न सिद्ध हो सके। शम्भाजी के साथ कराई गई छत्रपति शाहू की सन्धि सदैव के लिये स्थाई व्यवस्था बन गई।

इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि वह महाराष्ट्र का एक सफल एवं सुयोग्य राजनीतिज्ञ था जिसके द्वारा जमाई गई राष्ट्रीय जड़ें दीर्घ काल तक अचल बनी रहीं। उसके पुत्र बालाजीराव ने भी उसके स्वप्न को पूरा करने में सफल प्रयास किये, किन्तु अन्त में नादिरशाही तथा अहमदशाही आक्रमणों से उनका किया कराया काम कुछ सीमा तक नष्ट हो गया। तथापि मराठों की शक्ति यदि मे अंग्रेजों के आगमन और भारत विजय के अंतिम समय तक कोई बाधा न आ पाई।

सारांश—बाजीराव पेशवा ने मराठों की सत्ता का उत्तर तथा दक्षिण दोनों दिशाओं में प्रभाव विस्तार किया। उसने कोल्हापुर के शासक शम्भाजी द्वितीय को शाहूजी की आधीनता स्वीकार करने को विवश कर दिया। मालवा, बुन्देलखण्ड तथा सारे दक्षिण भारत में मराठों को चौथ और सरदेशमुखी के स्थाई अधिकार

दिलाये तथा उत्तर भारत में मराठों के विजय अभियान का मार्ग खोल दिया। सूक्ष्मत यही उसकी मुख्य मुख्य सफलतायें हैं।

Q Examine the relation of the Poona court with the Bhonsles of Nagpur from 1761 (R U 1962)

प्रश्न– पूना दरबार [redacted] नागपुर के भोसलों के साथ १७३६ से लेकर १७६१ तक के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या कीजिये। (रा० वि० वि० १९६३)

उत्तर– १८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ही मराठा राजनीति में विघटनकारी तत्वों का उदय हो चुका था और हम यह देख चुके हैं कि किस प्रकार बालाजी पंत के पेशवा के रूप में सत्तारूढ़ होने पर चन्द्रसेन जाधव ने उसके विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काई थी। अब बाजीराव प्रथम के पेशवा बनने पर पुनः वही संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। पेशवा को अपने देश में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने तथा साथ ही चतुर्दिक विजय कार्य करने के लिये आवश्यक रूप से योग्य सेनापतियों और नेताओं को कुछ न कुछ विशेषाधिकार देने पड़ते थे। ये पदाधिकारी उसके प्रति पूर्ण स्वामिभक्ति पूर्वक ही सब कार्य न करते थे और इनमें शनैः शनैः अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति की लालसा अत्यन्त प्रबल होने लगी थी। नागपुर के मराठा राज्य का संस्थापक रघुजी भोंसले था। उसके चचा कान्होजी तथा उनके भी पिता पारसोजी ने औरंगजेब के बन्दीगृह से शाहू की मुक्ति के पश्चात् उसके राज्याधिकार का समर्थन करके उसकी विशेष कृपा प्राप्त कर ली थी। परन्तु कालान्तर में जब शाहूजी ने बालाजी पन्त को अपना पेशवा नियुक्त करके अपनी प्रशासकीय शक्तियाँ उसी के हाथों में केन्द्रित कर दी तो उसे अपने शासन सम्बन्धी योजनाबद्ध कार्यक्रमों को सचालित करने के लिये विभिन्न जागीरों में बिखरे हुए मराठा नेताओं के सहयोग की आवश्यकता पड़ने लगी। उसके बाद बाजीराव को दाभादे तथा आग्रे बंधुओं की भाँति नागपुर के भोंसले सरदार से भी पारस्परिक मतभेदों का निवारण करना पड़ा और इस कार्य में उसने पर्याप्त सतर्कता का परिचय दिया।

नागपुर के भोंसले अपनी सत्ता के अधिष्ठाता शाहूजी के ही कृतज्ञ बनना चाहते थे और उन्हें पेशवा से कोई विशेष प्रयोजन न था। उन्हें प्रभावशून्य बनाने के उद्देश्य से शासन कार्य में हाथ बंटाने के लिये पेशवा ने सिंधिया तथा होल्कर सरदारों से सहायता लेना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु मराठा इतिहास में ऐसा बहुत कम देखने को मिलेगा कि विभिन्न सेनापतियों तथा सरदारों ने सच्चाई के साथ सम्मिलित प्रयास किये हों, और किसी भी संगठन सरकार का स्थायित्व वस्तुतः राज्य के विभिन्न तत्वों के परस्पर सहयोग पर ही निर्भर करता है। दुर्भाग्यवश बाजीराव की अधिकांश शक्ति गृह क्षेत्र में इन विद्रोही तत्वों के दमन में ही व्यय हो गई और इसका परिणाम आगे चलकर यह निकला कि मराठा संगठन अपना एक चिरस्थायी

राज्य निर्मित करने में असफल सिद्ध हुए क्योंकि उन्हें समय समय पर स्वार्थी मराठा सरदारों के षड्यन्त्रों और विद्रोहों का बराबर सामना करना पड़ा।

रघुजी भोंसले का बंगाल अभियान तथा उससे पेशवा का संघर्ष—बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् पेशवा के पद को प्राप्त करने की सबसे अधिक लालसा बाबूजी नायक ने की थी किन्तु शाहूजी ने उसके धन अथवा भेंट उपहार आदि का लोभ न कर शासन संचालन में सिद्धहस्त बालाजीराव को ही पेशवा का पद प्रदान किया। बाबूजी नायक का समर्थन रघुजी भोंसले ने करना प्रारम्भ कर दिया। वस्तुतः वह स्वयं पेशवा बनना चाहता था और यह तो उसका केवल बहाना मात्र था कि वह बाबूजी नायक का समर्थन करता था। रघुजी ने सन् १७३८ ई० में ही महाराजा शाहू से यह अनुमति प्राप्त कर ली थी कि वह अपने विजय कार्यों के लिये बंगाल के सुविस्तृत एवं उपजाऊ क्षेत्रों में अपना प्रभाव विस्तार करके उनसे चौथ वसूल कर सकता है। इस अनुमति पत्र में रघुजी को सौंपे गये भूभाग की सीमायें नितान्त अस्पष्ट थी अतः पेशवा और रघुजी में तत्सम्बन्धी मतभेद स्वाभाविक हो गया। इसके अतिरिक्त जब पेशवा अपने उत्तर के विजय अभियान के पश्चात् सतारा वापस आया तो रघुजी भोंसले ने उस वर्षा काल में ही वहाँ से नागपुर प्रस्थान कर दिया। फलतः दोनों में शंका समाधान भी न हो पाया। उधर रघुजी भोंसले ने हाल ही में त्रिचनापल्ली को विजित कर लिया था, जिसके कारण मराठा दरबार में उसका मान अत्यधिक बढ़ गया था। कर्नाटक में उसके चमत्कार पूर्ण विजय कार्यों तथा चान्दा साहब के बन्दी कर लेने के फलस्वरूप शाहूजी ने भी उसकी यथेष्ट प्रशंसा करके उसे भेंट उपहार आदि देकर सन्तुष्ट करने की चेष्टा की। तत्पश्चात् रघुजी नागपुर लौट गया वहाँ पहुँचते ही उसने बंगाल पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से अपना सैनिक संगठन आदि करना प्रारम्भ कर दिया। उसे संयोगवश वहाँ के असन्तुष्ट पदाधिकारी मीर हबीब से आमन्त्रण प्राप्त हो चुका था कि वह अत्याचारी नवाब अलावर्दी खाँ का दमन करे।

अप्रैल १७४२ ई० में रघुजी द्वारा बंगाल भेजे गये सेनापति भास्कर राम ने वहाँ पर अलीवर्दी खाँ से संघर्ष करना प्रारम्भ किया। उसके पास सैनिकों की संख्या अत्यन्त कम थी किन्तु भास्कर पन्त ने अपने व्यक्तिगत लोभ के कारण बंगाल में अपने संघर्ष निरन्तर जारी रक्खे। कालान्तर में २३ सितम्बर १७४२ ई० को मराठों के अलीवर्दी खाँ द्वारा भीषण हत्याकाण्ड की सूचना पाकर रघुजी भोंसले ने अपने मजूमदार को लिखा कि, "भास्कर पन्त ने बलपूर्वक मकसूदाबाद का घेरा डाल दिया है जिसकी सफलता के लिए उस ओर अधिक सैनिकों की आवश्यकता है जो उसके पास शीघ्र पहुँचने चाहिये। तथापि रघुजी भास्कर पन्त को सैनिक सहायता भेजने में किसी प्रकार समर्थ न हो सका। इसका कारण यह था कि उसने 'गढा

दिलाये तथा उत्तर भारत मे मराठो के विजय अभियान का मार्ग खोल दिया। सूक्ष्मत यही उनकी मुख्य मुख्य सफलतायें है।

Q Examine the relation of the Poona court with the Bhonsles of Nagpur from 1761 (R U 1962)

प्रश्न— पूना दरबार के नागपुर के भोसलों के साथ १७३६ से लेकर १७६१ तक के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या कीजिये। (रा० वि० वि० १९६२)

उत्तर— १८वी शती के पूर्वार्ध मे ही मराठा राजनीति मे विघटनकारी तत्वो का उदय हो चुका था और हम यह देख चुके हैं कि किस प्रकार बालाजी पन्त के पेशवा के रूप मे सत्तारूढ होने पर चन्द्रसेन जाधव ने उसके विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काई थी। अब बाजीराव प्रथम के पेशवा बनने पर पुन वही संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। पेशवा को अपने देश म शान्ति व्यवस्था बनाये रखने तथा साथ ही चतुर्दिक विजय काय करने के लिये आवश्यक रूप म योग्य सेनापतियो और नेताओ को कुछ न कुछ विशेषाधिकार देने पडते थे। ये पदाधिकारी उसके प्रति पूर्ण स्वामिभक्ति पूवक ही सब काय न करते थे और इनम शन शन अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति की लालसा अत्यन्त प्रबल होने लगी थी। नागपुर के मराठा राज्य का सस्थापक रघुजी भोसले था। उसके चचा कान्हो जी तथा उनके भी पिता पारसो जी ने औरगजेब के बन्दागृह से शाहू की मुक्ति के पश्चात् उसके राज्याधिकार का समथन करके उसकी विशेष कृपा प्राप्त कर ली थी। परन्तु कालान्तर म जब शाहूजी ने बालाजी पन्त को अपना पेशवा नियुक्त करके अपनी प्रशासकीय शक्तियाँ उसी के हाथो म केन्द्रित कर दी तो उसे अपने शासन सम्बन्धी योजनाबद्ध कायक्रमो को सचालित करने के लिए विभिन्न जागीरो म बिखरे हुए मराठा नेताओ के सहयोग की आवश्यकता पडने लगी। उसके बाद बाजीराव को दाभाडे तथा अन्य बन्धुओ की भाँति नागपुर के भोसले सरदार से भी पारस्परिक मतभेदो का निवारण करना पडा और इस काय म उसने पर्याप्त सतकता का परिचय दिया।

नागपुर के भोसले अपनी सत्ता के अधिष्ठाता शाहूजी को ही कृतज्ञ बनना चाहते थे और उन्हे पेशवा से कोई विशेष प्रयोजन न था। उन्हे प्रभावशून्य बनाने के उद्देश्य से शासन काय म हाथ बटाने के लिये पेशवा ने सिन्धिया तथा होल्कर सरदारों से सहायता लेना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु मराठा इतिहास मे ऐसा बहुत कम देखने को मिलता कि विभिन्न सेनापतियों तथा सरदारो ने सच्चाई के साथ सम्मिलित प्रयास किये हों और किसी भी सगठन सरकार का स्थायित्व वस्तुत राज्य के विभिन्न तत्वों के परस्पर सहयोग पर ही निभर करता है। दुर्भाग्यवश बाजीराव की अधिकाश शक्ति गृह कलह में इन विद्रोही तत्वों के दमन म ही व्यय हो गई और इसका परिणाम आगे चलकर यह निकला कि मराठे अन्तत अपना एक चिरस्थायी

राज्य निर्मित करने में असफल सिद्ध हुए क्योंकि उन्हें समय समय पर स्वार्थी मराठा सरदारों के षड्यन्त्रों और विद्रोहों का बराबर सामना करना पड़ा।

रघुजी भोंसले का बंगाल अभियान तथा उससे पेशवा का संघर्ष—बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् पेशवा के पद को प्राप्त करने की सबसे अधिक लालसा बाबूजी नायक ने की थी किन्तु शाहूजी ने उसके धन अथवा भेंट उपहार आदि का लोभ न कर शासन संचालन में सिद्धहस्त बालाजीराव को ही पेशवा का पद प्रदान किया। बाबूजी नायक का समर्थन रघुजी भोंसले ने करना प्रारम्भ कर दिया। वस्तुतः वह स्वयं पेशवा बनना चाहता था और यह तो उसका केवल बहाना मात्र था कि वह बाबूजी नायक का समर्थन करता था। रघुजी ने सन् १७३८ ई० में ही महाराजा शाहू से यह अनुमति प्राप्त कर ली थी कि वह अपने विजय कार्यों के लिये बंगाल के सुविस्तृत एवं उपजाऊ क्षेत्रों में अपना प्रभाव विस्तार करके उनसे चौथ वसूल कर सकता है। इस अनुमति पत्र में रघुजी को सौंपे गये भू भाग की सीमायें नितान्त अस्पष्ट थीं अतः पेशवा और रघुजी में तत्सम्बन्धी मतभेद स्वाभाविक हो गया। इसके अतिरिक्त जब पेशवा अपने उत्तर के विजय अभियान के पश्चात् सतारा वापस आया तो रघुजी भोंसले ने उस वर्षा काल में ही वहाँ से नागपुर प्रस्थान कर दिया। फलतः दोनों में शान्ति समाधान भी न हो पाया। उधर रघुजी भोंसले ने हाल ही में त्रिचनापल्ली को विजित कर लिया था, जिसके कारण मराठा दरबार में उसका मान अत्यधिक बढ़ गया था। कर्नाटक में उसके चमत्कार पूर्ण विजय कार्यों तथा चान्दा साहब को बन्दी कर लेने के फलस्वरूप शाहूजी ने भी उसकी यथेष्ट प्रशंसा करके उसे भेंट उपहार आदि देकर सन्तुष्ट करने की चेष्टा की। तत्पश्चात् रघुजी नागपुर लौट गया। वहाँ पहुँचते ही उसने बंगाल पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से अपना सैनिक संगठन आदि करना प्रारम्भ कर दिया। उसे सौभाग्यवश वहाँ के असन्तुष्ट पदाधिकारी मीर हबीब से आमन्त्रण प्राप्त हो चुका था कि वह अत्याचारी नवाब अलीवर्दी खाँ का दमन करे।

अप्रैल १७४२ ई० से रघुजी द्वारा बंगाल भेजे गये सेनापति भास्कर पन्त ने वहाँ पर अलीवर्दी खाँ से संघर्ष करना प्रारम्भ किया। उसके पास सैनिकों की संख्या अत्यन्त कम थी किन्तु भास्कर पन्त ने अपने व्यक्तिगत लोभ के कारण बंगाल में अपने संघर्ष निरन्तर जारी रक्खे। कालान्तर में २३ सितम्बर १७४२ ई० को मराठों के अलीवर्दी खाँ द्वारा भीषण हत्याकाण्ड की सूचना पाकर रघुजी भोंसले ने बसन्त मजूमदार को लिखा कि, भास्कर पन्त ने बलपूर्वक मकसूदाबाद को घेरा डाल दिया है जिसकी सफलता के लिए उसे और अधिक सैनिकों की आवश्यकता है जो उसके पास शीघ्र पहुँचने चाहिये। तथापि रघुजी भास्कर पंत को सैनिक सहायता भेजने में किसी प्रकार समर्थ न हो सका। इसका कारण यह था कि उसने ...

तथा मण्डला' नामक दो ऐसे क्षेत्रों का अधिकृत कर रखा था, जिनमें पेशवा स्वयं अपने प्रभाव विस्तार का अधिकार सिद्ध करता था और जिनके कारण रघुजी तथा पेशवा के मध्य प्रत्यक्ष संघर्ष उत्पन्न हो गया। अन्ततः ४ मई १७४२ को उसने महाराजा शाहू से शिकायत की कि "नागपुर यात्रा लौटने पर मुझे यह ज्ञात हुआ कि पेशवा ने हमें सौंपे गये क्षेत्रों का अनधिकृत रूप में अतिक्रमण किया है। उसने हमारी चौकियों गढ़ा और मण्डला को अधिकृत करके हमारे प्रदेशों का लूटपाट कर आय से क्षतिग्रस्त किया है और सिवनी तथा लांघर परगने तो उसने उजाड़ ही डाले हैं। मैंने उसके मार्ग में पड़ने से कुछ सोच विचार कर ही परहेज रखा है किन्तु अब मेरे धैर्य की असीम परीक्षा हो चुकी है। मैंने उसके इस अतिक्रमण के फलस्वरूप उसके (पेशवा के) मन्त्री माधव विश्वनाथ पेठे को पहले से ही बन्दी कर लिया है।

२० फरवरी १७४२ ई० को पेशवा के एक कर्मचारी ने सूचित किया कि वह पेशवा के साथ बंगाल जा रहा था और इस आधार पर यह स्पष्ट हो सकता है कि वह अभी तक रघुजी की गतिविधि का निकट से अवलोकन करता रहा था। मार्च अप्रैल में उसे मालवा तथा बुन्देलखण्ड की यात्रा करनी पड़ी। उसे इसी मध्य यशवन्तराव पवार की सहायता भी उपलब्ध हो गई और उसने उसे सिंधिया तथा होलकर के साथ मालवा की व्यवस्था करने के लिये नियुक्त कर दिया। ३० सितम्बर १७४२ ई० को रघुजी ने पेशवा से पत्र भेजकर यह जानने की चेष्टा भी की कि उसका भावी कार्यक्रम क्या था। इसी मध्य रघुजी तथा पेशवा दोनों से भयभीत अलीवर्दी खाँ ने मुगल सम्राट से सहायता की माँग की जिसकी सूचना पाकर पेशवा ने सम्राट को आश्वस्त किया कि यदि मालवा, बुन्देलखण्ड तथा इलाहाबाद के सूबे उसे चौथ वसूल करने के लिये सौंप दिये जायें तो वह अलीवर्दी खाँ की सहायता करने को तैयार था। सम्राट इस शर्त पर तैयार भी हो गया और उसने बंगाल के उपर्युक्त नवाब को पेशवा की इस सहायता के उपलक्ष में क्षतिपूर्ति देने की आज्ञा दे दी। अलीवर्दी खाँ ने उस आज्ञा को शिरोधार्य कर उसे तत्काल अग्रिम धन राशि भी भेज दी।

पेशवा प्रयाग से काशी होता हुआ गया की दिशा में गया जहाँ से ८० मील की दूरी पर स्थित एक स्थान पर उससे मिलने के लिये रघुजी भोंसले स्वयं आया। वे दोनों ४ दिन तक अपने महत्वपूर्ण विषयों का वार्ता समाधान करते रहे किन्तु कोई निश्चित परिणाम न निकला। गया से पेशवा ने मुर्शिदाबाद की ओर प्रस्थान कर दिया और यहाँ उसकी ओर से पिलाजी जाधव तथा अलीवर्दी खाँ की ओर से मुस्तफा खाँ ने दोनों की भेंट मुलाकात का आयोजन किया। पेशवा तथा नवाब के मध्य होने वाले इस समझौते के अनुसार यह निश्चय किया गया कि पेशवा को अलीवर्दी खाँ

२२ लाख रुपय क्षतिपूर्ति के रूप म दे तथा बगाल की वार्षिक चौथ छत्रपति के राजकोष म भेजे। इसके अतिरिक्त रघुजी का निष्कासन करने क लिये दोनो न सम्मिलित प्रयास करने का भी निश्चय किया।

तथापि वास्तविक युद्ध म पेशवा न नवाब का सेना की सहायता लेने की आवश्यकता न समझ, स्वय १० अप्रल के दिन वे द्रुतो मुरग मे रघुजी भासल को घेर लिया। उसकी सेना का अधिकाश भाग पहले ही उस मार्ग मे पलायन कर चुका था और अब किसी प्रकार रघुजी भी वहाँ स भाग निकला। हिंगने (चिटनिस) द्वारा बापूजी को लिखे गये तत्सम्बन्धी पत्र स ज्ञात होता है कि रघुजी का दमन करने के लिये नवाब तथा पेशवा दोनो ने ही प्रत्यक्ष रूप स शपथें ग्रहण की थी। सरदेसाई का मत है कि छत्रपति को इस सकटकालीन स्थिति की पहले स ही सूचना थी और उसने यह सोचकर कि कही बगाल मे भी पेशवा और दाभाडे क विनाशकारी सघर्षों की भाँति भयकर रक्तपात न हो जाये, अविलम्ब दोनों को अर्थात् पेशवा और उसके प्रतिद्वन्दी रघुजी भोसले को सतारा आने की आज्ञा प्रेषित की। उनके वहाँ पहुँचने पर शाहू के समक्ष दोनो पक्षों म जो समझौता हुआ उसके अनुसार पेशवा न बगाल म अपने प्रभाव विस्तार का अधिकार रघुजी क पक्ष म त्याग दिया। ३१ अगस्त १७४३ को हुए इस समझौते क अनुसार पेशवा ने रघुजी को उसके अपने अधिकार क्षेत्र म सन्तुष्ट करने की नीति को छोडकर बरार से लेकर कटक बगाल तथा लखनऊ क सम्बन्धित क्षेत्रों को रघुजी की अधिकार सीमा के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया। इस सीमा रेखा के पश्चिमी क्षेत्र जिनमे आगरा, अजमेर प्रयाग तथा मालवा के प्रदेश भी सम्मिलित थे केवल पेशवा की अधिकार सीमा के अन्तर्गत मान लिये गये। शाहूजी क चरणो पर हाथ रखकर दोनो प्रतिद्वन्दियो ने उपयुक्त व्यवस्था का पालन करने की शपथ ग्रहण की। उनमे गढा और मण्डला के सम्बन्ध में भी एक पृथक समझौता कर लिया गया। इस सम्बन्ध म सरदेसाई ने लिखा है कि इस प्रकार रघुजी तथा पेशवा की दीर्घकाल स चली आने वाली प्रतिद्वन्दिता वर्तमान समय के लिये समाप्त हो गई और दोनो के लिये यह एक प्रशसा की बात है कि उनके भावी जीवन म दोनो के पारस्परिक सम्बन्ध कटुतर न बनने पाये।

सन् १७४४ ई० में रघुजी ने भास्कर राम को बगाल में अपने अधूरे कार्य को पूर्ण करने के लिये भेजा। उसके वहाँ पहुँचने पर मुस्तफा खा ने उसे ऐसा धोखा दिया कि वह नवाब अलीवर्दी खाँ स सधि करने को ही तैयार हो गया। इस बहाने

The difference of the two had already alarmed Shahu, lest they should lead to consequences like the clash of Dabhade with the Peshwa at Dabhoi He sent urgent calls to both immediately to repair to his presence —(Sardesai)

की पूर्ण कुछ काल के लिए समाप्त हो गई और सिंधखेड़ के युद्ध में पेशवा ने निजाम के विरुद्ध उनकी सहायता भी प्राप्त की। यह पेशवा के लिए सामान्य सफलता की बात न थी कि उसने अपनी कूटनीति से नागपुर के मराठा राजवंश को उसके उत्थान पतन से रोक कर भोंसले बन्धुओं में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करा लिये। इसके बाद भोंसले बन्धुओं ने शाह अब्दाली के आक्रमण के समय भी पेशवा को सहयोग दिया। इस दुर्व्यवस्था के अन्त में जब पेशवा ने बुन्देलखण्ड का अभियान किया (१७६१ ई०) तो दोनों भोंसले बन्धु अपनी सेना सहित उसके साथ गये।

सारांश —पेशवा बाजीराव तथा बालाजीराव दोनों के समय में नागपुर के भोंसला ने अशान्तिपूर्ण समस्या उत्पन्न की। जिसके फलस्वरूप देशवासियों के जन धन का विनाश हुआ। बंगाल के सेना साहब सूबा के पद के लिए पेशवा बाजीराव तथा रघुजी में जो भीषण मतभेद उठा उसके फलस्वरूप असंख्य मराठे अलीवर्दीखाँ की आज्ञा से धोखे में डालकर मौत के घाट उतार दिये गये। तत्पश्चात् अगस्त १७४१ ई० में महाराजा शाहू ने पेशवा और रघुजी में समझौता करा लिया। बंगाल क्षेत्र भोंसले को ही सौंप दिया गया। १७५५ में नागपुर के उत्तराधिकार प्रश्न को पेशवा ने स्वयं सुलझाया। १७६१ के युद्ध में इन दोनों भोंसले सरदारों ने अब्दाली का विरोध किया किन्तु मराठों के भाग्य चक्र ने उनकी पराजय का ही विधान किया था अतः उसमें उनको दोषी ठहराना अनुचित ही है। बालाजीराव के बुन्देलखण्ड अभियान में ये दोनों सरदार उसके साथ गये थे।

Q Describe the Maratha policy of penetration into the Rajputana states and account for its success (R U 1957)

Or

Show how the efforts of the Rajputs proved futile against the military and political aggressions of the Marathas (R U 1958)

Or

Give a critical estimate of the policy of Shivaji and the Peshwas towards the Rajputs (R U 1959)

Or

Explain the attitude of the Rajputs towards the Maratha policy of establishing a Hindu Sovereignty in India How far did they contribute to the success or failure of the policy? (R U 1963)

प्रश्न —मराठों की राजपूत राज्यों में प्रभाव विस्तार की नीति का वर्णन करते हुए उसकी सफलता के कारणों का उल्लेख कीजिये। (रा० वि० वि० १९५७)

अथवा

यह स्पष्ट कीजिये कि मराठों की सैनिक एवं राजनीतिक कार्यवाहियों के विरुद्ध राजपूतों के प्रयास क्यों विफल सिद्ध हुए। (रा० वि० वि० १९५८)

अथवा

राजपूतों के सम्बन्ध में शिवाजी तथा पेशवाओं की नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये। (रा० वि० वि० १९५९)

अथवा

मराठों की भारत में हिन्दू राजतन्त्र स्थापित करने की नीति के प्रति राजपूतों के दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए। इसकी सफलता अथवा असफलता में उन्होंने किस सीमा तक अपना योगदान किया? (रा० वि० वि० ११६३)

उत्तर—शिवाजी उन हिन्दू शासकों के सदैव ही सिरमौर माने जायेंगे जिन्होंने धर्मान्ध मुस्लिम सुल्तानों और स्वयं मुगल सम्राट औरंगजेब के बर्बरतापूर्ण अत्याचारों से भारत के हिन्दू धर्म और जाति की रक्षा करने के महानतम त्याग किये। उनका विचार था कि बिना हिन्दू जनता को स्वराज्य की सुविधायें दिये हुए उसका उद्धार करना असम्भव था। इस उद्देश्य पूर्ति के लिये उन्होंने एक ठोस योजना भी बनाई थी जिसे कार्यान्वित करने को न तो उन्हें कोई अवसर ही मिला और न ही वह अपने बड़े बड़े शत्रुओं पर विजय करने के पश्चात् अपने विशाल राज्य को व्यवस्थित करने के निमित्त सन् १६८० ई० के बाद जीवित रह पाये। उनकी अप्रत्याशित मृत्यु से मराठा जाति को अपरिमेय क्षति पहुँची।

शिवाजी तथा राजपूतों के परस्पर सम्बन्ध—शिवाजी को सर्व प्रथम मार्च सन् १६६५ ई० में आम्बेर के कछवाहे राजपूत मिर्जा राजा जयसिंह से युद्ध करना पड़ा। यह राजपूत सरदार औरंगजेब द्वारा शिवाजी के दमन के लिये भेजा गया था। इसके पूर्व जसवन्तसिंह ने भी एक मुगल सामन्त के रूप में दक्षिण भारत आकर मराठों से युद्ध करने का संक्षिप्त प्रयास किया था, कि उसके तथा उसके साथ राजकुमार मुअज्जम के साथ शिवाजी के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बन गये थे अतः शिवाजी को खुलकर उनके विरुद्ध संघर्ष न करने पड़े थे। मिर्जा राजा ने शिवाजी की सेनाओं और दुर्गों के विरुद्ध सारे महाराष्ट्र में नाकेबन्दी कर रक्खी थी। दिलेरखाँ नामक मुगल सरदार तथा उस राजपूत राजा ने मराठों को परास्त करके, उनसे पुरन्दर तथा रुद्रमाल के दुर्ग छीन लिये। तत्पश्चात् वज्रगढ़ के दुर्ग के घेरे में मुगल सेना को मराठों ने भीषण क्षति पहुँचाई तथापि मुगलों से घिरे हुए मराठा सरदारों को उनके आत्मसमर्पण कर देने पर मिर्जा राजा तथा दिलेर खाँ दोनों ने वहाँ से सुरक्षित निकल जाने दिया। पुरन्दर के घेरे में मुगल सेनापति दिलेरखाँ के नेतृत्व में मराठों को भी असीम क्षति पहुँचाई थी। उनका प्रसिद्ध सेनापति, मुरार बाजी प्रभु मार डाला गया, और तत्पश्चात् दो मास से निरन्तर युद्ध करते-करते मराठा सेनायें इतनी अस्त व्यस्त हो गई थीं कि शिवाजी को जयसिंह से सन्धि याचना करनी पड़ी। जून १६६५ ई० में दोनों पक्षों के मध्य पुरन्दर की संधि हो गई जिसमें मिर्जा राजा ने शिवाजी को औरंगजेब का मित्र बनाने के लिये उनसे सम्राट से भेंट करने के लिये जाने का प्रस्ताव भी किया। जयसिंह का विचार था कि शिवाजी की सहायता से दक्षिण भारत की शिया रियासतों को जीतना औरंगजेब के लिये सरल हो जायगा। इस सन्धि के विषय में अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है।

जयसिंह के प्रभाव म आकर शिवाजी ने सितम्बर १६६८ म सन् १६६६ ई० के प्रारम्भ तक बीजापुर म ध्वस युद्ध सघर्ष किया किन्तु इस अवसर पर कुतुबशाही तथा आदिलशाही राज्यो म मत्री ने आन के फलस्वरूप उन्हे बीजापुर स अपने युद्धो म कोई स्थाई सफलता न मिल सकी। सन् १६६६ ई० म शिवाजी ने जब आगरा की यात्रा की तो उस समय म सवर उनके अगस्त माग म कई महीनो के बाद स्वदेश वापस पहुँचने तक मिर्जा राजा तथा उनके पुत्र रामसिंह ने शिवाजी की मुगलो से रक्षा करने का भरसक प्रयास किया। इसम स्पष्ट होता है कि मराठा के छत्रपति शिवाजी ने अपने जीवन काल म राजपूतो के साथ मत्रीपूर्ण सम्बन्ध ही रक्खे थे।

शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला की परस्पर भेंट—सन् १६७०—७१ ई० के जाडे की ऋतु म मऊ जो बुन्देलखण्ड क पूर्व म स्थित है क राजपूत सरदार स्वर्गीय चम्पतराय बुन्देला का पुत्र छत्रसाल बुन्देला शिवाजी स भेंट करने महाराष्ट्र आया। इस नवयुवक क्षत्रिय ने जयसिंह कछवाह के कहने पर मुगल सेना म नौकरी कर ली थी किन्तु मुगलो के गोड अभियान म सम्राट की महत्व पूर्ण सेवायें करने के उपलक्ष म उसे सन्तोषजनक पुरस्कार भी न मिला इस कारण वह सम्राट औरगजेब से अत्यधिक अप्रसन्न था। एक दिन उसने मुगल शिविर का त्याग किया और फिर अपनी पत्नी का साथ लेकर उसने यह कह कर वहाँ स दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया कि वह कुछ दिनो के लिय आखेट यात्रा पर जा रहा था। छत्रसाल महाराष्ट्र और दक्षिण भारत के दुगम मार्गों तथा वनो और कन्दराओं को पार करता हुआ बडी कठिनाई स शिवाजी के दरबार पर पहुँचा। वहाँ उसने शिवाजी को अपनी सेवायें समर्पित करते हुए उनस हिन्दुओ पर नाना प्रकार क अत्याचार करने वाले मुगल सम्राट के विरुद्ध योजनाबद्ध सघर्ष करन क लिय सम्मिलित प्रयास करने की माँग की। प्रोफसर सर यदुनाथ सरकार[1] ने उस शिवाजी द्वारा दिय गये उत्तर का उल्लेख करते हुए अपने ग्रन्थ — शिवाजी —म लिखा है कि—

वीरवर जाओ, जाओ अपने देश पर अधिकार कर वही पर राज्य स्थापित करो और शत्रुओं को जीतो। तुमको वही पर जाकर युद्ध करना चाहिय क्योकि

---

1 Illustrious Chief! Conquer and Subdue your foes Recover your native land It is expedient to commence hostilities in your own dominions where your reputation will gain many adherents Whenever the Mughuls evince an intention attacking you I will distract thier attention and subvert their plans by active co operation with you

See Pogson s— Boondelas its translation— Chhatra prakash and Sarkar s Aurangzeb as also his Shivaji and His Times p 180 81

तुम्हारे कुल के नाम पर बहुत से लोग तुम्हें मदद देंगे। अगर मुगल तुम पर धावा करेंगे तो हम इधर से उन पर टूट पड़ेंगे और इस तरह दो शत्रुओं के बीच पड़ने से वे सहज ही में परास्त होंगे।' छत्रसाल खिन्न हो लौट गये।

इस स्थान पर उल्लेखनीय है कि शिवाजी का प्रधान लक्ष्य धार्मिक स्वतंत्रता की प्राप्ति करना मात्र था, न कि साम्राज्य विस्तार करना। वह निस्संदेह समस्त भारत में हिंदू धर्म के सर्वोपरि त्राता बन सकते थे। किंतु दुर्भाग्यवश अपनी इस महान योजना को सम्पन्न करने हेतु अधिक काल तक जीवित न रह सके। उनके दुर्बल उत्तराधिकारियों—शम्भाजी तथा राजाराम—को आजीवन मुगलों से युद्ध करने पड़े जिनमें उन्हें कोई स्थाई सफलता तो मिली नहीं, प्रत्युत मराठों की शक्ति ही ध्वस्त हुई। तथापि विनाश में सृजन के बीज भी होते हैं और मराठों ने अपने विरुद्ध चलाये गये मुगलों के दमन चक्र का सहन करते हुए अपनी जाति का दृढ़ संगठन बनाकर पेशवाओं के शासन में महाराष्ट्रीय जीवन सूर्य'—शिवाजी—के स्वप्नों को चरितार्थ करने का कठोर प्रयास किया।

शम्भाजी और वीर दुर्गादास—पिछले पृष्ठों में हम वीर दुर्गादास के साथ राजकुमार अकबर के शिवाजी से मिलकर सम्राट विरोधी कार्यक्रम का उल्लेख कर चुके हैं तथापि इस प्रसंग में उस परिस्थिति की ओर संकेत करना भी उपयुक्त होगा, जिससे लाभ उठाकर मराठों को सम्राट औरंगजेब और उसके बर्बरतापूर्ण अत्याचारों का सदैव के लिये अन्त करने का स्वर्ण अवसर मिल सकता था। तथापि शम्भाजी के आपसी गृह-संघर्ष और उनकी व्यक्तिगत अयोग्यता के ही कारण उन्हें राजपूत सरदार वीर दुर्गादास से सहयोग करने का अवसर न मिल पाया। इस समय औरंगजेब की लोकप्रियता राजपूतों में नाम मात्र की ही शेष रह गई थी और वे उसकी स्वार्थपरता एवं धर्मान्धता के कारण उससे अत्यधिक असंतुष्ट थे।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ के समय में शाहू तथा उनके मित्र राजपूत शासक—शाहूजी की शासन नीति अधिकांशतः बालाजी विश्वनाथ की दूरदर्शिता का ही परिणाम थी। अकबर की राजपूत-नीति को औरंगजेब ने बिल्कुल ही उलट दिया था, फिर उसने अपने प्रिय पुत्र राजकुमार अकबर की चेतावनियों पर भी कोई ध्यान न दिया था। उसकी मृत्यु के बाद अन्य सम्राट दुर्बल शासक ही सिद्ध हुए और अब फर्रुखसियर तो सैयद भाइयों के ही हाथ में कठपुतली बन चुका था, जिसके कारण राजपूत सामन्तों में प्रबल असन्तोष व्याप्त हो रहा था। उदयपुर के राणा अमरसिंह (सं० १७००—१७१६ ई०), तथा उसके बाद उसके पुत्र संग्रामसिंह ने (सं० १७१६—३४ ई०) न कभी भी मुसलमानों की आधीनता न स्वीकार की। जोधपुर का राठौर राजा अजीतसिंह (सं० १६७८—१७२४ ई०) यद्यपि मुगल सामन्त था तथापि वह उससे आजीवन असंतुष्ट बना रहा। उसका पुत्र अभयसिंह अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। जयपुर के शासक मिर्जा राजा के वंशज सवाई जयसिंह के छत्रपति शाहू के साथ

विशेष मत्री पूर्ण सम्बन्ध रहे। जयपुर के संग्रहालय से अनेकानेक मराठा के नाम ज्ञात किये गये हैं जिनका सवाई जयसिंह यथेष्ट आदर सम्मान करता था। शाहूजी जिस समय मुगल बन्दीगृह में थे तभी सवाई जयसिंह से उनका परिचय हुआ था। इस मत्री सम्बन्ध के परिणाम दीर्घकाल तक मराठों और राजपूतो में घनिष्टता बनाये रहे। मुगल सम्राटो की धर्मान्ध नीति के विषय में सवाई जयसिंह तथा शाहूजी में बराबर पत्र व्यवहार[1] होता रहा और वे दोनो यही चाहते थे कि मुगल शासक किसी प्रकार सहिष्णु नीति का अनुसरण करने लगें। कालान्तर में उन्होने इस उद्देश्य पूर्ति के लिये अपने अपने ढंग से समुचित प्रयास किये।

जब औरगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने सिक्खों के विरुद्ध अपना धर्म युद्ध प्रारम्भ किया तो उपर्युक्त सभी राजपूत राजाओ ने पुष्कर झील के समीप एक विशाल सभा आयोजित करके सम्मिलित रूप में मुसलमानो के विषय में समान नीति पर चलने का सकल्प किया। तथापि उसमे कोई लाभ न हो सका और राजपूतो में और भी अधिक मतभेद उत्पन्न हो गया। इस मतभेद से भी लाभ उठाकर सयद भाइयों ने अजीतसिंह को अपनी पुत्री सम्राट फर्रुखसियर को विवाह में देने के लिये विवश कर दिया। तत्पश्चात् अन्य राजपूत भी सयद बन्धुओ से भयभीत होकर उनके अनुयायी बन गये। इसी प्रकार बालाजी विश्वनाथ ने मुगलो और सयद बन्धुओ से मत्री करली किन्तु उन्हे उनसे इस मित्रता के उपलक्ष में विभिन्न क्षेत्रो में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मिल गया जिससे मराठो के जातीय गौरव की यथेष्ट अभिवृद्धि हुई।

बाजीराव के शासन में राजपूत मराठा सम्बन्ध—सन् १७२८ ई० में जबकि चिमनाजी अप्पा ने अमझेरा की विजय करने के पश्चात् उज्जैन का घेरा डाला तो उसी समय मुहम्मद खाँ बगश ने छत्रसाल बुन्देला पर भीषण आक्रमण किया और उसमे कई बार परास्त होने पर छत्रसाल का जैतपुर के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। वहाँ से उसने मराठों के उपर्युक्त सेनापति तथा पेशवा बाजीराव दोनो से सहायता की जोरदार माँग की। अस्तु बाजीराव ने १२ मार्च १७२९ ई० को महोबा पहुँच कर

---

1 Sardesai—New History of the Marathas Vol II P 35
At any rate Sahu and Jai Singh freely exchanged views on this policy of the Mughals and later each tried in his own way to bring about a kind of compromise that is non interference or toleration as inculcated and practised by the Great Akbar

2 महोबा के एक स्थानीय एव सुप्रसिद्ध कवि ने इस सम्बन्ध में बाजीराव को भेजे गये सन्देश में अपनी यह कविता भी प्रेषित की था—

जो गति ग्राह-गजेन्द्र की सो गति जानहु आज।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज॥

छत्रसाल के शत्रु मोहम्मद बंगश और उसके पुत्र कायम खाँ की अधीनता में आयी हुई सेनाओं से भयंकर युद्ध करके उनका कठोर दमन किया। मुहम्मदखाँ बंगश को उससे यह लिखित शपथ लेकर ही मुक्त किया गया कि अब वह भविष्य में बुन्देलखण्ड में प्रवेश करके छत्रसाल को कभी भी त्रस्त न करेगा। छत्रसाल ने पेशवा से प्रसन्न होकर उसकी सेवा में अपने प्रतिनिधियों—हिरदाम पुरोहित तथा आशाराम—को पूना भेजकर बाजीराव के नाम, उस विशाल जागीर की लिखा पढ़ी करवाई जिसे देने का उसने पेशवा को वचन दिया था। इस समय से छत्रसाल के पुत्रों के संरक्षण का भार पेशवा बाजीराव पर ही आ गया। दूसरे वर्ष चिमनाजी अप्पा ने बुन्देलखण्ड पहुँचकर काल्पी हाटा सागर झांसी सिराज, कोंच, गढ़ा कोटा तथा हिरदेनगर आदि जिलों का शासन प्रबन्ध सम्हाल लिया। उन्होंने गोविन्दपन्त खेर को वहाँ पर पेशवा का प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया।

मालवा और गुजरात की चौथ तथा मुगलों की साम्राज्यवादी नीति के विषय में मुगल दरबार में मतभेद—मुगल दरबार में राजपूतों और मुस्लिम सामन्तों के मध्य साम्राज्य की नीति के विषय में तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया था। स्वयं सम्राट तथा उसके मन्त्री कमरुद्दीन खाँ ने भी इस सम्बन्ध में और विशेषकर मराठों के विषय में अभी तक कोई निश्चित मत न लिया था। इस मतभेद के निवारण के लिये जयसिंह ने मराठों की समस्या का हल करने का दायित्व स्वयं अपने ऊपर लेकर दारासिंह के नेतृत्व में एक मन्त्रिमण्डल पहले शाहूजी के दरबार में तथा फिर निजाम-मुल मुल्क के पास भेजा। इस आदान प्रदान से मराठों को निजाम की स्वार्थपरक एवं शत्रुतापूर्ण नीति का पता लग गया। उन्होंने मोहम्मदखाँ बंगश तथा निजाम की क्रिया विधियों (मालवा और गुजरात) पर प्रबल नियन्त्रण लगा दिया। तथापि त्र्यम्बकराव दाभाडे को निजाम ने समझा बुझाकर अपने पक्ष में कर लिया। इसी मध्य पेशवा ने अहमदाबाद के अभयसिंह से सम्पर्क स्थापित करके उससे इस बात पर ६ लाख रुपया चौथ के स्थान पर चुकाने का वचन ले लिया कि वह गुजरात से निजाम के समर्थक पिलाजी गायकवाड तथा दाभाडे को निष्कासित कर देंगे। तदनुसार पेशवा ने वहाँ पर पहुँचकर दाभाडे तथा उसके समर्थकों पिलाजी गायकवाड आदि को परास्त करके उनमें से बहुतों को अन्यत्र पलायन करने को विवश कर दिया। अभयसिंह की मैत्री अस्थाई सिद्ध हुई।

जयसिंह द्वारा मालवा में मराठों का प्रतिरोध—जयसिंह ने सम्राट की आज्ञानुसार उज्जैन पहुँचकर मालवा का शासन भार सम्हाल लिया। इस समय बाजीराव निजाम के साथ 'रोह रामेश्वर' के अभियान में व्यस्त थे अतः चिमनाजी अप्पा ने होल्कर के एक सरदार विठोजी बुले तथा आनन्दराव को भेजकर उन्हें जयसिंह से युद्ध करने की आज्ञा दी। जयसिंह को उन्होंने परास्त कर दिया और उससे ६ लाख रुपया चौथ वसूल की। तथापि मराठों के विरुद्ध उनका विरोध मार्च १७३५

ई० तक चलता रहा और अन्त में होल्कर और सिन्धिया की सेनाओं ने मारवाड़ तथा जयपुर को बुरी तरह पददलित किया। उन्होंने साम्राज्यवादियों और उनकी ओर से युद्ध करने वाले जयसिंह को घोर पराजय दी। इस कारण २४ मार्च १७३५ ई० के दिन मराठों और मुगलों में सन्धि हो गई जिसके फलस्वरूप मराठों को २२ लाख रुपये चौथ के रूप में उपलब्ध हुए। इसके ५ वर्ष बाद पेशवा की मृत्यु हो गई और बालाजी बाजीराव को उसका उत्तराधिकारी बनाया गया।

बालाजीराव के समय में मल्हारराव होल्कर रानोजी सिन्धिया तथा विठोजी बुले के सम्मिलित प्रयासों से मराठों ने मालवा प्रदेश में चौथ वसूल करने का स्थाई अधिकार प्राप्त कर लिया। इस कार्य में उन्हें उस स्थान पर नियुक्त अपने राजदूत—हिंगने[1] से विशेष सहायता मिली। वस्तुतः यदि ५ जनवरी १७४१ ई० में मल्हारराव होल्कर ने धार पर अधिकार न कर लिया होता तो सम्भवतः सम्राट ने पेशवा के नाम मालवा की चौथ के अधिकार को मान्यता न दी होती। २१ अप्रैल १७४१ को रानोजी सिन्धिया मल्हारराव होल्कर जसवन्तराव पवार तथा पिलाजी जाधव ने इस व्यवस्था को अपनी स्थाई स्वीकृति प्रदान कर दी।

सन् १७४३ ई० का राजपूत युद्ध—सवाई जयसिंह तथा शाहूजी के पारस्परिक सम्बन्धों का उल्लेख किया जा चुका है किन्तु सितम्बर २३ सन् १७४३ ई० में सवाई जयसिंह की मृत्यु के फलस्वरूप राजपूतों और मराठों के पारस्परिक सम्बन्धों में यथेष्ट परिवर्तन उत्पन्न हो गया। उसके दोनों पुत्रों ईश्वरसिंह तथा माधोसिंह के मध्य उत्तराधिकार के प्रश्न पर तीव्र संघर्ष हुआ। माधोसिंह को मल्हारराव तथा उदयपुर के राणा की मान्यता प्राप्त थी जबकि जयप्पा (रानोजी सिन्धिया का पुत्र) उसके प्रतिद्वन्द्वी ईश्वरसिंह का समर्थन कर रहा था। इस प्रकार होल्कर और सिन्धिया में भी फूट हो गई। यह संघर्ष १७५१ ई० तक चलता रहा और इस बीच किये जाने वाले मध्यस्थता के सारे प्रयास असफल सिद्ध हुए। दोनों पक्षों की ओर से षडयन्त्र किये गये। माधोसिंह ने जयप्पा तथा मल्हारराव को सहभोज में निमन्त्रित करके भोजन के साथ विष देने का असफल प्रयास भी किया। परन्तु सबसे अधिक शत्रुतापूर्ण व्यवहार ईश्वरसिंह ने किया। उसने मल्हारराव के मन्त्री केशोराम को विष दे दिया उसके तोपची—शिवनाथ—पर भी भीषण अत्याचार किये क्योंकि वे पेशवा की आज्ञानुसार होल्कर तथा सिन्धिया के साथ उसमें चौथ वसूल करने गये थे।

मराठों के विनाश का दूसरा कार्य ६ १० जनवरी १७५१ ई० को किया गया, जब कि राजपूतों ने जयपुर नगर के सारे द्वार बन्द करके ३ हजार मराठों का क्रूरता पूर्वक बध कर दिया। वे भाग भी न सके और उनमें से बहुत कम लोग जीवित स्वदेश लौट पाये। यह हत्याकाण्ड पूरे १२ घंटे तक चलता रहा। उस

1 मराठेष आर्हिंगने

दुघटना के परिणाम स्वरूप दीघकाल से चली आने वाली मराठा राजपूत मैत्री का अन्त हो। गया।[1] व भविष्य में फिर कभी भी इतने घनिष्ट न बन सके। यही कारण है कि पानीपत के तीसरे युद्ध में भी भारत की शक्ति के इन दोनों महान् स्तम्भों—मराठों तथा राजपूतों में सहयोग और सहानुभूति न उत्पन्न हो पाई, जिससे अब्दाली की सेनाओं ने भारत के आक्रमण में अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की।

सारांश—शिवाजी के समय में राजपूत तथा मराठा जातियों में किसी प्रकार की शत्रुता न उत्पन्न हो पाई। राजपूत तथा मराठा शासक दोनों ही औरंगजेब की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण उसके विरोधी थे। उनकी अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों में यथेष्ट साम्य मिलता है। शम्भाजी तथा दुर्गादास के सम्बन्ध भी अच्छे रहे और यह क्षत्रीय सरदार जोधपुर का ऐसा वीर नेता था, जिसने शम्भाजी तथा राजकुमार अकबर दोनों को औरंगजेब का कट्टर विरोधी बना दिया था। पेशवा बालाजी ने चौथ और सरदेशमुखी के जो अधिकार प्राप्त किये उनसे सम्बन्धित मालवा की चौथ तथा जयपुर के उत्तराधिकार के प्रश्न पर मराठों और राजपूतों के मध्य जो दीघकालीन संघर्ष चला और जिसे प्रोत्साहित करने में निजाम तथा कुछ मुगल अमीरों के साथ असन्तुष्ट मराठा सरदारों ने अनेक कुचक्र रचे उसके फलस्वरूप जनवरी १७५१ ई० में असंख्य मराठा सैनिकों तथा उनके साथ के अन्यान्य व्यक्तियों की जयपुर में भीषण हत्यायें की गई।

इस दुघटना के परिणामस्वरूप मराठा और राजपूतों के मध्य स्थाई वैर भाव उत्पन्न हो गया तथापि उन्हें मालवा से चौथ वसूल करने के अधिकार से वंचित न किया जा सका। दान धन बालाजीराव पेशवा ने मुगल सम्राट को समय समय पर सैनिक सहायता देकर उसमें अधिकांश भारत पर चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकार उपलब्ध कर लिये। वस्तुतः यदि मराठों ने जयपुर के उत्तराधिकार युद्ध में हस्तक्षेप न किया होता तो निश्चय है उनके राजपूतों के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध बने रहते। इस प्रकार भारत की एकता के दृढ़ स्तम्भ धीरे धीरे धराशायी होते गये और फलतः विदेशियों को अपने प्रभाव विस्तार का समुचित अवसर सुलभ हो गया।

Q What were the effects of Peshwa Bajirao's death on the affairs of Marathas (R U 1958)

Or

Explain fully Bajirao s policy towards the Mughal Empire In the light of the contemporary criticism and subsequnet events judge the merits of his policy (R U 1962)

1 Sardesai—New History of the Marathas V 2 P 241
The friendship which had lasted between the Southern invaders and the Rajput chiefs had given place to enmity and bitterness

प्रश्न—पेशवा बाजीराव की मृत्यु के मराठों की नीति पर कौन से परिणाम हुये ?

अथवा

(रा० वि० वि० १९५८)

मुगल साम्राज्य के प्रति बाजीराव की नीति की विस्तृत व्याख्या कीजिए। समकालीन आलोचनात्मक उल्लेखों तथा पश्चात्कालीन घटनाओं के आधार पर उसकी नीति व गुणों का विश्लेषण कीजिए। (रा० वि० वि० १९६२)

उत्तर—बाजीराव के समय में मुगलों मराठा सम्बन्ध—पेशवा बाजीराव एक श्रेष्ठ व कूटनीति निपुण सेनानायक था। उसने अपने शासन के प्रारम्भ में ही निज़ाम हैदराबाद को पूर्णतया पराजित कर दिया और जंजीरा के सिद्दियों को भी पराजित करने में सफलता पाई। मालवा तथा बुन्देलखण्ड में उसका प्रभुत्व स्थापित हो चुका था और सतारा तथा कोल्हापुर के राजतन्त्रों में एकता स्थापित कर दी गई थी। इस प्रकार मराठा शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होने लगा था और मुगल दरबार में मराठों से ईर्ष्या करने वाले लोगों की संख्या में भी वृद्धि हो रही थी। मुगल सम्राट के परामर्शदाताओं में भी पेशवा के विषय में कोई मतैक्य न था। वे प्रायः दो विचारधाराओं में विभक्त थे। एक पक्ष के नेता सवाई जयसिंह तथा मीर बख्शी खान-ए-दौरान उनके साथ उचित समझौता करने का समर्थन करते थे तथा दूसरे के साथ नौ मुहम्मद खाँ बंगश तथा कुछ अन्य लोग मराठों को पूर्णतया पराजित करने के लिए सम्मिलित प्रयास करने की नीति अपनाना चाहते थे। अगस्त सन् १७३० ई० में जयसिंह ने अपने प्रतिनिधि दीपसिंह को सतारा भेजकर पेशवा और छत्रपति के विचारों का पता लगाया तथा शाहूजी से सन्धि करने की व्यवस्था की। उसकी शर्तों के अनुसार मराठों को मालवा की चौथ के रूप में १० लाख रुपये वार्षिक मिलने थे जिसके उपलक्ष में मराठे सरदारों को शाही दरबार में रहकर मुगल सम्राट की सेवा करनी अनिवार्य थी।

इस समझौते को मुगल शासक ने मानने से इन्कार कर दिया किन्तु जयसिंह ने उससे पुनः अनुरोध करते हुए यह प्रार्थना की कि "आप गत २० वर्षों से मराठों को मालवा से खदेड़ने का प्रयास कर रहे हैं। इस कार्य में होने वाले व्यय तथा अभी तक उपलब्ध सफलता को यदि आप अपने ध्यान में रक्खें तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अवश्य ही मेरी इस योजना से जो कि प्रस्तुत संकट से बचने का एक मात्र उपाय है प्रभावित होंगे।" तथापि सम्राट ने इसका उल्टा ही व्यवहार किया। उसने जयसिंह को मालवा की सूबेदारी से पृथक करके बंगश को उस स्थान पर नियुक्त किया किन्तु खान दौरान तथा कमरुद्दीन खाँ इस व्यवस्था के विपक्ष में थे। उधर मराठों ने भी बंगश पर चारों ओर से आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था, जिससे उसे सम्राट से सैनिक सहायता की माँग करने को विवश होना पड़ा। अन्ततः परिस्थिति को सुधारने की दृष्टि से १७३२ ई० में सम्राट ने जयसिंह को पुनः उस स्थान पर नियुक्त कर दिया और वह इस पद पर आगामी ४ वर्षों तक कार्य करता रहा।

२६ जुलाई १७३२ ई० को पेशवा ने होल्कर और सिंधिया को सतारा में आमन्त्रित करके एक निश्चित निर्देशपत्र द्वारा उन्हें मालवा के जिलों का परस्पर विभाजन करके मुगल साम्राज्य, मराठा राज्य तथा निजाम के राज्य के विषय में निश्चित नीति का पालन करने को अग्रसर किया। दाभाडे और निजाम की सम्मिलित सेनाओं के डभोई के स्थान पर मराठों के हाथ पराजित होने के फलस्वरूप अब पेशवा तथा निजाम के सम्बन्धों का निर्धारण हो चुका था। तथापि निजाम ने पेशवा से विचार विनिमय करके अपनी मराठा नीति को स्थाई रूप देने की इच्छा प्रकट की और तत्सम्बन्धी सन्देश शाहू जी के पास प्रेषित किये। उसने इस व्यवस्था के उपलक्ष में शाहूजी को ७ करोड़ रुपये भी भेंट करने की बात कही। अस्तु बाजी राव ने उससे मिलने का निश्चय कर लिया यद्यपि उसके कुछ मित्र एवं सहयोगी इसके पक्ष में न थे।

रोह रामेश्वर के स्थान पर दोनों की भेंट हुई जिसके विषय में विस्तार पूर्वक कोई ऐतिहासिक ज्ञान अभी तक उपलब्ध नहीं किया जा सका है। तथापि यह सम्मेलन नितान्त मनोरंजक रहा और दोनों ने एक दूसरे के मनोभावों को निराकृत करने की चेष्टा की। इस विचार विनिमय के परिणामों को लिपिबद्ध करते हुए एल्फिन्स्टन महाशय ने लिखा है कि—

निजाम ने बाजीराव से गुप्त संधि कर ली जिससे अनुगत मराठा सरदार ने दक्षिण में अनाक्रमण नीति पर चलने का वचन दिया तथा उन प्रदेशों में उसने चौथ और सरदेशमुखी को छोड़कर अन्य किसी प्रकार के कर न वसूल करवाने का संकल्प कर लिया जबकि निजाम हिन्दुस्तान (उत्तर भारत) पर मराठा के सैनिक अभियानों के प्रति उस समय तक तटस्थ नीति का पालन करने को वचनबद्ध हो गया जब तक कि मराठों के उत्तर की ओर खानदेश में होकर प्रस्थान से उस प्रदेश को कोई क्षति न पहुँचने पाये।

जयसिंह तथा मराठा अभियान—इसी समय जयसिंह ने मालवा का शासन सूत्र सम्हाला था। सम्राट की आज्ञानुसार उसको मराठों का अब प्रतिरोध करना स्वाभाविक था। अतः चिमनाजी अप्पा ने होल्कर के एक अधीनस्थ सरदार बिठोजी बुले तथा आनन्दराव पवार को जयसिंह का दमन करने के लिए भेज दिया। इस संघर्ष में जयसिंह मराठों के सामने टिक न सका और कुछ समय पश्चात् उसने उन्हें ६ लाख रुपये देकर अपनी जान बचाई क्योंकि सम्राट इस ओर से बिल्कुल उदासीन बैठा था। इधर इन सेनापतियों को भेजकर चिमनाजी बुन्देलखण्ड में उन प्रदेशों की व्यवस्था करने चले गये थे जिन्हें कि छत्रसाल बुन्देला ने बाजीराव को प्रदान किया था। इस प्रकार मालवा तथा बुन्देलखण्ड की व्यवस्था करके जून १७३३ ई० में सिंधिया तथा होल्कर आदि के साथ दक्षिण वापस लौट आये। सन् १७३४ ई० में चिमनाजी मराठा ने पुनः मालवा पर आक्रमण किया, किन्तु इसी सिलसिले में उन्होंने बूंदी के

उत्तराधिकार संघर्ष में भी, जिसमें स्वयं जयसिंह भी सम्मिलित था, सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। इससे क्षुब्ध होकर सम्राट ने जयसिंह की सहायता में मुजफ्फरखाँ को भेजा और उसके साथ मिलकर जयसिंह ने जिसने अन्य राजपूत सरदारों को मराठों के विरुद्ध संगठित कर रक्खा था, मराठों को मालवा से निष्कासित करने का निश्चय कर लिया। जनवरी तथा फरवरी १७३५ ई० में वजीर कमरुद्दीन खान दौरान तथा अन्य मुगल सरदारों ने राजपूताना तथा बुन्देलखण्ड में मराठों से संघर्ष किया किन्तु उन्हें जो संख्या में दो लाख थे २० सहस्त्र मराठा सेना ने किसी प्रकार सफल न होने दिया। जयसिंह को अब मराठों को २२ करोड़ रुपये देकर उनसे मालवा की शान्ति का क्रय करना पड़ा। बाजीराव तथा सम्राट के मध्य विचार विमर्श द्वारा मतभेदों के निराकरण का प्रयास।

सवाई जयसिंह ने अब पेशवा तथा मुगल सम्राट के मध्य स्थाई समझौता कराने का एक और भी प्रयास किया। उसने सम्राट के मन्त्रियों से स्वयं बात करके उन्हें इस समझौते को सफल बनाने के लिए सम्राट तथा पेशवा के सम्मेलन की व्यवस्था करने पर राजी कर लिया। उधर पेशवा ने भी इस सम्बन्ध में शाहूजी की अनुमति लेकर १८३५ ई० में पूना से प्रस्थान कर दिया। उसने कुछ गिने गिने साथियों को लेकर राजपूताने की वस्तुस्थिति का निरीक्षण करने हेतु उस प्रदेश में स्वतन्त्र रूप से प्रवेश किया। इस सम्बन्ध में उसके समकालीन लेखक की ये पंक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं—

उत्तर भारत के लोगों के मस्तिष्क में पेशवा के नाम का इतना अधिक आतंक स्थापित था कि वह मुगल सम्राट को पदच्युत करके दिल्ली के सिंहासन पर छत्रपति को भी अधिष्ठित कर सकता था।[1]

उदयपुर में पेशवा के पहुँचने पर दिल्ली में नियुक्त पेशवा के प्रतिनिधि ने सम्पत्ति के मर्यादा और साथ ही साथ सम्राट द्वारा बाजीराव को भेंट की गई बहुमूल्य वस्तुओं को अपने साथ लाकर उसमें भेंट की। इसके पश्चात् पेशवा उदयपुर के राणा से भी मिलने गया जिसने उसकी काफी आवभगत की और साथ ही उसे डेढ़ लाख रुपये वार्षिक चौथ के रूप में देने का वचन दिया। इस प्रकार जहाँ कहीं भी पेशवा पहुँचा उसके ऊपर भेंट उपहारों की बौछार की गई और सभी ने उसका हार्दिक आदर सम्मान किया। जयसिंह ने भी पेशवा से व्यक्तिगत भेंट करके उसे जयपुर की चौथाई के रूप में ५ लाख रुपये वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। इसी मध्य पेशवा ने अपने कर्मचारियों—महादेव भारद्विज तथा मल्हारराव मुंशी—और

1 'The Peshwa s name exercises such a terror over the minds of the people in the north that he could easily remove the Emperor from his position and install the Chhatrapati on the throne of Delhi (P D 30 134 14 50 35-37)

उनके साथ मे जयसिंह के राजदूत—कृपाराम को मुगल दरबार में भेजकर उन्हें सम्राट तथा पेशवा के भावी सम्मेलन के विषय मे समुचित व्यवस्था करवाने की आज्ञा दी।

अब सम्राट ने उससे भेंट करने की कोई उत्सुकता न दिखलाई। उसने यादगारखाँ तथा कृपाराम [1] को जयसिंह के पास वापिस भेजकर उसे इस दिशा मे प्रभावित करने की चेष्टा की कि वह पेशवा से ऐसा समझौता कराने मे सफलता प्राप्त करे कि जिसमें सम्राट को ही अधिकाधिक लाभ हो इससे बाजीराव अत्यन्त क्षुब्ध हुआ और उसने अपने दूतों धोंदो गोविन्द तथा बाबूराव मल्हार को दिल्ली भेजकर सम्राट के सामने अपनी उल्टी ही शर्तें प्रस्तुत करवाई। फलत सम्राट अप्रसन्न हो गया और पेशवा से भेंट करने से इन्कार करके उसके विरुद्ध युद्ध का मार्ग अपनाने का विचार करना आरम्भ कर दिया। अब वर्षा ऋतु भी समीप थी अत पेशवा ने सम्राट से भेंट करने का विचार त्याग कर दक्षिण की ओर प्रस्थान करने का निश्चय कर दिया। साथ ही उसने यह भी निश्चय किया कि अब वह सम्राट से बलपूर्वक अपनी माँगों को स्वीकार कराये बिना कभी भी चैन की नींद न सोयेगा।

बाजीराव का दिल्ली अभियान—बाजीराव ने अब मल्हारराव होल्कर तथा राणोजी सिंधिया को मालवा मे अपने सैनिक शिविर में आकर रहने तथा मुगलों से युद्ध करने की तैयारियाँ करने की आज्ञा दे दी। इसी समय से इन मराठा सरदारों ने वहाँ पर स्थाई रूप से रहना भी प्रारम्भ कर दिया। पेशवा ने छत्रपति तथा अपने अनुयायी सरदारों से परामर्श करके जनवरी १७३७ ई० मे मालवा की दिशा मे एक विशाल सेना के साथ प्रस्थान कर दिया। उसने राणोजी सिंधिया से मार्ग मे मिलने के स्थान पर मिलकर युद्ध की चक्रव्यूहाकार प्रक्रिया आरम्भ करने के विषय मे विचार विमर्श किया। उसने नर्मदा तथा जमुना के मध्यवर्ती सभी क्षेत्रों से चौथ वसूल करके उन्हें अधीनस्थ करने के विभिन्न उत्तरदायित्व अपने सेनापतियों को सौंपे। यशवंत पिलाजी जाधवराव तथा होल्कर को बुन्देलखण्ड के मार्ग से भेजा गया तथा सिंधिया को लेकर स्वयं बाजीराव उस दिशा में सेना के साथ उनके पीछे पीछे रहा। इन सेनाओं ने भदावर तथा अटेर पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ से काफी मात्रा मे लूट की सामग्री प्राप्त की।

इस समय जब कि मराठा सेनायें दोआब मे प्रवेश करने के लिए जमुना नदी पार करके ऐतमादपुर तथा अन्य समीपस्थ क्षेत्रों मे लूट-पाट मचाकर जा रही थीं और

---

1 Sardesai—New History of the Marathas P—151
In the meantime the Emperor not caring to receive Baji Rao in a personal visit at Delhi sent his own agents Yadgar Khan and Kirpa Ram to Jay a Singh with certain proposals tending to effect as advantageous a bargain as possible

उनके पीछे असंख्य मराठा योद्धा पेशवा के नेतृत्व में भी उधर आ रहे थे तो सम्राट द्वारा भेजी गई सादत खाँ के नेतृत्व में एक विशाल मुगल सेना ने उस अग्रगामी मराठा कुमुक पर एकाएक आक्रमण करके उसे आंशिक क्षति पहुँचाई और कुछ सैनिकों को बन्दी भी कर लिया। इन बन्दियों को अपनी अपार सफलता का सच्चा प्रमाण बतला कर सादत खाँ ने मुगल सम्राट को सूचित किया कि उनको मराठों को पूर्णतया परास्त करके दूर खदेड़ दिया था। इसी मध्य बाजीराव ने जैसी कि स्वयं उसने ५ अप्रेल १७३७ को जयपुर से अपने मार्ग की सूचना प्रेषित की और जो ब्रह्मेन्द्र[1] चरित्र नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ में भी लिपिबद्ध की गई है मुगलों के मुख्य सैनिक मोर्चे से बचकर मेवाती क्षेत्रों में होते हुए दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। दिल्ली के समीप पहुँचकर उसने पड़ाव किया। तत्पश्चात् उसने अपने सैनिकों को दिल्ली के आसपास तथा उसकी पुरानी बस्तियाँ को नष्ट भ्रष्ट करने की आज्ञा दी। पहले से संघर्ष कर रही उस मुगल सेना ने पेशवा के एक प्रमुख कर्मचारी को जो दिल्ली में नियुक्त था उसके शिविर से बाहर खदेड़ दिया था जिससे वह अब पेशवा की सेना में आ मिला था। मराठा सेनाओं द्वारा दिल्ली की इस भीषण लूट पाट का समाचार पाकर सम्राट ने पेशवा के पास अपने दूत भेज कर यह अनुरोध किया कि वह उस प्रमुख कर्मचारी—धोंडू गोविन्द को उसके स्थान पर वापिस भेजे जिसके प्रत्युत्तर में पेशवा ने सम्राट से कुछ अंग रक्षक माँगे जिनके संरक्षण में ही धोंडू गोविन्द को उस भीषण रक्तपात के दिनों में भेजा जा सकता था।

किसी सैनिक महत्व की दृष्टि से पेशवा ने अपनी सेना को कुछ पीछे हटाकर विश्राम लेने का विचार किया किन्तु इसी मध्य एक सेना मुगल सम्राट द्वारा भेजी गई जिसने मराठा पर आक्रमण कर दिया। ऐसी इस विषम स्थिति में मल्हार जी होल्कर तथा सिंधिया की अधीनता में मराठा—सेनाओं ने द्रुतगति से घटनास्थल पर आकर पेशवा की रक्षा की और साथ ही उस लगभग ८०००-मुगल सेना को भीषण क्षति पहुँचाई। उसके १२ सरदार मार डाले गये तथा एक अन्य सुप्रसिद्ध मुगल सेनापति मीर-हसन कोका को भी बुरी तरह घायल किया गया। तत्पश्चात् जब पेशवा ने सेना को झील की ओर पुनः संचालित किया तो उसे वजीर कमर उद्दीन की सेना सामने से आती हुई दिखाई दी। शीघ्र ही मराठे उस सेना पर सिंह की भाँति टूट पड़े और उसे वे आंशिक क्षति ही पहुँचा पाये थे कि इतने में शाम हो गई और अँधेरा छा गया। युद्ध समाप्त हो गया किन्तु पेशवा को (रात्रि में ही) सूचना मिली कि अब सारे मुगल साम्राज्य की सम्मिलित सेना उस पर आक्रमण करके मराठों का निष्कासित करने के उद्देश्य से उसकी ओर बढ़ रही थी। फलतः मराठों को रेवाड़ी तथा कोटपुतली की ओर प्रस्थान करना पड़ा, किन्तु वहाँ पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वे सेनायें सम्भवतः वापस लौट गई थी।

---

1 ब्रह्मेन्द्र चरित्र—भाग ७

निजाम उल मुल्क का भोपाल में घेरा जाना—निजाम उल मुल्क को मुगल सम्राट ने मराठों को परास्त करने की आज्ञा दी थी। उनसे युद्ध करने के लिये निजाम ने बुन्देलखण्ड में अपनी सेनाओं को अवस्थित किया किन्तु मराठों ने उसे मालवा की ओर खदेड़ दिया, जहाँ बाजीराव पहले से ही उसकी प्रतीक्षा में सन्नद्ध था। निजाम ने मार्ग में भूपाल के दुर्ग में आश्रय लिया और ज्यों ही इसकी सूचना पेशवा को मिली, उसने वहीं पर जा घेरा। निजाम ७८ दिन भी दुर्ग में बन्द न रह सका क्योंकि वहाँ तक पहुँचने वाले मार्गों की नाके बन्दी की जा चुकी थी जिससे दुर्ग में रसद का पहुँचाना असम्भव था। अन्त में उसने जनवरी १७३८ ई० को दोराहा सराय की सन्धि करके मराठों से अपनी प्राण रक्षा की। इस सन्धि के अनुगत निजाम ने मालवा को प्रदान सम्राट की ओर से मराठों को सौंपने का वचन दिया। यही नहीं उसने उन्हें नर्मदा से लेकर जमुना नदी तक के सभी क्षेत्रों पर मराठों के प्रभुत्व की मान्यता देते हुए उन्हें शाहीराज कोष से ५० लाख रुपये क्षति पूर्ति के रूप में प्रदान करना भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार बाजीराव ने निजाम के प्रति शाहूजी की सुप्रसिद्ध नीति 'रहने तथा रहने दो' (Live and let live) के सिद्धान्त का पालन किया। उसने अपने भाई को इस सम्बन्ध में लिखे गये पत्र[1] के अन्त में यह उल्लिखित किया कि मुगल साम्राज्य के महानतम सामन्त को परास्त कर दिया गया है। उसने कुरान शरीफ की शपथ लेकर सन्धि की शर्तों को पालन करने का संकल्प लिया है। सन्धिवार्ता के समाप्त हो जाने पर मुगलों को सुरक्षित अपने स्थान पर चले जाने दिया किन्तु बाजीराव ने वहाँ (भूपाल) से कोटा की ओर प्रस्थान किया और वहाँ से उसने १० लाख रुपये वसूल करके जुलाई मास में पूना की ओर प्रत्यागमन कर दिया। उसकी इस गौरवपूर्ण विजय से जनता तथा महाराजा शाहू को अत्यन्त प्रसन्नता[3] हुई। सन् १७३९ ई० के अन्त तक निजाम ०

---

1 सम्भवतः ३१ मार्च १७३७ के दिन में ही जैसा कि पेशवा के उपयुक्त पत्र से प्रतीत हुआ है जो कि उसने अपने भाई चिमनाजी अप्पा को दक्षिण में भेजा था पेशवा बाजीराव ने मुगलों की इस सम्मिलित सेना के आगमन की सूचना पाई था, यह अधिक सत्य प्रतीत होता है।

2 'The highest noble of the Mughal Empire has been brought to his knees He has taken Sacred Oathes on the Koran to abide by the terms agreed upon
See—Sardesai— New History of the Marathas P 160

3 When the negotiations were completed Bajirao left the vicinity of Bhopal and proceeded to Kota whence he exacted Rs 10 lacs of tribute and returned to Poona in July to the immense gratification to Shahu and the nation —G S Sardesai

पुत्र नासिरजंग ने मराठों को दक्षिण में परास्त करने का एक और प्रयास किया किन्तु उसमें वह सफल न हो सका प्रत्युत हारकर उसे बाजीराव को हण्डिया तथा खरगोन (Khargon) के जिले भी प्रदान कर देने पड़े।

बाजीराव का चरित्र—इस प्रकार मुगलों से उत्तर भारत के विभिन्न प्रदेशों की चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकारों की प्राप्ति के लिये संघर्ष करते करते अन्त में बाजीराव की २८ अप्रैल १७४० ई० को मृत्यु हो गई। उसके मरने से मराठों की शक्ति को अवश्य एक भारी धक्का पहुँचा किन्तु उसका उत्तराधिकारी बालाजी राव और भी कुशल राजनीतिज्ञ सिद्ध हुआ और उसने पिता के अधूरे कार्य को सम्पन्न करने का सराहनीय प्रयत्न किया। प्रो० सरदेसाई ने उसका चरित्र चित्रण करते हुए लिखा है कि 'उसके जीवन के अन्तिम दिनों में महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया तथा भारत की राजसत्ता का पूर्णरूपेण पुनर्विभाजन किया। उसकी मृत्यु के समय राजनीतिक गुरुत्वाकर्षण केन्द्र दिल्ली के दरबार से उठकर महाराजा शाहू के दरबार में चला आया।' उसके पिता द्वारा स्थापित तथा स्वयं उसके एवं उसके पुत्र द्वारा सुसंचालित प्रणाली ने शिवाजी द्वारा निर्मित ढाँचे को रूपान्तर करके भारत के विभिन्न भागों में मराठा शक्ति का बीजारोपण कर दिया। बाजीराव की नीति का मूल मन्त्र था—महाराष्ट्र की प्रगति के लिये मुगलों से कूट नीतिक संघर्ष करके उनसे उत्तर भारत के विभिन्न भागों राजपूताना, बुन्देलखण्ड मालवा तथा गुजरात से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त करना। इस लक्ष्यपूर्ति में उसे अप्रत्याशित सफलता मिली। उसने भारत की राजनीति में मराठों को सबसे अधिक महत्वशाली बना दिया। उसने मुगल दरबार में अपना प्रभाव स्थापित रखने तथा विद्रोह करने वाले सब प्रथम सामन्त निजाम उल मुल्क का दमन करने का अविरल प्रयास किया जिसमें उसने अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की। तथापि निजाम ने पेशवा के साथ की गई संधि का पालन करने की कोई चिन्ता न की।

बाजीराव की मृत्यु से मराठों की नीति पर परिणाम—निजाम के प्रति नवीन पेशवा को स्थाई नीति का अनुसरण करना था। सन् १७३९ ई० में नादिरशाह का आक्रमण हुआ। जिससे मराठा द्वारा स्थापित व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो गई थी अब बाजीराव के उत्तराधिकारी बालाजी बाजीराव को नये सिरे से मराठों की सत्ता को स्थापित करना था। नादिरशाह के आक्रमण के समय सम्राट मुहम्मद शाह के बारम्बार अनुरोध करने पर भी निजाम-उल-मुल्क ने दिल्ली की रक्षा करने की ओर कोई ध्यान न दिया था अतः सम्राट भी उससे अप्रसन्न हो चुका था। नादिरशाह ने अपने भारत से प्रस्थान करते समय सम्राट् मुहम्मद शाह को पुनः दिल्ली के सिंहासन पर आसीन कर दिया था और साथ ही यह निर्देश दिया था कि प्रादेशिक राजाओं

तथा सतारा के छत्रपति तथा पेशवा दोनों को भविष्य में मुगल सम्राट के प्रति स्वामिभक्त बना रहना[1] चाहिये।

बाजीराव ने मराठों के अभ्युदय के लिये उत्तर भारत के क्षेत्रों की विजय तथा मुगल दरबार में मराठों की शक्ति का प्रभावशाली बनाने की जिस नीति का सूत्रपात किया, उसके प्रतिपादन को बालाजी राव ने और भी अधिक शक्ति और कूटनीति से आगे बढ़ाया। पेशवा ने अपनी शक्ति को चूड़ान्त विकास पर पहुँचाने में जिस महान सफलता की प्राप्ति की, उसकी मूल में बाजीराव की उपयुक्त नीति ही थी। कर्नाटक के उत्तराधिकार युद्ध में हस्तक्षेप करने में पेशवा का लक्ष्य मराठों की शक्ति वृद्धि करने के अतिरिक्त और कुछ न था। तत्पश्चात इस तीसरे पेशवा ने सन १७४९ ई० तक निजाम की शक्ति का दमन करने में अप्रत्याशित सफलता पाई, जिससे दिल्ली में मराठा शक्ति की उपेक्षा करने का साहस स्वयं सम्राट तथा उसके वजीर में भी न रह गया और उन्होंने समय समय पर उनसे सैनिक सहायता लेना और भी अधिक विश्वासपूर्वक प्रारम्भ कर दिया। इससे मराठे भारत की मुस्लिम शक्तियों की सबसे आगे की पंक्ति में आ गये।

Q Write a short notes on Jija Bai, Yesu Bai Gopika Bai and Mastani

प्रश्न—जीजाबाई, येसूबाई, गोपिकाबाई तथा मस्तानी पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये।

उत्तर—जीजाबाई–शाहजी के पिता मालोजी भोंसले के देवगिरि के सुप्रसिद्ध यादव राजवंशी सरदार लखजी जाधवराव की सेवा करनी स्वीकार करके, उनके भवन पर पहरा देने का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था—यह बात तत्कालीन जनश्रुतियों से अभिज्ञात होती है। ये जाधव सरदार मूलतः देवगिरि के पुराने यादव नृपतियों के वंशज होने के नाते धन धान्य तथा शस्त्र बल दोनों से सम्पन्न थे। अब इन्होंने निजाम उल मुल्क की अधीनता स्वीकार कर ली थी और उसकी ओर से युद्ध में भाग लेकर लखजी जाधवराव (Lukhji Jadhaw Rao) ने अत्यधिक कीर्ति लाभ किया। इस यादव सामन्त से महाराष्ट्र के अन्य भोंसले सरदार जिनका वंश भी काफी विशाल एवं सम्भ्रान्त था अपनी जन धन की शक्ति के विचार से अपेक्षाकृत बहुत कम शक्तिशाली थे। लखजी जाधवराव को निजाम ने एक जागीर भी दे रक्खा थी, क्योंकि वह उसकी सैनिक सेवाओं से विशेष रूप से तुष्ट रहा था। भोंसलों ने

---

1 Kincard— History of the Maratha People Vol 29 P—236
Before leaving India Nadir Shah addressed a circular letter to the rulers of India including the Chhatrapati of Satara and the Peshwa calling upon them to obey and serve the *Emperor of Delhi*

भी दौलताबाद तथा पूना के मध्यवर्ती क्षेत्रों में पड़ने वाले अधिकांश ग्रामों में पटेल के उच्च पद प्राप्त कर इस समय तक अपनी शक्ति को संगठित करने की प्रक्रिया आरम्भ कर दी थी। इन्हीं लखजी जाधवराव की पुत्री—जीजाबाई — का वह हाल पर मालोजी भोसले के पुत्र शाहजी भोसले के साथ सम्बन्ध किया गया। इस सम्बन्ध में प्रो० सरदेसाई ने एक अत्यन्त रोचक घटना का उल्लेख भी अपने इतिहास ग्रन्थ में किया है जिसका वर्णन आगामी पंक्तियों में किया जायेगा।

एक बार लखजी जाधव ने मालोजी तथा अपने अन्य सरदारों को होलिकोत्सव में भाग लेने के लिये निमन्त्रित किया। मालोजी अपने साथ अपने अल्प वयस्क पुत्र शाहजी को भी साथ ले गये। शाहजी की अवस्था इस समय बहुत ही कम थी और वह बालय स्वभाव के कारण अपनी समवयस्क, लखजी जाधवराव की पुत्री—जीजाबाई के पास बैठकर खेल खेलने लगे। इस दृश्य को देखकर जाधवराव के मुख से अनायास यह शब्द निकल पड़े— इन दोनों का जोड़ा कितना सुन्दर लगेगा। [1] इस वाक्य को शाहजी के पिता ने अपने कानों से सुना और उन्होंने सभा में उपस्थित महानुभावों को सम्बोधित करते हुए कहा कि वे इस बात की साक्षी रहें कि किस प्रकार जाधवराव ने स्वयं अपनी कन्या का शाहजी के साथ पाणिग्रहण करने की बात स्वयं कही है। परन्तु तत्काल लखजी जाधव ने मालोजी की निम्न स्थिति का अनुमान लगाकर स्पष्ट रूप से यह कहा कि उसने तो मनोरंजन के निमित्त ही ये शब्द कहे थे और वास्तव में उनके लिए अपने सेवक के पुत्र के साथ अपनी राजकुमारी का विवाह करना सम्भव भी न था। इस बात पर मालोजी भोसले तथा जाधवराज में संघर्ष आरम्भ हुआ।

मालोजी भोसले एक महान स्वाभिमानी एवं वीर सरदार थे। उन्हें भरी सभा में अपना यह अपमान अत्यन्त असह्य प्रतीत हुआ और उन्होंने अपनी शक्ति का उस स्तर तक विकास करने का दृढ़ संकल्प कर लिया, जब तक कि वह इस योग्य न बन जाते कि अपने बाहुबल से ही वह जाधवराव को अपनी बात मनवा लेते। मालोजी ने शनैः शनैः जन धन का संचयन करके अत्यन्त यश उपलब्ध कर लिया। उनकी बड़े-बड़े सरदारों में प्रतिष्ठा होने लगी। मालोजी ने इस समय एक महान रचनात्मक कार्य किया। कार्य यह था कि सतारा के समीप शिवजी के

---

1 The Comic sight impelled Jadhavrao to utter a casual remarks How now would not these two form a handsome pair
See Sardesai— New History of the Marathas Vol I

2. See—Sardesai s view in his foot note on Page 52 53 of his History

Highly eulogistic accounts appear to have beer recorded in Sanskrit about the exploits of Maloji and Shahji after Shivaji s reputation had been fully established

मन्दिर के आस पास जल का सदव ही अभाव रहता था अस्तु वहाँ पर मालोजी ने एक जलाशय का निर्माण करा दिया । यही नहीं "वीरूल" (Virul) नामक स्थान पर 'घृष्णेश्वर' के प्राचीन शिव मन्दिर का जीर्णोद्धार भी मालोजी ने कराया ।

जीजाबाई का विवाह—मालोजी एक अत्यन्त प्रभावशाली एवं स्वतन्त्र प्रकृति के सेनापति थे जिसका समर्थन शिव भारत के रचयिता परमानन्द ने भी किया । राजा शम्भाजी द्वारा प्रकाशित एक दानपत्र तथा महाराष्ट्र की तत्कालीन सनदों और प्रपत्रों में मालोजी के पराक्रम के अनेकानेक उल्लेख मिलते हैं । इन ऐतिहासिक सूत्रों के आधार पर यह अभिमत है कि मालोजी ने सम्भवतः मलिक अम्बर की मध्यस्थता से निजामशाह को इस सम्बंध में अपना समर्थक बनाकर उससे जाधवराव के नाम इस आशय का फर्मान उपलब्ध करने में सफलता प्राप्त कर ली कि वह अपनी पुत्री जीजाबाई का शाहजी के साथ ही विवाह सम्बन्ध करावे । इसी मध्य मालोजी ने अहमदनगर के सुल्तान की ओर से मुगलों के विरुद्ध सफलता पूर्वक युद्ध करने के कारण अपने स्वामी की विशेष कृपा प्राप्त की । अहमदनगर के सुल्तान ने उन्हें पूना और सूपा के क्षेत्र जागीर के रूप में प्रदान किये । फलतः अब मालोजी का एक सामन्त के रूप में पद और गौरव जाधवराव से भी अधिक बढ़ गया और उसने शीघ्र ही जाधवराव को अपना खुला मांगपत्र भेज कर उससे अपनी पुत्री का शाहजी के साथ विवाह कर देने का स्पष्ट अनुरोध किया । अस्तु जैसा कि सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है अब जाधवराव को भी अपनी पुत्री का उस नवीन शक्तिशाली भोसले सरदार के पुत्र के साथ विवाह करने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति[1] न रह गई । अन्ततः मार्गशीर्ष सुदी पंचमी (५ नवम्बर १६०५ ई०) के दिन शाहजी तथा जीजाबाई का 'सिन्दखेद' नामक स्थान पर विवाह सम्पन्न हो गया । शाहजी के इस विवाह के समय ही संयोगवश मुगल सम्राट अकबर के परलोक सिधार जाने के फलस्वरूप दिल्ली के सिंहासन पर जहांगीर को आसीन किया गया था ।[2] उधर मालोजी की सहायता सुलभ हो जाने के फलस्वरूप निजामशाह को अपने पुराने सरदार लखजी जाधवराव के अपना साथ छोड़ जाने से जो कुछ भी हानि हुई थी, उसे भी उसने अब पूरा कर लिया था । अतः निजामशाह की दृष्टि में मालोजी का अत्यधिक सम्मान था । वह एक स्वामिभक्त सरदार था और उसने मलिक अम्बर के साथ रह कर उसकी सैनिक प्रणाली का यथेष्ट अनुभव प्राप्त कर लिया था ।

---

1 See—J N Sarkar's Shivaji and His Times Page—16
Jadhavrao had no objection now to giving his daughter in marriage to the son of the newly exalted Bhonsle

2 See Sardesai's— New History of the Marathas P 53
The time of Shahji's marriage with Jija Bai coincided with the death of Akbar and accession of Jahangir to Mughal throne

अपने पिता के साथ शाहजी भी युद्धों में जाया करते थे। अतः शाहजी को अपने पिता के साथ रहकर सैनिक एवं बड़े-बड़े सामरिक कार्यों का समुचित अनुभव एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने का भी स्वर्ण अवसर मिला। इस प्रकार तत्कालीन अनेकानेक महत्वाकांक्षी मराठा नवयुवकों तथा शाहजी को सैनिक जीवन की ओर अग्रसर करके जब १६२० ई० में मालोजी जाधवराव की इहलौकिक जीवन लीला समाप्त हुई तो उनके पुत्र शाहजी की अवस्था उस समय कुल २६ वर्ष की ही थी।

शाहजी अब मलिक अम्बर के साथ रहकर निजाम की ओर से युद्धों में सक्रिय भाग लेने लगे। सरदेसाई के मतानुसार इस प्रकार वह शीघ्र ही मलिक अम्बर के दाहिने हाथ बन गये थे।

जीजाबाई का अपने पति से दूर रह कर जीवन व्यतीत करना—निरन्तर युद्धों में ही व्यस्त रहने (१६३० से १६३६ ई० तक) के कारण शाह जी को अपनी पत्नी जीजाबाई के साथ रहने का समुचित अवसर भी न मिल पाया। १६१६ ई० में जब कि वह २५ वर्ष की आयु में थे उनके इस पत्नी से शम्भाजी नामक पुत्र रत्न का जन्म हुआ। अस्तु जीजाबाई के यौवन में ह्रास स्वाभाविक ही था इस कारण तथा अपने चारों ओर अनेकानेक शत्रुओं से घिरे होने की दशा के फलस्वरूप शाहजी को शिवनेर के दुर्ग में अपनी पत्नी जीजाबाई तथा एक विश्वासपात्र सरदार दादा जी कोण्ड देव को, जो कि शिवनेर से सम्बन्धित ग्रामीण क्षेत्रों से मालगुजारी आदि वसूल करके रानी के दैनिक व्यय के निमित्त धन जुटाने के लिये नियुक्त किया गया छोड़कर स्वयं सैनिक शिविरों का ही जीवन बिताने की संकट पूर्ण दशा में रहना पड़ा। यही जैसा कि प्रो० यदुनाथ सरकार आदि इतिहास-वेत्ताओं ने स्वीकार किया है, १० अप्रैल १६२७[1] ई० में जीजाबाई से शाहजी के एक अन्य पुत्र रत्न का जन्म हुआ। यही राजकुमार आगे चलकर मराठा छत्रपति वीर शिवाजी के नाम से प्रख्यात हुआ। उनकी माता जीजाबाई ने जब कि शिवाजी गर्भ में ही थे शिवनेर के दुर्ग में स्थापित शिवाई देवी की अपनी सन्तान के कल्याण के लिये अनन्यता पूर्वक पूजा-आराधना की थी और यही कारण था कि उन्होंने अपने पुत्र का नाम शिवाजी इसी देवी की पुण्य स्मृति में ही रक्खा था।

---

1 See Sir J N Sarkar s— Shivaji Page 18

Of the exact date of his birth there is no reliable contemporary record Even his courtier Krishnaji Anant Sabhasad writing in 1697 is silent on the point

Of the two different dates of his birth given by two different groups of writers I am inclined to prefer Monday the 10th April 1627

सन् १६३६ ई० में शाह जी मुगलों के हाथों पराजित हुए। उन्हें मुगलों के पक्ष में अपने ६ अन्य दुर्गों के साथ शिवनेर का दुर्ग भी छोड़ देना पड़ा। परन्तु अब वह निजामशाह का पक्ष छोड़ कर बीजापुर दरबार में नौकर हो गये थे अस्तु वहाँ के सुल्तान आदिलशाह ने उन्हें सुदूर दक्षिण में युद्ध विजय करने के लिये भेजा। उनकी सैनिक सफलताओं से संतुष्ट होकर आदिलशाह ने शाह जी को पूना जिले में चाकन से लेकर इन्दापुर तथा शिरवल के क्षेत्र भी जागीर के रूप में प्रदान कर दिये थे। इन जागीरों की देखरेख करने के लिये भी दादाजी कोणदेव ही नियुक्त हुये और उन्हें अब पूना बुला लिया गया। उनके साथ शिवाजी भी अपनी माता जीजाबाई के साथ रहने लगे।

जीजाबाई का शिवाजी पर प्रभाव—इसके दीर्घकाल पूर्व ही शाहजी ने अपनी पहली रानी से पृथक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था। १६३० ई० के लगभग उन्होंने दक्षिण के मोहिते परिवार की एक कन्या तुकाबाई मोहिते के साथ दूसरा विवाह भी कर लिया। इस पत्नी से व्यंकोजी जो भोंसले वंश में हुआ, जिसके निमित्त शाहजी ने अपने जीते हुए कोल्हापुर के क्षेत्रों का अपनी मृत्यु के बाद स्वामित्व अधिकार उपभोग करने की व्यवस्था कर दी। उधर शिवाजी पूना में दादाजी कोणदेव के संरक्षण में रहते हुए पितृ प्रेम से वंचित होने के कारण अपनी माता के परम भक्त बन गये, जिनकी वे किसी देवी की भाँति सेवा परिचर्या करने में हार्दिक सुख का अनुभव करते थे। जीजाबाई स्वयं भी भोग विलास तथा भौतिक जीवन के सुखों से अपने पति से दूर रहने के कारण विलग रहने के फलस्वरूप पूजन में ही अपना अधिकांश समय बिताया करती थी[1] तथापि समय समय पर उनसे भेंट करने शाह जी भी पहले शिवनेर आ जाया करते थे किन्तु पूना में उनका आना जाना बिल्कुल ही बन्द हो गया जिसका फल यह हुआ कि शिवाजी पर अपनी माता के धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों का ही अधिकाधिक प्रभाव पड़ा। सन् १६३६ ई० में ही लगभग शाह तथा मुगलों के संघर्ष के फलस्वरूप, कहा जाता है कि संयोग वश त्र्यम्बक नामक दुर्ग के मुगल सरदार—महालदार खाँ—ने जो शाह जी का कभी सहृदय मित्र भी रहा था जीजाबाई को बन्दी कर लिया था। इस सम्बन्ध में ग्राण्ट डफ महोदय ने जो महत्वपूर्ण अभिलेख पत्र उपलब्ध किया था वह संयोग वश इस समय अप्राप्य है। इसी आधार पर कहा जाता है कि जीजाबाई को कोढना (पश्चात् काल में सिंहगढ़ के नाम से प्रसिद्ध) के दुर्ग में कुछ समय तक बन्दी रहना

---

1 The deeply religious almost ascetic life that Jija Bai led amidst neglect and solitude imparted by its example even *more than by* her precepts a stoical earnestness mingled with religious fervour to the character of Shiva (J N Sarkar)

पड़ा तथापि उनके चचा ने उस मुगल सरदार को युद्ध स्थगित पूर्ति करार उद्द व गी गृह से मुक्त करवा लिया था। जिस शिवाजी को बहुत कट्टर वरी बीजापुरी सरदार अफजल खाँ से प्रत्य ा भेंट करने के लिये जाना पड़ा और वह उसकी कुचाला की पूर्व सूचना प्राप्त करके अत्य त चिन्तातुर हो रहे थे तो उन्होंने अपनी माता जीजा बाई का दर्शन करके उनसे जो असण्ड आशीर्वाद प्राप्त किया, यह उसी का प्रभाव था कि शिवाजी ने बात की बात में उस शत्रु को धराशायी कर दिया। शिवाजी को अपनी माता के चरणों में अटूट श्रद्धा थी।[1]

जीजाबाई का वैधव्य—जीजाबाई के कुल छः पुत्र हुए थे किन्तु उनमें से केवल दो—शम्भाजी तथा शिवाजी ही जीवित रहे। इसके अतिरिक्त शाहजी की दूसरी रानी से उत्पन्न व्यंकोजी भी २३ जनवरी १६६४ ई० के दिन अपने पिता के घोड़े से गिरकर मृत्यु हो जाने के समय तक काफी योग्य और शक्तिशाली सेनापति बन चुके थे। पति के वियोग से पीड़ित होकर जीजाबाई ने उसके साथ सती हो जाने की इच्छा प्रकट की परन्तु जैसा कि सरदेसाई का मत है अपने मातृ भक्त पुत्र शिवाजी की बारम्बार प्रार्थनाओं पर उन्होंने अपना उपयुक्त विचार बदल कर वैधव्य पूर्ण जीवन व्यतीत करने में ही संतोष तथा शान्ति का अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया।

शिवपट्टन नगर का निर्माण—शिवपुर में राजगढ के दुर्ग के नीचे जीजाबाई ने एक प्रसिद्ध नगर का निर्माण कराया (सम्भवत १६४० से लेकर १६४७ ई० के मध्य)। इस नगर का नाम शिवपट्टन रक्खा गया। सन् १ ४० ई० का ही लगभग जीजाबाई ने शाहजी के परामर्श से अपने पुत्र शिवाजी का निम्बालकर परिवार में उत्पन्न सईबाई के साथ विवाह सम्पन्न कराया।

जीजाबाई की मृत्यु—राजमाता जीजाबाई को अपने वीर पुत्र छत्रपति शिवाजी के ६ जून १६७४ ई० के दिन धूम धाम से राजतिलक का सुख देखने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। इस शुभ अवसर पर मराठा छत्रपति ने अपनी माता का आशीर्वाद प्राप्त कर हार्दिक संतोष का अनुभव किया। ऐसा लगता है कि सम्भवत ईश्वर ने उन्हें यह सुख दिखलाने के लिए ही इतने दिनों तक इस धरती पर जीवित रक्खा था। इस धर्मभीरु राजमाता जीजाबाई ने इस महा मंत्र के ११ दिन बाद ही संसार सागर से

---

1 'Shivaji bowed to his mother She blessed him saying Victory be yours and Solemnly charged his companions to keep him safe they vowed obedience (J N Sarkar)

2 The pious Jija Bai was stunned by the blow and wanted to become a Sati We have only to imagine Shivaji s feelings at such a project He made piteous appeals to her and the mother yielded keeping him company for ten more years on earth (Sardesai—New History of the Marathas Vol I)

मुक्ति पा ली। उनकी मृत्यु १७ जून १६७४ ई० को दिन रायगढ़ के समीप पचाड (Pachad) नामक स्थान पर स्थित राजभवन में हुई। आज भी इस स्थान के भग्नावशेष इस इतिहास प्रसिद्ध राजमाता की पुण्यस्मृति में उदास खड़े हैं।[1]

जीजाबाई का चरित्र — जीजाबाई के पिता जाधवराव बड़े ही सम्मानित कुल के मराठा सरदार रहे थे। अक्टूबर १६३६ ई० में जीजाबाई पूना में दादाजी कोणदेव द्वारा शिवाजी के लिए निर्मित प्रसिद्ध राजप्रासाद — 'लाल महल' — में शान्तिपूर्वक निवास करने के निमित्त चली आई थीं। इस समय तक उनमें धर्मपरायणता, ईश्वर प्रेम, स्वतन्त्र विचार तथा राष्ट्रीय प्रेम आदि की भावनायें विशेष सक्रिय हो चुकी थी। उनमें सहनशक्ति का अपरिमित गुण विद्यमान था। उदाहरणार्थ जब शाहजी ने उन्हें अपने पुत्र शिवाजी के साथ शिवनेर के दुर्ग में छोड़ कर स्वयं अन्यत्र प्रस्थान कर दिया तथा दीर्घकाल तक वे पृथक जीवन ही बिताते रहे तो जीजाबाई ने अत्यन्त धैर्य और साहस का परिचय दिया। उन्होंने अपने मन को भौतिक सुखों से खींच कर ईश्वर भक्ति करने तथा अपने पुत्र को राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने में ही लगाया। इस कार्य से उन्हें हार्दिक शान्ति मिलती थी और वह अपने पति के पूर्वजों की मान मर्यादा में उत्तरोत्तर वृद्धि करने की शिक्षा ही अपने पुत्र को देती थीं। वह शुद्ध क्षत्रिय रक्त की महिला थीं। संकट कालीन परिस्थिति में अपने पुत्र शिवाजी को साहस बंधाने तथा मार्ग प्रदर्शन कराने वाली इस वीर महिला का नाम भारतीय इतिहास में गर्व के साथ लिया जायगा। उनके हृदय में रामदेव यादव हेमाद्रि तथा सन्त ज्ञानेश्वर की परम्पराओं के प्रति अटूट श्रद्धा थी और साथ ही साथ वह अलाउद्दीन खिलजी तथा मोहम्मद तुगलक के अत्याचारों तथा तैमूर की बर्बरताओं से भी भली भांति अवगत थीं। जीजाबाई के मस्तिष्क में चित्तौड़ की वीरांगनाओं के जौहर की स्मृति निरन्तर घूमती रहती थी। सर जदुनाथ के शब्दों में इस प्रकार की महिला ने जैसा कि हमारा विश्वास है अपने किशोर नवयुवक पुत्र को अत्याचारों के प्रतिशोध लेने तथा अपने राष्ट्रीय उत्थान की लक्ष्य पूर्ति करने के सम्बन्ध में अवश्य ही महत्वपूर्ण शिक्षा दी थी। यह उनकी बाल्यकाल में ही अपने पुत्र को दी गई वीरोचित शिक्षा का ही पुण्य प्रताप था कि शिवाजी ने अपनी माता के जीवन काल में देशवासियों को एकता के सूत्र में बांध कर स्वयं को भारतवर्ष की दूसरे नम्बर की शक्ति बनाने में सफलता प्राप्त कर दिखाई।

---

1 She died just 11 days after the grand function at her residence at Pachad at the foot of Raigad *on 17 June 1674* rejoicing to see as Sir Jadunath writes before she closed her eyes that her son had reached the summit of human greatness as the crowned king of the land of his birth an irresistable conqueror a strong defender of the religion which was the Solace of *her life*"

(Sardesai s New History of the Marathas)

सारांश—जीजाबाई के पिता लखजी जाधवराव देवगिरि के प्राचीन यादव शासकों के वंशज थे। उन्होंने निजामशाह के सामन्त के रूप में पर्याप्त जागीरें प्राप्त की थीं। परन्तु जीजाबाई के विवाह के समय उनकी अपेक्षा मालोजी ने भोंसले सरदारों को अपने नेतृत्व में संगठित करके वहीं अपनी शक्ति स्थापित कर ली थी। जीजाबाई का विवाह मालोजी ने अपने पुत्र शाहजी के साथ सम्पन्न कराने के लिये महान् प्रयास किया जिसमें उन्हें सफलता मिली। यह विवाह ५ नवम्बर १६०५ ई० में सम्पन्न हो गया।

जीजाबाई को अपने पति के साथ जीवन व्यतीत करने का अवसर न मिल सका क्योंकि उन्हें मुगलों के प्रतिरोध तथा अन्याय शासकों के कारण सदैव बाहर ही रहना पड़ता था अतः जीजाबाई को शाहजी ने अपने एक विश्वास पात्र कर्मचारी—दादाजी कोंणदेव की सरक्षता में छोड़ कर स्वयं युद्ध स्थल में प्रस्थान किया। यहीं शिवनेर के दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ। वह उनके चौथे पुत्र थे, किन्तु अपने अन्य भाइयों में इस समय तक शिवाजी के ज्येष्ठ भ्राता शम्भाजी ही जीवित थे। जीजाबाई धर्म परायण एवं क्षत्रिय महिला थी और उन्होंने शिवाजी को वीरोचित शिक्षायें दीं जिनका उन पर अमिट प्रभाव पड़ा। जीजाबाई के कुल छः पुत्र हुए किन्तु उनमें से शम्भाजी तथा शिवाजी ही जीवित रह पाये थे और अपनी मृत्यु से शैशव काल में ही मर गये थे। जीजाबाई अपने प्रिय पुत्र शिवाजी का राज तिलक उत्सव देखने के ११ दिन पश्चात् परलोक सिधार गईं। उनकी स्मृति आज भी शिवपट्टन नगर तथा पचाड़ नामक स्थान में स्थित उनके राजमहल के ध्वंसावशेषों के रूप में जीवित है।

येसूबाई—येसूबाई[1] के साथ शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी का विवाह अपने पिता के जीवन काल में ही सम्पन्न हो गया था। जिस समय शिवाजी का मुगलों से घोर युद्ध चल रहा था और दिलेर खाँ के नेतृत्व में मुगलों की विशाल सेनायें महाराष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में लूटपाट मचा रही थीं शम्भाजी के मुगलों के पक्ष में जा मिलने से शिवाजी को अत्यधिक चिन्ता हुई। उन्होंने अपने पुत्र को समझाने बुझाने के कई प्रयास किये किन्तु वे सबके सब असफल हो गये। इसी मध्य कालान्तर में शम्भाजी तथा दिलेरखाँ में पारस्परिक मतभेद हो गया और उसने उसके अथनी' (Athni) नामक स्थान पर लगे हुए शिविर से रातों रात अपनी पत्नी तथा दूसरे १० साथियों को साथ लेकर अनारो वेश में पलायन कर दिया। इस कार्य में शम्भाजी को अपनी पत्नी से विशेष सहायता मिली और यदि वह उसके साथ न रही होती तो

1 यसूबाई के पिता का नाम पिलाजी शिरके था। वह शृंगारपुर के रहने वाले थे।

वह अवश्य पकड़ लिया जाता। यसूबाई की इस साहसपूर्ण प्रेरणा का ही यह फल था कि शम्भाजी जैसा निष्क्रिय व्यक्ति भी इस सीमा तक उत्साहित हो उठा कि उसने चारों ओर मुगलों से घिरे होते हुए भी उनको चकमा देने का सफल निश्चय किया।

शम्भाजी की मृत्यु—अन्ततः शम्भाजी को मुगलों ने बन्दी कर लिया (फरवरी १६८९ ई०) और उसे औरंगजेब की आज्ञा से प्राणदण्ड दिया गया। इस दुर्घटना से उसकी विधवा पत्नी यसूबाई का हृदय लेशमात्र भी विचलित न हुआ। उसने राष्ट्रीय कल्याण के पथ में अपने पति के मरने पर उत्पन्न होने वाली संघर्ष पूर्ण स्थिति का धैर्य पूर्वक सामना किया। अपने पुत्र शाहूजी के साथ वह भी मार्च १६८९ ई० में जुलफिकार खाँ तथा अन्य मुगल सरदारों द्वारा रायगढ़ के दुर्ग में बन्दी कर ली गई। उसने मुगलों के विरुद्ध अपने मराठा सरदारों को प्रोत्साहित करते हुए उनसे ये महत्व पूर्ण शब्द कहे—'रायगढ़ निस्सन्देह एक शक्तिशाली दुर्ग है और यह शत्रुओं के आक्रमणों के विरुद्ध दीर्घकाल तक सुरक्षित भी रक्खा जा सकता है। परन्तु हमारा इस छोटी सी जगह में बन्द पड़ा रहना खतरे से खाली नहीं है। मुगल सम्राट का ध्यान रखने की दृष्टि से मेरा तुम्हारे लिये यही परामर्श है कि राजाराम अपनी पत्नियों तथा साथियों के साथ दुर्ग पर भीषण युद्ध की स्थिति उत्पन्न होने के पूर्व ही इस स्थान को खाली कर दें। मैं अपने अल्पवयस्क पुत्र शाहू के साथ यहीं ठहरी रह सकती हूँ। इस प्रकार राजधानी की रक्षा हो जायगी और मैं निर्भीकता पूर्वक इस संग्राम का परिणाम स्वतः देखती रहूँगी।' इन शब्दों के साथ यसूबाई ने अपने सरदारों को सचेष्ट करते हुए उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि उनके राजा की मृत्यु से उनके मुगलों के विरुद्ध युद्ध संघर्षों में किसी प्रकार की भी निष्क्रियता न आने पाई थी। इस प्रकार इस मराठा वीर महिला ने शिवाजी की सच्ची पुत्र वधू के रूप में मराठा सैनिकों का अपना नेतृत्व प्रदान करके उसका अत्यधिक उत्साहवर्धन करने का श्रेय लाभ किया। अन्यथा शम्भाजी की निर्मम हत्या के कारण सारे महाराष्ट्र में घोर निराशा एवं दुख की ऐसी भयानक लहर दौड़ गई थी कि उसके फलस्वरूप वे अपने को किंकर्तव्य विमूढ़ स्थिति में ही पड़ा हुआ देख रहे थे। इसके अतिरिक्त इस संकट पूर्ण स्थिति में पड़े हुए राजाराम की प्राण रक्षा करने का श्रेय भी येसूबाई को ही प्राप्त है। उसके ही परामर्श से उसने साधुवेश में बाहर निकल कर किसी प्रकार रायगढ़ से प्रतापगढ़ की ओर प्रस्थान किया।

येसूबाई मुगल बन्दीगृह में—मुगल शिविर में बन्दी की तरह रहते हुए भी येसूबाई ने मराठा नेताओं से सम्बन्ध रखना न छोड़ा। जिस प्रकार शिवाजी ने जीजाबाई के साथ रह कर उसके नैतिक एवं राजनीतिक विचारों से प्रभावित होने का अवसर प्राप्त किया था, ठीक उसी प्रकार उनके पौत्र शाहूजी ने भी, जो कालांतर में मराठा छत्रपति के नाम से ४० वर्ष से भी अधिक समय तक महाराष्ट्र का शासन

करता रहा, अपनी माता येसूबाई की सरक्षकता म रहकर उसके विचारो एव शिक्षाओ का लाभ उठाया । इसी यसूबाई का सन्देश पाकर राजाराम ने कालान्तर म अपने परिवार को सतारा से हटाकर जिंजी के दुर्ग म भिजवा दिया क्योकि उस स्थान पर मुगलो का आक्रमण होने वाला था ।

शम्भाजी की मृत्यु के बाद से सम्राट औरगजेब मराठा के प्रति और भी अधिक सतर्कतापूर्ण व्यवहार करने लगा था । उसने येसूबाई तथा शाहूजी को अपनी पुत्री[1] के महल के ही समीप स्थान दिया और उनके अनुयायियो को उनसे पृथक रखने की व्यवस्था की । यद्यपि वे भी कुछ समीप ही टिकाये गये । तथापि उन पर मुगल रक्षको की तीव्र दृष्टि रहती थी और वे एक दूसरे से सुविधा पूर्वक मिलने जुलने के लिए स्वतन्त्र न थे । इस अवसर पर महाराष्ट्र और उसके तत्कालीन छत्रपति की सुरक्षा की दृष्टि से यसूबाई ने एक चाल चली । उसने सम्राट की दृष्टि में यह स्पष्ट कर रक्खा था कि वह मराठा छत्रपति राजाराम से बैर भाव ही रखती थी उसके समक्ष यसूबाई का कहना तो यह था कि राजाराम ने किसी प्रकार पलायन करके अपनी जान तो बचा ली, किन्तु उसने इस प्रकार शत्रुओ के पक्ष म रायगढ को त्याग कर उसे तो सकट पूर्ण स्थिति म डाल दिया था । अत अब वह सम्राट की कृपा पर ही जीवित रह सकती थी ।[2] उसके इस आचरण पर सम्राट अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और उसने उस यसूबाई तथा उसके पुत्र शाहूजी को विश्वास की दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया था । शाहूजी उसके साथ बिना किसी भेद भाव के युद्धो म भी जाते थे । सन् १८०७ ई० म सम्राट की मृत्यु के पश्चात् शाहूजी को तो किसी प्रकार मुगल बन्दीगृह से मुक्ति मिल गई परन्तु उसकी माता को आगामी बारह वर्ष तक बन्दीगृह म ही रहना पड़ा ।

येसूबाई द्वारा सम्राट से अनुरोध पूर्ण प्रार्थनाये—सम्राट औरगजेब के जीवन के अन्तिम दिन घोर दैन्य मे बीते । मुगलो मे भीषण सकट छा गया । देश के अनेक मुगल सूबो से मिलने वाली मालगुजारी भी बन्द हो गई थी क्योकि उनके शासक धीरे धीरे स्वतन्त्र होते जा रहे थे । इस अभाव एव निर्धनता का सबसे अधिक दुख तो इन मराठा बन्दियो को ही भोगना पड़ा । रानी येसूबाई ने अपने पुत्र के भरण पोषण के लिए सम्राट से ऋण रूप मे ही कुछ धन प्रदान करने की माँग की ।[3]

---

1 जीनत उन निसा ।

2 ' She declared that Raja ram Saved his own life by e caping and purposely allowed her to be captured at the fall of Rai gad and now that they all looked to the Emperor mercy for their safety and comfort (Sardesai)

3 I will pay back this loan to your Holiness as soon as better days return (Sardesai)

येसूबाई की बन्दीगृह से मुक्ति—१७१८ ई० में शंकरजी मल्हार की मध्यस्थता से हुसैनअली तथा मराठा में सन्धि हो गई थी और सन्धि के अनुसार सैयद बन्धुओं ने शाहूजी के नेतृत्व में मराठा के चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकारों तथा राजमाता यसूबाई को बन्दीगृह से अविलम्ब मुक्त किये जाने आदि महत्वपूर्ण बातों का निश्चय कर लिया। शाहूजी की ओर से उनके पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली की यात्रा करके मुगल सम्राट से इस आशय का फर्मान प्राप्त करने का जो प्रयास किया, उसमें मुगलों की अस्थिर नीति के कारण उनको कुछ कठिनाई का भी सामना करना पड़ा। परन्तु अन्त में सैयद बन्धुओं का सभी ने पेशवा को विशेष सहायता दी और अन्ततः उसने मार्च १७१९ ई० में यसूबाई को बन्दीगृह से मुक्ति दिलाने में सफलता पाई।

येसूबाई ने सतारा पहुँचते ही अपने पुत्र को सिंहासनासीन देखकर हार्दिक सुख का अनुभव किया। वह सम्भवतः १२ वर्ष तक और भी जीवित रही। इस प्रकार उसने अपने बहुमुखी जीवन को घोर संघर्षों में रहते हुए भी इतनी सफलतापूर्वक व्यतीत किया कि उससे उसकी हार्दिक शुद्धता तथा राष्ट्र प्रेम का अच्छा परिचय मिल जाता है।

येसूबाई के चरित्र—येसूबाई शृंगारपुर के शिर्के परिवार की कन्या के रूप में शम्भाजी राजा को ब्याही गई थी। उसमें पतिव्रत धर्म, राष्ट्र प्रेम तथा पारिवारिक सहानुभूति के गुण विशेष मात्रा में थे। उसने अपने पति की मृत्यु का समाचार पाकर अपने को स्थिर चित्त बनाये रखा और अपने पुत्र शाहू जी को भावी मराठा छत्रपति बनाने की आशा से स्वयं अपने जीवन को भी भयग्रस्त करके रखा थी वह उसे किसी न किसी प्रकार सम्राट औरंगजेब का कोप-भाजन बनने से बचाये रही। अन्त में जब शाहूजी को वहाँ से मुक्ति मिल गयी तो भी उसने परिस्थितियों को देखकर मराठा राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से स्वयं बन्दीगृह में ही पड़े रहना धैर्य पूर्वक सहन किया। उसने मुगलों की गतिविधि के विषय में मराठा सरदारों से समय-समय पर सम्पर्क व्यवहार करके राजाराम की मृत्यु के बाद उसकी सशक्त विधवा—ताराबाई तथा बाद में शाहूजी और उनके पेशवा के पास अपने सन्देश भेजकर उन्हें सतर्क किया। इस प्रकार येसूबाई के राष्ट्रीय कार्य अत्यधिक सराहनीय ही प्रतीत होते हैं। शाहूजी स्वयं अपनी इस उच्च स्थिति के लिये अपनी माता यसूबाई के प्रयासों तथा आशीर्वादों पर निर्भर[1] रहते थे। यही कारण है कि प्रो० सरदेसाई के मतानुसार मराठा की स्मृति में 'शाहूजी तथा यसूबाई

---

1 Shahu ever felt that he owed all his good fortune to the blessing of his mother

हो गया। इस प्रेमिका के विरह को सहन न कर पाने के कारण बाजीराव अत्यधिक मदिरापान करने लगा था जिससे उसका स्वास्थ्य और भी अधिक वेग से क्षीण होता रहा और अन्त में २८ अप्रैल १७४० ई० के दिन अर्थात् मृत्यु के समय भी महाराष्ट्र का यह अप्रतिम वीर सरदार अपनी उस प्रेमिका के दर्शनों से वंचित रखा गया।

सारांश— मस्तानी पर बाजीराव सन् १७३० से आसक्त था। उसने उसकी स्मृति में अपने शनिवार महल के समीप ही उसके रहने के लिए एक विशाल भवन बनवाया था। मस्तानी स्वयं नर्तकी होते हुए भी एक हिन्दू महिला की भाँति आचरण करती थी और अपने प्रेमी अथवा अवैध पति बाजीराव की अनन्य भाव से सेवा शुश्रूषा किया करती थी। परन्तु वह मांस मदिरा का प्रयोग स्वयं न छोड़ सकी और फलतः बाजीराव भी उसके सहवास में मांस मदिरा के प्रयोग का अभ्यस्त हो गया। अन्ततः पेशवा की लोकप्रियता धीरे धीरे क्षीण हो गई। उसकी अनुपस्थिति में नाना साहब (पेशवा के पुत्र) तथा चिमनाजी अप्पा ने मस्तानी को बन्दी करके उसे पूना से काफी दूर हटा दिया। फलतः बाजीराव का अपनी इस प्रेमिका से विछोह हो गया जिसका प्रभाव उसके भावी जीवन के लिए घातक सिद्ध हुआ। वह अप्रैल १७४० ई० में इसी दुःख में अस्वस्थ होकर मृत्यु शैय्या पर लेट गया।

अध्याय 2 पेशवा बालाजी बाजीराव का शासन युग

Q Analyse the circumstances which helped Peshwas usurp ruling powers (R U 1958)

प्रश्न—उन परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए, जिनके अन्तर्गत पेशवा ने प्रशासनीय शक्तियाँ हस्तान्तरित कर लीं। (रा० वि० वि० १९५८)

उत्तर—मराठों के इतिहास में पेशवाओं का स्थान विशेष महत्वपूर्ण रहा है। शाहूजी के समय में पेशवा की शक्ति का अप्रत्याशित विकास प्रारम्भ हो गया था यद्यपि उनके पहले सतारा तथा कोल्हापुर दोनों राजवंशों में पेशवा होते आए थे। शिवाजी की अष्ट प्रधान परिषद में प्रधान को पेशवा कहते थे। वह प्रशासन की देखरेख करता और साथ ही उसके विभिन्न विभागों और उनके अध्यक्षों के कार्यों में सहयोग भी स्थापित रखता था। धीरे धीरे पेशवा के पद का महत्व बढ़ता गया और पेशवा ही सारे शासन कार्यों की देख रेख करने लगा। शिवाजी का पेशवा, मोरोपन्त पिंगले था। मोरोपन्त पिंगले शासन संचालन में यथेष्ट निपुण था क्योंकि उनकी देख रेख में शासन कार्यों को छोड़कर शिवाजी अपना अधिकांश समय युद्धों में ही निश्चिन्त होकर व्यतीत करते थे।

बालाजी विश्वनाथ द्वारा पेशवा के रूप में सर्वोच्च सत्ता का हस्तगत किया जाना—महाराजा शाहू का राज्याभिषेक जनवरी १७०८ ई० में हुआ और उन्होंने अपने सेनापति के पद पर धानाजी जाधव की नियुक्ति की थी, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र चन्द्रसेन जाधव को यह पद प्राप्त हुआ। चन्द्रसेन जाधव ताराबाई तथा शिवाजी द्वि० का समर्थक था और शाहूजी को यह सन्देह भी था कि वह अवश्य ही समय पाकर ताराबाई की सहायता करेगा। अस्तु शाहूजी ने बालाजी विश्वनाथ को चन्द्रसेन की क्रिया विधि पर तीक्ष्ण दृष्टि रखने का आज्ञा दी। इस अनुच्छेद में एक नवीन पद—सेनाकर्ते—की स्थापना की और उस पद पर बालाजी विश्वनाथ को नियुक्त किया। बालाजी ने शाहू को, जब वह मुगलों के कारागृह में थे समय समय पर आवश्यकतानुसार सहायता की थी इसके कारण वह छत्रपति का सबसे अधिक विश्वास पात्र बन गया। खेद के युद्ध में बालाजी ने ही ताराबाई के पक्ष को अपने कूटनीतिक प्रयासों द्वारा दुर्बल करने में अप्रत्याशित सफलता पाई थी। सन् १७१३ ई० में कान्होजी आंग्रे ने चन्द्रसेन जाधव का अनुकरण करके शाहूजी के पश्चिमी घाट पर स्थित कई एक दुर्ग हस्तगत कर लिये और उनका दमन करने के

लिए भेजे गये पेशवा मोरोपंत पिंगले को भी कान्होजी आंग्रे ने लोहगढ़ के स्थान पर परास्त करके बन्दी कर लिया। ऐसी दशा में कोई उपाय न देख शाहूजी ने बालाजी विश्वनाथ को ही कान्होजी आंग्रे से युद्ध करने के लिए भेजा। इस कार्य को करने से पूर्व बालाजी ने छत्रपति से संधि और विग्रह जैसी कि आवश्यकता हो की कार्यवाही स्वतन्त्र रूप से करने की असीमित शक्तियाँ माँगी। ये शक्तियाँ उसे प्राप्त हो गई और उसने आंग्रे को समझा बुझाकर बिना युद्ध का मार्ग अपनाये हुए ही, शाहूजी का समर्थक बना दिया। इस सम्बन्ध में सरदेसाई की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं —

इस प्रकार १७ नवम्बर १७१३ ई० की तिथि न केवल बालाजी और उसके परिवार के ही गौरव की प्रतीक है, प्रत्युत यह समस्त मराठा जाति के लिए भी स्मरणीय है, क्योंकि सत्ता का हस्तान्तरण छत्रपति के हाथ से पेशवा को इसी तिथि से प्रारम्भ हुआ था।'[1]

इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि बालाजी और छत्रपति के विचारों में पर्याप्त साम्य था। शाहूजी मुगलों से युद्ध करने के पक्ष में न थे और यही सिद्धान्त बालाजी विश्वनाथ ने अपनी सक्रिय राजनीति में प्रतिपादित किया। बालाजी ने शाहू के विरोधियों यथा चन्द्रसेन जाधव तथा कान्होजी आंग्रे के प्रति भी युद्ध नीति न अपनाई क्योंकि छत्रपति की भाँति वह भी मराठों को व्यर्थ आपस में ही लड़ाकर उनकी शक्ति को विध्वंस न होने देना चाहता था। बालाजी विश्वनाथ ने सम्राट को मराठों की सैनिक सहायता देना भी स्वीकार कर लिया था किन्तु इस व्यय का भार वहन करने के लिए मराठों को नवीन विजय करने की भी छूट मिली थी। बालाजी तथा परवर्ती पेशवाओं के समय में चौथाई की व्यवस्था के भली भाँति चलते रहने के फलस्वरूप मराठों की शक्ति का अत्यधिक उत्कर्ष हुआ। मराठों ने शम्भा जी तथा राजाराम दोनों के समय से ही चौथ वसूल करने के बहाने मालवा, खानदेश, कर्नाटक तथा अन्य मुगल क्षेत्रों को आक्रान्त कर रक्खा था। अब १७१६ ई० से शाहूजी को चौथ और सरदेशमुखी के विस्तृत अधिकार मिल गये थे जिससे मराठों की शक्ति भारत में प्रथम श्रेणी की मानी जाने लगी क्योंकि उसकी सहायता की अपेक्षा मुगल दरबार तक में की जाती थी। २२ अप्रैल १७२० को बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर उसके ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव को

---

1 Thus the 17th of November 1713 was a proud and momentous day not only for Balaji and his family but for the Maratha Nation as well as it marked the beginning of the transfer of power from the Chhatrapatis to the Peshwa s hands

See Sardesai— New History of the Marathas P 24

पेशवा बनाया गया। इस पहले पेशवा के चरित्र पर एक समकालीन उल्लेख जो, जो हिंगने के दफ्तर से उपलब्ध हुआ है काफी प्रकाश डालता है जो निम्न प्रकार है—

"उसने मराठा राज्य को शान्ति एवं समृद्धि प्रदान की यद्यपि यह अभी तक दीर्घकालीन विनाशकारी युद्ध के कारण अत्यधिक नष्ट भ्रष्ट हो चुका था। उसने सभी उपद्रव रत एवं विद्रोही तत्वों का कठोरता पूर्वक दमन किया तथा लोगों को विशेष सुविधायें देकर उजड़े हुए मराठा क्षेत्रों को पुनर्वासित कराया। इस प्रकार रयत लोग नाना (पेशवा) को अपना महान संरक्षक समझने लगे।"[1]

बाजीराव—बालाजी विश्वनाथ के उत्तराधिकारी बाजीराव ने भी अपने पिता की भाँति मराठा राज्य की पूर्ण तत्परता और योग्यता पूर्वक अमूल्य सेवा की। बाजीराव स्वयं एक कुशल सेनापति था। वह शिवाजी से दूसरी श्रेणी का सेनापति माना जाता है।[2] और इसी कारण शाहूजी ने उसे १९ वर्ष की अल्पावस्था में ही पेशवा बनाकर उसे मराठों का नेतृत्व करने का कार्य सौंपा था। बाजीराव की अप्रैल १७४० ई० में मृत्यु के पश्चात बालाजी बाजीराव (नानासाहेब) को जो उसका ज्येष्ठ पुत्र था, पेशवा के पद पर अधिष्ठित किया गया। वह भी अपने पिता की भाँति एक कुशल सेनानायक था, किन्तु उसमें बाजीराव की कठोरता के स्थान पर अपने चचा चिमनाजी अप्पा की सरलता और उदारता के लक्षण ही अत्यधिक रूप में पाये जाते थे। अपने शासन के प्रारम्भिक ६ वर्षों तक तो इस पेशवा ने जब तक शाहूजी जीवित रहे, छत्रपति की आधीनता में ही काम किया किन्तु पश्चात्कालीन १२ वर्षों में उसने मराठा राज्य के एक वास्तविक शासक के रूप में शासन किया, जिसका उल्लेख संक्षेप में निम्न प्रकार से किया जायगा।

बालाजीराव—१५ दिसम्बर सन् १७४९ ई० को शाहूजी का स्वर्गवास हो गया। अपनी मृत्यु से प्रायः दो वर्ष पूर्व शाहूजी ने बाबूजी नायक तथा रघुजी भोंसला आदि की शिकायतों पर कुछ समय के लिए पेशवा को अपदस्थ भी कर दिया था, किन्तु इस वर्ष अपने स्वास्थ्य की दुर्बलता तथा मराठों में बढ़ते हुए मतभेद की दशा में छत्रपति को पेशवा को पुनः पदारूढ़ करने की अनुमति देनी पड़ी।

1 See Sardesai— New History of the Marathas P 62

He restored peace and plenty to the Maratha territory, which had been utterly ruined by the long devastating war He put down with a *highhand* all turbulent elements and repopulated the country by means of *special* concessions Thus the ryots came to look upon Nama as their great benefactor

2 He stands next only to Shivaji in military genius Shahu's discernment in selecting *him for the* Peshwaship at the early age of 19 was more than justified" (Sardesai)

शाहूजी की मृत्यु तथा पेशवा द्वारा राजसत्ता को हस्तगत किया जाना—शाहूजी के कोई पुत्र न था अतः उन्होंने बहुत कुछ सोच विचार कर रामराजा[1] को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। अस्तु २६ दिसम्बर से १८ अप्रैल १७५० ई० तक पेशवा ने नवीन छत्रपति की स्थिति को बलिष्ट बनाने के उद्देश्य से सतारा में ही निवास किया, किन्तु इस सारे समय भर वह शाहूजी की पारिवारिक कठिनाइयों में ही उलझा रहा और उसे अत्यधिक महत्वपूर्ण वैदेशिक समस्याओं पर विचार करने का कोई अवसर न मिल पाया। अतः पेशवा ने अपने स्थान पर रघुजी भोसले को छोड़कर पूना प्रस्थान किया जहाँ उसे अपने पुत्र विश्वासराव के उपनयन तथा सदाशिवराव के द्वितीय विवाह संस्कार में भाग लेना था।

उधर रामराजा ने ताराबाई के कहने पर न चलकर निरंकुश शासन करना ही प्रारम्भ कर दिया था क्योंकि वह उस राजमाता द्वारा अपनी सत्ता का अतिक्रमण किसी प्रकार भी सहन न कर सकता था। सरदेसाई के कथनानुसार "प्रारम्भ से ही उसने उसकी समस्त क्रिया विधियों को नियन्त्रित कर रक्खा था। प्रशासन में अपना प्रभुत्व ही सर्वोपरि रखने के लिए तथा पेशवा के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त करने के उद्देश्य से उसने उसका पेशवा के साथ सहयोग करना भी बन्द करवा दिया था। कुछ समय तक तो वह अपना कार्य गुप्त रूप में ही करती रही। उसने शक्ति को अपने ही हाथों में केन्द्रित कर लेने तथा रामराजा को स्वयं कोई अनुभव प्राप्त करने अथवा उसके स्वतन्त्र रूप में सत्ता का उपभोग करने से रोकने के लिए एक असफल प्रयास भी किया था। फलतः मराठा राज्य में कुछ समय तक अत्यन्त असन्तोष व्याप्त रहा जिसे शान्त करने में बालाजीराव की सेवायें विशेष उल्लेखनीय सिद्ध हुईं। पेशवा ने ताराबाई को, जो अपने पति की वार्षिक तिथि के अवसर पर सिंहगढ़ चली गई थी पूना बुलवाया और इसके साथ उसने सतारा से रामराजा को भी बुलवाकर दोनों के मध्य समझौता करवाने की चेष्टा की। इस सभा में सिंधिया, होल्कर, सदाशिवराव भाऊ सखाराम बापू रामचन्द्र बाबा भगवन्तराव अमात्य, चिमनाजी नारायण सचिव रघुजी भोसले तथा सर लश्कर सोमवंशी भी उपस्थित हुए। पेशवा ने सर्वसम्मति से यह निश्चित कर दिया कि भविष्य में ताराबाई तथा रामराजा चाहे सतारा में ही रहें किन्तु मराठा राज्य को कार्यपालिका शक्ति का केन्द्र पूना बना दिया जाये। सिंहगढ़ का दुर्ग भी चिमनाजीनारायण से ले लिया गया क्योंकि यह स्थान अभी तक उसके आधीनस्थ रह कर पेशवा के विरुद्ध कुचक्रों का केन्द्र बना रहा था। पेशवा को सदाशिवराव भाऊ तथा रघुजी का पूर्ण समर्थन प्राप्त था।

---

१ उसका वास्तविक नाम राजाराम था किन्तु ताराबाई हिन्दू परम्परा के अनुसार उसका नाम नहीं ले सकती थी क्योंकि यह उसके पति का नाम था, अतः ताराबाई ने ही उसका नाम रामराजा प्रसिद्ध कर दिया था। वह उसे अपने मृतपुत्र शिवाजी द्वितीय की सन्तान बतलाती थी।

और उसने अब समस्त राजसत्ता को स्वतः हस्तगत कर लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

पेशवा द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वियों का दमन—सचिव की भांति प्रतिनिधि—दादाबा तथा उसका मुतालिक यामाजी शिवदेव भी ताराबाई के समर्थक थे। दादोबा पुरन्दर के दुर्ग में बन्दी की भाँति रह रहा था जबकि सतारा की पूर्वी सीमा से लगा हुआ कढ़ाव तथा पन्ढरपुर का मध्यवर्ती क्षेत्र सांगोला यामाजी शिवदेवी की विद्रोहपूर्ण प्रक्रिया के लिये बिल्कुल अनुरक्षित स्थिति में पड़ा था। रघुजी के नागपुर वापस लौटते ही बालाजीराव ने सदाशिवराव भाऊ तथा रामचन्द्र बाबा के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजकर उन्हें सांगोला पर अधिकार करने की आज्ञा दी। तदनुसार २५ सितम्बर १७५० को मराठों ने सांगोला का क्षेत्र प्रतिनिधि से छीन लिया तथा अब वहाँ पर पेशवा की सत्ता भी सुरक्षित कर दी गई। उसकी इच्छानुसार छत्रपति ने भवनराव को सांगोला का प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। उसके मुतालिक (सहायक) के पद पर यामाजी शिवदेव के स्थान पर अब उसके भतीजे वासुदेव पन्त की नियुक्ति की गई। सेनापति यशवन्तराव दाभाडे में अनेक चारित्रिक दोष आ गये थे, अतः उसके नियन्त्रण में गुजरात के सूबे की यह नवीन व्यवस्था कर दी गई कि उसके आधे भाग पर पेशवा का तथा शेष आधे पर गायकवाड़ का प्रभुत्व स्थापित हो। इस समय तक मराठा अष्ट प्रधान परिषद का महत्व विलुप्त हो चुका था और उसमें प्रतिनिधि सचिव तथा सेनापति के पद ही महत्वशाली रह गये थे। कर्नाटक में बाबूजी नायक जोशी ने स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की चेष्टा की थी अतः पेशवा ने अब कर्नाटक का शासन भार सीधे अपने दायित्व में ले लिया और बाबूजी नायक को अपदस्थ करके कर्नाटक की नवीन व्यवस्था की।

छत्रपति रामराजा की स्थिति भी परिभाषित की गई। उसका मुख्य प्रबन्धक पेशवा ने गोविन्दराव चिटनिस को बनाया, जिसके साथ यशवन्तराव को छत्रपति का मुख्य सेनापति नियुक्त किया। देश में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए बालाजी ने त्र्यम्बक सदाशिव अर्थात् नाना पुरन्दरे को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। छत्रपति के निजी परामर्शदाताओं में यशवन्तराव पार्टनिस तथा देवराव लाघत के नाम चुने गये। रामराजा की बहन दरयाबाई जिसने उसको सिंहासन प्राप्ति में परोक्ष सहायता पहुँचाई थी, के पति निम्बाजी नायक निम्बाल्कर को यप्पाजी सामवंशी के स्थान पर, जिसे पदच्युत कर दिया गया, सर लश्कर के पद पर नियुक्त कर दिया गया। फतहसिंह भोंसले के क्षेत्र में अव्यवस्था व्याप्त थी अतः पेशवा ने अपने एक विश्वासपात्र कर्मचारी—त्र्यम्बक हरि पटवर्धन को उसका मुख्य प्रबन्धक बनाना निश्चित किया।

इस प्रकार पेशवा बालाजीराव ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को तो किसी न किसी प्रकार शान्त कर दिया किन्तु वह ताराबाई व रामराजा के मध्य किसी प्रकार का सम

झौता न करा सका। रामराजा द्वारा पेशवा के अधिकाधिक समर्थन तथा ताराबाई की सत्ता का अतिक्रमण महाराष्ट्र में अशान्ति और फूट का कारण बना हुआ था। नवम्बर १७५० ई० में ताराबाई के समर्थकों—सतारा दुर्ग के द्वारपाल—ने पुनः रामराजा को बन्दी कर लिया। तत्पश्चात् ताराबाई का प्रभुत्व ही सर्वोपरि बन गया। तथापि पेशवा ने उस समय पर रानी का कोई विरोध न करके धैर्य से ही काम लिया। इसी समय में सलाबतजंग ने मराठा राज्य पर गम्भीर अभियान कर दिया था अतः पेशवा को अविलम्ब उस ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ा जिससे पुरन्दर तथा सतारा के दुर्ग पतियों को अब यह आदेश प्राप्त हुआ कि इस बीच जब तक रामराजा बन्दीगृह में रहे उसकी सभी बहुमूल्य वस्तुओं पर भी कठोर निगरानी रखी जाये ताकि राजमाता ताराबाई उन्हें अनधिकृत रूप में हस्तगत करने में सफल न होने पाये।[1] अन्ततः सितम्बर १७५२ (१४ सितम्बर) तक ताराबाई तथा पेशवा बालाजीराव के मध्य स्थाई संधि हो गई किन्तु रामराजा को उसकी मृत्यु पर्यन्त बन्दीगृह में ही रहना पड़ा और इस बीच ताराबाई की सत्ता ही सर्वोपरि बनी रही तथापि यह केवल नाम मात्रेण ही थी और शासन को संचालित करने की शक्ति वस्तुतः बालाजीराव द्वारा ही प्रयुक्त की जाती रही। १४ नवम्बर १७५२ के दिन जेजुरी के मन्दिर में ताराबाई तथा पेशवा के मध्य जो समझौता हुआ उसकी ये पंक्तियाँ इस स्थान पर विशेष उल्लेखनीय हैं—

'यह राजा वास्तविक राजा नहीं है इसे सभी जानते हैं। परन्तु उसका वध न किया जाना चाहिये, प्रत्युत उसके साथ अवैध पुत्रों जैसे फतहसिंह बाबा अथवा येसा कुसाजी जैसा व्यवहार किया जाये। उसे जीवनोपयोगी वस्तुयें दी जाती रहें और यदि आवश्यक हो तो उसे बन्दीगृह में भी रक्खा जाये किन्तु उसकी हत्या न की जाये।'

---

1 Sardesai— New History of the Marathas P 295
The Peshwa ordered all these to be carefully collected listed and kept secure at Purandar with a view both that Tara bai should not appropriate them and also to restore them to the king when time came to prevent the calumny that would perhaps attach to the Peshwa s name that he had deprived the king of all his valuables

2 Purandare Daftar Part I 225 364 gives graphic details of Ram Raja s affairs (Sardesai)
This Raja is false Everyone knows this But he should not be killed He should be treated as an illegitimate son like Fatah singh Bawa or Yesai Kusaji He should be supplied with the requirements of life if necessary he should be kept confined but not killed

Sardesai— New History of the Marathas —P 228

इस प्रकार दोनों पक्षों में समझौता हो गया और काल क्रमानुसार ताराबाई और पेशवा के मध्य पूर्ण सन्तोषजनक सम्बन्ध भी स्थापित हो गए। अपनी मृत्यु के पहले ४ वर्षों में ताराबाई ने पेशवा के साथ पूर्ण सहयोग पूर्वक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि मराठों की ओर से जिस ताराबाई ने अपने प्रारम्भिक राजनैतिक जीवन में औरंगजेब से डट कर लोहा लिया उसे पेशवा का विरोध करने में कौन से लाभ हुए थे। उसे पानीपत के युद्ध में अपने राष्ट्रीय पतन[1] का दृश्य स्वतः देखना पड़ा।

सारांश—सर्वप्रथम विस्तृत प्रशासकीय शक्तियाँ प्राप्त करने वाला पेशवा बालाजी विश्वनाथ १७१३ से १७२० ई० तक मराठा राजनीति में प्रसिद्ध हुआ। उसके पश्चात् बालाजी के पुत्र बाजीराव ने भी अपने पिता की भाँति छत्रपति शाहू की पूर्ण तत्परता और स्वामिभक्ति पूर्वक सेवा की। बाजीराव के पुत्र बालाजीराव के समय में पेशवा की शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। अपने शासन के प्रारम्भिक ६ वर्षों तक तो उसने छत्रपति शाहू की आधीनता से ही शासन संचालन किया। किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् इस राजवंश में गृह युद्ध छिड़ गया और शासन सत्ता पेशवा के हाथों में आ गई। शाहूजी ने रामराजा को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था, जिसका पेशवा ने दीर्घ काल तक समर्थन किया, किन्तु बाद में ताराबाई के प्रबल विरोध पर उसने रामराजा को १७५२ ई० में पदच्युत कर दिया था।

Q Indicate the strength and weakness of the Marathas at the height of their power (R U 1956)

प्रश्न—मराठे जिस समय अपनी सत्ता के चूड़ान्त विकास पर थे तो उनकी वास्तविक शक्ति और दुर्बलता का स्पष्टीकरण कीजिये। (रा० वि० वि० १९५६)

उत्तर—मराठा शक्ति को चरम विकास पर पहुँचाने में निस्सन्देह पहले ४ पेशवाओं का कार्य सराहनीय रहा है। पहले पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने मराठों के आन्तरिक वैमनस्य का अन्त करके महाराजा शाहू की स्थिति को सुरक्षित बनाया तथा मालवा और गुजरात में चौथ और सरदेशमुखी के अधिकार उपलब्ध किये। इन अधिकारों को कार्यान्वित करने के दायित्व का दूसरे पेशवा बाजीराव ने पूर्ण योग्यता के साथ पालन किया। इसके अतिरिक्त उसने शाहूजी की स्थिति को और भी बलिष्ट बना दिया और उसके समय में मराठा छत्रपति, मुगलों के एक आधीनस्थ सामन्त की स्थिति से ऊँचा उठकर मुगल सम्राट के एक सहृदय मित्र के स्तर पर पहुँच गया। बालाजी बाजीराव ने उत्तर भारत के विजय कार्य को स्थाई पूर्णता

---

1 She witnessed the national disaster of Panipat on 14th January 1761 and died ten months later at Satara on 9th December 1761 (Thursday 11 Jamadilaval) [Sardesai]

प्रदान की और दक्षिण म भी महाराष्ट्र का एक अत्यधिक शक्तिशाली राज्य बना दिया। उसने ही निजाम उल मुल्क की सत्ता का दमन करके शाहूजी के राज्य को सदैव के लिये सुरक्षित बनाया था तथापि इसम भी कोई सन्देह नहीं कि उस जैसे अनुभवी तथा कत्तव्य परायण पेशवा से भी कुछ न कुछ त्रुटियाँ होना स्वाभाविक था।

बालाजी बाजीराव के लक्ष्य तथा दुबलतायें—रामराजा के छत्रपति बनाये जाने के पश्चात् पेशवा बालाजी बाजीराव के समक्ष तीन महत्त्वपूर्ण लक्ष्य थे—निजाम का दमन कर्नाटक प्रदेश को आधीनस्थ करना तथा दिल्ली दरबार म मराठों के प्रभाव को ही प्रधानता दिलाना। अपने काय के सुसचालन की दृष्टि से उसने अपना कार्यालय सतारा से स्थानान्तरित करके पूना म स्थापित किया था जिसम उसने अपने तीन विश्वास पात्र पदाधिकारियों—सदाशिवराव भाऊ (शक्तिशाली कायवाहक), रामचन्द्र बाबा सुखतांकर (अथकि तथा कूटनीतिज्ञ) तथा महादोबा पुरन्दरे (निस्वार्थ राष्ट्रसेवी) को नियुक्त किया।

शाहूजी के मरते ही ताराबाई के स्वार्थ पूर्ण कुचक्रों के फलस्वरूप सतारा से लेकर पूना तक सारे महाराष्ट्र में अशान्ति व्याप्त हो गई और फिर छत्रपति के कारा वास के परिणाम और भी अशान्तिकारक सिद्ध हुए क्योंकि राज परिवार की आन्तरिक फूट का देश की जनता पर स्वाभाविक प्रभाव पड़ा। इस अशान्ति के निराकरण का एक मात्र उपाय ताराबाई का बन्दी कर लिया जाना ही हो सकता था किन्तु पेशवा अपनी ओर से ऐसा कोई भी पग न उठाना चाहता था। इस प्रश्न पर पेशवा का महादोबा पुरन्दरे से मतभेद हो गया और वह उसे भी सन्देह की दृष्टि से देखने लगा। तथापि सगोला के समझौते द्वारा सदाशिवराव भाऊ तथा रामचन्द्र बाबा ने स्थिति पर किसी सीमा तक नियन्त्रण प्राप्त कर लिया। इस समझौते से स्वय सदाशिवराव भाऊ तथा पेशवा मे भी मतभेद उत्पन्न हो गया और अन्तत महादोबा को अपने स्थान से त्याग पत्र ही देना पड़ा।

बाजीराव तथा अन्य मराठा सरदार—सदाशिवराव भाऊ पेशवा बाजीराव के उदार व्यवहार से सन्तुष्ट न था और रामचन्द्र बाबा की आर्थिक सहायता तथा प्रोत्साहन भी सुलभ था अत उसने पेशवा से पूर्ण स्वतन्त्रता पूवक काय सचालन करने का अधिकार माँगा। पेशवा ने स्वय अपने अधिकारों का अपहरण किसी प्रकार स्वीकार न करते हुए उसे स्वतन्त्र कायवाही करने का अधिकार देने मे इन्कार कर दिया। जिससे सदाशिवराव भाऊ ने उसकी सेवा से त्यागपत्र दकर शम्भाजी (कोल्हापुर) की आधीनता में चले जाने की धमकी दी। सदाशिवराव भाऊ का शम्भाजी ने अपना पेशवा नियुक्त करने का प्रलोभन भी दिया था। तथापि सयोगवश पेशवा ने अपने इस चचेरे भाई से समझौता करके उसे अपने राज्य के सनिक कार्यों म स्वतन्त्र अधिकार प्रदान कर दिया। भविष्य मे वे दोनों पूर्ण सहयोग के साथ एक दूसरे की सहायता करते रहे।

अपने पिता के विपरीत बालाजीराव में एक भयंकर दोष यह था कि वह एक योग्य सेनानायक न था। उसे अपने इस दोष के कारण दूसरों की सहायता पर निर्भर करना पड़ता था। जिससे स्वयं उसे अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। सिन्धिया तथा होल्कर निरंकुश होते चले गये और अन्ततः वे पूर्ण स्वतन्त्र शासक बन बैठे। ऐसी दशा में पेशवा ने अपने सजातीय लोगों—त्र्यम्बकराव पेठे, गोपाल राव पटवर्धन, विसाजी कृष्ण विनिवाले, तथा बलवन्तराव मेहेंदले आदि को विभिन्न पदों पर नियुक्त करके उनके द्वारा अपना कार्य संचालन करने का विचार किया। तथापि उत्तर भारत में स्वतन्त्र प्रक्रिया करने वाले मराठा सरदारों तथा सिंधिया तथा होल्कर पर वह किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगा सका। रामचन्द्र बाबा स्वयं एक स्वार्थी महाजन था और पेशवा की ओर से उसने स्वयं असीम धन एकत्र कर रखा था जबकि यथासम्भव वह सिंधिया सरदारों की ही हितवृद्धि करने में संलग्न रहता था। इस प्रकार पेशवा को अपने ही सरदारों तथा कर्मचारियों पर सदैव ही सन्देह की दृष्टि रखनी पड़ी और उसमें सैनिक अनुभव के अभाव के कारण वह अपने इच्छित कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पादित करने में आंशिक रूप से ही समर्थ हो पाया।

तथापि बालाजीराव का लक्ष्य महान था और इसकी सिद्धि में उसने अपनी विवेक बुद्धि से जो भी पग उठाये वे अन्ततः सफल ही रहे। गुजरात के प्रश्न पर पेशवा का दामाजी गायकवाड़ से भी दीर्घ संघर्ष चला और अन्ततः इस सम्बन्ध में तीन वर्ष तक जन धन की अपार हानि होने के पश्चात् दोनों के मध्य समझौता हो गया। इस समझौते के फलस्वरूप गुजरात में पेशवा का दामाजी गायकवाड़ के बराबर भूप्रदेश उपलब्ध हो गया। इसी प्रकार पेशवा बालाजीराव को अपने सत्तारूढ़ के होने के समय रघुजी भोंसले से भी संघर्ष करना पड़ा था। इन विभिन्न प्रतिद्वंद्वी तत्वों ने पेशवा की राजनीतिक शक्ति तथा मराठा जनशक्ति दोनों पर प्रबल आघात किये जिसके फलस्वरूप बंगाल में अलीवर्दी खाँ तथा कर्नाटक में चान्दा साहब को अपनी शक्ति वृद्धि करने का अवसर मिला। यही नहीं इन मुस्लिम शक्तियों की आड़ लेकर अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों को भी अपने अपने प्रभाव विस्तार का स्वतन्त्र मार्ग मिल गया। इस पेशवा ने कोलाबा के आंग्रे बन्धुओं के पारस्परिक वैमनस्य को भी कम करने की कोई चेष्टा न की। उसने तुलाजी को कोलाबा का सरखेल बनाने की सहमति दी किन्तु अपने एक सैनिक पदाधिकारी दामाजी महादेव को भेजकर तुलाजी के भाई मानाजी आंग्रे के दुर्ग—मानिकगढ़—को अधिकृत करके आंग्रे बन्धुओं को अपना विरोधी बना लिया। मानाजी आंग्रे पुर्तगालियों से जा मिला और पेशवा ने मालाबार में तुलाजी के विरुद्ध सैनिक अभियान करके उसकी शक्ति को ध्वस्त कर दी।

आंग्रे बन्धु—यह उल्लेखनीय है कि पेशवा बालाजीराव दक्षिण भारत के समुद्र तट पर अपना आधिपत्य स्थापित करने तथा उस पर सशक्त बनी हुई पाश्चात्य

शक्तियों का उन्मूलन करने की कार्य योजना बना सका। यह उनकी बड़ी भारी भूल थी। उनसे कर्नाटक की समस्या का भी कोई स्थाई हल न निकला। सन् १७५८ ई० में जब वह कर्नाटक की समस्या में ही उलझा हुआ था तो उसके अधीनस्थ कर्मचारी कल्याण के शासक रामजी पंत ने १९ मार्च १७५५ ई० को अपने प्रतिद्वंदी —तुलाजी आंग्रे —की शक्ति का नष्ट भ्रष्ट करने और उसके किले के विजयदुर्ग पर अधिकार करने के लक्ष्य से अंग्रेजों के साथ एक नौसैनिक संधि कर ली। इसका परिणाम अत्यंत घातक सिद्ध हुआ। इस संधि की शर्तें ये थीं—

(१) मराठा तथा ब्रिटिश नौसेना दोनों पर अंग्रेजों का नियंत्रण रहे।

(२) आंग्रे बन्धुओं द्वारा छीने गये जहाजों तथा अन्य सामग्री का दोनों के मध्य बटवारा कर लिया जाये।

(३) तुलाजी की पराजय के पश्चात् पेशवा बनकोट का क्षेत्र जिसमें हिम्मत गढ़ का दुर्ग तथा पाँच समीपस्थ ग्राम सम्मिलित थे अंग्रेजों को प्रदान करदे।

(४) समुद्री मार्ग से तुलाजी को मिलने वाली सहायता का अंग्रेज लोग प्रतिरोध करें तथा विभिन्न मराठों की अधीनता से अनेकानेक दुर्गों से छीनी गई युद्ध सामग्री भी दोनों अर्थात् पेशवा के प्रतिनिधि तथा अंग्रेजों के मध्य समान रूप से विभक्त कर ली जाती थी।

(५) यदि मराठे तथा अंग्रेज मानाजी पर संयुक्त आक्रमण करें तो खण्डेरी के द्वीप पर उसकी सफलता के पश्चात् अंग्रेजों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया जाये।

इस प्रकार इस संधि के फलस्वरूप अंग्रेजों के साथ मिलकर मराठों ने कोलाबा में आंग्रे बन्धुओं की शक्ति का ही उन्मूलन कर दिया, उन्होंने उनसे विजय दुर्ग भी छीन लिया। तथापि अब इस दुर्ग को अंग्रेज सत्ताधारियों ने ही अपने अधिकार में उस समय तक रक्खा जब तक कि उन्हें पेशवा ने बनकोट तथा उसके साथ ही १० समीपस्थ ग्रामों पर प्रभुत्व न स्थापित कर लेने दिया। इस प्रकार आंग्रे मराठों के हितों को उपेक्षित रखकर अंग्रेजों से नाविक संधि करके पेशवा ने महाराष्ट्र की भावी स्वतन्त्रता को ऐसा आघात पहुँचाया कि जिस समय अंग्रेजों ने मराठों को आक्रान्त करना प्रारम्भ किया पेशवा को पश्चिमी समुद्र तट तथा कहीं से भी नाविक सहायता न मिल सकी। उसने स्वर्णदुर्ग, अनजनवेल रत्नागिरि तथा विजय दुर्ग को हस्तगत करने के लिये ब्रिटिश सहायता का प्रयोग किया था किन्तु इस सम्बन्ध से आंग्रे की नौशक्ति को ध्वस्त कराकर उसने मराठा राज्य की ही अप्रत्यक्ष हानि की। उसे १७६१ के पूर्व जब कि लार्ड क्लाईव ने बंगाल में दीवानी अधिकार प्राप्त कर लिये अंग्रेजों की सत्रिय महत्वाकांक्षा का अनुमान होने का प्रश्न भी नहीं उठता क्योंकि १७६१ ई० के पूर्व गत ५० वर्षों से ये विदेशी पुर्तगाली डच तथा

फ्रांसीसी केवल व्यापार कार्यों में ही संलग्न रहे थे। इस सम्बन्ध में प्रो० सरदेसाई ने भी अपनी इतिहास पुस्तक में स्पष्टीकरण दिया है।[1] तथापि इससे पेशवा बालाजीराव की इस अदूरदर्शिता का लक्षण स्पष्ट हो जाता है।

हम ऊपर यह संकेत कर चुके हैं कि पेशवा बालाजीराव ने उत्तर भारत की सुरक्षा का उस संकटकालीन परिस्थिति में भी जबकि उस पर अब्दालीशाह के आक्रमण हो रहे थे और साथ ही देश में रहने वाले कुछ विद्रोही तत्व पठान, रुहेले उस अफगान आक्रान्ता के साथ गठबन्धन करने का अवसर ताक रहे थे, कोई स्थाई प्रबन्ध न करके शाह अब्दाली को भारत पर सफल आक्रमण के पश्चात् मराठों की शक्ति का कालान्तर में पुनरुत्थान और पुनर्संगठन अवश्य हो गया किन्तु इस पेशवा की मृत्यु के पश्चात् मराठा राजनीति में महान परिवर्तन हुआ उसके कारण मराठों को अपने प्रतिद्वन्द्वियों—अंग्रेजों के समक्ष मुँह की खानी पड़ी।

पेशवा माधवराव—उसका उत्तराधिकारी माधवराव अपने ग्यारह वर्षीय शासन काल के अधिकांश समय में हैदरअली की शक्ति का दमन करने, निजामअली से युद्ध करने तथा अपने चाचा रघुनाथराव और फिर नागपुर के भोंसले परिवार के अन्याय सदस्यों से मराठा सत्ता को हस्तगत करने आदि संघर्षों में व्यस्त रहा और साथ ही उसका शरीर भी रोगग्रस्त होने के कारण निरन्तर दुर्बल होता चला गया। उसे इन आन्तरिक संकटों के मध्य यह सोचने का बहुत ही कम अवसर मिल पाया कि भारतीय सत्ता को हस्तगत करने के क्षेत्र में अब उसकी प्रतिद्वन्द्विता करने वाली एक और सत्ता अपनी दृढ़ पृष्ठभूमि का निर्माण करने में उत्तरोत्तर सफल होती जा रही थी। मराठा कर्मचारियों में भी अब भ्रष्टाचार के चिह्न उदय होने लगे। तथापि पेशवा माधवराव अपने पितामह बाजीराव के बाद दूसरे नम्बर का महान सेनापति था, उसमें शीघ्र निर्णय करने की असाधारण क्षमता तथा वह अपनी प्रजा का कल्याण करने का विशेष महत्वकांक्षी था। उसने मराठों को जो पानीपत के युद्ध में परास्त होने के पश्चात् पारस्परिक स्वार्थों और तत्सम्बन्धी वैमनस्य पूर्ण भावना में निमग्न हो रहे थे, अपने चरित्रबल तथा प्रशासकीय कौशल से भ्रष्टाचारों से दूर रह कर स्वदेशहित की ओर पुनः अग्रसर किया। वह अपने राष्ट्र की आन्तरिक व्यवस्था को प्रगतिशील बनाने में जितना सफल हुआ उसके पूर्वगामी किसी मराठा शासक को इतनी सफलता कदाचित ही मिली होगी। इसके अतिरिक्त मराठा संघ को भी बलशाली बनाने में उसे अप्रतिम सफलता मिली और उसे सिंधिया, होल्कर तथा

---

1 See His — New History of the Marathas , P 351
In ascribing to the Peshwa an unpardonable fatal in descretion it seems we anticipate history and powerful as the Peshwa certainly was during the late fifties he had no reason to suspect that he could not control the action of the British ower in Bombay

गायकवाड़ जैसे मराठा नेताओं का आविर्भाव सम्भव हुआ, जिससे मराठों ने दिल्ली की राजनीति में पुनः सर्वोपरि प्रभाव स्थापित कर लिया।

इस प्रकार मराठों की प्रगति को देखकर अंग्रेजों को अत्यधिक ईर्ष्या हुई और उन्होंने सर्वप्रथम मराठा शक्ति को ही ध्वस्त करने पर कमर कस ली। इसी प्रकार प्रारम्भ में मराठों के शक्ति विस्तार के लिए लाभदायक मराठा संघ की दृढ़ता ने ही उनकी सत्ता को विकेन्द्रित करने के पश्चात् अन्ततः उसका विघटन भी प्रारम्भ कर दिया। मराठा संघ के विभिन्न नेताओं में काल क्रमानुसार जो अनेकानेक मतभेद और असंतोष उत्पन्न हुए वे ही कालान्तर में उसकी सत्ता के क्षय के मूल कारण बने।

सारांश—पेशवा बालाजीराव ने मराठों का प्रभुत्व भारत के अधिकांश भाग पर स्थापित कर लिया और मराठा प्रभुत्वशक्ति को क्षतिग्रस्त करने वाले विभिन्न आन्तरिक तत्वों जैसे कि आंग्रे बन्धुओं, आदि को नष्ट करके उसने उत्तर तथा दक्षिण भारत दोनों क्षेत्रों में अपनी सत्ता स्थापित की। उसने कान्होजी के आंग्रे बन्धुओं के साथ विनाशकारी नीति अपना कर अंग्रेजों से नाविक संधि करके भारी भूल की। कालान्तर में पानीपत के युद्ध के पश्चात् मराठा शक्ति को पुनर्सगठित करने का कार्य उसके उत्तराधिकारी पेशवा माधवराव द्वारा सम्पन्न हुआ। किन्तु अंग्रेजों की शक्ति से उसे दीर्घकाल तक कोई आशंका न उत्पन्न हुई और वे इस पेशवा की आन्तरिक समस्याओं तथा उसकी अस्वस्थता से लाभ उठाकर विभिन्न भारतीय क्षेत्र में हस्तक्षेप करते रहे तथा कालान्तर में वे मराठों के कट्टर बैरी सिद्ध हुए।

Q. Discuss fully the political effect of the Warna Treaty and the Sangola agreement on the subsequent history of Maharashtra

प्रश्न—वार्ना की संधि तथा संगोला के समझौते के महाराष्ट्र के भावी इतिहास पर पड़ने वाले परिणामों का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

उत्तर—वार्ना की संधि तथा संगोला के समझौते के कारणों का अध्ययन करने के पश्चात् ही हम उनके उन परिणामों का अनुमान लगा सकते हैं जो कि भावी मराठा इतिहास पर पड़े। वार्ना की संधि तथा संगोला की व्यवस्था दोनों ही तत्कालीन मराठा शासकों अर्थात् सतारा के छत्रपति शाहूजी और कोल्हापुर के शम्भाजी से अत्यन्त घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं। इसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है कि शिवाजी के पिता शाहजी के दो पुत्र थे—शिवाजी तथा व्यंकोजी। शिवाजी को उन्होंने पूना की जागीर प्रदान की थी और व्यंकोजी को कर्नाटक के क्षेत्र। इन दोनों छत्रपतियों में से शिवाजी ने बीजापुर तथा गोलकुण्डा के नवाबों से वीरतापूर्वक युद्ध करके उनके अनेकानेक क्षेत्रों को विजय करना किन्तु व्यंकोजी ने दीर्घकाल तक बीजापुर के सुल्तान की आधीनता में ही रहकर राज्य किया था। अन्ततः इन दोनों भाइयों में जुलाई १६७७ ई० में जगन्नाथ पन्त के प्रयासों से संधि हो गई थी जिसके अनुसार शिवाजी ने अपने छोटे भाई से अपनी आधीनता स्वीकार कराके उसके सर्वविजित क्षेत्रों को भी उसे वापिस लौटा दिया था।

वार्ना की सन्धि का प्रभाव—शाहूजी ने १७०७ ई० म महाराष्ट्र को वापस लौटकर अपने चचेरे भाई शम्भाजी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने का असफल प्रयास ही किया और १७२७ ई० में तो शम्भाजी ने प्रत्यक्ष विद्रोह करके निजाम-उल मुल्क का आश्रय ही ग्रहण कर लिया था। इससे शाहूजी को अत्यन्त रोष आया और उन्होंने पत्र व्यवहार द्वारा अपने विद्रोही भाई को समझाने बुझाने की चेष्टा भी की। किन्तु सन् १७३० ई० के प्रारम्भ म, जब कि बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा सन् १७२९ ई० से ही मालवा तथा बुन्देलखण्ड की स्थिति पर विजय पाने मे व्यस्त थे, शम्भाजी के तत्कालीन एक मात्र शक्तिशाली समर्थक—प्रतिनिधि के ऊदाजी चावन ने शाहूजी के राज्य पर आक्रमण कर दिया। फलत छत्रपति को उसका सामना करने के लिए स्वत मैदान मे आना पडा। इसी मध्य एक दिन जब कि वह शिकार के लिए बाहर निकले थे ऊदाजी चवन के कुछ साथियो ने आकर एकाएक उन पर आक्रमण करने की चेष्टा की। संयोगवश वे पकड लिए गये और यद्यपि छत्रपति ने उनको अपना अपराध स्वीकार कर लेने पर उन्हें मुक्त कर दिया तथापि अब महाराज शाहू ने शम्भाजी को परास्त करने का दृढ निश्चय कर लिया। अन्तत शाहूजी की सेनाओं ने पन्हालगढ के दुर्ग का घेरा डाल दिया जिसमे शम्भाजी तथा ऊदाजी ने आश्रय ग्रहण कर रक्खा था। शम्भाजी ने ताराबाई को भी इस दुर्ग मे बन्दी कर रक्खा था शाहूजी ने पन्हालगढ से ताराबाई को साथ लेकर शम्भाजी से बिना किसी प्रकार की सधि किये हुए ही सतारा की ओर प्रस्थान कर दिया। उधर शम्भाजी ने अपनी स्थिति को असुरक्षित देख कर शाहूजी का प्रतिशोध करने की ही योजना बनाई थी किन्तु उसकी रानी जीजाबाई ने उसे समझा बुझाकर शाहू की आधीनता ही स्वीकार करने को तयार कर लिया। फलत नवम्बर १७३० ई० म शाहू ने उसके पास पन्हालगढ म फतेहसिंह भोसले (प्रतिनिधि) नारबाबा (मन्त्री) बालाजी बाजीराव भवानाप्पकर (मुशी) पुरन्दरे दामाजे तथा निम्बालकर आदि को भेजकर उनके द्वारा शम्भाजी को बहुमूल्य भेंट उपहार प्रदान कराये। अन्तत १६ दिसम्बर को शम्भाजी ने पन्हालगढ म प्रस्थान करके वडर नामक स्थान की यात्रा की, जहाँ पर शाहूजी पहले से ही उससे मिलने के लिए तैयार खडा था। इस ऐतिहासिक सम्मेलन को ही वार्ना की सन्धि कहते हैं और इसके तात्कालिक परिणाम निम्नलिखित हैं—

यह सम्मेलन २७ फरवरी से प्रारम्भ होकर १२ मार्च १७३१ ई० तक चलता रहा और तत्पश्चात् दोनों भाई होली का समारोह मनाने के विचार से शाहू नगर चले आये। अन्तत उनके मध्य होने वाली वार्ना की सन्धि को १३ अप्रैल के दिन स्थाई मान्यता प्राप्त हो गई। वार्ना नदी के दक्षिण भू भाग जो तुगभद्रा के तट तक फैला हुआ है शम्भाजी के स्वतन्त्र प्रभुत्व में दे दिया गया किन्तु इसके वैदेशिक सम्बन्ध शाहूजी ने अपने ही हाथों में सुरक्षित रक्खे। वार्ना नदी के उत्तरी प्रदेशों पर

शाहूजी के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई किन्तु तुंगभद्रा के और अधिक दक्षिण में रामेश्वर तक के क्षेत्रों पर शाहूजी तथा शम्भाजी दोनों का संयुक्त अधिकार माना गया। शम्भाजी को अब शाहूजी के पक्ष में 'मरिच' (Merich) तासगाँव, हतनी, कृष्णा नदी के उत्तर के कुछ तटीय ग्रामों तथा बीजापुर स्थित अपने दुर्गों को त्याग देना पड़ा। इस संधि की महत्ता बतलाते हुए ग्राट डफ ने लिखा है कि 'यह संधि आक्रामक एवं सुरक्षात्मक दोनों ही थी और इसने तुंगभद्रा के दक्षिण में की जाने वाली विजयों से उपलब्ध क्षेत्रों के भावी विभाजन का जिसे दोनों भाइयों के परस्पर सहयोग का ही फल हो सकता था का अच्छा अवसर प्रस्तुत किया गया।'[1] शाहू द्वारा प्रदान किया गया कोल्हापुर का यह सम्पूर्ण राज्य दीर्घकाल तक शम्भाजी और उसके उत्तराधिकारियों के हाथ में अक्षुण्ण बना रहा।

शाहूजी के महान वैभव तथा शक्तिशाली पेशवाओं के समक्ष शम्भाजी का चरित्र एवं व्यक्तिगत पराक्रम शीघ्र ही नगण्य बन गया। यदि उसने शाहू की आधीनता स्वीकार करने से लेशमात्र भी विलम्ब किया होता तो उसके समस्त राज्य का इससे पहले ही सर्वनाश कर दिया गया होता। उसे छत्रपति की आधीनता में लाने का यह तीसरा एवं अंतिम प्रयास शाहूजी की ओर से किया गया था क्योंकि उनके पहले दोनों प्रयत्न (१७०८ तथा सन् १७२५ ई०) दुर्भाग्यवश विफल सिद्ध हो चुके थे। तथापि इस का संधि एक प्रत्यक्ष परिणाम यह था कि दोनों राजवंशों में प्राय २१ वर्षों से चला आने वाला गृह युद्ध अब समाप्त हो गया था और साथ ही शम्भाजी ने अब बीजापुर का साथ देना भी त्याग दिया था। फलतः मराठा संघ और पेशवा की स्थिति की विशेष रूप से शक्ति वृद्धि प्रारम्भ हो गई। इस युद्ध के बाद शाहूजी की लोकप्रियता में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। उन्हें अपनी कार्य सिद्धि के लिये मराठों के सुविस्तृत एवं सम्पूर्ण देश से योग्य व्यक्ति भी अब सुलभ हो गये।

तथापि महाराष्ट्र के बीचोंबीच में एक पूर्ण सत्ता सम्पन्न पृथक राज्य की स्थापना के फलस्वरूप दोनों मराठा राजवंशों के मध्य पारस्परिक विद्वेष की दशायें भी अब सदा के लिए उत्पन्न हो गई थीं। कोल्हापुर के शासक अपने को सतारा के राजाओं के समान समान स्तर का छत्रपति समझने लगे जिसके फलस्वरूप मराठा जाति में पृथक्करण के अनेकानेक दोष उत्पन्न हो गये सन् १६४० ई० में बाजीराव के मरने पर शम्भाजी राजा छत्रपति शाहू से मिलने के लिए सतारा आया और इसी समय पर नवीन पेशवा बालाजीराव ने छत्रपति के राजवंश की इन दोनों शाखाओं

---

1 See J G Duff — History of the Marathas"—Page 418
This treaty was offensive and defensive and provided for the division of further conquests to the south of the T...

पदीकरण करने के उद्देश्य से उसके साथ एक गुप्त समझौता भी किया। उधर शाहूजी के कोई पुत्र न होने के कारण लोगों का विचार यह था कि उनके पश्चात् सम्भाजी को ही उत्तराधिकार प्राप्त होगा। परन्तु परिस्थितियो से विवश होने के कारण दिसम्बर १७४९ ई०[1] म शाहूजी की मृत्यु के समय तक सम्भाजी ने अपना सतारा पर अधिकार करने का विचार स्वय ही छोड दिया, जिससे उस समय पर इस गृह युद्ध को छिडने से रोकने म पेशवा को सफलता भी आसानी से मिल गई।

तथापि, इस सधि से न तो सम्भाजी की वस्तुस्थिति म ही कोई उन्नति हुई और न उनके शाहूजी के साथ सम्बन्ध ही मत्रीपूण बन सके। वह कभी कभी और विशेषकर शाहूजी से आमन्त्रण प्राप्त करने के बाद ही सतारा आया करता था और उसका वहाँ पर विशेष आदर-सत्कार होता था किंतु कतिपय क्षुद्र कारणों से वह प्राय असन्तुष्ट ही बना रहा। उसकी प्रमुख शक्ति अत्यन्त अव्यवस्थित एव दुबल थी जिसके कारण उसके कमचारी प्राय उसकी अवज्ञा करने से भी सकोच न करते थे और इसके लिय सम्भाजी शाहू के कमचारियो को ही उत्तरदायी ठहराता रहा।

सगोला का समझौता एव मराठा इतिहास पर उसका प्रभाव—शाहूजी की मृत्यु (१५ दिसम्बर १७४९ ई०) के बाद पेशवा बालाजीराव न २६ दिसम्बर से १८ अप्रैल १७५० ई० तक सतारा म ही निवास किया। इसका लक्ष्य यही था कि नवीन छत्रपति की सत्ता सुरक्षित बनाकर इस योग्य हो जाय कि वह राज्य के हित म आवश्यक पग उठाने का यथोचित प्रशिक्षण प्राप्त करके देश का शासन सूत्र सम्हाल सके।[1] इस प्रकार १८ अप्रैल तक सतारा म रहने के पश्चात् पेशवा रघुजी भोसले को सतारा में नियुक्त करके स्वय पूना चला आया।

उधर ताराबाई ने रामराजा को अपनी स्वार्थ पूर्ति के अनुकूल न पाकर उसे राज्य अपहर्ता के रूप म कुख्यात करना भी प्रारम्भ कर दिया था। देश के अनेक उच्च घरानों के मराठे सरदार ताराबाई और उसके द्वारा अभिषिक्त रामराजा के कार्यों को सन्देह पूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। राजमाता ताराबाई द्वारा उत्पन्न किये गये इस परिवर्तित वातावरण म बुरहानजी मोहिते[2] को जिसने अभी कुछ ही समय पूर्व अपनी कन्या का पाणिग्रहण रामराजा के साथ सम्पन्न कराया था, अत्यधिक असन्तोष हुआ। उन्होंने अपने निवास स्थान पर सैकडों असन्तुष्ट मराठा सरदारो का एकत्र

---

1 From 26th Dec 1749 to 18th April 1750 the Peshwas stayed at Satara doing his utmost to sustainthe new Chhatrapatis power and get him into a *proper trim* to carry out his duties in the best interests of the state (Sardesai)

2 According to Sardesais *footnote* on page 290 of his New History of the Marathas *Vol II* Burhanjis one sister was the late Rani Sagunabai of Shahu and the second was the wife of Raghuji Bhonsle mother of Madhoji

करके सम्मिलित रूप में यह निश्चय किया कि वे माँगों को पूरा करवाने के उद्देश्य से अन्न जल को त्यागकर अनशन करेंगे। इस अनशन ने व्यापक रूप धारण करके चारो ओर अराजकता के चिह्न उत्पन्न कर दिये। मुरारजी बाबा ने असीम निराशा से संतप्त होकर आत्महत्या का ही निश्चय कर लिया था, फलतः पाकर पेशवा को सतारा से शीघ्र ही पूना चले आना पड़ा।

पूना पहुँच कर पेशवा ने ताराबाई से भी वहीं आने का अनुरोध किया, जिसे उसने स्वीकार कर लिया। वह जून १७५० में पूना आ पहुँची जहाँ पर उसके अनुयायी अमात्य भगवंतराव तथा सचिव, चिमनाजी नारायण भी उपस्थित थे। पेशवा ने सतारा स्थित महाराजा को भी पूना बुलाया था। उसके अगस्त १७५० में वहाँ पहुँचने के बाद समस्त एकत्रित मराठा सरदारों ने अपनी अपनी विचार धाराओं पर विस्तृत विचार विमर्श किया। रघुजी भोंसले और तरलश्कर सोमवंशी के साथ साथ वहाँ पर उत्तर भारत से आये हुए सिंधिया तथा होल्कर सरदार भी उपस्थित थे। इनके अतिरिक्त उस सभा में भाग लेने के लिये सदाशिव राव भाऊ, रामचन्द्र बाबा, महादोबा पुरन्दरे तथा सखाराम बापू भी आये थे जिनसे गुप्त एवं प्रत्यक्ष रूप में पेशवा ने कई सप्ताह तक इस विषय में बातचीत की कि वे किस प्रकार ताराबाई और रामराजा में ऐसा व्यावहारिक समझौता कराने में सफल हो सकते थे कि राज्य प्रशासन सुविधापूर्वक चलता रहे और साथ ही मराठा को भी अन्यान्य क्षेत्रों में द्रुत गति से अपना प्रभाव विस्तार करने का समुचित अवसर मिल जाये। उद्देश्य की महानता तथा विचार वैषम्य की दृष्टि से यह सभा मराठा इतिहास की एक अभूतपूर्व देन थी। इसमें अन्ततः पेशवा ने यही निर्णय लिया कि ताराबाई और रामराजा को वह सतारा में ही रहने दे किन्तु वहाँ के सरकारी दफ्तरों को वह वहाँ से स्थानान्तरित करके पूना में ही स्थापित करे। उपस्थित महानुभावों के समक्ष पेशवा ने इस तथ्य पर बल दिया कि शासन तंत्र के हित में राज्य की कार्यपालिका शक्ति उसी के हाथों में केन्द्रित रहने दी जाय और वह भविष्य में प्रतिनिधि, सचिव अथवा किसी राज्याधिकारी का प्रशासनिक क्षेत्र में लेशमात्र भी हस्तक्षेप सहन करने को तैयार न था। सिंहगढ़ पर सचिव का आधिपत्य रहता था और पेशवा के विरुद्ध यह कुचक्री मराठा सरदारों का एक कुख्यात गढ़ बना हुआ था अतः बालाजीराव ने इस सभा में यह भी तय कर दिया कि भविष्य में सचिव को उपर्युक्त अधिकार त्याग देना होगा। सचिव को अपदस्थ करके समुचित क्षति पूर्ति देने के पश्चात् अपने देश को वापस चले जाने दिया गया।

भारत की सभी शक्तियाँ इस अवसर पर पूना को इस उत्सुकता के साथ गूढ़ दृष्टि से देख रही थीं कि शाहूजी की मृत्यु से उत्पन्न उस जटिलतम समस्या को किस प्रकार निराकृत किया जायेगा। पेशवा ने सम्पूर्ण सत्ता को अपने हाथों में केन्द्रित कर लेने का दृढ़ निश्चय कर रखा था, जिसका समर्थन करके तथा मराठा

राज्य के भावी प्रशासन के विषय म पेशवा के साथ सम्मिलित रूप म गुप्त समझौता करने के पश्चात् रघुजी ८ सितम्बर सन् १७५० को नागपुर वापस लौट गया। सचिव की भाँति ताराबाई का समर्थन करने वाले व्यक्तियो म दादोबा (प्रतिनिधि) तथा उसके सहायक (मुतालिक) यामाजी शिवदेवो के नाम भी उल्लेखनीय हैं। सतारा की पूर्वी सीमा पर स्थित पण्ढरपुर से लेकर कराड (Karhad) तक के महत्वपूर्ण क्षेत्र जो कि दादोबा के आधीन थे, यामाजी शिवदेव की पेशवा विरोधी कुचालों म लाभप्रद सिद्ध हो सकते थे। पण्ढरपुर के समीप प्रतिनिधि के अधिकार में सगोला का छोटा मोटा स्थानीय दुर्ग उपयुक्त सम्मेलन के निश्चय के पश्चात् दादोबा से वापस मांगा गया। उसे देने से इन्कार करने की दशा में पेशवा ने उसे पदच्युत कर देने की धमकी दी। रघुजी के वहाँ से प्रस्थान करने के पश्चात् तुरन्त ही पेशवा ने रामचन्द्र बाबा तथा सदाशिवराव भाऊ को एक विशाल सेना देकर उह छत्रपति रामराजा के नेतृत्व में सगोला को यामाजी शिवदेव से बलपूर्वक हस्तगत कर लेने के निमित्त भेजा। प्रतिनिधि के मुतालिक ने दो सप्ताह तक मराठा सेना का प्रतिरोध करने के पश्चात् परिस्थितियों से विवश होकर २५ सितम्बर १७५० ई० अर्थात् विजय दशमी क दिन सदाशिवराव के हाथों मे सगोला दुर्ग की चाभियाँ सौंप कर अपनी प्राण रक्षा की। वहाँ का समीपस्थ क्षेत्र मगलवेध भी अधिकृत कर लिया गया और उसकी सुरक्षा व्यवस्था का भार विश्वासपात्र पटवर्धनो को सौंप दिया गया।

सगोला व्यवस्था का महत्व—छत्रपति रामराजा ने इस सम्मेलन में पेशवा का आदेश दिया था कि वह मराठा राज्य के भावी नियन्त्रण के लिये भी किसी समुचित व्यवस्था का निश्चय करे। यह योजना रामचन्द्र बाबा क मस्तिष्क म आई थी जिसे सदाशिवराव भाऊ ने कार्यान्वित किया। पेशवा के साथ बठकर तीनो राजनीतिज्ञो ने इस योजना पर गहन विचार करन क पश्चात् इसे स्वीकार कर लिया। इसके अनुगत मराठा राज्य, सस्था का तो कायाकल्प ही हो गया और फलत राज्य कमचारियों के दृष्टिकोण म भी आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया। अस्तु महाराजा शाहू के दिवगत होने के ६ महीनो के अन्दर ही छत्रपति की सम्पूर्ण सत्ता उसके हाथों से निकलकर पेशवा के हाथों म केन्द्रित हो गई। शाहू के जीवन के अन्तिम दिनों में वसे भी पेशवा ने मन्त्रि-परिषद के अन्य सदस्यों के सम्मुख राज्य की चरम सत्ता का उपभोग करना प्रारम्भ कर दिया था, इसलिये सगोला के निर्णय के पश्चात्काल अष्ट प्रधानो का महत्व भी नगण्य होता चला गया। अब उनमें प्रतिनिधि सचिव सेनापति के पद तो ज्यों के त्यों रहने दिये गये किन्तु शेष मन्त्रियों की कोई आवश्यकता भी न अनुभव की जाने लगी। इस व्यवस्था के बाद से 'सचिव' बिलकुल ही शान्त रूप में अपना पद निर्वाह करने लगा। प्रतिनिधि के पद पर 'भवनराव' को सगोला बुला कर उसे आसीन किया गया। यामाजी शिवदेव को पदच्युत करके उसके भतीजे—वासुदेव अनन्त को प्रतिनिधि का मुतालिक नियुक्त किया गया। बबनकल-

गाव दाभाडे अपने व्यक्तिगत दुर्गुणों के कारण सेनापति के पद के अयोग्य ठहराया गया। अत उसे कुछ नकद धन देकर गुजरात के आधे प्रान्त पर पेशवा के प्रतिनिधि के रूप मे शासन करने के लिये भेज दिया गया। बाबूजी नायक पेशवा का दूसरा कट्टर प्रतिद्वंद्वी था और वह कर्नाटक की सम्पूर्ण सत्ता को स्वय हस्तगत कर लेना चाहता था। अत पेशवा ने कर्नाटक का शासन अधिकार उससे वापस लेकर उस देश का सीधे अपनी ओर से प्रबन्ध करना प्रारम्भ कर दिया, इस प्रकार इस समझौते ने मराठा शासन तन्त्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये। सतारा स्थित छत्रपति राजाराम की स्थिति भी भली भांति परिभाषित कर दी गई। महाराजा का मुख्य प्रबन्धक गोविन्द राव चिटनिस को, उसका सेना नायक बापूजी खाण्डेराव को तथा उसके राज्य मे शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिये पेशवा के प्रतिनिधि त्र्यम्बक (नाना पुरन्दरे) को नियुक्त किया गया। छत्रपति के व्यक्तिगत परामर्शदाता एव सहायोगी के रूप मे यशवन्तराव पोटनिस तथा देवराव लापसे की नियुक्तियाँ की गई। सगोला सम्मेलन मे कुछ दूसरी नियुक्तियाँ भी की गई थीं, किन्तु वे इस स्थान पर उल्लेखनीय नहीं हैं। रामराजा की बहन दयाबाई भी उसकी पदोन्नति के उपलक्ष मे छत्रपति से अपना पुरस्कार चाहती थी। अत उसके पति निम्बाजी नायक निम्बाकर को 'सर लश्कर' का पद प्रदान किया गया और इस स्थान पर काय करने वाले पदाधिकारी अप्पाजी सोमवंशी को अब अपदस्थ कर दिया गया। अकालकोट मे फतहसिंह भोसले के राज्य का प्रधान प्रबन्धक पेशवा ने त्र्यम्बक हरि पटवर्धन को बनाया। इस व्यवस्था को सक्रिय रूप देने मे पेशवा को भाऊ साहब तथा रामचन्द्र बाबा से विशेष सहायता मिली थी। पेशवा द्वारा किये गये इस प्रबन्ध को छत्रपति रामराजा ने भी स्वीकार कर लिया किन्तु इससे ताराबाई को विशेष असंतोष हुआ।

पेशवा का गतिरोध करने के विचार से ताराबाई २९ अक्टूबर को पूना से सतारा चली गई जहाँ उसने समय पाकर अपनी प्रबल सेना सगठित करनी प्रारम्भ कर दी। वहाँ से उसने सतारा के दुर्गपाल शेख मीरा को दुर्ग मे यथेष्ट युद्ध सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी। वहाँ पहुँचते ही ताराबाई ने समस्त राजकर्मचारियों से अपनी आधीनता स्वीकार करा ली। कुछ को उसने धन देकर और कुछ से कौरे वायदे करके उन्हें अपना वशानुवर्ती बना दिया। १७ नवम्बर को रामराजा भी सतारा पहुँच गया और भाऊ साहब ने उसे अपनी पूर्ण सत्ता का प्रयोग करने तारा बाई की प्रक्रिया को नियन्त्रित करने के लिये समझाया बुझाया किन्तु वह इस साहस पूर्ण काय मे सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ।

सारांश—मराठा इतिहास मे वार्ना की संधि तथा सगोला सम्मेलन का स्थान विशेष महत्वपूर्ण माना जाता है। इन व्यवस्थाओं के प्रभाव स्थाई सिद्ध हुए। उदाहरणार्थ वार्ना की संधि के अनुसार महाराजा शाहू द्वारा स्वीकार किया गया कोल्हापुर के शम्भाजी का राज्य आधुनिक काल तक के शम्भाजी तथा उसके उत्तरा

धिकारियों द्वारा उपभोग किया गया। इसी प्रकार संगोला सम्मेलन में स्वीकार की गई व्यवस्था पेशवा बालाजी राव तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा दीर्घकाल तक अपरण्ण रक्खी गई। इस समय से पेशवा महाराष्ट्र संघ का प्रधानमंत्री बन गया, राज्य की समस्त शक्ति उसी के हाथों में आगई और परम्परागत अष्ट प्रधानों के पद महत्व शून्य हो गये।

Q Give a brief account of the Maratha relations with the Jat Ruler of Bharatpur (R U 1965)

प्रश्न—भरतपुर के जाट राजा के साथ मराठों के सम्बन्धों का संक्षेप में उल्लेख कीजिये।

उत्तर—सूरजमल जाट भरतपुर का शासक था। उसके अधिकार में कुम्भेर तथा दूसरे शक्तिशाली दुर्ग थे। वह सफदरजंग का प्रबल समर्थक रहा था और इस कारण यद्यपि उसे सम्राट ने क्षमा कर दिया था, तथापि मुगल दरबार में वह अब भी अत्यधिक घृणा का पात्र था। वजीर गाजीउद्दीन उसकी इस उद्दण्डता के लिये उसे कठोर दण्ड देना चाहता था। मराठों को सम्राट की ओर से आगरे और अजमेर की सरदेशमुखी का अधिकार प्राप्त हुआ था किन्तु आगरे के सूबे में सूरजमल अपना हित विस्तार करना चाहता था क्योंकि यह उसके भरतपुर तथा मथुरा के क्षेत्रों के समीप था। इसी प्रकार अजमेर भी मारवाड़ के शासक तथा जयप्पा सिंधिया के आकर्षण का विषय था।

कुम्भेर का घेरा—सम्राट स्वयं आगरे के सूबे को मराठों के हाथ में देने के लिये विरुद्ध था अतः उसने खाण्डेराव होल्कर को भेंट उपहार आदि देकर अपने पक्ष में करने का एक असफल प्रयास किया। खाण्डेराव ने जनवरी १७५४ को अपने पिता मल्हारराव के पास जाकर उसे सम्राट तथा जाट राजा के आगरा सम्बन्धी इरादों की सूचना दी। परिणामतः मराठों ने कुम्भेर पर आक्रमण कर दिया और जाट राजा ने उसे बचाने की हर प्रकार से कोशिश की। उसने मराठों से सन्धि करने के लिये एक ब्राह्मण रूपराम कोठारी को उनके पास भेजकर उसके द्वारा ४० लाख रुपया क्षतिपूर्ति के रूप में देने का प्रस्ताव किया।

सेनापति रघुनाथराव ने एक करोड़ रुपये की माँग की और सूरजमल के उपयुक्त प्रस्ताव को ठुकरा दिया। फलतः कुम्भेर के दुर्ग को फिर से घेर लिया गया और उस स्थान पर २० जनवरी से लेकर १८ मार्च सन् १७५४ ई० तक बराबर युद्ध होता रहा। इस युद्ध में संयोगवश खाण्डेराव होल्कर को शत्रुओं की गोली का शिकार होना पड़ा और वह घटनास्थल पर ही मर गया। फल यह हुआ कि मराठों ने क्रुद्ध होकर जाटों को भीषण क्षति पहुँचाई किन्तु सूरजमल की स्त्री रानी किशोरी जो जयप्पा सिंधिया तथा मल्हारराव के पारस्परिक मतभेद से भली भाँति परिचित थी ने जयप्पा सिंधिया को उपहार आदि देकर उसे इस बात के लिये तैयार

कर लिया कि वह रघुनाथराव को किले का घेरा उठाने को राजी कर लेगा। जयप्पा प्रभावानुसार मराठा सेनापति ने युद्ध स्थगित करके जाटों से संधि करली। सूरजमल ने मराठा को ३० लाख रुपये तीन वार्षिक किस्तों में देने का वचन दिया।

अब्दाली के विरुद्ध जाट राजा का भाऊ साहब से मिलना—सन् १७५६ ६० ई० में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। उसने बरारी घाट के युद्ध में दत्ताजी के नेतृत्व में आयी हुई एक विशाल मराठा सेना को बुरी तरह से हराया। तत्पश्चात् नजीबखाँ के कहने पर अब्दालीशाह ने भारतवर्ष में कुछ दिनों तक और ठहर कर यहाँ के अन्य राजाओं और सरदारों को आधीनस्थ करने का विचार किया। तदनुसार उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला जयपुर के राजा माधोसिंह तथा भरतपुर के जाटराजा—सूरजमल से, जिसके यहाँ बेचारे गाजीउद्दीन ने भागकर शरण ली थी, कई बार यह जोरदार माँग की, कि वे अविलम्ब अपना कर अदा करके शाह अब्दाली की आधीनता स्वीकार कर लें। उसे इन भारतीय शासकों ने पूरा कर पाने में अपनी असमर्थता प्रकट की विशेषकर सूरजमल जाट ने तो उसे यह सीधा जवाब ही दे दिया कि 'पहले तो आपको मराठों को दिल्ली से बाहर निकाल करके हमें यह पूर्ण विश्वास दिलाना वाञ्छनीय होगा कि आपका वहाँ पर स्थायी प्रभुत्व स्थापित हो चुका है और तब हम स्वेच्छा से आपकी आधीनता स्वीकार कर लेंगे।'[1] इस प्रकार के उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् शाह अब्दाली ने शुजाउद्दौला को अपने पक्ष में मिलाने का सफल प्रयास किया। उसने नजीबखाँ की मध्यस्थता से शुजा को अपने पक्ष में करने में सफलता प्राप्त की। उधर दत्ताजी की मृत्यु के पश्चात् सदाशिवराव भाऊ को अब्दाली से युद्ध करने का कार्य मिला। जब भाऊ साहब पूना से आगरा पहुँचे तो सूरजमल जाट ने उनके समक्ष उपस्थित होकर अनेक भेंट उपहार आदि प्रस्तुत किये। जाटराजा ने भाऊ साहब से अनुरोध किया कि दक्षिण से आने वाली मराठा सेनाओं से भरतपुर के खेतों को क्षतिग्रस्त न होने दिया जाये। वह मराठों के साथ सम्मिलित हो गया। सूरजमल जाट ने वादा किया कि उसके १० सहस्र सैनिक भी मराठा सेना की सेना में सम्मिलित हो जायेंगे। अपनी सेवाओं के उपलक्ष में उसने मराठा सेनापति से यह माँग की कि उससे मराठे सरदार कर न वसूल करें। भाऊ साहब इन शर्तों पर राजी हो गये और जाटराजा ने मराठों के साथ मिलकर शाह अब्दाली का मुकाबला करने का वचन दे दिया।

सूरजमल जाट का भाऊ साहब को छोड़कर भरतपुर लौट जाना—सदाशिवराव भाऊ दिल्ली में एक अन्य मराठा सेना की प्रतीक्षा में ठहरा था। उसने काफी समय तक शाह अब्दाली से युद्ध न किया। फिर रसद और धन के अभाव में

1 You must first drive the Marathas away from Delhi assure us that you are the master there and then be shall be your willing vassals
See Sardesai— New History of the Marathas P 412

उसे शाह अब्दाली से सन्धि का प्रस्ताव भी करना पड़ा। उधर सूरजमल जाट ने भाऊ साहब का साथ छोड़कर भरतपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। ऐसी स्थिति में मराठों का पक्ष काफी दुर्बल पड़ गया। क्योंकि अफगानों ने उनका चारों ओर से मार्ग अवरुद्ध कर दिया था और उनके पास भोजन तथा चारे का अभाव था। जाट राजा ने अपने कथनानुसार अब्दाली के विरुद्ध मराठों को सहायता न दी यद्यपि उसने अपने क्षेत्र से गुजरने वाली मराठा सेनाओं का प्रतिरोध भी न किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुजाउद्दौला के अफगानों से मिलने तथा सूरजमल जाट के तटस्थ हो जाने के फलस्वरूप मराठों की शक्ति पानीपत के युद्ध में शाह अब्दाली की सेनाओं का मुकाबला करने में दुर्बल सिद्ध हुई।

सारांश—मराठों के जाटराजा से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अवश्य थे किन्तु वह मराठों के आगरे की मरदेनमुखो के अधिकार को सहन न करना चाहता था। इस कारण १८५४ ई० में मराठों ने रघुनाथराव के नेतृत्व में जाटराजा के कुम्भेर के दुर्ग को घेर लिया उस स्थान पर भीषण युद्ध हुआ। अन्त में ३० लाख रुपये क्षति पूर्ति देने का वचन देकर सन्धि कर ली।

शाह अब्दाली की धन की माँग का मार्गोसिंह तथा शुजाउद्दौला के साथ सूरजमल जाट ने भी विरोध किया। उसने मराठों को अपनी १० हजार सेना के साथ सेवा करने का वचन दिया था किन्तु वह इसे पूरा न कर सका और जिस समय अब्दाली से युद्ध करने का अवसर आया, वह दिल्ली से अपने देश भरतपुर को वापस लौट आया। तथापि इतना निश्चित है कि सूरजमल जाट ने मराठों के मार्ग का अवरोध करते हुए उनकी सेनाओं का भरतपुर के मार्ग से बराबर आने जाने रहने दिया।

Q Discuss fully Grant Duffs view that in time of Balaji Baji Rao condition of the whole population was improved and the Maratha dominion attained its greatest extent (R U 1955)

प्रश्न—ग्राण्ट डफ के इस विचार की विस्तृत व्याख्या कीजिए कि बालाजी बाजीराव के समय में देश की समस्त जनता की दशा में उन्नति हुई तथा मराठा राज्य अपने विस्तार की चरम सीमा पर पहुँच गया। (रा० वि० वि० १९५५)

उत्तर—बालाजी बाजीराव वस्तुतः अपने पिता और पितामह दोनों के गुणों का सुन्दर सम्मिश्रण था। वह न केवल एक सफल सेनापति ही था, प्रत्युत उसमें कूटनीतिक क्षमता और प्रशासकीय शक्ति का एक असाधारण समन्वय भी था। उसने सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्तर तथा दक्षिण भारत में उत्पन्न हुई अव्यवस्थाओं के मध्य मराठों का एकता के सूत्र में आबद्ध करके उनकी शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि की। सन् १७४० ई० में बाजीराव की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र के रूप में उसने पेशवा का सम्मानित पद प्राप्त किया जिसके वह सर्वथा उपयुक्त सिद्ध हुआ जैसा कि उसके क्रिया कलापों से ही प्रमाणित हो जाता है। अपने पितामह द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य को अन्तिम रूप में पूर्णता प्रदान करने का श्रेय बालाजी बाजीराव को ही

प्राप्त था। इसके सहायक (मुतालिक) के रूप में छत्रपति ने महादजी पुरन्दरे की नियुक्ति करके उसको तथा पेशवा का व्यक्तिगत क्षतिपूर्ति के लिए पेशवा बालाजीराव के नाम ३० ग्रामों की मालगुजारी की पारवानगी प्रदान करने की आज्ञा दी। उसने महाराष्ट्र और उसके छत्रपति की पूर्ण स्वामिभक्तिपूर्वक सेवा की और उसके समय में सारा देश प्राय: संतुष्ट रहा तथा साथ ही मराठों ने अपने राज्य विस्तार का भी समुचित अवसर लाभ लिया।

सन् १७४० ई० से १७६१ ई० तक मराठों का राज्य विस्तार—मराठों को निजाम की भोपाल में पराजय के पश्चात् मालवा की सूबेदारी अवश्य प्रदान हो चुकी थी किन्तु नादिरशाह के आक्रमण के कारण उस आदेश को क्रियान्वित न किया जा सका था और साथ ही दिल्ली सरकार में मराठों के प्रभाव का भी असाधारण क्षति पहुँची थी। इसे पुन: स्थापित करने की अविलम्ब आवश्यकता थी और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण एवं जटिल समस्या निजाम उल मुल्क ने दक्षिण में उत्पन्न कर रखी थी जिसे हल किए बिना राष्ट्र की स्थिति को भी अनेकानेक आशंकायें उत्पन्न हो सकती थी। महाराष्ट्र के पश्चिमी समुद्र तट पर सिद्दी आंग्रे पुर्तगाली तथा अंग्रेज भी मराठा सरकार की क्रियाविधि को प्रभावशून्य बनाने को कटिबद्ध हो रहे थे। पेशवा ने अपने शासन के १२ वर्षों में से पहले ८ वर्ष शाहूजी के एक अधीनस्थ पदाधिकारी के रूप में तथा परवर्ती १२ वर्ष एक स्वतन्त्र शासक के रूप में व्यतीत किए तथापि अपने इस सम्पूर्ण प्रभुत्व काल में उसने देश की राष्ट्रीय प्रगति तथा मराठा राज्य विस्तार की उद्देश्य पूर्ति के हेतु उसके उपयुक्त घातक तत्वों का सदैव ही ध्यान रखा। उसे अपने दायित्व के संचालन में अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ से, जो एक योग्य सेनापति तथा महान विजेता भी था, अगणनीय योग मिला था।

बालाजी बाजीराव के समय में महाराष्ट्र की दशा—महाराष्ट्र की सीमाओं का विस्तार तो पेशवा बालाजी पन्त के समय से ही प्रारम्भ हो चुका था किन्तु शाहूजी के मरने के पूर्व आन्तरिक क्षेत्र में कोई विशेष प्रशासनिक व्यवस्था न स्थापित हो पाई थी। बालाजी बाजीराव ने जिलों और प्रान्तों में अनुभवी मामलतदार तथा सूबेदार नियुक्त किये। दूरस्थ प्रदेशों में सर सूबेदार भी रक्खे जाते थे। गोदावरी तथा कृष्णा के मध्यवर्ती भाग की सुरक्षा एवं शासन व्यवस्था स्वयं पेशवा के नियन्त्रण में रहने के कारण अत्युत्तम थी। इस भाग के बड़े बड़े कर्मचारी पेशवा के अपने कृपापात्र व्यक्ति ही होते थे। उन्हें दीवानी फौजदारी सुरक्षा एवं न्याय सम्बन्धी समस्त अधिकार प्राप्त थे तथा वे वसूल किए राजस्व तथा प्रशासन पर व्यय किये गये धन का नियमित लेखा जोखा पूना स्थित पेशवा दफ्तर में प्रस्तुत करते थे। वस्तुत: इन उच्च पदाधिकारियों का स्वतः या तो पेशवा के साथ, या छत्रपति के दरबार में और या फिर सैनिक अभियानों में उपस्थित रहना होता था और इनके सहायक कर्मचारी ही सम्बंधित क्षेत्रों में स्थाई रूप से रहते थे।

ग्रा ट डफ ने लिखा है कि मालगुजारी वसूल करने के विषय में पेशवा ने अपने भाई सदाशिवराव भाऊ के परामर्शानुसार बल्लोगा मन्दवागुनी (Balloga Manduwagunnee) नामक योग्य व्यक्ति को सर सूबेदार नियुक्त करके राजस्व सम्बन्धी आलखा को सुव्यवस्थित कराया। न्याय विभाग का संचालन बालकृष्ण गाडगिल शास्त्री के हाथों में देकर पेशवा ने देश में न्याय एवं आन्तरिक सुरक्षा का भी सन्तोषजनक प्रबन्ध कर दिया था। बालाजी बाजीराव के शासन में स्थानीय पञ्चायतों की दशा में विशेष प्रगति हुई क्योंकि उस समय में देश की जनता धनधान्य से सम्पन्न थी और उद्योग व्यापार की दिशा में भी वह तीव्रगति से बढ़ना प्रारम्भ कर चुकी थी। इस पेशवा ने सैनिक प्रशासन में भी बड़े प्रशंसनीय सुधार किये। मराठा सैनिकों को तोपखाने तथा पाश्चात्य-युद्ध नीति का भी यथा सम्भव ज्ञान कराया गया तथा उन्हें नकद वेतन देने की व्यवस्था की गई। युद्धकाल अथवा शान्ति के समय कभी भी उद्दण्डतापूर्वक कृषकों की खेतों में लगी हुई फसलों को हानि न पहुँचा सकते थे और ऐसा ध्यान न रखने पर उन्हें दण्डित भी होना पड़ता था।

इस प्रकार देश में न्याय रक्षा तथा शांति के श्रेष्ठ वातावरण में जनता धनधान्य में सम्पन्न होकर कृषि व्यापार आदि में प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकी। यह बालाजी बाजीराव के शासन की सफलता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि उसके उत्तर तथा दक्षिण भारत में किये गये विजय कार्यों उत्तर तथा दक्षिण के निकट सम्बन्धों तथा मराठों को भारत के विभिन्न सूबों से मिलने वाली चौथ और सरदेशमुखी के धन मराठा सेनाओं द्वारा युद्धों में उपलब्ध किये गए लूट के धन तथा अन्य प्रकार की सामग्रियों आदि के बाहुल्य से देश की जनता को धनधान्य का लेशमात्र भी अभाव न रह गया था। अतः ग्रांट डफ का यह कथन युक्तिसंगत भी है कि पेशवा बालाजीराव के शासन में जनसाधारण की दशा में विशेष प्रगति होना प्रारम्भ हुई और साथ ही मराठा राज्य भी अपने विस्तार की चरम सीमा पर पहुँच गया। मराठों के राज्य विस्तार की प्रक्रिया को शाह अब्दाली के आक्रमण में निस्सन्देह भीषण क्षति पहुँची थी तथापि यह भी स्वीकार करना होगा कि उनकी यह प्रक्रिया उत्तर भारत में क्षतिग्रस्त हुई थी जबकि दक्षिण में अभी मराठे ही अजेय थे।

शाह अब्दाली के आक्रमण तथा उसमें मराठों की पराजय ने-इस देश के निवासियों को पहले से कहीं अधिक सतर्क बना दिया वे अपना संगठन तथा राज्य विस्तार करने लगे और थोड़े ही समय में उनमें ऐसे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न सरदारों का आविर्भाव हो गया, जैसे कि सिंधिया भोंसले तथा गायकवाड़ आदि जिन्होंने दिल्ली की राजनीति पर पुनः मराठों का ही नियन्त्रण स्थापित कर दिखाया।

तत्कालीन पत्रालखों और संस्मरणों से विदित होता है कि इस पेशवा के विजय कार्यों के फलस्वरूप उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य स्थापित होने वाले

शासकों के काल में दिन प्रति दिन का बढ़ता हुआ विलासिता की सामग्री भौतिक मात्र जैसे वस्त्राभूषण, मशीन आयुधशाला, सजावट रहन-सहन सम्बन्धी विभिन्न वस्तुओं का दक्षिण में स्वतन्त्र प्रचार हुआ। इस सम्बन्ध में अनेक प्रमाण मिलते हैं कि उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों से उपयुक्त सामग्री और यहाँ तक कि भाषा जानने वाले अनेक विद्वानों के आगमन तथा दक्षिण भारत की शासन प्रणाली, भूमि व्यवस्था आदि बातों का उत्तर भारत द्वारा अनुकरण का फल यह हुआ कि सारे भारतवर्ष की सामान्य दशा में एक प्रकार की समरूपता के चिह्न पाये जाने लगे। फलतः इन दोनों क्षेत्रों की सामान्य वस्तु स्थिति में अप्रत्याशित उन्नति हुई। दक्षिण भारत की स्थानीय भाषाओं के शब्द कोष में भी वृद्धि हुई और यहाँ अनेकानेक नवीन शब्दों का अनुकरण कर लिया गया। दक्षिण में जिन उत्तर भारतीय वस्तुओं की सबसे अधिक माँग इस समय में की जाती थी उनमें विभिन्न प्रकार के संस्कृत के ग्रंथ काव्य, साहित्य पुराणग्रन्थ तथा हस्तलिपियों आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

बालाजी के शासन में मराठों का प्रभाव विस्तार—मालवा—पेशवा बालाजी राव मालवा की वस्तुस्थिति से भली भाँति परिचित था। उसने अपने सत्तारूढ़ होने के लगभग १ वर्ष पश्चात् स्वयं मालवा जाकर वहाँ से अपने दिल्ली स्थित अभिकर्ताओं और सवाई जयसिंह के माध्यम से सम्राट से मालवा की सूबेदारी के विषय में वार्ता आरम्भ की। अन्तत कुछ लम्बे वाद विवाद के पश्चात् उसे ७ सितम्बर १७४१ को मालवा तथा बुन्देलखण्ड की दीवानी तथा फौजदारी के सभी अधिकार उपलब्ध होगये, और गुजरात में उसका प्रभुत्व पहले से ही चल रहा था जिसमें सम्राट की ओर से कोई हस्तक्षेप न किया गया।

बंगाल विजय—अप्रैल १७४२ से रघुजी भोंसले ने उड़ीसा तथा बंगाल में भी अपना प्रभाव विस्तार करने का प्रयास आरम्भ कर दिया। वहाँ पर इस समय सरफराजखाँ नामक वहाँ के सूबेदार को पदच्युत करके अलीवर्दीखाँ नामक तुर्क ने ही अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा था। यह अब एक स्वतन्त्र शासक बन बैठा था। इसका दमन करना राजनैतिक दृष्टि से मराठों ने विशेष आवश्यक समझा। मई सन् १७४२ ई० में जब कि रघुजी स्वयं कर्नाटक अभियान में व्यस्त था उसके प्रतिनिधि भास्करराम ने बंगाल के इस शासक के विरुद्ध मीर हबीब[1] की सहायता से मुर्शिदाबाद पर सफल अभियान करके उसने वहाँ से २—३ करोड़ रुपये की सम्पत्ति लूट के रूप में उपलब्ध कर ली थी। तदुपरान्त मराठों ने कलकत्ता तथा हुगली के समीप तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उड़ीसा की पुनर्विजय की। सितम्बर

---

1 यह व्यक्ति उड़ीसा के नवाब मुर्शिदकुलीखाँ का सहायक रहा था किन्तु अली वर्दी खाँ के हाथों उनकी पराजय के पश्चात् इसने मराठों की सहायता से इस विद्रोही नवाब (अलीवर्दी खाँ) का दमन करने का निश्चय कर लिया था।

१७४२ ई० में एक दिन जब मराठा सैनिक बंगाल में अपने दुर्गा पूजा महोत्सव में भाग लेने के पश्चात् रात्रि में अचेत सो रहे थे, अलीवर्दी खाँ ने एकाएक उनके शिविर पर आक्रमण करके असंख्य लोगों को मौत के घाट उतारा और उनकी धन सम्पत्ति लूटकर बहुतों को यत्र तत्र पलायन करने को विवश कर दिया।

इस घटना के कुछ समय पश्चात् भास्कर पन्त ने मकसूदाबाद पर आक्रमण करने का विचार किया। किन्तु उसके पास सैनिकों का अभाव था अतः उसे कोई सफलता न मिल सकी, तथापि उसने उस विषम परिस्थिति में भी 'राधानगर' को सफलतापूर्वक लूटा तथा कटक को भी घेरा डाला जिस पर स्थाई अधिकार न कर पाया क्योंकि अलीवर्दी खाँ स्वयं उस स्थान पर अपनी सेना सहित आ डटा था। इसी मध्य पेशवा तथा रघुजी भोंसले के मध्य तीव्र द्वन्द संघर्ष उठ खड़ा हुआ। परन्तु राजा शाहू के हस्तक्षेप से उन दोनों के मध्य समझौता हो गया और १७४४ के प्रारम्भ में भास्कर राम को जो नागपुर लौट आया था, बंगाल पर पुनः अभियान करने के लिये भेजा गया। नवाब ने उससे समझौता करने का बहाना करके उससे स्वयं भेंट करने का बाह्य निश्चय किया। परन्तु ज्यों ही वह उससे मिलने के लिये पहुँचा, उस कुचक्री दुष्ट नवाब ने मराठों का वध करने की आज्ञा दे दी। उन्होंने अपने बचाव की कोई व्यवस्था न कर पाई और उनके २२ सेनापतियों की जिनमें स्वयं भास्कर राम भी सम्मिलित था, निर्मम हत्यायें की गईं।

इस भीषण रक्तपात का प्रतिशोध लेने के लिए मराठों ने सन् १७४७ से १७५१ तक बंगाल में अलीवर्दी खाँ के विरुद्ध अनेक सफल अभियान किये और उन्हें इन प्रयासों में कभी कभी भीषण क्षति भी उठानी पड़ी। अन्ततः मार्च १७५१ ई० में अलीवर्दीखाँ को रघुजी भोंसले से संधि कर लेनी पड़ी। इस संधि की धारायें संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

(१) मीर हबीब को मुर्शिदाबाद के सूबेदार के प्रतिनिधि के रूप में उड़ीसा का नायक बनाया जाय।

(२) बंगाल तथा बिहार की चौथ के रूप में अलीवर्दी खाँ को भोंसले को १२ लाख रुपये वार्षिक देने थे। इस धन को निश्चित रूप में प्राप्त करते रहने की दशा में भोंसले सेनापति को बंगाल तथा बिहार पर भविष्य में कोई आक्रमण न करने थे।

(३) कटक का प्रदेश अर्थात् स्वर्णरेखा नामक नदी तक के सभी क्षेत्रों पर भोंसले का आधिपत्य स्वीकार किया जाये।

इस प्रकार बंगाल तथा बिहार के चौथ वसूल करने का अधिकार पाकर महाराष्ट्र राज्य की आर्थिक क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई और साथ ही साथ मराठों के इन समृद्ध प्रदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित हो गये।

बुंदेलखण्ड की राजनीति—सन् १७४२ ई० म ओरछा म शासक के पुत्र ... पेशवा द्वारा बुन्देलखण्ड म भेजे गए मराठा सरदारों आदि ने ... म आक्रमण करके उसे अपने वश म कर लिया। ... तारापुर पर ... के द्वारा ... भेजा। उनके आक्रमणों से ... ने ओरछा का त्याग कर ... को ... प्रस्थान कर लिया जहाँ पर उन्होंने मराठों के प्रभाव से दूर रहकर अपने ... राज्य की ... की। अब तारापुर के ... म ... की देखरेख ... व्यवस्था कर ली। उनका परिवार ... म ... तक शासन करता रहा।

कर्नाटक मे मराठा प्रभाव—सन् १७३२ ई० म त्रिचनापल्ली का शासक निःसन्तान मर गया और उसकी रानी मीनाक्षी ने शासन सत्ता अपने हाथों म ले ली। इस परिस्थिति म अर्काट के नवाब ... दामाद चान्दा साहब ने लाभ उठाया। उसने रानी को धोखा देकर ... म बन्द किया तथा वह स्वयं त्रिचनापल्ली का शासक बन बैठा। उसने तंजोर तथा मदुरा के राज्यों पर भी अपनी लोलुप दृष्टि लगाई जिससे भयभीत होकर तंजोर का राजा प्रतापसिंह महाराजा शाहू की शरण म आ गया। शाहू की आज्ञानुसार २० मई १७४० ई० के दिन रघुजी भोसले तथा फतेसिंह भोसले ने दोस्तअली पर आक्रमण कर दिया। वह तथा उसका पुत्र हसनअली उनसे युद्ध करते समय समरांगण म ही परलोक सिधार गये। तत्पश्चात् मराठों ने अर्काट पर अधिकार कर लिया किन्तु नवाब के दूसरे पुत्र सफदरअली तथा दामाद चान्दा साहब ने अर्काट की जनता तथा राजकोष आदि को फ्रांसीसियों की सहायता से किसी प्रकार से बचा लिया। ... रघुजी भोसले ने फ्रांसीसी गवर्नर 'ड्यूमास' को भी युद्ध की धमकी दी। कहा जाता है कि उसने मराठा सरदार को फ्रांसीसी मदिरा भेंट करके अपने पक्ष में कर लिया। अब कुछ समय के लिए अब चान्दा साहब का भय तो मिट गया किन्तु इसी समय अर्काट की नवाबी के लिए मृत हसनअली के भाई सफदर अली ने नवम्बर १७४० ई० म रघुजी से एक गुप्त समझौता करके उसे अपनी सफलता के पश्चात् १ लाख रुपया अदा करने का वचन दे दिया। रघुजी से तंजोर के राजा प्रतापसिंह ने भी चान्दासाहब को परास्त करने के सम्बन्ध में सन्धि की। उनके प्रतिनिधि तिमाजी रघुनाथ तथा गणपत भी

---

1 G S Sardesai— New History of the Marathas P 255

Capture Trichinopoly remove Chanda Sahib and Pratapsingh would readily give fifteen lacs cash three lacs of which would be a personal nazar to Raja Shahu two lacs to his Ranis two lacs to Fatah Singh and Raghuji and eight lacs for the expences of the troops '

रघुजी से आ मिले और रघुजी को उन्होंने १६ जनवरी १७४१ को अपने राजा की ओर से निम्नलिखित संदेश दिया —

'त्रिचनापल्ली को अधिकृत कर लो, चान्दासाहब को वहाँ से निष्कासित करो और इसके उपलक्ष में राजा प्रतापसिंह आपको १५ लाख की धनराशि भेंट करेगा जिसमे से ३ लाख राजा शाहू की नजर के लिये २ लाख उसकी रानियों के लिये, दो लाख फतेहसिंह तथा रघुजी के लिये तथा शेष आठ लाख सैनिकों के व्यय के लिये प्रदान होंगे।'

इस कार्य में रघुजी भोसले को अपार सफलता मिली। उसने चान्दासाहब को बन्दी कर लिया तथा उसके भाई बड़ा साहब को मौत के घाट उतारा। वह ७ वर्ष तक बन्दी रहा किन्तु मई १७४८ ई० मे वह किसी प्रकार बच निकला और इसी मध्य निजाम की मृत्यु के फलस्वरूप उसे कर्नाटक में पुनः अपने प्रभाव विस्तार का सुअवसर मिल गया। कालान्तर मे शाहू की मृत्यु के परिणाम स्वरूप महाराष्ट्र में गृह युद्ध का सूत्रपात हो गया जिसमे चान्दा साहब को और भी छूट मिली।

दामाजी गायकवाड से ३० मार्च १७५२ ई० मे पेशवा ने गुजरात के विषय में जो सन्धि की उसके फलस्वरूप गुजरात से सम्बन्धित दाभाड़े की माँग अस्वीकृत हो गई और दामाजी को वहाँ का 'सेना-खास खेल' मान लिया गया। इसने पेशवा के हित में अपना आधा राज्य त्याग दिया तथा अपने भावी विजित क्षेत्रों में से भी उसने बालाजीराव को आधा भाग देते रहने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त पेशवा को १५ लाख रुपय क्षतिपूर्ति के रूप में देना भी उसने स्वीकार कर लिया था और भविष्य में रानी ताराबाई तथा रामराजा का साथ देना छोड़कर वह पेशवा का ही स्वामिभक्त बन गया।

अहमदाबाद सूरत तथा भड़ोंच—गुजरात सम्बन्धी अधिकारों की प्राप्ति से प्रोत्साहित पेशवा ने अब उस प्रदेश की राजधानी अहमदाबाद पर अधिकार करने के विचार से रघुनाथराव को एक विशाल सेना का नेतृत्व देकर प्रस्थित किया जिसे दामाजी गायकवाड भी खानदेश के समीप आ मिला। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने वहाँ के अधिकारियों जवाँमर्द खाँ बाबी तथा कमालउद्दीनखाँ को परास्त करके २५ अप्रैल १७५३ को अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। इसके साथ ही, 'द्वारका' के समीप तक का काठियावाड का भी सम्पूर्ण क्षेत्र उनके प्रभुत्व में आ गया। तथापि कालान्तर में पालनपुर तथा खम्भात के मुस्लिम नवाबों ने (सन् १७५७ ई०) इसे अधिकृत कर लिया था जिससे भी मराठों का उत्साह भंग न हुआ। पेशवा ने ११ अक्टूबर १७५७ ई० को पूर्ण सतर्कता पूर्वक इस क्षेत्र से इन मुस्लिम सरदारों को निष्कासित किया और तब से १८१७ ई० के आंग्ल मराठा युद्ध के समय तक इस स्थान पर पेशवा तथा गायकवाड का भी प्रमुत्व अक्षुण्ण बना रहा है।

सूरत में सिद्दियों का ही प्रमुख अनियन्त्रित रूप में चल रहा था यद्यपि नाम मात्र को यहाँ पर एक मुगल सूबेदार[1] भी रहा करता था। वे अंग्रेजों की सहायता से यहाँ पर तुलाजी आंग्रे की शक्ति को ध्वस्त करके सन् १७५६ ई० में विजय दुर्ग को भी अधिकृत कर चुके थे। यही नहीं अंग्रेज व्यापारी भी इस क्षेत्र पर अपना पूर्ण प्रभाव विस्तार करना चाहते थे और उन्होंने मुगल सूबेदार मराठा तथा सिद्दियों से एक समझौता कर लिया था। इस प्रकार कूटनीतिक प्रयासों द्वारा अंग्रेजों को सिद्दियों का दमन करने में सफलता मिली और साथ ही वे मराठों के भी मित्र बन गये थे। इस रूप में सूरत तथा भड़ौंच आदि क्षेत्रों पर मराठों का आंशिक प्रभुत्व ही स्थापित हो पाया था।

निजाम उल मुल्क आसफजाह ने अपने पुत्रों को मराठों के साथ सर्वथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध ही रखने का निर्देश दिया था जिसके विपरीत सलावतजंग ने फ्रांसीसी सेनापति बुसी से प्रोत्साहन पाकर ७ अप्रैल १७५२ ई० को बुरहानपुर से कोई ४० मील दूर पर स्थित एक मराठा शिविर (भालकी) पर आक्रमण करके उसमें से पूना जाते हुए मराठा कोष को भी छीन लिया, इससे पेशवा के कोप का ठिकाना न रहा और उसने एक विशाल सेना भेजकर औरंगाबाद के समीप सलावतजंग को घेर लिया। उसने अपने प्राण बचाने के लिये मराठों से समझौता करके गोदावरी तथा ताप्ती नदियों का समस्त मध्यवर्ती भाग जिसमें बगलान तथा खानदेश भी सम्मिलित थे मराठों को दे दिया। इस प्रकार नासिक त्र्यम्बक तथा उस क्षेत्र के विभिन्न सैनिक दुर्ग भी मराठों के प्रभुत्व में आगये और मराठा आदि द्वारा आबासित दक्षिण के एक विशाल भू भाग पर मुगलों के स्थान पर मराठों की ही सत्ता स्थापित हो गई।

सलावतजंग ने मराठों से युद्ध सघर्ष अब भी समाप्त न किया था। दिसम्बर १७५७ ई० मराठों से उसका 'सिंधखेड' के स्थान पर जो भयंकर संग्राम हुआ उसमें मराठे ही विजयी हुए और निजाम उल मुल्क सलावतजंग को उन्हें २५ लाख की मालगुजारी अदा करने वाला भूभाग तथा नलदुर्ग का सैनिक किला देकर उनसे सन्धि कर लेनी पड़ी। निजाम आसफ शाह का दूसरा पुत्र निजामअली मराठों के प्रभाव विस्तार को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था। पेशवा के पास अब शक्तिशाली तोपखाना भी हो गया था और बीजापुर, दौलताबाद, बुरहानपुर तथा अहमदाबाद की मुस्लिम राजधानियों पर उनका प्रभुत्व स्थापित था। सन् १७५९ ई० में अहमदाबाद का दुर्गपति कविजंग अपने दुर्ग को पेशवा के पक्ष में छोड़कर उसकी आधीनता में चला गया था। सन् १७६० ई० में सदाशिवराव भाऊ तथा विश्वासराव ने पूना

1 मियाँ अच्छन।

से पूर्व की ओर आगे बढ़ कर बीदर के उत्तर की ओर उदयगिरि के समीप आक्रमण कर दिया। निज़ाम अली ने उनका सामना किया और पराजित होकर उसे संधि याचना करनी पड़ी। उसने पेशवा को ६० लाख रुपये की मालगुजारी देने वाले विशाल भूभाग प्रदान करते हुए उपर्युक्त समस्त मुस्लिम राजधानियों पर उनके प्रभुत्व की राजनैतिक मान्यता प्रदान कर दी।

इस प्रकार १७४० से लेकर १७६१ अर्थात् शाह अब्दाली के आक्रमण के समय तक मराठों ने भारत के अधिकांश भागों पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करली थी। उन्हें अपने स्वविजित क्षेत्रों में स्वराज्य चतुर्दिक आधीनस्थ प्रदेशों में चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकार उपलब्ध हो चुके थे। इस प्रकार उन्होंने अपने पूर्वज छत्रपति शिवाजी महान् के स्वप्न को अप्रत्याशित रूप में साकार करके हिन्दू पाद-पादशाही का आदर्श सम्पन्न कर लिया था।

उपर्युक्त घटनाओं तथा महाराष्ट्र की होती हुई दिन-दूनी रात चौगुनी प्रगति को देखकर ही इतिहासकार ग्राण्ट डफ ने उल्लेख किया है कि वस्तुतः बालाजीराव के शासनकाल में मराठों की दशा नितान्त सन्तोषजनक थी और वे अपने राज्य विस्तार की चरम सीमा पर पहुँच गये थे। इस महान सफलता का अधिकांश श्रेय बालाजी बाजीराव नामक इस तीसरे पेशवा को ही प्राप्त है। यदि उसने राजपूतों से सम्बन्धित राठौरों के उत्तराधिकार युद्ध तथा शाह अब्दाली के विरुद्ध उत्तर भारत की सैनिक व्यवस्था में भी सौभाग्यवश उतनी ही सतर्कता कार्य किया होता और रघुनाथराव ने अपने ऊपर सौंपे गये कार्य भार का सफल वहन किया होता तो निस्सन्देह मराठों का मुकाबला करने वाली भारत में कोई भी शक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि में सफलता न प्राप्त कर पाती और आधुनिक भारतीय इतिहास की रूप रेखा कुछ दूसरे ही ढंग की बनी होती।

सारांश—बालाजी बाजीराव एक सुयोग्य शासक और सफल कूटनीतिज्ञ था। उसने अपने पूर्वजों द्वारा मराठा शक्ति विस्तार के प्रारम्भ किये गये कार्य में महान सफलता पाई। मालवा, गुजरात, बुन्देलखण्ड, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, कटक बीजापुर, अहमदाबाद तथा कर्नाटक में उन्होंने अपने कूटनीतिक प्रयासों तथा अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ के सैनिक अभियानों के फलस्वरूप अत्यधिक हित विस्तार कर लिया था। मुग़ल सम्राट स्वयं दक्षिण के छहों सूबों की सूबेदारी दे चुका था और अब उत्तर भारत में भी उन्होंने अपनी स्वतन्त्र युद्ध नीति पर चलकर उस भूभाग के विभिन्न प्रदेशों से चौथ वसूल करने की सुविधा प्राप्त करली थी। इससे उत्तर तथा दक्षिण भारत का पारस्परिक आदान प्रदान प्रारम्भ हुआ और साथ ही मराठा राज्य धन धान्य से सम्पन्न होकर सामाजिक, व्यापारिक तथा आर्थिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो गया।

इस प्रकार बालाजीराव के शासन काल तक मराठा अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था और साथ ही मुगल साम्राज्य की सीमाएं अत्यधिक कम हो गई थीं।

Q. Describe in brief the Maratha relations with the rulers of Kota, Udaipur and Jaipur in the 18th century.

Or

Describe the Sindhia Holkar rivalry and show its effects on the general position of the Maratha power in the north. (R. U. 1957)

प्रश्न—सिंधिया तथा होल्कर की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का वर्णन कीजिए और साथ ही इसके उत्तर भारत में मराठों की सामान्य स्थिति पर परिणामों का भी विवरण प्रस्तुत कीजिए। (रा० वि० वि० १९५७)

उत्तर—उत्तर भारत में विजय यात्रा तथा मालवा और बुन्देलखण्ड में शौर्य और सर्वतोमुखी प्रभुत्व जमाने के बाद पेशवा बाजीराव बाजीराव ने अपने सिंधिया होल्कर तथा पवार सरदारों को भेजा था। राणोजी सिंधिया के पांचों पुत्र—जयप्पा, दत्ताजी, तुकोजी, महादजी तथा ज्योतिबा—मराठा इतिहास में प्रसिद्ध हैं। राणोजी सिंधिया तथा मल्हारराव होल्कर के मध्य तो कभी कोई मतभेद न उत्पन्न हुआ किन्तु जयप्पा सिंधिया तथा मल्हारराव होल्कर में आपस में ऐसी फूट पैदा हो गई कि उसने मराठों की न केवल उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति को ही भीषण ठेस पहुंची प्रत्युत अहमदशाह अब्दाली के भारत आक्रमण के समय भी जयप्पा सिंधिया के भाई दत्ताजी सिंधिया के साथ मिलकर मल्हारराव होल्कर ने उन अफगान आक्रान्ताओं को परास्त करने से किसी सीमा तक परहेज ही किया। ये दोनों मराठा सरदार यदि परस्पर सहयोग पूर्वक उत्तर भारत में मराठा सत्ता के साथ अभिवृद्धि कर सके होते तो कोई कारण नहीं था कि नजीब खाँ तथा अन्य मुसलमानों को मुगल सम्राट के विरुद्ध विद्रोहात्मक प्रक्रिया करने का इतना अवसर मिलता। जयपुर का राजपूत शासक सवाई जयसिंह महाराजा शाहू का घनिष्ट मित्र था। उसके जीवनकाल में मराठों और राजपूतों के मध्य स्थाई मैत्री बनी रही, किन्तु २१ सितम्बर १७४३ ई० को उसकी मृत्यु हो गई और जयपुर के उत्तराधिकार के प्रश्न पर उसके पुत्रों ईश्वर सिंह तथा माधोसिंह के मध्य संघर्ष छिड़ गया। यह संघर्ष ही सिंधिया तथा होल्कर की पारस्परिक फूट का प्रारम्भिक कारण बना और इस पारस्परिक फूट का परिणाम मराठा शक्ति के लिए अत्यधिक घातक सिद्ध हुआ जिसका उल्लेख आगामी पंक्तियों में किया जायगा।

राजपूत युद्ध--महाराजा शाहू के शासन के प्रारम्भ में उत्तर भारत के राजपूत सामन्तों ने सन् १७१० ई० में पुष्कर झील के तट पर होने वाले अपने सम्मेलन में सर्वसम्मति से हिन्दू रक्त की शुद्धता को अक्षुण्ण रखने तथा मुस्लिम शासकों को अपनी कन्यायें भविष्य में कभी भी न देने का निश्चय किया था। इस सम्मेलन में राजपूतों ने यह भी निश्चित कर दिया था कि उदयपुर राजवंश की श्रेष्ठता को ध्यान

में रखते हुए उसकी किसी कन्या से उत्पन्न राजपूत नामक के पुत्र का भी उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रथम उत्तराधिकार दिया जायेगा। मिर्जा राजा जयसिंह को चौथी पीढ़ी के राजपूत शासक सवाई जयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरसिंह था, अतः हिन्दू परम्परा के अनुसार अपने पिता का वह अपने को प्रथम उत्तराधिकारी समझता था, किन्तु उसका छोटा भाई माधोसिंह उदयपुर के राना संग्रामसिंह के परिवार की कन्या से उत्पन्न होने के कारण पुष्कर सम्मेलन के निश्चयानुसार अपने मृत पिता सवाई जयसिंह के राज्य का वास्तविक उत्तराधिकार स्वयं प्राप्त करना चाहता था। सवाई जयसिंह को संग्रामसिंह ने रामपुरा का परगना भी इसीलिये दे रक्खा था कि जिससे जयपुर के राज्य से माधोसिंह का अपने ज्येष्ठ भ्राता ईश्वरसिंह की अपेक्षा और अधिक घनिष्ट सम्बन्ध हो जाय। माधोसिंह ने अधिकतर अपनी माता के साथ उदयपुर में रहकर ही अपने जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत किया था और उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् उदयपुर के तत्कालीन राना जगतसिंह ने उसके जयपुर का उत्तराधिकार का प्रबल समर्थन करना आरम्भ कर दिया।

उधर ईश्वरसिंह ने सवाई जयसिंह के मरते ही जयपुर के सिंहासन का स्वयं अधिकृत करके, तत्सम्बन्धी मान्यता भी दिल्ली सम्राट से उपलब्ध करली थी। इससे माधोसिंह तथा उसके अनुयायियों में तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो गया। जगतसिंह ने शीघ्र ही अपनी सेना को सगठित करके माधोसिंह को साथ लेकर जयपुर पर अभियान कर दिया। ईश्वरसिंह तथा जगतसिंह की सेनायें एक दूसरे के आमने सामने जहाजपुर के मैदान में लगभग दो मास तक निरन्तर डटी रहीं और इसी मध्य दोनों पक्षों के मध्य समझौते के लिये भी बातचीत हुई। इसके फलस्वरूप ईश्वरसिंह, अपने भाई को रामपुर के परगने के अतिरिक्त कुछ और परगने देने को तैयार हो गया। परन्तु माधोसिंह उससे पतृक सम्पत्ति का आधा भाग मांगता था। इस कारण दोनों के मध्य कोई समझौता सम्भव न हो सका। ईश्वरसिंह ने अब सिन्धिया तथा होल्कर को परास्त कर दिया।

माधोसिंह ने इस पराजय के पश्चात् अपने दूतों को पूना भेजकर पेशवा से सहायता की माँग की। इस मध्य रानोजी सिन्धिया की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र जयप्पा और मल्हारराव होल्कर के मध्य मनभेद एवं वमनस्यपूर्ण भावनायें जाग्रत हुईं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि पेशवा के इन विभिन्न सरदारों के मध्य निजी-स्वार्थों के कारण सामान्यतः मतभेद पहले भी रहा करता था किन्तु पेशवा के कठोर नियन्त्रण के कारण उसमें इतनी अधिक कटुता कभी भी न उत्पन्न होने पाई थी। सन् १७४४ ई० के अन्त में पेशवा ने उत्तर भारत का अभियान सम्भवतः इन आन्तरिक मतभेदों को ही निराकृत करने के लिये किया था, जैसा कि प्रो० सरदेसाई

ने अपनी इतिहास पुस्तक में स्पष्ट संकेत किया है।[1] जयप्पा सिंधिया ने ईश्वरसिंह का समर्थन किया तथा होल्कर ने उसके कनिष्ठ भ्राता माधोसिंह को और दोनों मराठा सरदारों को इन राजपूत प्रत्याशियों ने मराठा सहायता प्राप्त करने की आशा से लम्बी लम्बी रिश्वतें दीं। वे इनकी व्यक्तिगत शत्रुता के साधन बन गये। और जयपुर की वस्तु स्थिति उस दशा में तो और भी चिन्ताजनक होगई जब कि वहाँ का एक सुयोग्य मन्त्री अयामल अथवा राजमल (मालजी) का ६ फरवरी १७४७ के दिन देहान्त हो गया।

माघ १७४७ ई० के प्रारम्भ होते होते ईश्वरसिंह की सेनाओं ने माधोसिंह तथा उसके सहायक राणा जगतसिंह के विरुद्ध तीव्रता के साथ सैनिक अभियान किया और देवली के समीप 'बनास नदी के तट पर स्थित राजमहल नामक स्थान पर मराठों की सहायता से ईश्वरसिंह ने माधोसिंह की सेना पर निर्णायक विजय प्राप्त की। इस युद्ध में मराठों को भी लूट का काफी सामान उपलब्ध हुआ। राणा जगतसिंह ने ईश्वरसिंह से सन्धि याचना की किन्तु ईश्वरसिंह ने अपने दूत को पेशवा के हस्ताक्षर के लिये पूना भेज रक्खा था अतः दोनों पक्षों में कोई समझौता न हो सका। ईश्वरसिंह को मल्हारराव होल्कर की कार्यवाही से अत्यन्त असन्तोष था अतः उसने उसकी पेशवा से शिकायत की। उधर माधोसिंह का मंत्री कानीराम (Kaniram) भी १७४७ ई० के अन्त तक पूना पहुँच गया। इन व्यक्तियों से पेशवा को जो सूचनाएँ मिलीं उनसे उसे अत्यन्त चिन्ता हुई और उसने इस सम्बन्ध में पत्र में भी जयपुर स्थित अपने एक विश्वासपात्र कर्मचारी रामचन्द्र बाबा को पूना से लिखा था कि, "उदयपुर के राणा द्वारा भेजे गये वकील यहाँ आगये हैं। वे इस बात पर बल देते हैं कि माधोसिंह तथा ईश्वरसिंह, सवाई जयसिंह के समान पुत्र हैं और उनके साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। ईश्वरसिंह को चाहिये कि वह माधोसिंह को २४ लाख रुपये (मालगुजारी का) की जागीर के परगने जैसा कि उसने उस वचन दिया था प्रदान कर दे। आपको इन बातों का समर्थन करना चाहिये और आप (रामचन्द्र बाबा के लिए) राणा से मिलकर उनसे १५ लाख रुपये अथवा अधिक, मेरा भाग प्राप्त करें जैसा कि उनके वकीलों ने स्वीकार किया है। इस पत्र

1 See His— New History of the Marathas Vol 2 P 232

"Towards the end of 1744 the Peshwa again started on a journey to the north and took up his residence at Bhilsa. He had not only to deal with external enemies but also to remove the differences and internal jealousies which were growing in intensity between the three principal Sardars Sindhia Holkar and Pawar and a number of minor subordinates all more or less bent upon personal gains with the result that severe mutual conflicts became common to the detriment of the public interests"

के उत्तर में रामचन्द्र बाबा ने पेशवा को लिखा कि 'माधोसिंह की माँग वास्तविक नहीं है। उससे कोई धन प्राप्त कर पाने का अवसर भी नहीं प्रतीत होता। यहाँ के लोग यह भली भाँति जानते हैं कि हम लोगों ने इस स्थिति तक तो ईश्वरसिंह का ही समर्थन किया है। अब अपनी बात को बदलना हमारे लिये अशोभनीय हो होगा।'[1] इस भीषण समस्या से चिन्तित होकर पेशवा को स्वयं जयपुर की ओर प्रस्थान करना पड़ा। वह मुगल सम्राट की ओर से भी शाह अब्दाली के भारत पर बढ़ते हुए दबाव के कारण दिल्ली बुलवाया गया था और स्वयं महाराजा शाहू ने भी उस उत्तर भारत की यात्रा करके सम्राट को उसकी कठिनाइयों से मुक्ति दिलाने के लिये उचित आदेश दे दिया था।

पेशवा के वहाँ पहुँचने के पूर्व शाही सेनाओं ने मानूपुर के स्थान पर शाह अब्दाली को परास्त करके पीछे खदेड़ दिया था, किन्तु जब उसके पश्चात् बालाजी राव सम्राट की सेवा में उपस्थित हुआ तो सम्राट ने उसका यथोचित आदर सत्कार किया और उसे शाह अब्दाली का दमन करने का महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा। इस समय तक जयपुर का उत्तराधिकार संघर्ष अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था और सम्राट की ओर से बुलाये जाने पर ईश्वरसिंह ने मुगल सेना में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली में उससे भेंट भी की थी। पुनश्च, जब पेशवा जयपुर से ३६ मील दक्षिण में स्थित 'नेवाई' नामक स्थान पर विश्राम किया तो मई १७४८ ई० में लगभग माधोसिंह ने उससे आकर भेंट की जबकि ईश्वरसिंह ने उससे मिलने की कोई भी चिन्ता न की। तथापि पेशवा तथा राजपूतों के मध्य लगभग एक सप्ताह तक जयपुर के उत्तराधिकार के प्रश्न पर विचार विनिमय होता रहा जिसके फलस्वरूप दोनों राजपूत बन्धुओं के मध्य एक उपयुक्त समझौते की व्यवस्था कर दी गई। ईश्वरसिंह अपने भाई माधोसिंह को अपने राज्य में से चार जिले (प्रान्त) देने को तैयार हो गया और इस समझौते की शर्तों को दोनों के द्वारा पालन कराने का दायित्व मल्हारराव होल्कर ने स्वयं अपने कन्धों पर ले लिया। अतः यह व्यवस्था करने तथा राजपूतों से ३ लाख रुपये भेंट के रूप में स्वीकार करने के पश्चात् पेशवा ६ जुलाई को पूना लौट आया।

इसी मध्य ईश्वरसिंह ने अपने वादे के अनुसार माधोसिंह को उपयुक्त ४ प्रान्त देने से इन्कार कर दिया और इसका परिणाम यह हुआ कि मल्हारराव होल्कर ने १० अगस्त १७४८ ई० को उसके विरुद्ध सैनिक अभियान करके, उससे नेवाई के

1 'Peshwas was keenly conscious of this situation and wrote from N was a strong admonition to Ramchandra Bawa condemning the open rupture that had developed between Sindhia and Holker and of which the enemies of the Marathas did not fail to take advantage

In the foot note the writer has mentioned that "This is a long unpublished letter lent by the late Parsnis and is printed at pages 70 73 of the Riyasat Madhya Vibhag 2.

रामभौत की शर्तों का बलपूर्वक पालन करवाया। इससे जयप्पा सिंधिया को अत्यन्त क्षोभ हुआ और उसके मल्हारराव से होने वाले मतभेदों का परिणाम और भी घातक सिद्ध हुआ। मराठों ने अपनी राजपूतों के साथ वर्षों में स्थापित की गई मित्रता से हाथ धोया और पानीपत के युद्ध में राजपूतों ने उन्हें कोई सहायता न दी। सरदेसाई लिखते हैं कि 'पेशवा इस परिस्थिति से भली भाँति अवगत था और उसने नवाई से ही रामचन्द्र बाबा को कड़ी फटकार लिख भेजी थी, जिसमें उसने सिंधिया तथा होल्कर के इस खुले संघर्ष की तीव्र निन्दा भी की थी इस संघर्ष से लाभ उठाने में इच्छुक मराठों के शत्रुओं को अच्छा अवसर मिला।

अस्तु पेशवा ने सिंधिया और होल्कर दोनों को उत्तर भारत से वापस बुला लिया क्योंकि उनका मतभेद अब इतना भयंकर रूप धारण कर चुका था कि पत्र व्यवहार द्वारा अथवा समझाने बुझाने से वे एक दूसरे के साथ समझौता करने को तयार भी न हो सकते थे। इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि पानीपत में मराठों की निराशाजनक पराजय का मूल कारण उनके सरदारों में सहयोग की भावना के पूर्ण अभाव के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता।

मराठा कर्मचारी ईश्वरसिंह से चौथ वसूल करने का बारम्बार प्रबल अनुरोध कर रहे थे किन्तु उसने उनकी एक न सुनी। फलतः पेशवा ने १७५० ई० के ग्रीष्मकाल में सिंधिया तथा होल्कर को ईश्वरसिंह से कर वसूल करने के लिये भेज दिया। ईश्वरसिंह का अब उसके अनुयायियों ने भी साथ छोड़ दिया था और अब वह निराश स्थिति में ही चल रहा था। उसने अपनी रक्षा से तंग आकर त्रोथा वेग में अपने मन्त्री कानडदास की भी १७५० में हत्या करली थी और अपने एक तावची—शिवनाथ—के साथ भीषण अत्याचारपूर्ण व्यवहार करके उसने अपने को और भी कुख्यात कर लिया था। उसके राज्य की व्यवस्था करने वाला अब उसके पास एक भी व्यक्ति शेष न रह गया था। फलतः मल्हारराव होल्कर ने नवम्बर १७५० ई० ईश्वरसिंह के पास जाकर उस पर कर अदा करने का दबाब डाला जिससे त्रस्त होकर उसने एक सर्प द्वारा अपनी गर्दन में कटवाकर अपनी आत्म हत्या कर ली। उसकी तीन रानियाँ तथा एक दासी ने भी इस दुखद मृत्यु का समाचार पाकर विष खाकर आत्म हत्या करली और उसकी अन्य २० दासियों ने चिता में भस्म होकर अपने प्राण त्यागे। सारे नगर में कोहराम मच गया।

अब माधोसिंह ने शीघ्रता से जयपुर आकर मल्हारराव होल्कर को शान्त किया और इसी समय जयप्पा सिंधिया भी घटनास्थल पर आ गया। माधोसिंह ने इस अवसर पर अपने साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखने वाले मराठों के विरुद्ध ऐसा कुचक्रपूर्ण पग उठाया कि जिसके कारण उसका नाम इतिहास के पृष्ठों पर सदैव ही काले अक्षरों से लिखा जायगा। उसने बाह्यतः मैत्री का प्रदर्शन करते हुए जयप्पा तथा

मल्हारराव को एक भोज म निमंत्रित करके उन्हें विषाक्त भोजन खिलाने की असफल चेष्टा की। तथापि ईश्वर की उन पर महती कृपा थी और जयप्पा को इस कुचक्र की पूर्व सूचना मिल जाने के कारण माधोसिंह को अपनी उस कुचाल मे सफलता न मिल सकी। अत उसने मराठो के विनाश का दूसरा उपाय निकाला। अब माधोसिंह ने सारे जयपुर नगर का भ्रमण करने के लिये जयप्पा सिंधिया तथा उसके साथ ५ सहस्र मराठा सनिको को आमंत्रित किया। ज्यो ही वे अपनी पूरी साज सज्जा के साथ नगर म प्रविष्ट हुए माधोसिंह की आज्ञानुसार एकाएक उसके सारे द्वार बन्द कर लिये गये और फिर सशस्त्र राजपूतो न उन मराठों का निरंतर १२ घंटो तक रक्तपान किया। यह बर्बरता १० जनवरी १७५१ के दोपहर स आधीरात तक जयपुर की गलियो पर नग्न नृत्य करती रही। कोई ३ सहस्र मराठ मौत के घाट उतारे गये तथा १ सहस्र के लगभग घायल हुए। इसम जयप्पा के २५ सरदार १०० ब्राह्मण तथा असख्यो स्त्रियां तथा बच्चे भी सम्मिलित थे। इनमे स अनेको न महल की छत स कूदकर अपने प्राण बचाने की चेष्टा करते समय काफी चोट खाई। राजपूतों ने मराठा क १ सहस्र श्रेष्ठ घोडे, सोने चान्दी क आभूषण तथा हीरे जवाहरात भी भारी मात्रा म लूट लिय। इस घटना के दो दिन पश्चात् मराठा न नगर के बाहर निकट मदान म अपने शिविर लगाये।

माधोसिंह ने उनस संधि करन का प्रस्ताव किया किन्तु इसको कोई महत्व नही दिया गया। मराठा न इस समय पर जयपुर पर सशस्त्र आक्रमण करके माधोसिंह का सवनाश कर दिया होता किन्तु, सयोगवश इसी समय उन्हें गगा जमुना के दोआब म रहने वाले विद्रोही पठानो द्वारा सत्रस्त सफदरजंग से सहायता की माग की सूचना मिली जिससे उन्होंने जयपुर से सीधे दोआब की ओर प्रस्थान कर दिया। इस प्रकार जयपुर का सकट तो टल गया, किन्तु इन राजपूत सरदारो के साथ मराठों की वर्षो से चली आने वाली मित्रता अब कठोर शत्रुता मे बदल गई।

कुम्भेर के घेरे में खाण्डेराव होल्कर की मृत्यु—आगरा और अजमेर के सूबा म चौथ वसूल करने का अधिकार मराठा न दिल्ली सम्राट स प्राप्त किया था जिसे वे क्रियान्वित करना चाहते थे किन्तु भरतपुर का जाट राजा सूरजमल अपनी मथुरा तथा भरतपुर की जागीरो के पास ही आगरा की भी स्थिति होने के कारण उसमे मराठा का प्रभाव विस्तार कदापि न होने देना चाहता था और उसने मराठो का गतिरोध करने का निश्चय कर लिया था। अत जनवरी १७५४ ई० में पेशवा की आज्ञानुसार उत्तर भारत मे आई हुई रघुनाथराव के नेतृत्व मे मराठा सेनाओ तथा सिंधिया और होल्कर की सेना ने कुम्भेर के दुर्ग का घेरा डाल दिया। उस स्थान पर जाटों और मराठों मे बडा भयकर युद्ध हुआ। अपनी बचत का कोई और साधन न देख सूरजमल जाट ने अपने रूपराम कोठारी को मराठा सरदार रघुनाथराव के पास भेजा और उससे मराठों को ४० लाख रुपये क्षतिपूर्ति देने का सन्देश कहला कर

उसने मराठो के साथ सधि करने की चेष्टा की। परन्तु रघुनाथराव ने उससे १ करोड रुपये की धनराशि मांगी जिसे चुका सकने म अपने को असमर्थ पाकर जाट राजा ने पुन युद्ध का मार्ग अपनाया। कुम्भेर को मराठा ने पुन घेर लिया और युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध म सयोगवश मल्हारराव के पुत्र खाण्डेराव के १७ मार्च १७५४ के दिन गोली लगी और वह घटनास्थल पर ही मर गया। इस मृत्यु से सारी सेना मे दु ख छा गया। यह युद्ध २० जनवरी से लेकर १८ मई १७५४ ई० तक चलता रहा और इसमे दोनो पक्षो के जन धन की अपार हानि हुई।

मल्हारराव ने पुत्र शोक से क्रुद्ध होकर सूरजमल से कठोर प्रतिशोध लेने का निश्चय किया, किन्तु सूरजमल जाट की स्त्री रानी किशोरी ने अपने पति को समझा बुझाकर मराठो से सधि करने बल दिया। इस रानी को सिंधिया और होल्कर के पारस्परिक मतभेद की बात पहले से मालूम थी अत उसने सिंधिया को भेंट उपहार देकर अपना मित्र बना लिया। जयप्पा सिंधिया ने रघुनाथराव को किले का घेरा उठा लेने के लिये प्रभावित किया। उसने इस बात पर बल दिया कि कुम्भेर का पतन बिना बड़ी-बड़ी तोपो का प्रयोग किये हुए अत्यन्त ही कठिन था क्योंकि जाट सनिक उसकी जी जान स रक्षा कर रहे थे और ऐसी दशा में इस व्यय की लड़ाई से किसी प्रकार के लाभ की आशा भी न थी। फलत जाटराजा से सधि कर ली गई उसने तीन किस्तो मे मराठो को ३० लाख रुपये अदा करने का वचन दिया और १८ मई १७५४ ई० को मराठा सनाओ ने उस स्थान से कूच कर दिया।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कुम्भेर के घेरे मे मल्हारराव होल्कर का पुत्र खाण्डेराव तो काम आया और मल्हारराव के साथी सिंधिया ने उसी स्थान पर जाटो से भेंट उपहार लकर रघुनाथराव को प्रभावित करके उस किले का घेरा भी उठा लिया, जब कि होल्कर उस स्थान पर भयकर सग्राम करके जाट राजा से अपने पुत्र की एकाएक मृत्यु का प्रतिशोध लेना चाहता था। फलत सिंधिया और होल्कर के मध्य पहले से चली आने वाली वमनस्यता और भी कटु हो गई।

मारवाड के राठौरों के उत्तराधिकार प्रश्न मे हस्तक्षेप तथा जयप्पा सिंधिया की हत्या——सन् १७४६ (जून) ई० म मारवाड का राठौर राजा अभयसिंह परलोक सिधार गया और उसक भाई बखतसिंह (Bakhat Singh) तथा पुत्र रामसिंह (Ram Singh) के मध्य राज्य क लिये सघर्ष उठ खडा हुआ। अब इस मामले म जयप्पा सिंधिया ने हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। रामसिंह से बखतसिंह आयु म छोटा था किन्तु उसने अपने बाहुबल से रामसिंह को सिंहासन का स्वामी बनने स रोक दिया। अत रामसिंह ने जयप्पा सिंधिया से सहायता की मांग की। सन् १७५२ ई० म जयप्पा सिंधिया ने गाजी-उद्दीन को दिल्ली से बाहर अपने सरक्षण में ले जाते समय रामसिंह की सहायता करने का प्रयास किया किन्तु उसके पास अब बहुत ही कम सनिक थे अत बखतसिंह ने जयप्पा की छोटी

ी सेना को सरलता से परास्त करके पीछे खदेड़ दिया। सन् १७५३ ई० में रघुनाथराव के नेतृत्व में सिन्धिया तथा होल्कर की सेनायें उत्तर भारत में आई उसने द्वारा दिये गये अपने उत्तराधिकार के समर्थन सम्बन्धी वचन का पालन करने के लिये पुनः स्मरण दिलाया। रघुनाथराव ने भी सिन्धिया को ही इस समस्या का निराकरण करने का दायित्व सौंपा क्योंकि इस समय वह स्वयं कुम्भेर के घेरे में अत्यन्त व्यस्त था। जून १७५४ ई० में जयप्पा सिन्धिया रामसिंह को साथ लेकर दिल्ली से मारवाड़ आया। इसी मध्य बख्तसिंह की मृत्यु[1] हो गई और उसके राज्य का स्वामी उसका पुत्र विजयसिंह बनाया गया था। वह एक युवा तथा सक्रिय व्यक्ति था और उसने अजमेर में अपनी सेनाओं को अवस्थित कर रक्खा था। अब जयप्पा सिन्धिया ने शीघ्र ही वहाँ पहुँच कर उस पर आक्रमण कर दिया। विजयसिंह ने अजमेर में अपनी स्थिति को सुरक्षित न देख वहाँ से ४० मील पश्चिमोत्तर में स्थित मेड़ता नामक स्थान पर अपनी सेनायें एकत्र कर लीं। जयप्पा ने मेड़ता को भी घेर लिया और १५ सितम्बर १७५४ को उसने राठौरों को बुरी तरह से पराजित करके उन्हें और भी उत्तर की ओर अर्थात् नागौर की दिशा में खदेड़ दिया। मेड़ता से ७० मील दूर नागौर का दुर्ग उससे भी अधिक सुरक्षित था। किन्तु जयप्पा सिंधिया तथा रामसिंह की सम्मिलित सेनाओं ने विजयसिंह का पीछा किया और नागौर का घेरा डाल दिया। यह घेरा प्रायः एक वर्ष तक चलता रहा और इस रेगिस्तानी स्थान पर मराठों को राजपूतों से अत्यन्त भीषण युद्ध करना पड़ा। जहाँ उन्हें भोजन तथा जल के अभाव में अनेक कष्ट उठाने पड़े। अतः सिन्धिया ने अवसर देख कर २१ फरवरी सन् १७५५ ई० के दिन अजमेर पर अधिकार कर लिया, जिससे विजयसिंह के आत्म समर्पण की भी उसे विशेष आशा थी किन्तु विजयसिंह भी पर्याप्त साधन सम्पन्न व्यक्ति था और उसने युद्ध स्थगित न होने दिया। तथापि वह वाह्यतः मराठों से संधि करने का प्रदर्शन करता रहा और उसने अपने कुछ दूत भी समय समय पर मराठा शिविर में द्रमों बहाने से भेजे। अब मराठों का मारवाड़ की बहुत सी महत्वपूर्ण जगहों पर अधिकार हो गया, जिनमें से सुन्दर दक्षिण में स्थित जालौर भी उन्हीं के हाथों में चला गया था। जालौर में विजयसिंह का सुरक्षित रक्खा हुआ विशाल धन कोष भी मराठों को प्राप्त हो गया। उन्होंने आगे बढ़ कर जोधपुर पर भी अधिकार कर लिया और अब मराठों को अपना युद्ध जारी रख पाने की कोई आशा न रह गई थी। केवल नागौर पर ही उनका प्रभुत्व शेष रह गया था।

सिंधिया की सेनायें 'ताऊसर-सर' (peacock lake) के किनारे डटी हुई थी और उसके शिविर में वहाँ से ७ मील दूर नागौर से कई बार राजपूतों के दूत संधि का प्रस्ताव लेकर आये गये, तथापि सन् १७५५ ई० के ग्रीष्मकाल में राठौरों ने अपने

---

1 बख्तसिंह २१ सितम्बर १७५२ ई० को परलोक सिधारा था।

मराठा शत्रुओं पर किसी सैनिक कूटनीति के सहारे भीषण आक्रमण करने का भी विचार किया। २५ जुलाई १७५५ ई० को शुक्रवार के प्रातः काल जोधपुर का वकील विजयभारती गोसाईं, राजसिंह चौहान, जगन्नाथ तथा उनके दो साथी और अनेक निम्न श्रेणी के व्यक्ति जिनमें से कुछ लोग मराठा की भाँति कपड़े पहिने हुए थे, जयप्पा सिंधिया के शिविर में विजयसिंह की ओर से संधि का संदेश लेकर आये। वे उसी अहाते में आँगन के बीचों बीच में एक शमियाने के नीचे बैठे हुए सिंधिया से संधि की शर्तों के विषय में बातचीत करते रहे किंतु ११ बजे दिन में जयप्पा ने कुएँ के चौरा पर बैठकर स्नान किया। वह तौलिया से अपने बाल सुखा रहा था, कि एकाएक उसके अहाते में दो भिखारी घोड़ों का दाना जो पृथ्वी पर पड़ा हुआ था बीनने के बहाने घुस आये। उन्होंने वेग से आगे बढ़कर जयप्पा सिंधिया के पेट में छुरा भोंक दिया और उसने एक घंटे के ही अन्दर अपना शरीर त्याग दिया। इस दुर्घटना से क्रुद्ध मराठों ने शिविर में आये राजपूत दूतों और कर्मचारियों को शीघ्र ही तलवार के घाट उतार दिया और दत्ताजी तथा जनकोजी सिंधिया ने विभिन्न दिशाओं में युद्ध कर रहे मराठा सैनिक दलों को एकत्र करके विजयसिंह के विरुद्ध भयंकर युद्ध छेड़ दिया। बुंदेलखण्ड से अन्ताजी—माणकेश्वर ने भी अपनी विशाल सेना के साथ घटना स्थल की ओर प्रस्थान किया तथा साथ ही विजयसिंह की सहायता में आते हुए जयपुर के शासक माधोसिंह को भी उसने आगे बढ़ने से रोक दिया।

इस समय तक सिंधिया तथा होल्कर सरदारों में दलीय वैमनस्य इतना अधिक बढ़ गया था कि लोगों ने जयप्पा की हत्या में होल्कर का हाथ भी बतलाना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि इसका कोई सबल प्रमाण नहीं है और इस सम्बन्ध में सरदेसाई का मत तो यह है कि पेशवा इस परिस्थिति से पहले ही आशंकित था और उसने इसी कारण मल्हारराव को तत्काल दक्षिण वापिस बुला लिया। उसने सेवानूर पर आक्रमण करने के बहाने होल्कर को दक्षिण भारत आने की आज्ञा दी थी। इस प्रकार पेशवा ने सिंधिया को मारवाड़ की समस्या में स्वतंत्र कार्यवाही करके मराठों की रक्षा करने तथा उन्हें जयप्पा की हत्या का राठौरों से प्रतिशोध लेने का समुचित अवसर प्रदान कर दिया। जयपुर के माधोसिंह ने अनुरुद्धसिंह के साथ एक विशाल सेना विजयसिंह की सहायता करने के लिए भेजी थी किन्तु १६ अक्तूबर १७५५ को मराठों ने उसे दिदवाना के समीप बुरी तरह से पराजित कर दिया। इस वर्ष के अन्त तक दशा इतनी शोचनीय हो गई कि सिंधिया के सम्मुख घुटने टेके बिना उसकी प्राण रक्षा होनी भी सम्भव न था। अन्ततः जनवरी १७५६ ई० में विजयसिंह स्वयं दत्ताजी सिंधिया से भेंट करने आया और उसने अपने ऊपर लगाई संधि की सभी शर्तें स्वीकार कर लीं। दत्ताजी ने स्वयं उस दुर्घटना से पाठ ग्रहण किया और राठौरों के साथ उदारता का व्यवहार किया। संधि के अनुसार विजयसिंह ने अजमेर तथा जालौर पर अपना अधिकार त्याग दिया तथा मराठों को

५० लाख रुपये क्षतिपूर्ति देने का भी वचन दिया। इसके अतिरिक्त उसने अब अपने राज्य का आधा भाग देना स्वीकार कर लिया। इस व्यवस्था के पश्चात् दत्ताजी तथा जनकोजी सिंधिया जून १७५५ ई० में उज्जैन होते हुए पूना वापस लौट आये। अक्तूबर सन् १७५५ ई० में पेशवा ने उनसे भेंट करके उनके भाई की हत्या पर हार्दिक दुःख प्रकट किया। सरदेसाई ने लिखा है कि मल्हारराव भी उनसे मिलने गया था किन्तु दत्ताजी ने उससे मिलने से इन्कार कर दिया। फलतः सिंधिया तथा होल्कर परिवारों में पारस्परिक वैमनस्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही[1] गया।

दत्ताजी का बरारीघाट पर शाह अब्दाली की सेनाओं द्वारा घेरा जाना—हम यह कई बार संकेत कर चुके हैं कि नजीब खाँ रुहेला देश का एक कट्टर शत्रु था और वह शाह अब्दाली को भारत आक्रमण के लिये कई बार पत्र भेज चुका था, किन्तु उसने मल्हारराव होल्कर और रघुनाथराव को समझा बुझाकर अपना सहायक बना लिया था। वह मराठा क्षत्रों को बराबर आक्रान्त करता रहा। उसे रोकने का भी रघुनाथराव ने १७५८ ई० में कोई प्रयास न किया प्रत्युत यह कार्य उसने जनकोजी सिंधिया को सौंपते हुए स्वयं मल्हारराव होल्कर के साथ दक्षिण लौटने की चेष्टा की। इस सम्बन्ध में उसने जनकोजी से स्वयं यह स्वीकार किया था कि मल्हारराव नजीब को अपना दत्तक पुत्र समझता है। उसके ऐसे अनेक पुत्र देखभाल करने के लिये हैं। नजीब एक भयंकर एवं धूर्त व्यक्ति है और वह निश्चय ही मराठा हितों को क्षतिग्रस्त कर देगा। इसी मध्य शाह अब्दाली की सेनायें पंजाब पर चढ़ आई थीं और वह स्वयं पेशावर में टिका हुआ था। इस संकट की सूचना पाते ही पेशवा ने मल्हारराव को पुनः अविलम्ब जनकोजी तथा दत्ताजी सिंधिया की सहायता में उत्तर भारत को प्रस्थान करने की आज्ञा दी। (जनवरी १७५९ ई०)। प्रो० सरदेसाई लिखते हैं कि मल्हारराव ने ऐसा करने से अपने को दूर ही रखा क्यों? इसका निश्चय करना सम्भव नहीं है। उसने पूरा वर्ष अधिकांशतः राजपूताने में ही व्यतीत कर दिया और इस काल में उसने कोई महत्वपूर्ण कार्य भी न किया तथापि राजपूताने से भी जबकि उसे जयपुर में यह भी ज्ञात हो चुका था कि दत्ताजी का १० जनवरी को बरारीघाट पर पतन हो गया था। वह १३ जनवरी १७६० ई० को दिल्ली चला गया।

---

1 Malharrao too came there for a visit but Dattaji declined to receive him The gulf between Sindhia and Holker widened

2 In January the Peshwa directed Malharrao immediately to repair to the north and support the Sindhias This Malharrao failed to do why it is not possible now to determine He spent one full year (1759) doing nothing important mostly in Rajputana from whence he hastened to Delhi on 13th January 1760 after learning at Jaipur that Dattaji had fallen at Barari Ghat on 10th of that month

इस प्रकार सिंधिया तथा होल्कर के पारस्परिक वैमनस्य ने दोन दोनें मराठों की शक्ति का विनाश कर दिया और पानीपत के युद्ध के निराशापूर्ण अन्त तक उनका यह विनाश अपनी चरम सीमा को पहुँच गया।

सारांश—मराठों के पतन का प्रारम्भिक कारण उनके सिंधिया तथा होल्कर नेताओं की पारस्परिक फूट के अतिरिक्त और कुछ न था। यह वैमनस्य सन् १७४७ ई० से, जब कि जयपुर के उत्तराधिकार संघर्ष ने भापण रूप धारण कर रक्खा था, प्रारम्भ होकर जनवरी १७६० ई० तक और सम्भवत पश्चात् काल में भी कुछ समय तक चलता रहा। सन् १७५३ ५४ ई० में मारवाड़ के राज्य के उत्पन्न होने वाले रामसिंह तथा विजयसिंह के उत्तराधिकार संघर्ष में सिंधिया तथा मल्हारराव होल्कर ने एक का पक्ष लेकर पारस्परिक कटुता में वृद्धि की। शाह अब्दाली ने १७६० ई० में जब पंजाब पर आक्रमण किया तो उसके गुप्त समर्थक नजीबखाँ रुहेला को मल्हारराव होल्कर ने परोक्ष रूप से खूब सहायता पहुँचाई जब कि सिंधिया बन्धु—जनकोजी तथा दत्ताजी—उसके कट्टर शत्रु थे। राठौरों के उत्तराधिकार युद्ध में मराठों ने अपने पारस्परिक वैमनस्य एवं कटुता के कारण जयप्पा सिंधिया की हत्या के फलस्वरूप अपना एक योग्य एवं अनुभवी सेनायक खो दिया और पंजाब पर शाह अब्दाली के आक्रमणों के समय होल्कर ने सिंधिया की सहायता करने से परहेज करके दत्ताजी का पतन सम्भव किया। इससे यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि सिंधिया तथा होल्कर जैसे मराठा सरदारों की फूट से जिनकी संगठित शक्ति पर पेशवा को गर्व का अनुभव हो सकता था मराठों के उत्तर भारत में प्रभाव विस्तार को प्रबल बाधा पहुँची थी।

Q Give a short history of Maratha contest for capturing Trichnopoly during 1740 and 1748 Why did they fail to extend their permanant control over this province

प्रश्न—मराठों द्वारा त्रिचनापल्ली की जीत के लिये किये गये कार्यों का संक्षिप्त इतिहास वर्णन किजिये। वे इस प्रान्त पर अपना स्थाई प्रभुत्व स्थापित करने में क्यों असफल रहे ?

उत्तर—कन्नड' कहे जाने वाले दक्षिण भारत के इस भाग के निवासी भी कनाडी भाषा भाषी हैं। उत्तर में इसकी सीमा कृष्णा नदी द्वारा निर्धारित होती है। इसके दोनों ओर समुद्र है। इसके पूर्व में पूर्वी घाट तथा पश्चिम में सह्याद्रि पर्वत मालायें मिलती हैं। इस प्रदेश को सम्राट औरंगजेब ने बीजापुर तथा हैदराबाद के सूबों में सम्मिलित कर दिया था किन्तु उसकी मृत्यु के बाद निजाम उल मुल्क ने दक्षिण में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करके इस प्रदेश को भी मुगल क्षत्र के रूप में अपने आधीनस्थ घोषित कर दिया। इस प्रदेश—कन्नड अथवा 'कर्नाटक'—में कई एक स्थानीय नवाब रहते थे जिनका इसके विभिन्न भागों पर अपना प्रभुत्व स्थापित था, इनमें से पाँच महान् शक्तिशाली नवाबों जो अर्काट सिरा, कर्नूल कदप्पा तथा

मेवनूर नामी क्षेत्रों के पृथक पृथक स्वामी थे के नाम इस स्थान पर विशेष उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं क्योंकि कर्नाटक में इनके अतिरिक्त और जितने भी नवाबों का प्रभुत्व स्थापित था वे सभी उपर्युक्त पाँचों नवाबों की अपेक्षा बहुत ही कम सशक्त थे।

इन्ही नवाबों के साथ साथ कर्नाटक प्रदेश में ही शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले ने अन्य पाँच परगनों जैसे कि—बंगलोर, बालापुर, कोलार, हुस्कोट तथा शिरा—पर अपना प्रभुत्व एक बीजापुरी जागीरदार के रूप में पहले ही स्थापित कर रखा था। इन्हें तंजौर की जागीर के नाम से प्रख्यात करके शाहजी ने सदैव ही अपने अधिकार में रखा। उनकी मृत्यु के बाद इन पर उनके कनिष्ट पुत्र व्यांकोजी ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। तंजौर के परवर्ती मराठा शासकों ने इस जागीर पर दीर्घकाल तक अपना प्रभुत्व स्थापित रक्खा।

तंजौर के उपर्युक्त पाँचों परगनों पर शाहजी के पुत्र व्यांकोजी के वंशज दीर्घकाल तक स्वतंत्र शासन करते रहे क्योंकि इस राजवंश से सतारा के छत्रपतियों के सम्बन्ध विशेष मधुर थे। वे इस राज परिवार के शासकों की आवश्यकता के समय अपनी सैनिक सहायता द्वारा सहायता करते थे। इस प्रदेश में मैसूर के क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य कुछ क्षेत्र जैसे कि बदनूर, चितलदुर्ग, रायदुर्ग तथा हरपन हल्ली भी न्यूनाधिक रूप में स्वतन्त्र शासकों द्वारा शासित होते थे। सन १७२६-२७ ई० में पेशवा बाजीराव ने इस प्रदेश में पहुँच कर चौथ वसूल की, क्योंकि इसमें राजा शाहू स्वयं अपनी शासन सत्ता स्थापित करने का महत्वकांक्षी था। सन् १७३७ ई० में शाहूजी ने इस देश को पूर्णतया विजित करने के लक्ष्य से कर्नाटक में स्वतः सैनिक अभियान किया किन्तु इस कार्य में सफल होने के लिये न तो उसमें यथावश्यक व्यक्तिगत साहस ही था और न ही अपनी सेनाओं का ठीक ठीक संचालन करने की क्षमता। फलतः वह दो वर्ष तक प्रयास करने के बाद भी कर्नाटक में 'मिराज' नामक स्थान से ही आगे न बढ़ पाया। उसे सतारा निराश वापस लौट आना पड़ा। अन्ततः इस प्रदेश की दक्षिणी जागीरों से चौथ वसूल करने के लिये महाराजा ने अपने स्वामिभक्त सरदारों रघुजी तथा फतहसिंह भोंसले को शक्तिशाली मराठा सेनाओं सहित भेजकर उन्हें आज्ञा दी कि वे इन क्षेत्रों से प्राप्त किये गये कर की धन राशियों से आधा भाग तो अपने निज व्यय के लिये स्वयं ग्रहण करलें तथा शेष आधा भाग को सतारा के राजकोष में दाखिल कर दें। भोंसले सरदारों को छत्रपति द्वारा इस आशय के दिये गये निर्देशों का उल्लेख इस प्रकार है—

"चूँकि आप लोग राज्य के विश्वासपात्र कर्मचारी हैं, अस्तु महाराजा को इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है कि इस साहसपूर्ण कार्य में आप लोगों को सफलता प्राप्त होगी। तंजौर का शासक जो कि महाराजा का चचेरा भाई ही है, इस समय त्रिचनापल्ली के नवाब चाँदा साहब द्वारा आतंकित किया जा रहा है। (क्रम)

फतेहसिंह भोसले को आदेश दिया जाता है कि वह तंजोर के राजा से मिलकर चांदा साहब का मानमर्दन करे। 1

कर्नाटक स्थित मुगल सूबेदार का नाम था—नवाब दोस्तअली और वह अपनी राजधानी अर्काट में रहकर सम्बन्धित क्षेत्रों पर शासन करता था। सन् १७३२ ई० के बाद से वहाँ इस नवाब के दामाद हुसैन दोस्त खाँ जो मुख्यतः त्रिचनापल्ली का चांदा साहब कहलाता था का प्रभाव विशेष बढ़ गया था। उसने अपने क्षेत्र की भूमि व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किये तथा पाण्डेचेरी में रहने वाले फ्रांसीसियों की सहायता से अपनी सैन्य शक्ति को सुसंगठित एवं भली भाँति प्रशिक्षित करवाया। उसकी सम्प्रभुता इस समय चतुर्दिक बढ़ रही थी। उसने ही त्रिचनापल्ली के पुराने हिन्दू सरदार को हराया था। इस प्रकार इस क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके उसने जैसा कि तंजोर का इतिहास लिखने वाले एक मराठा विद्वान—भास्कर—का मत है, १७३६ ई० से त्रिचनापल्ली में ही रहना आरम्भ कर दिया था। 'पुराना मद्रास' नामक ऐतिहासिक कृति के लेखक लोव (Love) के कथनानुसार त्रिचनापल्ली पर चांदा साहब द्वारा अपना अधिकार स्थापित करने की यह कथा विशेष रोचक प्रतीत होती है।

सन् १७३२ ई० त्रिचनापल्ली का राजा निःसन्तान मर गया। उसकी दूसरी तथा तीसरी रानियाँ उसके साथ जलकर सती हो गई परन्तु उसकी पहली एवं सबसे बड़ी रानी मीनाक्षी ने मृत राजा की इच्छानुसार उसकी उत्तराधिकारिणी के रूप में त्रिचनापल्ली का शासन अधिकार प्राप्त किया। इसी समय एक शाही राजवंश के शासक तथा रानी के मध्य सत्ता के लिये विवाद-संघर्ष उत्पन्न हो गया। इस अशान्ति से लाभ उठाने के लिये अर्काट के नवाब दोस्तअली को उकसाया गया कि वह त्रिचनापल्ली पर स्वयं अपना ही आधिपत्य स्थापित कर ले। अतः इस राजधानी पर अधिकार करने से सम्बन्धित सुलभ होने वाले किसी भी अवसर से लाभान्वित होने के उद्देश्य से नवाब ने उस दिशा में अपने पुत्र सफदरअली तथा दामाद चांदा साहब के नेतृत्व में एक सेना भेजी।

इसका परिणाम अत्यन्त सुखद था। चांदा साहब को रानी को अपनी ओर आकर्षित करने का सौभाग्य मिल गया। उसने हाथ में कुरान लेकर प्रतिज्ञा की कि वह त्रिचनापल्ली में रानी की इच्छा के बिना कुछ भी न करेगा। अस्तु उस पर विश्वास करके इस प्रेमविह्वल रानी ने चांदासाहब को त्रिचनापल्ली के नगर में ससैन्य प्रविष्ट होने की अनुमति दे दी। 'लोव' ने लिखा है कि 'अधेड़ रानियों के साथ किया गया प्रेम सदैव सौभाग्यपूर्ण ही नहीं होता और चांदा साहब रानी

---

1 दे०— ऐतिहासिक पत्र व्यवहार, पृष्ठ २६, राजवाडे का सकलन ६/१४६ तथा नागपुर बखर।

के प्रति निष्ठुर एवं क्रूर सिद्ध हुआ।' चाँदा साहब त्रिचनापल्ली पर अपना अधिकार करने के निश्चय पर पूर्ववत् अडिग बना रहा। उसने वहाँ की शासन सत्ता का बलात् अपहरण करके रानी के प्रेमाकुल हृदय को टूक टूक कर डाला। अन्तत वह बन्दी गृह में डाल दी गई जहाँ उसने शोक से सन्तप्त हो अपने प्राण त्यागे और त्रिचनापल्ली के सम्पूर्ण राज्य पर इस विश्वासघाती नवाब चाँदासाहब का ही प्रभुत्व स्थापित हो गया।

त्रिचनापल्ली पर रघुजी भोंसले द्वारा प्रभुत्व स्थापन—त्रिचनापल्ली मे रहने वाले चान्दासाहब ने शीघ्र ही तंजौर तथा मदुरा पर भी अपनी गृद्ध दृष्टि डाली। अत उससे भयभीत होकर तंजोर के स्थानीय शासक प्रतापसिंह ने शाहू से आश्रय माँगा। उधर चान्दासाहब की अपनी महत्वाकांक्षा एवं उद्दण्डता भी इतनी अधिक बढ गई थी कि वह दुसत दोस्तअली तथा उसके सम्पूर्ण परिवार का शत्रु बन गया। जब ही शाहू को चान्दासाहब के त्रिचनापल्ली में किये गये विश्वासघात का सूचना मिली उसने रघुजी तथा फतहसिंह भोंसले को शक्तिशाली मराठा सेनाओं सहित त्रिचनापल्ली जाकर वहाँ से चान्दासाहब को अविलम्ब निष्कासित कर देने की आज्ञा प्रदान की। अप्रैल १७४० ई० में ये मराठी सेनायें अर्काट पर चढ आई जिनसे दामलचरी के दर्रे के समीप नवाब दोस्तअली के सैनिकों ने मोर्चा लिया। पहले तो मराठों ने नवाब से शान्तिपूर्ण ढंग से अपनी शर्तें मनवाने की चेष्टा की किन्तु उसने कोई समझौता न किया। परिणामत १०-सहस्र मराठो ने नवाब पर ऐसा भीषण आक्रमण किया कि नवाब दोस्तअली तथा उसके पुत्र हुसनअली की सेनायें २० मई १७४० के दिन हार कर इधर-उधर भागने और तितर बितर होने लगी। पिता और पुत्र अपने बड़े-बड़े सेनापतियों सहित पराजित ही नहीं अपितु रणस्थल में मृत्यु शय्या पर सोने को भी विवश कर दिये गये।

दक्षिण भारत के वातावरण में मराठो की इस गौरवपूर्ण विजय से बिजली दौड गई। उधर पेशवा बाजीराव ने उत्तर भारत को पहले से ही पदमर्दित कर रक्खा था और अब तो यही विश्वास किया जाने लगा कि रघुजी ने भारत के दक्षिणी प्राय द्वीप को भी विजित कर लिया था। अर्काट के मृत नवाब के पुत्र सफदरअली ने अपने देशवासियों की पराजय का हाल सुनते ही भयभीत होकर वेलूर (Vellore) के दुर्ग मे शरण ली। उधर चान्दासाहब त्रिचनापल्ली मे ही ठहरा रह कर मराठो की गतिविधियों का गम्भीरतापूर्वक अवलोकन करता रहा। परन्तु मृत नवाब की स्त्रियो को मराठो के हाथ में पड़ने से बचाने के लिये सफदरअली तथा चान्दासाहब से उन्हें किसी प्रकार महल से बाहर निकालकर पाण्डचेरी के फ्रांसीसियों के आश्रय में रहने भेज दिया (२७ मई १७४० ई०)। डूमा ने प्रारम्भ में मराठों के विरुद्ध इस प्रकार का पग उठाने में सामान्यत संकोच ही किया परन्तु नवाब तथा फ्रांसीसियों के मध्य मैत्री के घनिष्ट सम्बन्धों से बाध्य होकर फ्रांसीसी गवनर ड्यूमा ने अर्काट

नवाब के आये हुये जनानखाने तथा धन सम्पत्ति की रक्षा करना स्वीकार कर लिया। अत मराठे जब हमालचेरी होते हुए अर्काट को आये तो उन्होंने वहाँ पर नवाब की धन सम्पत्ति आदि को न पाकर पाण्डचरी के गवनर ड्यूमास को धमकी दी कि वह उनके शत्रुओ को शरण देना त्याग दे। परन्तु ड्यूमास ने इस समय पर धैर्य एव गम्भीरता से काम लेकर मराठा सरदारो को सूचित किया कि वह अपने किसी भी काय म स्वतन्त्र न था और नवाब के स्त्री बच्चो तथा धन सम्पत्ति को अपनी देख रेख म सुरक्षित रखने के लिय उसको सीध फ्रास के राजा की ओर से निर्देश दिये गये थे। इस सूचना के साथ ही साथ उसने रघुजी भोसले की सेवा मे फ्रांस से आयी हुई शेम्पेन (बहुमूल्य मदिरा) की बोतलें उपहार के रूप में भेजी। कहा जाता है कि रघुजी भोसले ने उस मदिरा का रसास्वादन करके उसम इतनी अधिक रुचि ली कि उसने अपने दूत को फ्रासीसियो से और अधिक शेम्पेन की बोतलें मगवाने को प्रेरित किया। अ तत रघुजी का क्रोध ठडा पड गया और वह वहाँ से आगे न बढकर, शीघ्र ही वापस लोटा पडा। इस बात की सूचना पाकर महराजा शाहू ने रघुजी पर विश्वास करना भी त्याग दिया।

दोस्तअली की मृत्यु से प्रेरित हो चान्दासाहब ने अर्काट की नवाबी स्वत प्राप्त कर लेने के उद्देश्य से सनिक तयारियाँ करनी प्रारम्भ कर दी। इसकी इस प्रकार की कार्यवाही से सशक होकर सफ्दरअली ने चान्दासाहब के विरुद्ध रघुजी भोसले से ११ नवम्बर १७४० के दिन एक गुप्त समझौता कर लिया। उसने उसे १ लाख रुपया किस्तो म देने का उस दशा मे वचन दे दिया कि वह त्रिचनापल्ली और चादासाहब दोनो को आधीनस्थ करके अर्काट म उसके नवाब के पद को सुरक्षित बनाने का सफल प्रयास करे। इसके साथ ही उसने तजौर के मराठा राजा की भी हर प्रकार से रक्षा करते रहने का वचन दिया। इस गुप्त समझौते की वास्तविकता से अवगत होकर चांदासाहब अत्यधिक चिन्तातुर हो उठा। तथापि उसने इसे विफल बनाने हेतु फ्रांसीसियों के साथ किये हुए अपने पहले के समझौते का उपयोग करने की व्यवस्था की। किमेनिया के भारतीय राजनीति मे सम्मिलित होने की यह सबसे पहली घटना इस देश के इतिहास में पर्याप्त उल्लेखनीय समझी जाती है।

उधर रघुजी भोसले ने भी कुछ समीपवर्ती हिन्दू सामन्तो को अपने पक्ष में करके तजौर के राजा प्रतापसिंह को भी जो कुछ भी सेना वह उस समय पर जुटा तथा मराठों के साथ मिलकर चाँदासाहब तथा ड्यूमास की फ्रासीसी सेना की सम्मिलित शक्ति का सामना करने हेतु सयुक्त कायवाही लिये प्रेरित रघुजी तथा फतहसिंह के मध्य इस समय जो समझौता

अपनी इतिहास पुस्तक मे यथोचित उल्लेख किया है।[1] अन्तत दिसम्बर १७४० ई० में ही रघुजी ने त्रिचनापल्ली का घेरा डाल दिया। इस युद्ध में मराठो को अपार सफलता मिली। उन्होंने चाँदासाहब के भाई बाबासाहब को जो मदुरा मे बुलवाया गया था, मौत के घाट उतार दिया तथा चाँदासाहब को भी बन्दी करके सन् १७४१ ई० म 'रामनवमी (१४ मार्च) के दिन उसके सारे राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रदेश की देख भाल करने तथा उसकी रक्षा व्यवस्था आदि के लिये रघुजी भोसले अपने एक साथी—मुरारराव घोरपडे को त्रिचनापल्ली मे ही नियुक्त कर दिया।

चाँदासाहब बन्दी गृह में—रघुजी को इस कार्य म सहायता पहुँचाने के उपलक्ष में मुरारराव घोरपडे ने जो एक वीर तथा हर प्रकार से शक्तिशाली सरदार था महाराजा शाहू से प्रार्थना की कि वह उस मराठा राज्य का सेनापति नियुक्त करने की कृपा करे। परन्तु राजा शाहू इस पद पर दाभाडे को ही रखना चाहता था अत मुरारराव की प्रार्थना उसने अस्वीकार कर दी। उधर रघुजी को त्रिचनापल्ली मे धन की असीम आवश्यकता प्रतीत हो रही थी अत उसने चाँदासाहब तथा उसके पुत्र आबिदअली से जो षडयन्त्र करने मे बडे ही दक्ष प्रतीत होते थे, युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में धन की माँग की। उसे पूरा करने मे चाँदासाहब को असमर्थ देखकर रघुजी भोसले ने उसे उसके पुत्र के साथ ही, अपने विश्वासपात्र सेनापति भास्कर राम के नियन्त्रण म नागपुर भिजवा दिया। तथापि चाँदासाहब के परिवार के अन्यान्य आश्रित उस समय पाण्डेचेरी म ही होने के कारण इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति म पडने से बचे रहे।

चाँदासाहब के बन्दी होने के विषय म दक्षिण भारत में चले हुए पत्र व्यवहार के एक उल्लेख मे जो एक ब्रह्म-परिवार के घर में पाये गये पत्रो म देखने को मिलता है यथेष्ट मात्रा प्राप्त हो सकता है। इन बन्दी पिता और पुत्र को भास्कर राम सतारा न ले जाकर सीधे बरार ले गया। कहा जाता है कि इन बन्दियों से प्राप्त होने वाली क्षतिपूर्ति म वह एक रघुजी को छोडकर अन्य किसी भी व्यक्ति को हिस्सेदार न बनने देना चाहता था। धनाभाव के कारण चाँदासाहब को ७ वर्ष तक बन्दीगृह में ही पडे रहना पडा। उसे एक बन्दी का जीवन तो अवश्य ही बिताना पडा किन्तु बाहरी व्यक्तियों से उसके मिलने-जुलने पर कोई प्रतिबन्ध न था क्योंकि इस बहाने से वह मराठों के लिये क्षतिपूर्ति की दी जाने वाली धनराशि की व्यवस्था करने का दावा करता था। इस सम्बन्ध में उसने पाण्डेचेरी के फ्रांसीसियों, तथा शाहूजी एवं निजाम के दरबारी सामन्तों से स्वतन्त्रतापूर्वक वार्तालाप किया। उसने

1 See—'New History of the Marathas Vol II p 255
'Capture Trichnopoly remove Chanda Saheb and Pratap Singh would readily give fifteen lacs cash three lacs of which would be a personal Nazar to Raja Shahu two lacs to his Ranis two lacs to Fatah Singh and Raghuji and 8 lacs fc expences of the troops (16 January 1741) (G S.

अपने बन्दीगृह के प्रारम्भिक तीन वर्ष तो बरार के समीप ही किसी स्थान पर व्यतीत किये। सितम्बर १७४४ ई० म सतारा के महाजनों ने चाँदासाहब की ओर से १५ लाख रुपये रघुजी को देकर उसे तथा उसके पुत्र दोनों को अपनी देख रेख म ले लिया। अस्तु इस वर्ष के अन्त तक उन्हें वहाँ से हटाकर वे लोग अपने साथ सतारा ले गये जहाँ के दुर्ग म व पुन नजरबन्द कर दिये गये। चाँदासाहब ने यहाँ से भी पाण्डेचेरी के फ्रान्सीसियों से धन की माँग की किन्तु वहाँ के तत्कालीन गवर्नर डूप्ले ने उसे कोई भी ऋण देना स्वीकार न किया। तदुपरान्त चाँदासाहब ने पेशवा से मिलना करके उसकी ही सहायता से अपने को जेल से मुक्ति दिलाने की चेष्टा की। इसी मध्य २१ मई १७४८ ई० के दिन निजाम उल मुल्क की मृत्यु हो जाने से सारे दक्षिणी प्रायद्वीप म अशान्ति उत्पन्न हो गई। इससे चाँदासाहब को भी जेल से निकल भागने का एक श्रेष्ठ अवसर मिल गया। वह मार्ग म सैनिकों को एकत्र करता हुआ अपने इच्छित सुरक्षित स्थान पर जा पहुँचा। खेद का विषय है कि सतारा म महाराजा शाहू ने भी इस विद्रोही नवाब की ओर कोई समुचित ध्यान न दिया। वह तो केवल इसी बात पर बल देता रह गया कि त्रिचनापल्ली को स्थाई रूप से मराठा शासन म सम्मिलित करा लिया जाये। उस नवाब पर रघुजी तथा फतेहसिंह द्वारा प्राप्त की गई विजय के फलस्वरूप इन दोनों मराठा सरदारों के राष्ट्रीय सम्मान में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके फलस्वरूप देश में अपार धन आया। शाहूजी ने इन दोनों भोसले नेताओं का सतारा के दरबार म अत्यधिक आदर सत्कार के साथ भव्य स्वागत किया। छत्रपति को इस बात से अत्यधिक हर्ष हुआ कि तंजौर के राजा—उसके चचेरे भाई प्रतापसिंह के सभी बड़े बड़े शत्रुओं का विनाश कर दिया गया था। छत्रपति ने कटक की सीमाओं तक फैले हुए बरार तथा गोंडवाना के सारे क्षेत्र अपने उपर्युक्त दोनों विजेता सरदारों को जागीर के रूप म प्रदान कर दिये।

त्रिचनापल्ली पर निजाम उल मुल्क का अधिकार—जिस समय रघुजी चाँदासाहब की शक्ति का दमन करने म मसरूफ था निजाम अपने विद्रोही पुत्र नासिरजंग से युद्ध कर रहा था। उसने जुलाई १७४१ तक नासिरजंग को परास्त करने में सफलता पा ली जिसके बाद ही महाराष्ट्र म पेशवा तथा रघुजी के मध्य कठोर वैमनस्य उत्पन्न हो गया। इसके फलस्वरूप निजाम उल मुल्क को अत्यन्त प्रसन्नता मिली। उसे यह देखकर हार्दिक सन्तोष हुआ कि कर्नाटक के उसके प्रबलतम प्रतिद्वन्दी की शक्ति का पूर्णतया दमन कर दिया गया था। तथापि वह तंजौर म प्रतापसिंह भोंसले तथा त्रिचनापल्ली में मुरारराव घोरपड़े को सत्तारूढ़ होने कभी भी न सहन कर सकता था। अस्तु जिस समय सन् १७४३ ई० के आरम्भ म बंगाल के प्रश्न पर पेशवा तथा रघुजी भोंसले के मध्य युद्ध संघर्ष छिड़ा उसकी अनुपस्थिति से लाभ उठाकर निजाम ने कर्नाटक में मराठों द्वारा अभी तक की गई सारी व्यवस्था को ही उलट देने का

सफल प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया। इस देश के अ या य नवाबो ने भी अभी तक उसकी आधीनता न स्वीकार की थी, जिनम दोस्तअली क पुत्रो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अस्तु निजाम ने सफदरअली को अपनी आधीनता म लाने की चेष्टा की किंतु अक्तूबर सन् १७४२ ई० मे वह अपने भाई मुर्तजाअली द्वारा मार डाला गया, जिसन अर्काट की नवाबी पर स्वय अपना अधिकार जमा लिया। इन असतोष पूर्ण परिस्थितियों में ही जनवरी १७४३ ई० म निजाम उल मुल्क न एक विशाल सेना सहित गोलकुण्डा से प्रस्थान करक त्रिचनापल्ली पर अधिकार करने क निश्चय स कर्नाटक म प्रवेश किया।

इस आक्रमण से सशक वहाँ के मराठा शासक मुरारराव घोरपडे ने शाहूजी से सनिक सहायता की मांग की। पर तु इस समय स्वय पेशवा के नियत्रण म बगाल तथा बु देलखण्ड को भेजी गयी मराठा सनायें अभी तक वापस न लौट सकी थी अत शाहूजी त्रिचनापल्ली की रक्षा हेतु कोई भी सनिक सहायता न भज सका। अ तत माच १७४३ ई० में निजाम अपने लगभग ८० हजार अश्वारोहियो तथा दो लाख पदल सनिकों की अपार सेना लेकर अर्काट आ पहुँचा। उसन इस प्रदेश पर सफलता पूवक अधिकार करके वहाँ की सूबेदारी अपने द्वारा पहले से मनोनीत अनवरुद्दीन खाँ नामक सरदार को प्रदान कर दी। इसी समय उसने मुरारराव घोरपडे से त्रिचना पल्ली को भी खाली कर देने का अनुरोध किया। इस सम्बन्ध मे उस मराठा सरदार ने निजाम से सन्धिवार्ता करने म ही चार महीने बिता दिय। अ तत निजाम ने उसे गुन्टी (Gutti) का पद प्रदान करके २६ अगस्त सन् १७४३ ई० के दिन त्रिचनापल्ली पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। तत्पश्चात् उसने वहाँ से प्रस्थान करके अपना कुछ समय अर्काट म व्यतीत किया और इसी मध्य आस पास के क्षेत्रों म रहने वाल बड़े-बड़े अग्रेज तथा फ्रांसीसी व्यापारियों ने उससे भेंट करके उसे बहुमूल्य उपहार आदि देकर सतुष्ट किया। यही नहीं उन्होंने उसे सारे दक्षिण भारत का राजाधिराज भी स्वीकार कर लिया। आगामी वर्ष निजाम ने अपने पौत्र मुजफ्फरजग को अदोनी नामक स्थान पर नियुक्त करके उसे यह आदेश दे दिया कि सम्पूर्ण पूर्वी कर्नाटक पर शासन करे। इस प्रकार की व्यवस्था करके निजाम उल मुल्क फरवरी सन् १७४४ ई० मे गोलकुण्डा वापस लौट गया।

कालान्तर में बाबूजी नायक ने निजाम को परास्त करने का आश्वासन छत्र-पति का दकर उन्ह सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। उसन दो वर्षों तक निजाम से सघष करने क बाद भी कोई सफलता न पाई और इसका उल्टा कुपरिणाम यह निकला कि पेशवा स्वय बाबूजी नायक स अत्यधिक घृणा करन लगा। बाबूजी नायक पर अत्यधिक ऋण हो गया था, जिसे चुकाने की उसन लेश मात्र भी सामर्थ्य भी न थी। वह अपनी असफलता का सारा उत्तरदायित्व शाहूजी तथा उसके पेशवा पर ही मढ़ने लगा और उसने इसी कारण अपनी आत्महत्या कर लेने की धमकी भी दी। परन्तु

इसका लोगों को ■ रा भेद खुल गया और उन्होंने उसे विषपान करने से यत्नपूर्वक रोकने में सफलता पाई।

■ तत पेशवा ने ५ दिसम्बर १७४६ ई० को महादोवा पुरन्दरे तथा सखाराम बापू को अपने चचेरे भाई सदाशिवराव को परामर्श देने के लिए नियुक्त करके उनके द्वारा कर्नाटक का असफल अभियान कराया। उसने सारे पश्चिमी कर्नाटक को छत्रपति के अधीन कर दिया और फिर 'बासवपट्टन' होता हुआ स्वदेश लौट आया। तथापि त्रिचनापल्ली पर वह मराठों का अधिकार स्थापित करने में सफल न हो पाया और यह प्रदेश उनके छत्रपति के हाथ से सदैव के लिए निकल गया।

सारांश—सन् १७३२ ई० में त्रिचनापल्ली के हिन्दू राजा की जो निःसन्तान था, मृत्यु हो जाने के परिणामस्वरूप अर्काट के नवाब दोस्तअली के दामाद चांदा साहब ने इसके राज्य में अपना सफलतापूर्वक प्रभाव विस्तार कर लिया उसे रघुजी तथा फतेहसिंह भोंसले ने परास्त किया और उससे १५००० रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में वसूल किये। तत्पश्चात मराठे बंगाल की समस्या में उलझ गये जिससे लाभ उठा कर निजाम-उल मुल्क ने इस प्रदेश तथा साथ ही अर्काट पर भी अपना प्रभुत्व कर लिया।

Q Give a detailed description of Balaji Baji Rao's efforts to meet Tara Bai's last struggle for power

प्रश्न—बालाजी बाजीराव द्वारा ताराबाई के सत्ता को हस्तगत करने के अन्तिम प्रयासों को विफल करने के लिए किये गये प्रयासों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर—रामराजा को बन्दी करने के पश्चात् ताराबाई ने शीघ्र ही पेशवा बालाजी बाजीराव को अपदस्थ करने की अपनी पूर्वनिश्चित योजना की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस सम्बन्ध में उसने अपनी आशा के पुराने प्रतीक दादोबा प्रतिनिधि की ही सहायता प्राप्त करने की सफल चेष्टा की। अब प्रतिनिधि तथा उसके मुतालिक यामाजी शिवदेव के भाई—अन्ताजी—तो ताराबाई के साथ सतारा में ही ठहरे रहे किन्तु यामाजी को उन्होंने सतारा के आस पास के प्रदेशों से किसी न किसी बहाने धन एकत्र करने के लिए दुर्ग के बाहर कार्य करने के निमित्त भेज दिया। उनकी इस कार्यवाही का मराठा राज्य के निवासियों पर भीषण प्रभाव पड़ा और साथ ही साथ देश के परराष्ट्र—सम्बन्धों पर भी इसका परिणाम अच्छा न हो सका। सवनूर के नवाब ने तो ताराबाई तथा पेशवा के इन कटुतर सम्बन्धों से लाभ उठाकर मराठों को चौथ देना ही बन्द कर दिया था।

पेशवा के लिए ताराबाई द्वारा उत्पन्न की गई संकटापन्न स्थिति—पेशवा को ताराबाई के विद्रोह से भीषण चिन्ता पैदा हो गई थी। उसके द्वारा पूना सम्मेलन में की गई शाही व्यवस्था ही अब विफल एवं निरर्थक सिद्ध होने लगी। परन्तु उसने कोई प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही न करके, यद्यपि उसको इसके लिए काफी साधन उप

लब्ध थे, छत्रपति के पद के प्रति पूर्ण स्वामिभक्ति तथा ताराबाई के प्रति विनम्र नीति का ही अनुसरण करने में ही अपनी कूटनीतिक सफलता अनुभव की। उसने सतारा स्थित अपने आधीनस्थ पदाधिकारी नाना पुरन्दरे को पत्र लिखकर उसे यह सूचित किया कि 'मुझे अपनी संरक्षिका—राजमाता—का विरोध करने की तनिक भी इच्छा नहीं है। तुम्हें उसे आवश्यक रूप में रखते हुए उससे यह विनम्र निवेदन करना चाहिए कि जब सुदूरस्थ दिल्ली में (हम लोगों के विषय में) महाराष्ट्र से यह घृणित सूचनायें पहुँचेंगी तो अवश्य ही हमारे शत्रु उनसे अनुचित लाभ उठाने का प्रयास करने लगेंगे।" पेशवा ने पुरन्दरे से इस सम्बन्ध में भी अपने उसी पत्र द्वारा आवश्यक जानकारी माँगी कि रामराजा तथा ताराबाई दोनों की हमारे विरुद्ध क्या धारणायें बन रही हैं और उनका पक्षपोषण करने वाले लोग कौन कौन हैं।

इस पत्र का उत्तर देते हुये पुरन्दरे ने पेशवा को लिखा कि 'रामराजा पर ताराबाई के व्यक्तियों का कड़ा पहरा रहता है। वह हमारे पास इस आशय की दयनीय प्रार्थनायें भेजा करता है कि उसे (किसी प्रकार) बन्धन मुक्त किया जाय।[1] पुरन्दरे द्वारा दिये गए इस पत्रोत्तर को पाकर पेशवा अत्यधिक अशान्त हो गया। और अपने दूसरे पत्र में उसने नाना पुरन्दरे को लिख भेजा कि यदि वह राजा को कठोर नियन्त्रण में रखकर स्वतः ही शासन सचालन करने का दावा करती है, तो सारे मराठाओं को देशवासियों की लोकप्रियता प्राप्त करने से वंचित होना पड़ेगा। वह दिल्ली से लेकर सेतु रामेश्वर तक की राजनीतिक स्थितियों पर किसी प्रकार भी नियन्त्रण न पा सकती थी और न उसकी प्रक्रिया को रोकने के लिए पेशवा उसे एकाएक बन्दीगृह में ही डाल सकता था क्योंकि इसका परिणाम यही होता कि वह मराठों की राजमाता के विरुद्ध व्यापक विद्रोह का ही सूत्रपात करने लगता। अस्तु उसने पुरन्दरे को यही निर्देश दिया कि वह राजमाता को प्रेरित करे कि वह कुछ समय के लिए ताराबाई की आधीनता ही स्वीकार करले। इसके अतिरिक्त पुरन्दरे को पेशवा की आज्ञानुसार गुप्त ढंग से राजमाता को अपने समर्थक पक्ष में मिलाने की भी सफल चेष्टा करनी थी।

ताराबाई धर्मक्रियों तथा प्रबल शत्रुताओं के समक्ष नत-मस्तक होने को कदापि तैयार न होने वाली थी। रामराजा को बन्दीगृह से बाहर निकालने के सारे प्रयास ताराबाई के दृष्टिकोण को और भी क्रूर बना रहे थे। उसने कुछ मावले सैनिकों को भर्ती करके सतारा की रक्षा व्यवस्था करने का प्रबन्ध कर लिया। ताराबाई ने मानाजी आंग्रे से कुछ गोला बारूद आदि भी माँगे किन्तु उसने यह माँग

---

1 Sardesai—" New History of the Marathas", Vol. II, P 294
' Ram Raja is being strictly guarded by Tara Bai's men. sends me piteous appeals to get him released "

अदरीभूत हो गई। इन षड़यन्त्रों से रानी ताराबाई कभी कभी कटु व्यवहार पर ना यागी भी करती थी। वह रामराजा की पत्नी दरियाबाई[1], गोविन्दराव तथा पुरन्दरे पर भी अत्यन्त क्रुद्ध रहती थी। इसने राजमाता द्वारा ताराबाई का अन्त करने की उसने एक असफल चेष्टा की। इससे राजमाता को अपनी बहन के विषय में भी चिन्ता पैदा हो गई जिससे उसने तुरन्त ही सतारा से चले जाने का निर्देश दिया। वह वहाँ से सांगोला को चली गई। सतारा के दुर्ग पर पर्याप्त नियन्त्रण करके उसे पेशवा का प्रभुत्व भी कम करता था जिसके लिए उसके पास साधन भी अधिक थे। परन्तु वह अपनी परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए ऐसा करने में कोई लाभ न देखता था। उधर ताराबाई ने यह अफवाह फैला रखी थी कि पेशवा ने सतारा में राज्य का अपहरण कर लिया था। परन्तु पेशवा मराठा राज्य के हितों को कर्नाटक में विस्तार होते न सहन करने के कारण कर्नाटक की समस्या को निपटाने की आवश्यकता का महत्व समझता था और अब ताराबाई द्वारा उत्पन्न की हुई समस्या भी गम्भीर होती जा रही थी। कर्नाटक का प्रश्न सुलझाने और साथ ही साथ ताराबाई द्वारा फैलाये गये जन असन्तोष को भी दूर करने की क्षमता उसमें होते हुए भी उसने स्वयं कर्नाटक पहुँचने की आवश्यकता को ही अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण समझा। उसे यह भली भाँति ज्ञात था कि महाराष्ट्र की दशा को भी सुधारने के लिए अपनी पूना अथवा सतारा में उपस्थिति अनिवार्य थी अतः उसने कर्नाटक से पुरन्दरे को पत्र लिखकर उसे यह आदेश दिया कि वह रामराजा की सभी बहुमूल्य वस्तुओं को अपने अधिकार में लेकर उनकी एक सूची तैयार करे और फिर उन्हें सरकारी भाण्डार में सुरक्षित रखवाने की व्यवस्था करे। अन्यथा रामराजा तो बन्दीगृह में ही पड़ा रहेगा और उसकी वस्तुओं को दूसरे लोग ही उठा ले जायेंगे किन्तु इसका लांछन रखा जायेगा पेशवा पर—कि उसी ने रामराजा की निजी बहुमूल्य वस्तुओं का अपहरण किया था।

जिस समय बालाजीराव पेशवा कर्नाटक की गम्भीर समस्या को हल करने में नितान्त व्यस्त था महाराष्ट्र में ताराबाई उसके विरुद्ध भीषण कुचक्र करने में संलग्न थी। नाना पुरन्दरे भी उसकी गतिविधियों का निकटता से अध्ययन करता रहा और उसने समय-समय पर पेशवा को ताराबाई की कार्यवाहियों की स्पष्ट सूचना

1 'The other persons who had incurred her wrath along with Ram Raja were Darya Bai Nimbalkar Govind Rao Chitnis and Nana Purandare the Peshwa s agent She made an attempt to capture Nana Purandare, and Govind rao but she did not succeed This made Ram Raja anxious for the safety of her sister and so he advised her to leave Satara forth with '

For reference see Brij Kishore—' Tara Bai and Her Times , pp 198 99

भजी। यही नहीं उसने तारावाई द्वारा देश म उत्पन्न किये गये अस तोषजनक वातावरण का अ त करने की युक्ति भी पशवा को बतलाई। उसका विचार था कि पेशवा या तो तारावाई को ब दी करन म अपने स य बल का प्रयोग कर या फिर वह कोल्हापुर के शम्भाजी को ही छत्रपति घोषित करके तारावाई तथा रामराजा दोनों की महत्वाकांक्षाओं को विफल बनान का ही यत्न करे। इसके अतिरिक्त पेशवा को महादोबा पुरन्दरे ने भी यह राय दी कि उसे तारावाई को ब दी करक रामराजा को शीघ्र ही पूर्ववत् सत्तारूढ करने की यवस्था करनी चाहिये। पेशवा ने एसा करन से इ कार कर दिया जिसस महादोवा पुरन्दरे उसका विरोधी बन गया। इस प्रकार की कार्यवाही करने क पक्ष मे 'गोविन्दराव चिटनिस' भी न था कि तु इसी कारण पेशवा उस इस स देह की दृष्टि से देखने लगा कि कहीं वह भी तो नहीं तारावाई के पक्ष म चला गया था। तथापि चिटनिस की ओर पशवा का अविश्वास शीघ्र ही समाप्त हो गया क्योंकि उसने उसे कालान्तर म यह विश्वास दिला दिया कि वह वास्तव मे पेशवा के प्रति ही स्वामिभक्त बना रहना चाहता था। उधर रामराजा की दयनीयता दिन प्रतिदिन सोचनीय बनती जा रही थी और उस सहानुभूति की सक्रिय दृष्टि से देखने वाला एक पशवा का छोडकर अन्य कोई भी व्यक्ति न दिखाई पड रहा था। वह राजनीति से ऊब उठा था। अत उसन पशवा के पास अपना यह दुःख भरा विनम्र सन्देश भजा कि वह उसके पक्ष म अपने समस्त अधिकारों को त्याग करके उसके उपलक्ष म स्वय कुछ राज्यवृत्ति (पेंशन) पाकर ही सन्तुष्ट बठ जाने की हार्दिक इच्छा कर रहा था। तारावाई भी उसे अपना स्वामिभक्त बनाने की बार-म्बार चेष्टा करती रही थी, पर तु उसन रामराजा को प्रभावित कर पाने म अपनी असफलता को देखकर अब उसे असह्य कटु वचन कहने भी प्रारम्भ कर दिये थे। वह हर समय यही घोषित करन का प्रयास करती रहती थी रामराजा से उसका अथवा उसके पुत्र शिवाजी तृतीय का कोई भी सम्ब न्ध न था और वह छत्रपति परिवार के बाहर का ही व्यक्ति था जिसे कुछ स्वार्थी व्यक्तियों ने स्वय तारावाई को धोखा देकर उसके द्वारा अपना पौत्र स्वीकार करा दिया था परन्तु अपन दामाद को इस प्रकार अपमानित होते देख बुरहानजी मोहित से न रहा गया और उसने राजधानी मे यह प्रत्यक्ष घोषणा कर दी कि यदि रानी तारावाई ने बन्दीगृह से रामराजा को अविलम्ब मुक्त करके उसके हाथों म शासन सत्ता न सौंप दी तो अब वह असीम विनाशकारी मार्ग अपनाकर देश के सभी पदलोलुप व्यक्तियों का ढूंढ-ढूंढ कर अ त करना प्रारम्भ कर देगा।

तारावाई द्वारा रामराजा के इस प्रकार खुले ढग से अपमानित किये जाने का लाभ उठाकर कुछ स्वार्थी दलों ने एक दूसरे ही व्यक्ति को वास्तविक रामराजा घोषित कर दिया जिससे अभी तक रामराजा (छत्रपति) कहे जाने वाल बन्दीगृह मे पडे हुए मराठा राजा को लोग सचमुच ही एक भूठा व्यक्ति समझने लगे।

कालान्तर मे जो वास्तव मे झूठा रामराजा था, उस पर जब सख्ती की गई तो उसने यह सच सच बतला दिया कि उसका असली नाम सान्ताजी था और उसके पिता का नाम था—शम्भाजी अहिरराव। उसने यह भेद भी लोगों का बतला दिया कि उसे यह ■ देहजक स्थिति उत्पन्न करने के लिए यशवन्तराव प्रभू नामक व्यक्ति ने प्रेरित किया था। तथापि इसी प्रकार की घटनाओं ने अन्तत पेशवा को विवश कर दिया कि वह सतारा मे बाबूराव फडनवीस (फडनाम) गोपालराव पटवर्धन तथा बलवन्तराव महेन्डले के नेतृत्व मे एक शक्तिशाली सेना भेजकर शान्ति व्यवस्था स्थापित करे।

सिंधिया तथा होल्कर सरदार कुछ विशिष्ट कारणों से पेशवा से अप्रसन्न होते हुए भी अन्त तक उसी के स्वामिभक्त बने रहे और उन पर रानी ताराबाई के कूटनीतिक जादू का लेशमात्र भी प्रभाव न पड सका। यही मार्ग रघुजी तथा फतेह सिंह भोसले ने भी अपनाया और रुष्ट होने भी ताराबाई की एक न सुनी क्योंकि पेशवा ने उन्हें पहले से अपना कट्टर समर्थक बना रखा था इस प्रकार ताराबाई के पक्ष मे दमोजा दामाजा निवदेव, चिमनाजी नारायण तथा बाबूभा नायक जैसे लोगों को छोडकर कोई भी न रह गया था किन्तु ऐसे लोगों की सख्या बहुत ही कम थी अत ताराबाई ने निजाम से मैत्री स्थापित करने की अपनी कूटनीतिक चाल चलने का ही निश्चय कर लिया। उसने सलाबत जग के दीवान रामदास पन्त (राजा रघुनाथदास) को यह प्रलोभन दिलवाया कि यदि वह पेशवा को अपदस्थ करने मे सफल हो जायगा तो उसके रिक्त स्थान पर वह उसे (रामदास पन्त) अथवा उसके किसी भी मनोनीत व्यक्ति को पदासीन कर देगी। यही नही ताराबाई ने कोल्हापुर के शम्भूजी को भी सतारा आकर शीघ्र ही छत्रपति के सिंहासन को अधिकृत कर लेने के लिये आमन्त्रित किया। वह पेशवा से असन्तुष्ट था अत उसने ताराबाई के आमन्त्रण को स्वीकार करके अविलम्ब सतारा पर अभियान करने का निश्चय कर लिया, अपने इस निश्चय के विरुद्ध उसने अपनी रानी जीजाबाई के परामर्शों की ओर भी ध्यान न दिया। तथापि पेशवा ने वार्ना नदी के तट पर एक विशाल सेना अवस्थित करने की व्यवस्था कर दी थी जिसके कारण शम्भूजी को पेशवा के क्षेत्रों मे प्रवेश करने का साहस न हो सका और उसे निराश लौट जाना पडा।

दामाजी गायकवाड ■ पेशवा के प्रति शत्रुतापूर्ण कार्य —गुजरात का प्रान्त चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के निमित्त दाभाडे परिवार के आधीन रक्खा गया था। खाण्डेराव दाभाडे की विधवा उमाबाई दीर्घकाल से ताराबाई की समर्थक रही थी और सगोला व्यवस्था के बाद से वह उसकी और भी घनिष्ट मित्र बन गई थी क्योंकि पेशवा बालाजीराव ने पूना सम्मेलन मे बहुमत से निश्चय करके उससे गुजरात का आधा भाग छीन कर उसे सीधे अपने ही प्रभुत्व मे ले लिया था। दाभाडे

का प्रतिनिधि दामाजी गायकवाड़ ही इस प्रांत की शासन व्यवस्था किया करता था। अत ताराबाई तथा उमाबाई दोनों ने मिलकर गायकवाड़ को मराठा राज्य पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। उसने अपने १५ हजार सैनिकों को साथ लेकर खानदेश की ओर अभियान किया। उसके वगलान के समीप पहुंचने पर ही, पेशवा द्वारा भेजे हुए एक सेनापति हरिदामोदर नावेलकर ने अपनी छोटी-सी सेना के साथ उससे मुठभेड़ की। इस सम्बन्ध में पूना को सूचना पहुँचने पर बलवन्तराव महन्डल, बापूजी भीमराव तथा महिपतिराव कावडे अपनी-अपनी सेनाओं सहित द्रुतगति से उत्तर की ओर इस घटनास्थल पर जा पहुँचे। परन्तु बहादुरपुरा के स्थान पर गुजराती सेना ने मराठों से युद्ध करके उन्हें भीषण पराजय दी और उनके शिविरों में घुसकर खूब लूट पाट मचाई।

इस विजय से प्रोत्साहित दामाजी गायकवाड़ ने पूना की दिशा में प्रस्थान किया और फिर मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों तथा कस्बों को उसने बुरी तरह से पद दलित किया। आगे तलगांव (Talegaon) में उससे यशवन्तराव दाभाडे तथा उमाबाई भी आ मिले। १० मार्च सन् १७५१ ई० के दिन जब लोग पूना से थोड़ा ही दूर पर स्थित निम्बगांव दावड़ी (Nimbiagaon Davdi) नामक कस्बे के समीप आ पहुँचे तो उनके आने की सूचना पाते ही वहाँ के निवासियों ने इधर-उधर भागकर अपने प्राणों की रक्षा की। यहाँ तक कि, स्वयं पेशवा की पितामही राधाबाई तथा माता काशीबाई को भी वहाँ से अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को साथ लेकर सिंहगढ़ के दुर्ग में आश्रय ग्रहण करना पड़ा। गायकवाड़ से मोर्चा लेने के लिए त्र्यम्बकराव पेठे आगे आया परन्तु उसकी सैनिक शक्ति को पर्याप्त समझ कर पेशवा के कुछ हितचिन्तकों ने पिलाजी जाधव को साथ लेकर दामाजी गायकवाड़ से बातचीत करके उस असहाय नगर को लूटने से रोकने की चेष्टा की। इसी समय पिलाजी से राधाबाई द्वारा भेजा गया दूत जगजीवन धोन्देव (Dhond dev) पेशवा की दादी का एक पत्र लेकर मिलने के लिये आया। उधर कुछ समय तक नगर में घूमने फिरने के बाद गायकवाड़ तो वहाँ से चला गया था। परन्तु पिलाजी जाधव ने जब आगे बढ़कर उससे बातचीत की और उसे सतारा की ओर आगे न बढ़ने की ही सम्मति दी तो गायकवाड़ ने उद्दण्डतापूर्वक उसे उत्तर दिया कि "मैंने ताराबाई को जो वचन दे रक्खा है उसके विपरीत मैं कुछ नहीं कर सकता। मुतालिक गमाजी अभी अभी ताराबाई के पत्र के साथ मुझ से मिला।"[1] यह कहकर उसने सतारा की दिशा

1 See Rajwade—Vol III No 67 Dated 9 3 1751 Peshwa Daftar Records 6/16
"I have given my sacred word to Tara Bai which I can not violate Gamaji the Mutallik has come to me with Tara Bai s letter"

मे प्रस्थान कर दिया । वहाँ ताराबाई ने अपने नये भर्ती किये गये मावले सनिकों के एक दल को शेख मीरा के नेतृत्व मे गायकवाड की सेना से जा मिलने की आज्ञा दे रक्खी थी । अब सतारा की जनता भी उसी दशा पूना निवासियो की कुछ दिनो पहले हुई थी गायकवाड के आगमन से भयभीत एव निराश हो उठी । अत नाना पुरन्दरे जो कुछ भी सनिक जुटा सका साथ लेकर गायकवाड की सेना का सामना करने के लिये आगे बढ़ा । उसके जेजुरी पहुँचते ही पूना से तथा पेशवा द्वारा भेजी गई सेनायें भी पुरन्दरे के दल से आ मिली । पुरन्दरे ने अपनी विजय की आशा से प्रोत्साहित होकर जल्दबाजी के साथ दामाजी की सेनाओ पर अधाधुन्ध आक्रमण कर दिया । परन्तु उसे परास्त होकर लिम्बे (Limbe) की दिशा मे पीछे भागना पडा ।

इन पराजयो का प्रतिशोध गायकवाड से १९ मार्च के दिन लिया गया, जबकि बलवन्तराव मेहेन्डले ने त्र्यम्बकराव पेठे के नेतृत्व मे शक्तिशाली पेशवाई सेनाओ ने सफल युद्ध करके उसे घोर पराजय का भागी बनाया । उन्हे भारी मात्रा में लूट की सामग्री प्राप्त हुई । वेन्या नदी (Venya) के तट पर इस प्रकार पराजित होकर गायकवाड ने दामाजी को साथ लेकर सतारा के पश्चिम मे महादरा की घाटी मे पहुँचकर आश्रय लिया । वहीं पर दामाजी ने अपने भागे हुए सनिको को यथासम्भव एकत्र करके ताराबाई से मिल सबने बाकी नाममात्र सनिक सहायता के बल पर पेशवाई सेनाओ के विरुद्ध अपना भाग्य आजमाने का निश्चय किया यद्यपि मराठा राज्य के राजकीय प्रधान सेनानायक की यशवन्तराव दाभाडे की अपने साथ उपस्थिति भय न हो सल रही थी ।

२१ मार्च १७५१ ई० के दिन गायकवाड पेशवा की सेनाओं से एक अनिर्णायक युद्ध ही लड सका किन्तु इसी मास की ३० तारीख को पावई के मैदान (plain of Pivai) मे दामाजी गायकवाड ने अपने शत्रुओ से जमकर मोर्चा लिया और उन्हें बुरी तरह से पराजित किया इसी समय उसके पुत्र तथा एक अन्य निकट सम्बन्धी सतारा के दुर्ग में ताराबाई के सरक्षण मे रहने के लिये चले आये थे ।

उधर वेन्या नदी के तट पर मराठों की अप्रत्याशित विजय की सूचना पाकर बालाजी बाजीराव ने जो निजामकोंडा मे ठहरा हुआ था काफी हर्ष समारोह मनाया । तत्पश्चात् उसने अपने पहले भेजे गये उपयुक्त सेनापतियों के विजय कार्य को पूरा करने के लिये महादजीविश्वनाथ भाऊ को पीछे छोडकर वह स्वयं सतारा चला आया । वहाँ पहुँचने के पूर्व उसने निजाम के दरबारी जनोजी निम्बालकर[1] द्वारा अपने

1 See Brij Kishore— Tara Bai and her Times Page 206
In fact both the Nizam and his lieutenant Janoji Nimbalkar had promised Balaji Baji Rao their help against Damaji and Tara Bai Raghunath Das the Diwan of Salabat Jung with whom Tara Bai had been carrying on some intrigue against the Peshwa had also been won over to his side

नाम भेजा गया वह पत्र प्राप्त किया जिसमें उसे सूचित किया गया था कि निजाम तथा उसके दीवान दोनों ने अपने-अपने आधीनस्थ सेनापतियों को पेशवा की सहायता में तत्काल प्रस्थान कर देने का आज्ञा देदी थी। यदि उन्हें सफलता नहीं मिलती है तो दीवान रघुनाथदास स्वयं अनेक फ्रांसीसी सेनापतियों की विशाल सेना लेकर दामाजी तथा ताराबाई के विरुद्ध अभियान कर देंगे। २४ अप्रैल को पेशवा सतारा सुरक्षित पहुँच गया किन्तु वहाँ पर उसे पता चला कि उसके सेनापतियों ने सतारा के समीप में ही गायकवाड तथा उसके सैनिकों को बुरी तरह से घेर रक्खा था और वे उस ताराबाई तथा अन्य किसी भी बाहरी शक्ति से मिलने वाली रसद के मार्ग को भी बन्द कर देने की व्यवस्था कर चुके थे।

पेशवा की उस नवीन सेना द्वारा एक या दो दिन तक और भी सन्तप्त किये जाने के बाद दामाजी गायकवाड को अपनी पराजय स्वीकार करके संधि याचना करनी पड़ी। परन्तु संधि की शर्तें तय करने के लिये गायकवाड का पेशवा के समक्ष स्वयं उपस्थित होना अनिवार्य समझा गया। उसे नाना पुरन्दरे रामचन्द्र बाबा तथा सखोजी जाधव सुरक्षित रूप से पेशवा के शिविर में ले आये। पेशवा ने वेण्णा नदी के तट पर स्थित अपने शिविर के पास ही गायकवाड को भी डेरा डालने के लिये विवश किया। तत्पश्चात् उसने दामाजी से गुजरात के आधे भाग पर अपने अधिकार की माँग की, किन्तु उसने कहा कि वह तो उमाबाई तथा यशवन्तराव दाभाडे का एक नौकर मात्र था अतः इस शर्त को पूरा करने की शक्ति उसके पास न होकर उनके इन स्वामियों के पास ही विद्यमान थी। इस सम्बन्ध में गायकवाड उन लोगों से मिलने के लिये भी गया। उसने दाभाडे से पेशवा द्वारा की गई माँग की बात कही और उनकी अस्वीकृति के फलस्वरूप उसने दाभाडे की सेवा करने से त्याग पत्र दे दिया।

अब पेशवा अपनी उपर्युक्त माँग के पूरा होने में इस देरी से इतना क्रुद्ध हो उठा था कि उसने ३० अप्रैल १७५१ के दिन अपने सैनिकों को आज्ञा देकर गायकवाड के शिविर पर एकाएक आक्रमण कर दिया। उसका सारा सामान लूट लिया गया और उसके दोनों भाई खाण्डेराव तथा जयसिंह को भी बन्दी करके विट्ठल शिवदेव उन्हें पेशवा के सम्मुख प्रस्तुत किया। दामाजी भी उनके साथ साथ पेशवा के पास गया और उसने इस विश्वासघात के लिये उससे शिकायत भी की। इसी समय दाभाडे सरदार तथा उमाबाई को भी बन्दी कर लिया गया था और उनके साथ ही साथ गायकवाड को भी कैद में रक्खा गया। अन्ततः उन्हें विवश करके पेशवा ने अपने द्वारा तैयार किये गये संधि पत्र पर दाभाडे सरदारों तथा दामाजी से हस्ताक्षर करा लिये। वे कुछ समय बाद पूना के बन्दीगृह में (११ मई १७५१ ई०) बापूजी नायक के नियन्त्रण में रहने के लिये भेजे गये। उन्हें पेशवा द्वारा माँगे गये गुजरात के सभी सूबों (आधा गुजरात) पर उसे अधिकार प्रदान कर देना पड़ा।

तथापि वे पूना से ही रानी ताराबाई के साथ बराबर साँठ गाँठ करते रहे जिसकी अपने गुप्तचरो से सूचना प्राप्त करके पेशवा ने १६ जुलाई में उन पर सख्ती करना प्रारम्भ कर दिया। १४ नवम्बर १७५१ को उन्हे तथा दामाजी के एक अन्य साथी रामचन्द्र बासवत को भी पूना से हटा कर लोहगढ मे बन्दीगृह मे डाल दिया गया। दामाजी के दानो पुत्र (फतहसिंह तथा मानाजी) अब भी सतारा मे ताराबाई के साथ रहते रहे।

ताराबाई का निराश होकर पेशवा के साथ समझौता कर लेना—ताराबाई को गायकवाड की सहायता से अपनी सफलता की पूरी आशा थी किन्तु अब उस पर पानी फिर गया था। परन्तु अब भी उस उद्दण्ड महिला ने बालाजीराव से अपनी शत्रुता न छोडी थी क्योंकि उसका अपना अनुमान तो यही था कि जनता तथा समाज की लोकप्रियता से वञ्चित होने के अपने भय के कारण पेशवा शम्भाजी अथवा शाहूजी की भाँति कभी भी उसे बन्दी न करना चाहेगा। रामराजा अवश्य ऐसा साहस कर सकता था किन्तु इसके लिये न तो उसके पीछे अब कोई जनमत ही रह गया था और न ही उसे वह बन्दीगृह से बाहर निकलने का लेशमात्र अवसर दे सकती थी। पेशवा की ओर से रामराजा को मुक्त कराने अथवा उसकी कुशलक्षेम ही ज्ञात करने के सारे प्रयास ताराबाई को और भी क्रुद्ध कर देने के साधन बन गये। उसने १६ जुलाई १७५१ के दिन सतारा के हवलदार आनन्दराव जाधव तथा कुछ अन्य व्यक्तियों की केवल इतनी सी बात के लिये ही निर्दयतापूर्वक हत्या करवा दी कि उन्होंने रामराजा का हालचाल जानने का यत्न किया[1] था। पुराणीक मानसिंह (बाबाजी जापत्र) तथा मोरो शिवदेव थिटे की सहायता से सतारा के दुर्गरक्षको को ताराबाई ने अपना स्वामिभक्त बनाये रक्खा।

यह असन्तोषपूर्ण व्यवस्था और अशान्ति ६ मास से चल रही थी और इसके फलस्वरूप पेशवा की स्थिति भी स्वदेश तथा समीपस्थ अन्य राज्यों मे उत्तरोत्तर चिन्तनीय होती जारही थी। उसे निजाम की ओर से आक्रमण का भय था किन्तु उसने मोर्चा लेने के लिये प्रस्थान करने के पूर्व वह अपने राज्य की समुचित व्यवस्था कर देना चाहता था। इस उद्देश्यपूर्ति को दृष्टि मे रखकर उसने ताराबाई से समझौता करने का एक अन्य प्रयास भी कर लेना उचित समझा। अतः उसने ताराबाई पर बारम्बार यह जोर डालना प्रारम्भ कर दिया कि वह उस पर विश्वास करने लगे तथा रामराजा को मुक्त करे। पेशवा ने अपने इस प्रयास मे कोई सफलता न मिलते देख सतारा से पूना की ओर कूच किया (२२ मई १७५१, दे०—पेशवा दफ्तर के रिकार्ड सं० ६/१८६)। उसने पन्हाला तथा अन्य कतिपय किलों की रक्षा करने के लिए उनमे अपने आधीनस्थ सरदार शाहूपन्त थाथ के नेतृत्व मे लगभग ५ ६

१ दे०—राजवाडे—प्रति० संख्या ६ नं० ५०० चिटनिसकृत— थावन रामराजे यार चरित्र

सहस्त्र योद्धाओं की एक प्रबल सेना रखने का प्रबन्ध कर लिया क्योंकि उसे यह भय था कि उसके इन किलों को भी सम्भवतः ताराबाई के सेनापति हस्तगत करना चाहते थे।

उधर गत कुछ महीनों से रानी ताराबाई को पेशवा की शक्ति का कटु अनुभव हो चुका था और अब तो उसकी समझ में यह भी आने लगा था कि देश का जनमत नाममात्र को भी उसके पक्ष में न था। वह भोंसले सरदारों को इस सम्बन्ध में प्रभावित कर पाने में बराबर असफल होती रही कि वे छत्रपति के राज्य को पेशवा के हाथों अपहरण होने से बचाने के लिये बालाजीराव के विरुद्ध उठ खड़े हों। दामाजी गायकवाड़ से उसकी रही सही आशा भी समाप्त हो चुकी थी। अतः उसने सोचा कि उसका हित पेशवा से यथा सम्भव थोड़ा बहुत समझौता कर लेने में ही था किन्तु इस दिशा में भी कोई पग आगे बढ़ाने के पूर्व उसने अपनी निजी स्वार्थपूर्ति करने का ही निश्चय किया। पेशवा दफ्तर के लेखपत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि उसके इस झुकाव के विषय में पेशवा के सतारा स्थित एक अभिकर्ता ने अपने स्वामी को पत्र द्वारा यह सूचित किया अब ताराबाई पेशवा से इस शर्त पर समझौता कर लेने को तैयार होना चाहती थी कि वह उसे कम से कम सतारा के ही प्रशासकीय विषयों की देख रेख करने का अधिकार दे दे।

जेजुरी का समझौता—बालाजी बाजीराव जैसा स्थिर बुद्धि व्यक्ति कम से कम ऊपरी तौर से अवश्य ही ताराबाई तथा बन्दी छत्रपति दोनों के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित करते रहना चाहता था। उधर गुरुहान जी मोहिते जैसे कई तटस्थ व्यक्ति भी इन दोनों के मध्य कोई स्थाई समझौता करा देने के प्रयत्न करने में संलग्न थे। अतः ताराबाई ने चिंतामन तथा मोरो शिवदेव लिमये को पेशवा के पास पूना भेजकर उसे लिखित रूप में तथा कथित समझौते की शर्तों से अवगत कराया और इसके साथ ही साथ उसने यह भी प्रकट किया कि इन शर्तों के स्वीकार कर लिये जाने के बाद वह तत्काल ही देश का सम्पूर्ण शासन भार पेशवा के कंधों पर ही छोड़कर राज्य की सक्रिय राजनीति में भाग लेना सदैव के लिए परित्यक्त कर देगी। अन्ततः १४ सितम्बर १७५२ पेशवा तथा ताराबाई ने जेजुरी के मन्दिर में उपस्थित होकर आपस में एक समझौता किया, जिसके अनुसार पेशवा को उसने मराठा राज्य का व्यावहारिक रूप में शासन सञ्चालक मान लिया और साथ ही अपना प्रभुत्व सतारा तक ही सीमित रखने का वचन भी पेशवा को दिया। इस समझौते का मराठा इतिहास में सर्वाधिक महत्व है क्योंकि[1] यहीं जेजुरी मन्दिर के देवता के समक्ष रानी

---

1 Sardesai— New History of the Marathas Vol II Page 297
It was at this meeting that Tara Bai solemnly declared that Ram Raja was not the true son of his father that his advent had brought disgrace on the chhatrapatis house that he should therefore be removed and Shambhaji of Kolhapur placed on the throne at Satara

ताराबाई ने शपथ ग्रहण करते हुए यह घोषित किया कि रामराजा शिवाजी द्वितीय का वास्तव में वंश पुत्र न होने के कारण उत्तराधिकार से वंचित कर दिया जाय तथा उसके स्थान पर सतारा की गद्दी पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिये कोल्हापुर के राजा शम्भाजी भोंसले को आमंत्रित किया जाये।

ताराबाई के रामराजा को पुत्र न करने की जिद पर अड़े रहने के कारण पेशवा ने उनसे इस सम्बन्ध में समझौता करना ही छोड़ दिया था। परन्तु वह गुप्त रूप से अपमान पेट को निर्मित करके उसे ठीक से सुलझाने का बारम्बार कूटनीतिक प्रयास करता रहा जिसमें उसे कोई सफलता न मिल पाई।

ताराबाई के जीवन की अन्तिम घटनायें—ताराबाई ने देश की राजनीति में सक्रिय भाग लेना अवश्य त्याग दिया किन्तु कूटनीतिक कार्यों में भाग लेने की वह इतनी अभ्यस्त बन गई थी कि वह बिना इसे किये थोड़ा बहुत कुछ न कुछ किये हुए किसी प्रकार भी न रह सकती थी। अत अब उसने राष्ट्र के नीति निर्माण में भाग लेने का अपने लिए कोई अवसर न देख राज्य के छोटे मोटे मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया।[1] वह सतारा के दुर्ग से अपने सामान सहित बाहर निकलकर शाहूनगर में फतेहसिंह भोंसले द्वारा बनवाये गये शानदार भवन में रहने के लिए आ गई। यहीं वह अपना दैनिक दरबार लगाती और दरबार में उसे सम्मान प्रदर्शित करने के लिए राजधानी के बड़े बड़े धनी मानी एवं सामन्त सरदार उससे मिलने एवं उसके कृपा भाजन बनने के लिए आया करते थे। स्वयं ये बालाजीराव पेशवा भी उसके सम्मुख उपस्थित होकर उसका अभिवादन किया करता था। व्यवहारत ताराबाई अब अपने को वास्तविक छत्रपति प्रकट करने लगी थी और वैसे भी वह नाममात्र को इस पद गौरव को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त भी कर चुकी थी। वह पेशवा को उसकी विजयों के लिए प्रशंसित एवं प्रोत्साहित करती रहती थी और इसी बहाने उससे उसकी चापलूसी करके उसे बाह्य रूप में अपने प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने के लिए उसने किसी सीमा तक बाध्य करने में सफलता भी पाई थी। पेशवा बालाजीराव ने उसे समय समय पर राज्य कार्यों के विषय में परामर्श लेने के बहाने तथा उसे अपने प्रभाव क्षेत्र (सतारा) में स्वतन्त्र रूप से शासन संचालन का अधिकार देकर यथेष्ट रूप से सन्तुष्ट रखने की चेष्टा की। उदाहरणार्थ ताराबाई अपने प्रतिनिधि तथा उपप्रति

---

1 Brij Kishore— Tara Bai and her Times Page 211

She therefore continued to take part in perty politics but started no fresh conflagration for the Maratha state as she had done in the past

1

निधि यामाजी शिवदेव[1] से धीरे धीरे इतनी अधिक असंतुष्ट थी कि 'सलोम' नामक क्षेत्र के देशमुख को आदेश दिया कि वह जाकर यामाजी शिवदेव का दमन करे। वस्तुतः इस चालाक एवं स्वार्थी व्यक्ति (यामाजी शिवदेव) के विषय में राजमाता का यही विश्वास था कि वह एक बेकार का तथा झगड़ालू पुरुष के अतिरिक्त और कुछ भी न प्रतीत हो रहा था। हम पहले ही लिख चुके हैं कि निष्क्रिय जगजीवन परशुराम (प्रतिनिधि) को पदच्युत करके उसके स्थान पर नियुक्ति करने के लिए बापूजी नायक को बुला जाने के लिए उसका प्रयास ताराबाई के इसी उपयुक्त दृष्टिकोण का परिचायक था। खेद का विषय है कि जब जगजीवन परशुराम तथा बापूजी नायक का प्रत्यक्ष रूप से द्वन्द्व युद्ध चला तो बापूजी नायक को उसके प्रतिद्वन्दी ने परास्त करने में सफलता पा ली। फलतः बापूजी नायक स्वयं अपमानित होने के कारण अब अपने घर—बारामती—को चला आया था, किन्तु भविष्य में उसने ताराबाई द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन के बल पर तत्कालीन पेशवा तथा प्रतिनिधि दादोबा—के विरुद्ध षडयन्त्र कभी भी न छोड़ा।

उधर दादोबा प्रतिनिधि ने भी समय समय पर बापूजी नायक से युद्ध सघर्ष करके उसकी गतिविधियों से पेशवा को निरन्तर अवगत रखने का कार्य भी जारी रखा। प्रो० बृजकिशोर के मतानुसार पेशवा दफ्तर के रिकार्ड सवत् २६/१६६/२११ को देखने से ज्ञात होता है कि कालान्तर में उपयुक्त प्रतिनिधि तथा यामाजी शिवदेव दोनों ही पेशवा के मित्र बन गये थे। अतः ताराबाई ने पेशवा के गुट के विरुद्ध गुप्त रूप में सभी उच्च श्रेणी के मराठा सरदारों जैसे कि रघुजी भोंसला तथा उसके उत्तराधिकारियों फतेहसिंह भोंसला आदि बन्धुओं तथा गायकवाड़ एवं दाभाडे आदि से अपना राजनैतिक सम्पर्क स्थापित रखना उचित समझा।

कोल्हापुर से सम्बन्ध—ताराबाई के अपने सौतेले पुत्र शम्भाजी (कोल्हापुर के राजा) के साथ सम्बन्ध अब राजमाता तथा पेशवा के मध्य मतभेद के समय स घन दानें मत्रीपूर्ण बन गये थे। वह उसे सदैव यह झूठा प्रलोभन देती रही कि वह किसी भी समय सतारा बुलाया जा सकता था और यह मूर्ख शासक (dull witted) इसी बात पर विश्वास करके ताराबाई के स्वास्थ्य के विषय में चिन्तित होकर उसकी समय समय पर जाँच पड़ताल करके तथा उत्सवों के अवसर पर उसकी सेवा में अपने बहुमूल्य भेंट उपहार आदि भेजते हुए उसकी काफी चापलूसी करता रहा।

---

1 प्रो० राजवाड़े १७ वीं प्रति स० ४१ पेशवा दफ्तर के रिकार्ड स० २६/२०५ तथा प्रो० बृजकिशोर कृत 'ताराबाई तथा उसका युग।' अग्रेजी सस्करण मू० प्रति पृष्ठ स० २१२।

This restless spirit was never stead fast in his loyalty and had been carrying on negotiation to join the Peshwas

विद्वानों का मत है कि शम्भाजी की पत्नी जीजाबाई ने उसे जब ताराबाई के साथ मिलकर पेशवा के विरुद्ध षड्यन्त्र करने से रोका तथा उसे पेशवा का मित्र बनने से रोकने की चेष्टा की तो उसने अपनी पत्नी को सदैव यह कहकर शान्त कर दिया कि एक पेशवा के विरुद्ध के ही कारण वह सतारा की गद्दी पाने से असफल रहा था इन परिस्थितियों मे इस अदूरदर्शी व्यक्ति को भला यह भास भी कब हो सकता था कि ताराबाई उससे भी एक पग आगे तक जोखिम रखकर कोल्हापुर की गद्दी के उत्तराधिकार प्रश्न में सक्रिय भाग ले सकती थी।

१८ दिसम्बर १७६० को शम्भूजी निःसन्तान परलोक सिधारा। मराठा राजवंश की एकता को अक्षुण्ण रखने के विचार से पेशवा सदैव ही कोल्हापुर तथा सतारा के परिवारों को परस्पर संगठित रखना चाहता था और इसी उद्देश्य पूर्ति के लिये उसने शाहूजी के जीवन काल में ही सतारा के सिंहासन पर इस छत्रपति की मृत्यु के बाद शम्भाजी को ही पदासीन कराने की अपनी इच्छा व्यक्त की थी। शम्भाजी की मृत्यु के बाद अब पेशवा ने पुनः इन दोनों मराठा राज्यों का एकीकरण करने का प्रयास किया। उसने कोल्हापुर पर अपना अधिकार करने के लिये हरीराम तथा विसाजी नारायण के नेतृत्व में एक सेना भी भेजी। परन्तु शम्भूजी की दूरदर्शी विधवा ने पेशवा के इस प्रयास का डटकर विरोध किया। अपने २० जनवरी सन् १७६० के एक पत्र[1] मे उसने पेशवा को पत्र लिखते हुए उससे यह व्यक्त किया कि यह अत्यन्त ही खेद की बात है कि प्रधान पन्त (पेशवा) ने मेरे पूज्य पतिदेव की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के स्थान पर हरीराम तथा विसाजी नारायण के नेतृत्व मे हमारे राज्य को ही हड़प लेने के लिये सेनायें भेजी हैं। हमारी दीर्घ काल से चली आने वाली मैत्री का इस प्रकार अच्छा बदला चुकाया गया है। परन्तु आप रघुनाथराव को अब इस बात मे अवश्य अवगत करा दें कि दिवंगत महाराजा की हम चारों रानियाँ अभी जीवित हैं और इनमे से कुशाबाई तो गत कई ही महीनों से गर्भवती भी हो चुकी थी। पेशवा ने अपने द्वारा गम्भीरतापूर्वक दिये गये वचनों का भंग कर दिया है।

यह अत्यन्त ही रोचक है कि जीजाबाई, ताराबाई से किसी प्रकार भी कम षड्यन्त्रकारिणी न थी। वह कोल्हापुर मे भी एक रामराजा उत्पन्न कर देना चाहती

---

1 See Dr Brij kishores— Tara Bai and Her Times Page 213
It is highly to be regretted that the Pradhan pant instead of offering condolances on the death of my revered husband has sent troops under Hari Ram and Visaji Narayan to confiscate the state But you must explain to Raghunath Rao that we four Ranis of the late Maharaja are alive one of whom Kusabai has advanced in pregnancy some months The Peshwa has broken his solemnly given word

थी। इसी कारण उसने यह कथा विख्यात कर दी कि कुशाबाई गर्भवती थी और इसी को सत्य सिद्ध करने के उद्देश्य से उसने (कुशाबाई ने) कालान्तर में यह घोषणा की कि उसने १५ मई १७६१ के दिन एक पुत्र को जन्म दिया था। इस सम्बन्ध में उसने सीधे पेशवा तथा उसकी पत्नी गोपिकाबाई को पत्र भी लिखे।

सत्य को छिपाना असम्भव सा होता है और जब बालाजी बाजीराव तथा ताराबाई दोनों ही एक एक करके स्वर्ग सिधार गये तो जीजाबाई ने पेशवा माधव राव के समक्ष यह स्वीकार भी कर लिया कि शम्भाजी की सन्तान के विषय में प्रख्यात की गयी उपर्युक्त सारी गाथा गल्पमात्र ही थी। तथापि इस गल्पपूर्ण कथा का सुनिश्चित परिणाम निकला और पेशवा बालाजीराव उत्तर भारत की समस्याओं में उलझे रहने के कारण भी कोल्हापुर की समस्या का कोई निर्णायक हल न निकाल सका। इसी मध्य पेशवा भी मराठों की पानीपत में पराजय का संवाद सुनकर व्यथित हो २३ जून सन् १७६१ को परलोक सिधार गया और कोल्हापुर का प्रश्न हल न हो पाया।

इस अधूरे कार्य को सम्पन्न करने के लिये ताराबाई ने नाना फड़नवीस से परामर्श किया। वह इसी उद्देश्य से सतारा आया। कोल्हापुर का उत्तराधिकारी चुने जाने वाले व्यक्ति के विषय में ताराबाई तथा जीजाबाई में घोर मतभेद था। इस सम्बन्ध में जीजाबाई ने ताराबाई की नीति का ही यथा सम्भव अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया। वह कहती थी कि उसके पति का दाह संस्कार करने वाले व्यक्ति मालोजी भोंसले ने स्वयं यह वचन दिया था कि वह उसके पुत्र को ही उत्तराधिकार दिलायेगा। इसके विपरीत ताराबाई शाहजी (सम्भवतः शिवाजी के पिता) के एक पुत्र को जो उस समय जीवित भी था, कोल्हापुर का सिंहासन दिलाना चाहती थी। इस समस्या का कोई संतोषप्रद हल हो पाने के पूर्व ही पेशवा बालाजीराव की मृत्यु के प्रायः छः मास पश्चात् ६ दिसम्बर सन् १७६१ को दिन राजमाता ताराबाई भी इस संसार से चल बसी।

सारांश—ताराबाई को अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति तथा राजसत्ता को हस्तगत करने के लिये पेशवा बालाजीराव से सम्बद्ध संघर्ष करना पड़ा। उसने पहले तो रामराजा को अपना वध पौत्र सिद्ध करके उसे सतारा का छत्रपति बनाने का सफल किन्तु अत्यन्त ही स्वार्थपूर्ण प्रयास किया। तत्पश्चात् उसको अपने पक्ष में मिलाने में अपने को असफल पाकर उसने यह झूठी अफवाह फैला दी कि यह व्यक्ति एक बाहरी व्यक्ति होने के कारण सतारा की गद्दी का यथोचित स्वामी कभी भी नहीं बनाया जा सकता। अपनी बात चलाने तथा राज्य पर अपना समुचित प्रभाव स्थापित करने के लिए उसने पेशवा से सदैव ही वैमनस्य रक्खा।

अध्याय **3**

पानीपत का तीसरा युद्ध

Q Discuss the attitude of the Muslim powers in India towards the Marathas on the eve of and during the battle of Panipat

Or

(R U 1956)

The defeat of the Marathas at Panipat was due as much to bad generalship as to the inherent defects of the Maratha Military System (Sen) Discuss fully the causes of their defeat (R U 1955)

Or

Examine in detail the events leading to the third Battle of Panipat and the military strategy followed by each side (R U 1963)

प्रश्न—पानीपत के युद्ध के समय तथा उसके पूर्व मराठों के प्रति भारत के मुस्लिम सत्ताधारियों के दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिये। (रा० वि० वि० १९५६)

अथवा

पानीपत में मराठों की पराजय का कारण जितना कि उनका अयोग्य सेना नायकत्व था उतना ही उनकी सैनिक व्यवस्था के आन्तरिक दोष भी थे। (सेन) उनकी पराजय के कारणों पर समुचित प्रकाश डालिये। (रा० वि०वि० १९५५)

अथवा

पानीपत के तीसरे युद्ध तथा उसमें भाग लेने वाले पक्षों द्वारा अपनाई गई युद्ध शैली से सम्बन्धित घटनाओं की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिये।

(रा० वि० वि० १९६३)

उत्तर—पानीपत का युद्ध सन् १७६१ ई० में लड़ा गया, किन्तु इसके दीर्घकाल पूर्व से ही मराठों के बढ़ते हुए उत्कर्ष से भारतीय मुस्लिम शासकों में तीव्र ईर्ष्या होने लगी थी। मराठे अपने चौथ और सरदेशमुखी के अधिकारों को देश के विभिन्न क्षेत्रों पर स्वच्छन्दतापूर्वक लादे हुए थे जिससे उनकी आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर बलिष्ट बनती जा रही थी। अक्टूबर १७५७ ई० तक उन्होंने गुजरात अहमदाबाद आदि की विजय कर ली थी। सूरत पर भी सम्राट के फर्मान दिनांक १ दिसम्बर १७५९ के अनुसार मराठों को अधिकार प्रदान किया जा चुका था जिससे वहाँ के मुगल सूबेदार मियाँ अच्छन की उस स्थान पर समस्त सत्ता का अन्त कर दिया गया और अब मराठा की शक्ति कुछ भागों को छोड़कर समस्त भारत में सर्वोपरि बन गई थी।

नासिरजंग तथा मराठे—आसफशाह ने अपने दीर्घकालीन संघर्षों से यह अनुभव प्राप्त किया कि दक्षिण भारत में मराठों को परास्त करना एक अत्यंत दुष्कर कार्य था। उसने अपने पुत्र को अंतिम समय तक यही सीख दी थी कि वह मराठों से भविष्य में शत्रुता न मोल ले। परन्तु नासिरजंग ने जिसे पाण्डिचेरी के फ्रांसीसियों का समर्थन सुलभ था, मराठों को परास्त कर कर्नाटक में मराठों के स्थान पर फ्रांसीसियों का प्रभाव विस्तार करने का नवीन मार्ग अपनाया। उसे स्थानीय पठानों का समर्थन प्राप्त न हो सका था अतः उन्होंने ५ दिसम्बर को उसका वध कर दिया और मुजफ्फरजंग को उसका उत्तराधिकारी घोषित किया। तथापि पठानों और फ्रांसीसियों का संघर्ष समाप्त न हुआ और जनवरी १७५१ ई० मुजफ्फरजंग भी जबकि वह अर्काट से कडप्पा की ओर आरहा था, मार डाला गया। बूसी नामक तत्कालीन फ्रांसीसी सेनापति ने इस भीषण परिस्थिति में सलाबतजंग को हैदराबाद का नवाब घोषित किया। मराठों ने पहले तो इस नवीन शासक से युद्ध करने का विचार किया, किन्तु पेशवा ने कुछ सोच समझकर इस नवीन शक्ति तथा इसके फ्रांसीसी समर्थकों से शत्रुता मोल लेना उचित न विचार कर उससे संधि कर ली। इसके उपलक्ष में उसने सलाबतजंग से उसके उत्तराधिकार युद्ध में अपनी तटस्थता के बदले १ लाख रुपया चौथ वसूल की। इसी मध्य बूसी को सूचना मिली कि पेशवा ने नासिक के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था और तत्पश्चात् वह आसफजाह के ज्येष्ठ पुत्र गाजीउद्दीन से भी साँठ-गाँठ कर रहा था।

मराठा निजाम युद्ध—२२ अप्रैल १७५१ को बूसी के अनुयायी रामदास पंत ने उत्तर भारत से पेशवा दफ्तर का आते हुए धन कोष पर औरंगाबाद के समीप एकाएक छापा मारकर उसे हस्तगत कर लिया इस पर पेशवा ने अपना तीव्र विरोध प्रकट किया, किन्तु उसे समझा बुझाकर शांत करने का प्रयास किया गया। इसी कार्य के लिये रामदास पंत ने अनोजी तिम्बालकर को पूना में नियुक्त कर रखा था। पेशवा सलाबतजंग तथा बूसी की मराठा विरोधी गुप्त योजना को स्वयं भली भांति समझ रहा था। अन्ततः यह प्रत्याशित युद्ध नवम्बर सन् १७५१ ई० में हुए बिना न रहा। इस युद्ध में मुसलमानों ने पेशवा पर धोखे से आक्रमण किया, किन्तु उनके सेनापति सैयद लश्कर खाँ को मराठों ने घोद नदी के युद्ध में पूर्णतया परास्त कर दिया। इसी मध्य चिमनाजी बापूजी की भी शत्रुओं के हाथों दुखद मृत्यु होगई थी। इस युद्ध से फ्रांसीसियों को भी यह अनुभव होगया कि मराठा शक्ति दुर्जय था किन्तु उन्होंने सलाबतजंग को प्रभावित करने का अपना कुचक्र अब भी समाप्त न किया। फलतः पेशवा को उससे अत्यन्त असन्तोष होगया और अब उसने सचमुच दिल्ली से गाजीउद्दीन को बुलाने का निश्चय कर लिया। उसने इस कार्य के लिए सिंधिया और होलकर को भी प्रोत्साहित किया। गाजीउद्दीन का

आक्रमण विफल सिद्ध हुआ क्योंकि उसके पेशवा के साथ मिलकर बनाये गये कार्यक्रम को सलाबतजंग के विरुद्ध सञ्चालित करने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। गाजीउद्दीन को निजामअली की माता ने जब वह १६ अक्टूबर को सलाबतजंग के सहभोज में शामिल हुआ भोजन के साथ विष दे दिया था। इस दुर्घटना की सूचना पाते ही पेशवा की सेनाओं ने सलाबतजंग तथा बुसी को पकड़ने के लिये उनका पीछा करना आरम्भ कर दिया। अन्ततः उन्होंने अपने पक्ष को दुर्बल देखकर सन्धि याचना की, पेशवा ने अस्वीकार कर दिया। उसका कहना था कि मराठों को गाजीउद्दीन द्वारा दिखाई गई सुविधाओं को मान्यता प्रदान की जाये तभी संधि की जा सकती थी। उसकी यह माँग स्वीकार कर ली गई। फलतः बगलान, खानदेश तथा आधे बरार पर मराठों का आधिपत्य हो गया और नासिक, त्र्यम्बक, तथा उस प्रदेश के अनेक दुर्ग भी उनके हाथ में आ गये। अर्काट की नवाबी के लिये मुहम्मदअली तथा चाँदा साहब में जो संघर्ष चला उसमें चाँदा साहब की हत्या की गई और तदुपरान्त कर्नाटक में फ्रांसीसियों का प्रभाव यथेष्ट रूप से बढ़ने लगा था। इसी मध्य भाऊ साहब ने होली हानुर के दुर्ग तथा धारवार को विजित कर लिया। कोल्हापुर के राजा ने भी उसी समय भाऊ साहब को पारगढ़, भीमगढ़ वल्लभगढ़ एवं कालिन्दी के दुर्ग तथा खानापुर का क्षेत्र सौंप दिया क्योंकि उन्होंने उसकी पहले कभी महत्वपूर्ण सेवा की थी। सन् १७५३ से १७५७ ई० तक कर्नाटक के अधिकांश क्षेत्रों पर मराठों ने अधिकार कर लिया। पेशवा ने स्वयं सीरा तथा सेवानूर के मुस्लिम शासकों का दमन किया। बदरपा पर भी पेशवा का अधिकार हो गया था किन्तु जिस समय बेदनूर के पतन में बालाजी कृष्ण संलग्न था, उसे अचानक पूना वापस बुला लिया गया, जिससे वहाँ के सरदार हैदरअली को अपनी शक्ति वृद्धि करने का स्वर्ण अवसर उपलब्ध हुआ।

सिन्दखेड़ में निजाम की पराजय—सलाबतजंग ने सितम्बर १७५७ ई० में बसालतजंग तथा शाहनवाज खाँ के प्रोत्साहन से बुसी पर जिसे उसने १८ मई १७५६ ई० को ही अपदस्थ कर दिया था उसके चार मीनारों के दुर्ग में प्रबल आक्रमण कर दिया। परन्तु उस फ्रांसीसी सेनापति ने सलाबतजंग को अपमानजनक पराजय का ही मुख देखने को विवश कर दिया। उसे बुसी को पुनः अपना सेनापति बनाना पड़ा तथा साथ ही साथ उसे अपने उत्तरी क्षेत्रों में कई एक जिले भी सौंपने पड़े। अतः अब पेशवा ने भी सलाबतजंग से गोदावरी के उत्तर के क्षेत्रों की माँग की, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। अतः दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। सिन्दखेड़ के स्थान पर मराठों और सलाबतजंग की सेनाओं की मुठभेड़ होगई जिसमें मराठे ही विजयी हुए। दोनों पक्षों में २९ दिसम्बर १७५७ ई० को संधि हो गई, जिसके अनुसार निजाम ने मराठों को नलदुर्ग तथा २५ लाख की मालगुजारी के

क्षेत्र प्रदान करने पड़े। इसके पश्चात् उत्तर भारत पर अफगानों के आक्रमण का भय उत्पन्न हो गया और पेशवा ने सदाशिवराव भाऊ को पूना वापस बुलाकर उसके साथ उत्तर भारत की समस्या पर सक्रिय विचार करना प्रारम्भ कर दिया।

अब्दाली शाह का आक्रमण—हम ऊपर यह उल्लेख कर चुके हैं कि सन् १७४१-४८ ई० के मध्य पेशवा ने स्वतः उत्तर भारत का चार बार सैनिक अभियान किया था। वह उस सुदूरस्थ भाग में नियुक्त अपने कर्मचारियों की क्रिया विधि पर तीव्र दृष्टि रखता था किन्तु शाहूजी की मृत्यु के फलस्वरूप उसे दक्षिण भारत की जटिल राजनीति पर ही अपना ध्यान अधिकाधिक रूप में केन्द्रित करना पड़ा जिससे उसे उत्तर भारत की प्रक्रिया पर नियन्त्रण रखने का अवसर ही न मिल सका।[1] इस बीच उसने अपने भाई रघुनाथराव को दो बार उत्तर भारत में भेजकर वहाँ की स्थिति पर काबू पाने का प्रयास किया किन्तु इस कार्य के लिए रघुनाथराव के प्रयास अपर्याप्त सिद्ध हुए। फलतः इस विशाल भूभाग की राजनीति मल्हारराव होल्कर तथा सिंधिया बन्धुओं के हाथ में छोड़ दी गई। दिल्ली में मराठा नीति का संचालन हिंगने परिवार के सदस्यों द्वारा होता रहा और वहाँ पर अन्ताजी माकेश्वर की अधीनता में एक मराठा कुमुक भी अवस्थित थी। दोआब तथा तथा बुन्देलखण्ड में गोविन्द पन्त बुन्देले को नियुक्त किया गया था जो वहाँ से कर वसूल करता था।

इधर शाह अब्दाली ने नादिरशाह के नेतृत्व में भारत के विषय में महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त कर रखा था और उसकी मृत्यु के बाद वह उसके द्वारा छोड़े गये विस्तृत भूक्षेत्रों तथा विशाल धन राशि का भी स्वामी बन बैठा। उसने शाहवली खाँ के सहयोग से काबुल को अपना सैनिक एवं राजनीतिक केन्द्र बनाया इसी प्रकार उसे शाहपसंद खाँ नामक एक अन्य सुयोग्य पदाधिकारी की सेवायें भी उपलब्ध हो गई थीं जिससे वह अपनी विदेश विजय की महत्वाकांक्षा की पूर्ति करने का अवसर देख रहा था। जुलाई सन् १७४५ ई० में पंजाब का सूबेदार जकरिया खाँ था जिसकी उस वर्ष मृत्यु हो जाने के फलस्वरूप उसके पुत्रों याहिया खाँ तथा शाह नवाज खाँ के मध्य उत्तराधिकार-युद्ध के सूत्रपात ने शाह अब्दाली को भारत में प्रवेश करने का उपयुक्त अवसर प्रदान कर दिया। याहिया खाँ की सहायता दिल्ली सम्राट का वजीर कमरुद्दीन कर रहा था, जबकि शाहनवाज खाँ के अनुयायी अदीना बेग ने अहमदशाह अब्दाली की सहायता उपलब्ध करने में सफलता पाई। उसके

1 Sardesai— New History of the Marathas', Page 357
The affairs in that quarter came to be left entirely to Malha Rao Holker and the Sindia brothers with the Hingnes at Delhi incharge of Maratha diplomacy Govindpant Bundel in Bundel Khand and the Doab as a civil officer and Antaji Mankeshwar as commandant of the small Maratha contingent in Delhi

आक्रमण पर अब्दाली ने जनवरी सन् १७४८ ई० में पंजाब पर आक्रमण करके लाहौर को अधिकृत कर लिया। तथापि राजकुमार अहमदशाह, वजीर कमरुद्दीन, मीरबख्शी सफदरजंग तथा जयपुर के ईश्वरीसिंह ने एक विशाल सेना संगठित करके २१ मार्च १७४८ को सरहिन्द से १० मील पर स्थित मानुपुर के स्थान पर अहमदशाह अब्दाली को परास्त कर दिया जिससे वह पंजाब के सूबेदार मीर मन्नू से सन्धि करके वापस लौट गया। इसके एक मास पश्चात् मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई।

नवीन सम्राट अहमदशाह ने सफदरजंग को अपना मुख्यमन्त्री बना लिया और उसने उसके अधिकार में अवध तथा इलाहाबाद के क्षेत्र भी रहने दिये। मराठे बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा से चौथ वसूल करते थे। और आगरे में सूरजमल जाट ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर रक्खा था। इसी प्रकार राजपूत सरदारों ने भी अब अपनी स्वतन्त्र सत्ता का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। अतः यह स्पष्ट है कि इस समय तक सारे दक्षिण भारत में सफदरजंग अथवा मराठों में से किसी न किसी का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। सम्राट के सीधे नियन्त्रण में दिल्ली तथा अटक के मध्यवर्ती, उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों तथा दोआब को छोड़कर अब भारत का कोई भी भाग न रह गया था। आगामी वर्ष (१७४९ ई०) भारतीय पठानों ने वजीर सफदरजंग के विरुद्ध विद्रोह किया जिससे प्रेरित होकर शाह अब्दाली ने पंजाब पर आक्रमण कर दिया। मीर मन्नू ने उसके समक्ष अपने को दुर्बल पाकर उससे सन्धि कर ली। जिसके अनुसार उसने शाह को १० हजार रुपये वार्षिक भेंट तथा पंजाब के चारों उत्तरी प्रान्तों से प्राप्त मालगुजारी भेजने का वचन दे दिया।

पठान युद्ध का सूत्रपात—सम्राट अहमदशाह की माता ऊधमबाई तथा एक दरबारी हिजड़े—जाविद खाँ—ने सफदरजंग के विरुद्ध षडयन्त्र करके उसकी सारी प्रशासकीय शक्ति को स्वयं हस्तगत करने में सफलता पाई। अस्तु अहमदशाह ने दक्षिण से उसके भाई नासिरजंग को बुलवाकर वजीर का निष्कासित करने की चेष्टा की।[1] अतः सफदरजंग ने हिंगने कमवारियों की मध्यस्थता से मराठों की सहायता उपलब्ध कर ली। पेशवा की आज्ञानुसार एक विशाल मराठा सेना भी होल्कर और सिंधिया के नेतृत्व में उसकी सहायता करने को भेजी गई, तथापि सफदरजंग ने अपने भाई नासिरजंग को भी पत्र लिखा कि वह नर्मदा नदी पार करके सम्राट की सहायता करने के प्रयासों से दूर रहे फलतः नासिरजंग दिल्ली न पहुँच पाया। परन्तु इससे भी सफदरजंग की स्थिति में कोई परिवर्तन न आया और अब जाटों, रुहेलों तथा दोआब के पठानों ने सफदरजंग के क्षेत्रों को और भी तीव्रता से आक्रान्त करना प्रारम्भ कर दिया। दोआब के पठान उसके कट्टर वैरी बन गये थे क्योंकि इस शिया सरदार ने

---

1 Sardesai—New History of the Marathas

मुहम्मदशाह के समय म उन पर भीषण अत्याचार ढाये थे। ये पठान अब विदेशी अफगानो से साँठ गाँठ भी करने लगे थ।

सन् १७५० ई० म अहमद खाँ वगाश नामक पठान ने उसके शिविर पर आक्रमण करके उसके एक सेनापति नवलराय को मौत के घाट उतार दिया। सितम्बर १७५० ई० में पठानों ने कासगज के समीप पुन सफदरजग को परास्त करके लखनऊ तथा इलाहाबाद पर प्रबल आक्रमण किया। इस दशा म सफदरजग को मराठा की सहायता माँगने को विवश होना पडा। इस समय (१७५१ ई०) तक पेशवा द्वारा होल्कर और सिंधिया के नेतृत्व म भेजी गई सेना भी जाटा के समीप आ चुकी थी। उनमे सफदरजग की बातचीत दो मार्च १७५० ई० को हुई और मराठा सरदारो ने उससे २५ सहस्त्र रुपये दैनिक रूप म सेना के व्यय के लिये माँगे। वजीर ने जाटो से भी सैनिक सहायता की माँग की, जिसे उन्होंने १५ सहस्त्र रुपये दैनिक व्यय पर देना निश्चित कर लिया।

मराठों न दिये हुए वचन के अनुसार २० मार्च तक अहमद खाँ वगाश की सेनाओं को इटावा से समीप कदीरगज के स्थान पर परास्त कर दिया। इसकी सूचना पाकर अहमद खाँ वगाश ने इलाहाबाद का घेरा छोडकर अपनी राजधानी फर्रुखाबाद की रक्षा करने के लिये तीव्र गति से प्रस्थान कर दिया। उसके नतत्व म रुहेलों ने मराठा सेना से भीषण सघर्ष किया, जिसमे वे भारी सख्या म मराठा द्वारा मौत के घाट उतार गये। पठाना के शिविर को भी उन्होंने लूट लिया। इस घटना का वर्णन करते हुए गोविन्द पन्त बुन्देले न अपने एक पत्र मे उल्लिखित किया कि 'पठान लोग दिल्ली मे अपन शासन का पुनरावृत्ति करना चाहते थे, और इसमे असफल होकर भी वे सम्राट की स्थिति को खतरे म डालकर तथा सफदरजग को सत्ता च्युत करके वजीर तथा मीरबख्शी के पदों का स्वय अपने लिय सुरक्षित बना लेने के प्रबल इच्छुक थे।'[1] सरदेसाई के कथनानुसार इस अत्यन्त भीषण परिस्थिति मे भी मुगल साम्राज्य की स्थिति को सुरक्षित बनाने वाले मराठे लोग ही थे।

फरवरी १७५२ ई० मे। सफदरजग न लखनऊ की सधि पर हस्ताक्षर किये, जिसके आधीन मराठा ने उसकी सहायता करने के बदले और अपने करो के रूप म दोआब का विशाल क्षेत्र उपलब्ध किया। तथापि हिन्दू धार्मिक स्थानों पर अधिकार करने के प्रश्न पर मराठों तथा सफदरजग और उसके पुत्र शुजाउद्दौला के मध्य अब भी कुछ न कुछ मतभेद चलता रहा। मार्च १७५२ ई० म शाह अब्दाली ने पजाब पर पुन आक्रमण किया और मीर मन्नू को हराकर उसने लाहौर तथा मुल्तान को हस्तगत कर लिया। १२ अप्रैल को सफदरजग ने सम्राट की ओर से मराठा से

---

1 "The Pathans attempted the restoration of their rule at Delhi and failing this they wished to coerce the Emperor so as to secure for themselves the posts of the Wajir and the Mir Bakhshi so doing away Safdar Jung s power

समझौता कर लिया जिसके अनुसार मराठो की सभी माँगे स्वीकार कर ली गई। पेशवा ने इस संधि के अनुगत पठानो राजपूतो तथा उनके अतिरिक्त विदेशी अफगान आक्रान्ता—शाह अब्दाली के विरुद्ध सम्राट को सनिक सहायता देना स्वीकार कर लिया, जिसके उपलक्ष में उस पजाब, सिन्ध तथा दोआब में चौथ वसूल करने तथा आगरा अजमेर की सूबेदारी के अधिकार प्रदान किये गये। इसी मध्य सम्राट ने शाह अब्दाली से भी समझौता करके उसके पक्ष में पजाब के सूबे से अपने अधिकार का परित्याग कर देने का वचन दे दिया था क्योंकि सफदरजग उस समय पर दरबार में उपस्थित न था। शाह अब्दाली द्वारा भेजा गया उसका एक प्रतिनिधि—कल दर खाँ—दिल्ली मे टिका हुआ था। यह एक अत्यन्त गम्भीर समस्या थी कि पजाब से अफगानो को किस प्रकार निष्कासित किया जाये। इसी मध्य पेशवा ने अपने सेना पतियो तथा उसके साथ ही गाजीउद्दीन को भी दक्षिण वापस आने का निर्देश किया। मराठे सफदरजग से ५० लाख की धनराशि जो कि उन्हे क्षतिपूर्ति के रूप में दी जानी स्वीकृत हुई थी, पाये बिना दिल्ली को खाली करने को तयार न थे। पेशवा की आज्ञानुसार सिंधिया तथा होल्कर ने दिल्ली को खाली करने का विचार किया क्योंकि वजीर गाजीउद्दीन ने सम्राट को ३० लाख रुपये अपने पद की प्राप्ति के उपलक्ष में देने का निश्चय किया था और उसमें से कुछ भाग सम्राट की ओर से मराठो को प्राप्त होना था।

दिल्ली मे गृह युद्ध—उस समय दिल्ली की राजनीति बहुत ही चिंताजनक बन चुकी थी। सम्राट और वजीर के पारस्परिक मतभेदो ने और भी भयकर रूप धारण कर लिया था। इसी मध्य अवसर पाकर वजीर सफदरजग ने खोजा जाविद खाँ को, जो सम्राट की माता ऊधमबाई का गुप्त परामर्शदाता था एकांत में बुला कर उसका धोखे से वध कर दिया। इससे भयभीत होकर सम्राट से सफदरजग से किसी प्रकार छुटकारा पाने का विचार करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १७५३ ई० मे शाह अब्दाली ने अपने एक अभिकर्ता को दिल्ली भेजकर सम्राट से ५० लाख रुपये भेट के रूप में माँगे जिन्हे देने को उसने गत वर्ष वचन दे रक्खा था। सफदरजग ने इस अवसर पर उसे आंशिक भुगतान करके किसी प्रकार वापस कर दिया तत्पश्चात् उसने मराठों से सहायता की जोरदार माँग की। इसी मध्य ऊधमबाई ने सम्राट अहमदशाह को इस बात पर राजी कर लिया कि वह उससे सफलतापूर्वक युद्ध करके उसे अवि लम्ब अपदस्थ कर दे। उसके इस कुचक्र मे कमरुद्दीन खाँ के पुत्र मीरबख्शी इंतजाम उद्दौला तथा शहाबुद्दीन ने भी साथ दिया। सफदरजग तथा मराठों की सेनाओं ने अहमद खाँ बगश तथा उसके पठान साथी तुरई खाँ को पकडकर मौत के घाट उतार दिया और इस प्रकार उन्होंने दिल्ली सिंहासन के कट्टर शत्रु—पठानों की शक्ति को ध्वस्त करने तथा साथ ही साथ वजीर सफदरजग की स्थिति को भी दिल्ली में बलिष्ट

बनाने में सफलता प्राप्त कर ली। इस युद्ध में दत्ताजी सिंधिया को पहली बार अपना शौर्य दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ। पठानों के विरुद्ध मराठा सेनाओं की विजय पर राजधानी पूना में अनेक विध हुए समारोह मनाये गये। इस समय तक गाजीउद्दीन, सिंधिया तथा होल्कर भी वहाँ पहुँच गये थे। किन्तु दिल्ली में गृह युद्ध की ज्वाला धधक रही थी उसी परिस्थिति की सूचना से अवगत होकर पेशवा को अत्यधिक चिन्ता हुई जिसने अपने भाई रघुनाथराव को भेजकर दिल्ली की परिस्थितियों पर विजय पाने की चेष्टा की। परन्तु रघुनाथराव इस कार्य के लिये अपर्याप्त सिद्ध हुआ। इस समय पर दिल्ली की मराठा सेना के सेनापति अन्ताजी तथा राजदूत हिंगने ने ही वहाँ की राजनीति में पेशवा का यथावश्यक प्रतिनिधित्व करने का प्रयास किया क्योंकि सम्राट तथा वजीर सफदरजंग दोनों ने उनसे अपने अपने लिये सैनिक सहायता की माँग की और मराठा पदाधिकारियों को भारी-भारी रिश्वतें देकर उन्हें अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया, अन्ताजी ने सम्राट को इस बात पर सहायता देने का वचन दिया कि मराठों को अवध तथा इलाहाबाद की सूबेदारी देदी जाय।

राजधानी में सम्राट तथा मन्त्री के पक्षों के मध्य लगभग महीनों तक निरन्तर संघर्ष चलता रहा। यह भीषण गृह युद्ध २६ मार्च को प्रारम्भ हुआ और ७ नवम्बर सन् १७५७ ई० को समाप्त हो गया और यह संघर्ष वस्तुतः दिल्ली तथा उसके आस पास १० अथवा २० मील के दायरे तक ही सीमित रहा था। २६ मार्च से ८ मई तक वजीर सफदरजंग यह निश्चित ही न कर पाया कि उसे क्या करना चाहिये—त्यागपत्र देकर अपनी पैतृक जागीर को लौट जाना अथवा सम्राट से क्षमा याचना करके सन्धि कर लेना। इस अनिश्चितता के कारण दोनों पक्षों में कोई प्रत्यक्ष युद्ध तो हुआ नहीं किन्तु शक्ति युद्ध निरन्तर चलता रहा। ९ मई को जबकि सूरजमल जाट वजीर सफदरजंग से आ मिला तो दोनों ने मिलकर सम्राट को एक स्थानीय दुर्ग में घेर लिया। उन्होंने दुर्ग पर गोलाबारी करके उसे बन्दी करने का भी प्रयास किया। इसी समय नजीब खाँ रुहेले के सम्राट के पक्ष में आ मिलने के फलस्वरूप युद्ध के प्रवाह में अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ और सम्राट अहमदशाह की स्थिति को बल मिला।

१३ मई को सम्राट ने वजीर सफदरजंग को पदच्युत करके उसके स्थान पर इन्तिजाम-उद्दौला को अपना मन्त्री बनाया। अब १६ वर्षीय गाजीउद्दीन इमाद-उल-मुल्क भी सम्राट से आ मिला। १४ जून को दोनों पक्षों में भीषण युद्ध हुआ जो तालकटोरा नामक स्थान पर लड़ा गया और जिसमें सफदरजंग के एक स्वामि-भक्त अनुयायी—राजेन्द्रगिरि गोसाँवी को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। दूसरा घमासान युद्ध १६ अगस्त को लड़ा गया, जिसमें पराजित सफदरजंग ने अपनी जागीर को वापिस जाने का विचार करना प्रारम्भ कर दिया। सम्राट तथा गाजीउद्दीन ने

पेशवा सिंधिया तथा होल्कर को जोरदार पत्र लिखे तथा उनसे शीघ्रगति से दिल्ली आकर सम्राट की सहायता करने की माँग की जिसके उपलक्ष में उन्हें अवध तथा इलाहाबाद की सूबेदारी और एक करोड़ रुपया नकद देने का प्रलोभन दिया गया। अतएव पेशवा ने पूना से रघुनाथराव तथा होल्कर और सिंधिया को उनकी सेनाओं के साथ दिल्ली भेज दिया, किन्तु वहाँ पहुँचने के पूर्व ही युद्ध बन्द हो गया क्योंकि बारापूला के स्थान पर वजीर सफदरजंग तथा सम्राट और गाजीउद्दीन की सेनाओं के होने वाले युद्ध में सफदरजंग बुरी तरह से पराजित हुआ और उसने सम्राट से अपने सूबों को वापस लौट जाने तथा मन्त्रि पद के अपने समस्त अधिकारों का सदैव के लिये परित्याग कर देने की अनुमति माँगी। अन्त ७ नवम्बर १७५३ ई० को ऊधमबाई माधोसिंह तथा गाजीउद्दीन आदि के प्रयासों से सम्राट ने सफदरजंग से संधि करके उसके अवध और इलाहाबाद की सूबेदारी के अधिकारों को भी अस्थाई मान्यता दे दी। जिससे मल्हारजी होल्कर का दिया गया तत्सम्बन्धी आदेश रद्द हो गया। इस प्रकार सफदरजंग लखनऊ चला आया और सूरजमल जाट को भी सम्राट ने उसके सफदरजंग को सहायता करने के अपराधी को क्षमा कर दिया।

सम्राट अहमदशाह की हत्या तथा अज्जुद्दौला आलमगीर द्वि० का सिंहासनारोहण—मई सन् १७५४ ई० में गाजीउद्दीन ने मराठों की सहायता से सम्राट अहमदशाह को पदच्युत कर दिया और अज्जुद्दौला को उसके स्थान पर सम्राट बनाने का निश्चय किया। इसी समय सम्राट के सिकन्दराबाद से दिल्ली लौटने की सूचना पाकर कुछ मराठा सैनिकों ने मलिका जमानी और उसके साथ लगभग ३५० शाही जनानखानों की महिलाओं को मार्ग में ही लूट लिया। इसके पश्चात् सम्राट को विवश किया गया कि वह गाजीउद्दीन को अपने मन्त्री के पद पर नियुक्त करे तथा इतिजामुद्दौला को अपदस्थ कर दे। कुछ ही समय पश्चात् सम्राट तथा उसकी माता ऊधमबाई की हत्या करके अज्जुद्दौला को जो बहादुरशाह का पौत्र था आलमगीर द्वितीय के नाम से सम्राट के पद पर आरूढ़ किया गया। इसी समय जयप्पा सिंधिया तथा रघुनाथराव भी दिल्ली आ गये जहाँ मल्हारराव होल्कर पहले से उपस्थित था और इन्हें गाजीउद्दीन ने साम्राज्य की मूल्यवान सेवा के उपलक्ष में ८२ लाख रुपये भेंट करने का वचन दिया। सरदेसाई ने लिखा[1] है कि जहाँ एक ओर शाहूजी आजीवन मुगल साम्राज्य के हितचिन्तक बने रहे वहाँ उनके सेनानायकों ने दूसरी ओर दरबारी कूटनीति में भाग लेकर तथा उसके सहारे लम्बी-लम्बी

---

1 Sardesai— New History of the Maratha Page 819
Ghazi ud-din promised them 82 lacs for their help in this grand revolution what a contrast with the wise policy which Shahu Raja had followed throughout his long reign The Maratha name and character henceforth reclined an indeliable stigma

धनराशियाँ वसूल करके मराठा जाति के गौरव और चरित्र पर कलंक का टीका लगा लिया।

वजीर गाजीउद्दीन का दुराज्य, मराठा सरदारों में मतभेद तथा मराठा-राजपूत शत्रुता—सन् १७५४ ई० से १७५९ ई० तक वजीर गाजीउद्दीन ने ही सत्ता का प्रयोग किया क्योंकि सम्राट आलमगीर द्वितीय को उसने बन्दी कर रक्खा था। उस समय दिल्ली में घोर असन्तोष व्याप्त था, गाजीउद्दीन के पास १२ सहस्त्र सैनिकों की एक विशाल सेना भी थी, जिसे उसने नियमित रूप से वेतन भी न दिया था। वह अपनी ही स्वार्थ पूर्ति में लगा हुआ कभी तो नजीबखाँ तथा रुहेलों की सहायता प्राप्त करने और कभी अब्दाली शाह की सहानुभूति उपलब्ध करने की अनथियर चेष्टा किया करता था। उसकी असन्तुष्ट सेना के सरदारों ने गाजीउद्दीन को पानीपत की सड़कों पर पकड़ कर उसके वस्त्र फाड़ डाले और उसे पृथ्वी पर बुरी तरह से घसीटा। उधर रघुनाथराव ने जिसे पेशवा ने दिल्ली की स्थिति पर काबू पाने के लिये भेजा था सम्राट तथा गाजीउद्दीन से मराठों द्वारा उनकी की गई सहायता के उपलक्ष में व्यय की गई धनराशि बार बार भुगतान माँगने में ही पूरे पाँच महीने व्यतीत कर दिये और उसमें उसे कोई सफलता भी न मिली। अतः उसने धन के अभाव में दिल्ली में रुहेलों के देश तथा गढ़मुक्तेश्वर होकर राजपूताने में प्रवेश किया। यहाँ से उसने चौथ वसूल करने के बहाने कन्नोड़, सामर तथा नरलोल आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए मल्हारराव होल्कर के साथ पुष्कर को प्रस्थान कर दिया। इसी मध्य जयप्पा सिंधिया, मारवाड़ के विजयसिंह के विरुद्ध अमरसिंह के पुत्र रामसिंह के उत्तराधिकार युद्ध में व्यस्त था। उससे रघुनाथराव ने भी उस युद्ध में अपनी सेनाओं के साथ आ मिलने का अनुरोध किया, जिसे सिन्धिया ने अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार सिंधिया तथा रघुनाथराव और होल्कर के मध्य इसी स्थान से मतभेद उत्पन्न हो गया। सन् १७५३ से १७५५ ई० तक रघुनाथराव ने उत्तर भारत में रहकर कोई भी कार्य न सम्पन्न किया और मराठों का प्रभुत्व अनेकानेक क्षेत्रों पर से शनैः शनैः विलुप्त होता जा रहा था। इस विषम परिस्थिति में अन्ताजी मोकेश्वर तथा हिंगने-बन्धुओं के मध्य जो पारस्परिक मतभेद उठ खड़ा हुआ, क्योंकि वे दोनों अपने अपने स्वार्थों की ओर अधिकाधिक रूप में आकर्षित हो रहे थे उसे निराकृत करने में भी रघुनाथराव को सफलता न मिली। इसके अतिरिक्त वह सिंधिया तथा होल्कर में भी मेल न करा सका।

सन् १७५५ ई० जयप्पा सिंधिया ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् जालौर तथा मारवाड़ के अन्याय महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर मराठों का अधिकार होगया। उसने जोधपुर पर भी आक्रमण किया, किन्तु विजयसिंह एक साधन सम्पन्न राजपूत सरदार था और जयपुर के माधोसिंह तथा कुछ अन्य राजपूत दलों का भी उसे समर्थन प्राप्त था। परन्तु उसने अब मराठों के विरुद्ध खुले युद्ध में सफलता की

कोई आशा न देख सिंधिया से जो नागौर के घेरे में संलग्न था से संधि करने के निमित्त उसके पास अपने दूत भेजना प्रारम्भ किया। २५ जुलाई १७५५ ई० के दिन जब यह मराठा सरदार अपने शिविर में स्नान करके तौलिये से अपने केश सुखा रहा था जोधपुर के वकील विजय भारती गोसावी, राजसिंह चौहान जगनेश्वर तथा कुछ अन्य राजपूत कर्मचारी अन्दर बैठे थे दो भिखमंगों ने आकर शिविर के सामने में गिरे हुए घोड़े के दोनों में से अन्न छानने के बहाने अवसर पाकर उस पर आक्रमण कर दिया और उसे मौत के घाट उतार दिया। इस दुर्घटना से क्रुद्ध मराठों ने दत्ताजी तथा जनकोजी सिंधिया के नेतृत्व में राजपूतों का क्रूरता पूर्वक विनाश किया। १७५५ के अन्त तक राजपूतों का साहस समाप्त हो गया और विजयसिंह ने संधि याचना की। उसने सिंधिया को ५० लाख रुपये क्षति पूर्ति तथा अजमेर और जालौर के क्षेत्र प्रदान किये तथा अपने चचेरे भाई रामसिंह को राज्य का आधा भाग देने का वचन दिया। इस प्रकार मारवाड़ की समस्या को सुलझाने के पश्चात् दत्ताजी तथा जनकोजी सिंधिया नागौर से उज्जैन होते हुए पूना वापस लौटे। वहाँ पेशवा ने घमार गुंडा नामक स्थान पर उनसे भेंट करके जयप्पा की हत्या के विषय में दुःख प्रकट किया। सिंधिया सरदारों ने मल्हारराव से जो उनसे मिलने के लिये उसी समय उस स्थान को गया था अपना मतभेद समाप्त करके भेंट करने से इन्कार कर दिया इस प्रकार इस युद्ध का दुष्परिणाम यह हुआ कि मराठों ने अपना एक कुशलतम सेना नायक खो दिया स्वयं भविष्य के लिये स्थाई शत्रुता भी मोल ली।

अब्दाली शाह को निमन्त्रण किया जाना दिल्ली में अशान्ति तथा अब्दाली की सफलता – सन् १७५२ ई० में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण ने भारत को, जितना कि वह १२ वर्ष पूर्व नादिरशाह के आक्रमण से क्षतिग्रस्त हुआ था अत्यधिक क्षति पहुँचाई और नवम्बर १७५३ ई० में पंजाब के मुगल सूबेदार मीर मन्नू की मृत्यु के फलस्वरूप उस प्रदेश में उत्तराधिकार संघर्षों के सूत्रपात ने देश पर और भी अधिक भीषण विपत्ति ढा दी। उधर सम्राट ने भी पंजाब में किसी शक्तिशाली सूबेदार की नियुक्ति करके उस सीमान्त की तत्परतापूर्वक सुरक्षा व्यवस्था करने की भी उपेक्षा की। उसने मीर मन्नू की विधवा को उसके अल्पायु पुत्र की संरक्षिका के रूप में अपने मृत पति के स्थान पर शासन की देख रेख करने का अधिकार प्रदान करके बड़ी भूल की जिससे गाजीउद्दीन को अपनी स्वार्थ पूर्ति करने का अवसर मिल गया। वह ७ फरवरी १७५६ ई० को एक विशाल सेना लेकर सरहिन्द पहुँच गया जहाँ उससे दोआब का सूबेदार अदीना बेग भी आ मिला। उसने उस लाहौर भेजकर उसके माध्यम से मीर मन्नू की विधवा मुगलानी बेगम के साथ उसकी नौ जवान पुत्री उम्दा बेगम तथा उनकी सम्पूर्ण संचित पूंजी को भी अपने अधिकार में किया और अदीना बेग को पंजाब की सूबेदारी सौंप दी। इससे पंजाब में बड़ी अव्यवस्था एवं अशान्ति व्याप्त हो गई और अब्दाली शाह को पंजाब पर आक्रमण करने की

प्रेरणा मिली। वजीर गाजीउद्दीन, मुगलानी बेगम तथा उसकी पुत्री को अपने साथ दिल्ली ले गया। उसने रनवास की महिलाओं मलिका जमानी आदि को दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धन देना भी बन्द कर दिया, जिससे भूखों मरती हुई शाही बेगमों ने नजीबउद्दौला खां को बुलवा कर उससे परिस्थिति को नियन्त्रण में लाने के विषय में परामर्श किया। नजीबउद्दौला उन्हें यह विश्वास दिलाने में सफल हो गया कि चूंकि वजीर गाजीउद्दीन मराठों के बल पर ही सत्तारूढ था, अत बिना मराठों का दमन किये हुए उसकी पदच्युति की कोई आशा न थी, और मराठों के दमन का एकमात्र उपाय अब्दाली शाह को निमन्त्रित करना ही था। नजीबउद्दौला ने ही असन्तुष्ट मुगल बेगमों की ओर से अब्दाली को भारत आने का बारम्बार सन्देश भेजा। उसने अपने भाई सुल्तान खाँ को भी शाह से काबुल में सेना सहित जा मिलने के लिये भेज दिया। मध्य मीर मन्नू की विधवा मुगलानी बेगम ने अहमदशाह अब्दाली को निमन्त्रित करते हुए अपना निम्नलिखित पत्र लिखा—

मैं भारतीय सामन्तों के कुचक्रों से पददलित हो चुकी हूँ। मेरे दिवगत श्वसुर —वजीर कमरुद्दीन खाँ—के महल में करोड़ों रुपये की धन सम्पत्ति गड़ी हुई है। जिसका मुझे स्वय पूरा पता मालूम है और उसके अतिरिक्त महल के कमरों में भी ढेरों सोना चाँदी सचित है। यदि आप इस समय पर आक्रमण करें तो यहाँ का सम्पूर्ण राज्य तथा धन सम्पत्ति, आपके हाथ में आ सकती है।

अहमदशाह अब्दाली अपनी ओर से युद्ध न छेड़ना चाहता था अत उसने शान्ति पूर्वक समस्या को हल करने के निमित्त अपने राजदूत कलन्दर खाँ को दिल्ली भेजा[2] किन्तु वजीर गाजीउद्दीन ने उसकी कोई परवाह न की। अस्तु अब्दाली शाह को स्वय पेशावर आना पड़ा जहाँ से उसने अपने पुत्र तैमूर शाह तथा सेनापति जहान खाँ को लाहौर पर अधिकार कर लेने के लिए भेज दिया। उन्होंने अदीना बेग को हराकर युद्ध स्थल से खदेड़ दिया और सतलज नदी के किनारे तक खूब लूट-पाट मचाई। ८ जनवरी १७५७ ई० को अब्दाली का सेनापति जहान खाँ बिना किसी प्रकार की रोक-टोक के सरहिन्द जा पहुँचा। इसी समय शाह अब्दाली को पेशावर में दिल्ली सम्राट की इस दुर्बलता का पता लगा तो उसने द्रुतगति से

1 See H R Gupta— Later Mughal history of the Punjab

I am ruined by the treachery of the Indian Chief Goods and cash worth crores lie buried my knowledge in the palace of my late father in law—Wazir Qamarud-din Khan besides heaps of gold and silver stored inside the ceiling If you invade India this time the Indian Empire will all its riches will fall into yours hands

2 अक्टूबर १७५६ ई०।

दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। वह शीघ्र ही दिल्ली के समीप आ पहुँचा, जिसकी सूचना पाकर दिल्ली की अरक्षित जनता में निराशा छा गई और अधिकांश धनी महाजनों ने तो अपनी मूल्यवान वस्तुओं को लेकर समीपस्थ ग्रामों में ही शरण ली। कुछ लोग मथुरा को सुरक्षित समझकर वहाँ भी भाग गये। किन्तु जितने भी लोग दिल्ली में रह गये, उनको निराशा की आशा न रही क्योंकि वजीर गाजीउद्दीन स्थिति पर नियन्त्रण पाने के सर्वथा अयोग्य था। दिल्ली से भागकर इधर-उधर जाने वाले अधिकांश व्यक्तियों को जाटों तथा लुटेरों ने जी भरकर लूटा। गाजीउद्दीन ने कोई उपाय न देख अब मुगलानी बेगम से भेंट करके उसे अब्दाली शाह से मार्ग में ही मिलकर उससे क्षतिपूर्ति के रूप में एक विशाल धनराशि लेना स्वीकार करवाने के लिए तैयार करने का प्रयास किया। मुगलानी बेगम ने उसे झूठा आश्वासन देते हुए दुतरफा मार्ग अपना कर निजी स्वार्थपूर्ति करने का यत्न किया। उसने अब्दाली शाह को दिल्ली सरकार की दुर्बलताओं के विषय में समय-समय पर महत्वपूर्ण सूचनायें गुप्तरूप से भेजकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। दुर्रानी शाह ने १४ जनवरी १७५७ ई० को गाजीउद्दीन के अपने दूतों को भेजकर उससे करोड़ नकद धन तथा सिन्धु एवं सतलज के मध्यवर्ती समस्त क्षेत्रों की माँग की अन्यथा उसने दिल्ली पर प्रबल आक्रमण करने की धमकी दी।

अहमदशाह दुर्रानी ने मुगलानी बेगम के प्रति उदारता का व्यवहार करके उसे जलन्धर दोआब तथा काश्मीर के कुछ जिले जागीर के रूप में दिये। उसे मुगलानी बेगम से मुगलों तथा हिंदू सामन्त सरदारों के विषय में अनेक गुप्त बातें ज्ञात हुई जिससे उसका भारत पर आक्रमण करने का हौसला और भी अधिक बढ़ गया। उधर शाह अब्दाली के आने की सूचना पाकर वजीर गाजीउद्दीन १६ जनवरी को स्वयं उसके मन्त्री शाहवली खाँ से मिलने के लिए गया जो उसे अपने राजा से मिलाने के लिए अपने साथ में ले गया। अहमदशाह अब्दाली ने गाजीउद्दीन को उसकी अयोग्यता तथा कुशासन के लिए खूब डाटा फटकारा और उसे उसके पद पर स्थायी करने के उपलक्ष में उससे एक करोड़ नकद धन माँगा इसे दे सकने में उसने अपनी असमर्थता प्रकट की फलतः २८ जनवरी १७५७ के दिन अहमदशाह दुर्रानी ने दिल्ली में प्रवेश किया और वहाँ उसने अपने नाम से खुतबा पढ़वाया। इस समय उसके साथ ५० सहस्त्र सेना थी जिसमें से ३० सहस्त्र सैनिक तो सीधे अफगानिस्तान से आये थे किन्तु शेष भारत में ही भर्ती किये गये थे।

इन सेनाओं के माध्यम से अहमदशाह अब्दाली (दुर्रानी) ने न केवल दिल्ली पर ही प्रत्युत उसके आसपास १०० मील के दायरे में पड़ने वाले अन्यान्य नगरों तथा मथुरा पर भी नाना प्रकार के भीषण अत्याचार ढाये। शाह अपने साथ भारत की असंख्य धन सम्पत्ति लूट ले गया और उसके अनुयायी अफगान सरदारों ने भी मनमानी लूटपाट की। दिल्ली तथा उसके आसपास के नगरों में ऐसा एक आदमी

भी न बचा जिसको इन विदेशी अफगानों ने सम्पत्ति न लूटी हो। प्रजाजन निराश होकर अपने प्राणों के मोह से इधर उधर भागने लगी। स्त्रियों से बलात्कार किये गये। शाह अब्दाली ने दिल्ली के शासन का कार्य नजीबखाँ को सौंपा और गाजी उद्दीन की शादी मुगलानी बेगम की पुत्री उम्मतबेगम के साथ करवा दी। एक अभिलेख से पता चलता है कि पठानों का विरोध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा और उनमें से अधिकांश नेताओं ने मारे भय के ही विष खाकर अपना काम तमाम कर लिया। इस प्रकार एक मास तक दिल्ली में भीषण हत्या काण्ड और लूट मचा कर अहमदशाह अब्दाली ने २२ फरवरी १७५७ ई० को अपने धर्मान्ध सरदारों को मथुरा तथा अन्य अन्य हिन्दू धर्म स्थानों को नष्ट भ्रष्ट करने के लिये भेजा। ५ से १२ मार्च तक इन बर्बरों ने उपयुक्त स्थानों पर खून की होली खेली और मथुरा, वृन्दावन तथा गोकुल की सड़क हिन्दुओं की लाशों से पट गई। कई सहस्त्र हिन्दू तलवार के घाट उतारे गये और अकेले जहान खाँ ने ही तीन सहस्त्र वैरागियों और हिन्दू यात्रियों का, वध किया। तीन मार्च को अब्दाली शाह मथुरा के समीप आ पहुँचा से उसने अब जाट राजा पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु जाटों ने अपने देश की वीरता पूर्वक रक्षा की और यदि इस समय रघुनाथराव ने आगे बढ़कर शत्रुओं का सामना किया होता तो सम्भवतः विपत्ति टल भी सकती थी। इसी मध्य पठानों ने स्वयं अहमदशाह अब्दाली के नेतृत्व में गोकुल पर भी आक्रमण कर दिया। यहाँ भी कोई ४ हजार गोस्वामियों ने मिलकर शत्रुओं पर ऐसे भीषण प्रहार किये कि शत्रु सेना के कई सहस्त्र योद्धाओं को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। वस्तु अब दिल्ली और उसके चतुर्दिक लाशों के इतने ढेर इकट्ठे हो गये कि उनके स्पर्श से नदियों का जल भी दूषित हो गया और सेना में महामारी फैल गई जिससे दो सौ मृत्युएँ हुईं। इस परिस्थिति में शाह ने आलमगीर द्वि० को पूर्ववत दिल्ली का शासक नियुक्त करके काबुल वापस जाने का विचार किया। उसने अपने पुत्र तैमूर शाह के साथ सम्राट की पुत्री मुहम्मदी बेगम का विवाह सम्पन्न कराया और नजीब उद्दौला को सम्राट का 'मीर बख्शी' तथा गाजीउद्दीन' को मन्त्री बनाया। वह अपने साथ १२ करोड़ रुपये नकद मुहम्मदशाह की पुत्री तथा शाही रनवास की कुछ अन्य सुन्दर स्त्रियों को काबुल ले गया। तमूरशाह तथा जहान खाँ को पञ्जाब के शासन के लिये छोड़कर उसने अफगानिस्तान प्रस्थान कर दिया किन्तु मुगलानी बेगम के लिये उसने कोई व्यवस्था न रक्खी और उसे अपने जीवन के इस अन्तिम भाग में अत्यन्त शोचनीय दशा में रहना पड़ा।

सन् १७५९-६० ई० में अब्दाली का भारत पर पुनः सफल आक्रमण तथा उसकी पूर्व स्थिति—अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करके भारत में राज्य करने की कभी भी आशा न रक्खी थी। वह तो केवल अपनी विशाल सेना की व्ययपूर्ति के लिये केवल पंजाब में अधिक से अधिक सतलज तक की भूमि पर [illegible]

अपना अधिकार चाहता था। इसके अतिरिक्त उसके इस प्रकार के विचार का कारण यह भी था कि दिल्ली में मलिका जमानी, नजीब खाँ तथा अन्य मराठा विरोधी दलों में से किसी ने भी उसके साथ शत्रुता का व्यवहार न किया था। तथापि इस बात की भी सम्भावना कम न थी कि वह अफगान शासक दक्षिण की ओर बढ़कर पेशवा के साथ ही अपने परराष्ट्र सम्बन्ध स्थापित कर लेता किन्तु नजीब खाँ ने दुर्रानी शाह को मराठों से मिलने से रोकने का हर सम्भव विधि से उपाय किया। अब्दाली का सामना करने के लिये रघुनाथराव अक्टूबर १७५६ ई० में ही पूना से चल चुका था किन्तु मार्ग में उसने अत्यधिक समय व्यतीत कर दिया और १४ फरवरी १७५७ ई० को जबकि शाह अब्दाली भारत में ही मौजूद था तथा मथुरा पर आक्रमण करने के लिये अपने सैनिक दलों को प्रस्थित कर रहा था, वह इन्दौर तक ही पहुँच पाया। यहाँ से वह राजपूतों से चौथ वसूल करने के लिये इधर उधर घूमता फिरता हुआ मल्हारराव होल्कर के साथ मई १७५७ ई० में आगरा पहुँचा। वहाँ शाह अब्दाली के वापस चले जाने के बाद वजीर गाजीउद्दीन उनकी पहले से ही प्रतीक्षा कर रहा था। अब नजीब खाँ ने भी मराठों की प्रतिक्रिया से बचने के लिए मल्हारराव होल्कर को पत्र लिखते हुए उससे इन शर्तों के साथ समझौता करने का प्रस्ताव किया—

(१) मैं आपका पुत्र हूँ और इस कारण आपके ही हाथों मेरा दमन अब उचित नहीं है। मैं आपको दिल्ली की व्यवस्था सौंपकर अपने जमुना पार के क्षेत्रों को चले जाने को भी तयार हूँ और

(२) यदि आप चाहें तो मैं आपकी शाह अब्दाली से स्थाई सन्धि करवाकर आपके तथा उसके क्षेत्रों की सीमा भी निर्धारित करा सकता हूँ। अपने पुत्र जबेताखाँ को मैं अपने इस प्रतिज्ञा पालन की पुष्टि रूप में बन्धक की भाँति आपकी आधीनता में रखने को पूर्णतया तत्पर हूँ। और उसके साथ मेरे ७ सहस्त्र सैनिक भी आपकी सेवा में रहेंगे।

ये शर्तें तो मान्य हो सकतीं थीं किन्तु नजीबखाँ ने अपने को सम्राट का इतना अधिक अप्रिय बना रक्खा था और मराठों का वह वास्तव में इतना कट्टर शत्रु था कि रघुनाथराव की सेनाओं ने दोआब में घुसकर न केवल सहारनपुर तक के ही क्षेत्रों को अधिकृत कर लिया प्रत्युत १५ दिन के सामान्य संघर्ष के पश्चात् उन्होंने दिल्ली पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया। विटठल शिवदेव ने नजीब को बन्दी कर लिया और इस सफलता के उपलक्ष में सम्राट से अनेक पुरस्कार, उमदातुलमुल्क की उपाधि तथा नासिक के समीप एक जागीर प्राप्त की। उसे मल्हारराव की कृपा के फलस्वरूप रघुनाथराव ने अपने स्थान को सुरक्षित चले जाने दिया। उसने उसके स्थान पर अहमदखाँ बंगश को सम्राट का मीरबख्शी नियुक्त किया और पेशवा को पत्र लिखा कि उसके प्रयासों से काशी के समीप तक समस्त उत्तर भारत में मराठों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। उसने उत्तर में फैली हुई अव्यवस्था की सूचना

पाते हुए भी २२ अक्तूबर के दिन पंजाब की ओर प्रस्थान कर दिया। जनवरी १७५८ ई० में रघुनाथराव ने कुंजपुरा पहुँचकर वहाँ के सरदार नजाबत खाँ की आधीनता स्वीकार की और फिर ८ मार्च का वह सरहिंद चला गया। सरहिंद में अब्दुस्समद खाँ की आधीनता में १० सहस्र पठान सैनिक रहते थे जिन्हें हराकर मराठों ने खान को अपने आधीन कर लिया। इस युद्ध में उन्हें अलासिंह जाट की सहायता भी सुलभ रही थी। अब उन्होंने लाहौर पर अभियान किया जिसकी सूचना पाते ही अदीना बेग द्वारा संतप्त, तैमूरशाह तथा जहान खाँ ने जो कुछ भी धन सम्पत्ति वे ले जा सके उसे अपने साथ लेकर अफगानिस्तान की ओर पलायन कर दिया। उनका पीछा किया गया, जिससे वे चिनाब नदी के तट पर ही अपने साथ लाई गई वस्तुओं को छोड़ कर किसी प्रकार भाग निकले। अपने खोए हुए प्रान्तों को प्राप्त करने की इस समय स्वयं अब्दालीशाह को भी कोई आशा न थी और सन् १७५८ में उस पर फारस के आक्रमण भी हो रहे थे अस्तु इस वर्ष उसने भारत पर कोई आक्रमण न किया। अदीना बेग को पंजाब का सूबेदार नियुक्त करके रघुनाथराव ने वहाँ का राजस्व प्रशासन सादिक बेग को सौंपा तथा लक्ष्मीनारायण को उसका कोषाधिकारी बनाया। इस प्रकार इस प्रदेश की व्यवस्था करने के पश्चात् उसने पश्चिमोत्तर सीमा का सुरक्षा के विषय में सब कुछ ठीक था इस विश्वास के साथ पूना लौटने का विचार किया। वापस होते समय उन्हें उज्जैन के स्थान पर जनकोजी सिंधिया से भेंट हुई जिससे रघुनाथ राव ने नजीब खाँ का दमन करने का अनुरोध किया। कालान्तर में इसी स्थान पर रघुनाथराव की दत्ताजी सिंधिया से भी जो पूना से आ रहा था, इसी विषय में बात चीत हुई। सितम्बर से दिसम्बर तक रघुनाथराव तथा मल्हारराव पूना वापस लौट गये जहाँ उन्होंने अपने अपने ढंग से उत्तर भारत और पंजाब की दशा का वर्णन किया। पेशवा उस आपातिकालीन परिस्थिति से पहले से अवगत था और इसी कारण उसने सिंधिया को विशाल सेनाओं के साथ उस क्षेत्र को प्रस्थित किया था। पेशवा ने मल्हारराव को सिंधिया की सहायता करने का निर्देश दिया जिसे उसने पता नहीं कि किस कारणवश पालन भी न किया। उसने पूरा १७५९ ई० का वर्ष राजपूताने में कर वसूल करने में ही व्यतीत कर दिया और जब उसे १० जनवरी १७६० ई० को जयपुर में दत्ताजी सिंधिया का बरारी घाट में पराजय का समाचार मिला तभी कहीं वह १३ जनवरी को दिल्ली पहुँचा पाया।

१९ सितम्बर १७५८ ई० को अदीना बेग परलोक सिधार गया और आगामी वर्ष के ग्रीष्म काल तक शाह अब्दाली भी अपनी आन्तरिक समस्याओं को सम्भालने में सफल हो गया जिससे भारत पर संकट के बादल पुनः मँडराने लगे। दिल्ली पहुँच कर सिंधिया सरदारों ने सम्राट तथा वजीर की समस्याओं के निराकरण में ही अपने तीन मूल्यवान मास व्यतीत कर दिये और तत्पश्चात उन्होंने नजीब खाँ को पकड़ने का प्रयास करना प्रारम्भ किया। उन्होंने पंजाब में साबाजी सिंधिया को नियुक्त करके

गोविन्दपंत बुन्देल को साथ लेकर नजीब खाँ की खोज करके उसे दण्डित करने का निश्चय कर लिया। परन्तु वह दुश्मनी सरदार दत्ताजी सिंधिया की आधीनता स्वीकार कर लेने का झूठी अफवाह ही फैलाता रहा और वास्तव में उसने जो अपनी स्वार्थ पूर्ति का गुप्त प्रयास किया वह था—शाह अब्दाली का उसके द्वारा बारम्बार निमंत्रण। उसने दत्ताजी सिंधिया को उसके सैनिक अभियान में गंगा नदी को पार करने के लिये एक विशाल नाविक बेड़ा देने की बात भी कहलाई। नजीब खाँ ने गंगा नदी पर नावों का पुल बनवाकर उसे मराठों के विरुद्ध अफगानों तथा पठानों से अविरत सम्पर्क बनाये रखने में प्रयोग किया जिसकी सूचना पाकर दत्ताजी ने उस पर आक्रमण कर दिया किन्तु वह नजीब खाँ को पकड़ने में सफल न हो सका। मराठों ने अटक में अपनी सेनायें अवस्थित कर रखी थीं और शाह अब्दाली के चचेरे भाई अब्दुर रहमान का उन्हें सहयोग भी सुलभ था, जिसकी सूचना पाकर उसने जहान खाँ को एक विशाल सेना दे करके लाहौर पर अधिकार करने के लिये भेजा और स्वयं पूर्ववत् पेशावर में ही अपना डेरा डाला।

जहान खाँ के साबाजी के हाथों पराजित होने की सूचना पाकर शाह अब्दाली अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। इसी समय ३० नवम्बर १७५९ ई० को आलमगीर द्वि० और इन्तिजामउद्दौला के साथ उसके चार अन्य साथियों का गाजीउद्दीन ने वध करा दिया। इससे शाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने की ओर भी प्रेरणा मिली। सम्राट के वध में मराठों का कोई हाथ न रहा था और न ही पेशवा को दिल्ली के विषय में इस अवसर पर कोई समाचार समय पर मिल सका। उधर मल्हारराव होल्कर ने व्यर्थ में ही राजपूताने में अपना मूल्यवान समय व्यतीत कर दिया था। अब्दाली की प्रबल गति से बढ़ते देख दत्ताजी सिंधिया को नजीब खाँ का पीछा करना छोड़कर अपने शुकरताल के शिविर से कुंजपुरा की ओर प्रस्थान करना पड़ा वहाँ पहुँचकर दत्ताजी सिंधिया को पता लगा कि ४० सहस्र सेना को साथ लेकर तैमूर शाह अम्बाला तक आ पहुँचा था और उससे एकाएक युद्ध करना दत्ताजी को किसी प्रकार लाभदायक न हो सकता था। परन्तु दत्ताजी इतने वीर सेनानायक थे कि उन्होंने शत्रु को और पीठ करना कभी सीखा ही न था। उन्होंने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त करके एक को जिसमें तोपखाना, आवश्यक सामग्री तथा शिविर आदि सम्बन्धी वस्तुएं थीं, गोविन्दपंत बुन्देले के नेतृत्व में दिल्ली की ओर प्रस्थित किया तथा २५ सहस्र सेना को साथ लेकर वे स्वयं स्थानेश्वर की दिशा में चल पड़े जहाँ २४ दिसम्बर को उनकी शत्रु सेना से मुठभेड़ हो गई। इस संघर्ष में ४०० मराठे काम आये किन्तु दत्ताजी अपने स्थान से एक इंच भी पीछे न हटे।

अब्दाली ने इस सुविख्यात योद्धा से सीधा संघर्ष करने से परहेज करते हुए, शीघ्र ही जमुना नदी को सेना सहित पार करके दिल्ली पर अभियान कर दिया। इसकी सूचना पाते ही दत्ताजी ने भी नदी के किनारे किनारे चलकर शत्रु का पीछा

करना प्रारम्भ कर दिया। इसी मध्य नजीब खाँ भी शत्रुओं से आ मिला और वजीर गाजीउद्दीन ने सिंधिया से हर प्रकार से दिल्ली की रक्षा करने की माँग की। मल्हारराव अब भी शत्रुओं के विरुद्ध मराठों की सहायता करने न पहुँचा था, जिसका कारण भी प्रायः अज्ञात ही है। अस्तु दत्ताजी ने रक्षात्मक युद्ध करने का ही निश्चय किया। दत्ताजी ने बरारीघाट पर अपनी सेनायें अवस्थित कीं जहाँ पर साबाजी सिंधिया का कड़ा पहरा था। किन्तु दत्ताजी ने अब अधिक प्रतीक्षा न करके समीप में टिकी हुई शत्रु सेना पर आक्रमण किया और इसी मध्य जनकोजी सिंधिया भी वहाँ आ पहुँचा। शत्रुओं के पास तोपें और बन्दूकें भी थीं किन्तु मराठे अधिकतर तलवारों, भालों और तीर कमान आदि शस्त्रों से ही युद्ध कर रहे थे और अब्दाली की वस्तु स्थिति से भी अवगत न थे। दुर्योगवश एक गोली दत्ताजी के लगी जिससे उनका वहीं पर काम तमाम हो गया। जनकोजी भी घायल होकर बेहोश गिर पड़ा। अफगानों तथा उनके साथ मिलकर नजीब खाँ ने एक सहस्त्र मराठों को मौत के घाट उतारा और उनके शिविर में खूब लूट पाट की। जनकोजी को उठाकर उसके साथी बची हुई सेना के साथ कोटपुतली के दक्षिण के भाग से अलवर के उत्तर पश्चिम में २८ मील दूर एक स्थान को भाग गये। उधर मृत दत्ताजी का सिर नजीब खाँ के कुतुबशाह ने धड़ से अलग करके, अब्दाली के समक्ष प्रस्तुत किया और गाजीउद्दीन ने भाग कर जाट राजा के यहाँ आश्रय लिया।

४ फरवरी तथा मार्च १७६० ई० मल्हारराव होल्कर तथा अफगानों के मध्य छुट-पुट संघर्ष हुए और होल्कर को शत्रुओं के हाथों भीषण क्षति उठानी पड़ी। इन दुर्घटनाओं की सूचना पाकर पेशवा को अत्यन्त दुःख हुआ, और अब उसके परामर्श दाताओं ने उसको इस बात से अवगत कराया कि वस्तुतः एक विशाल तोपखाने तथा सदाशिव भाऊ जैसे सेनानायक के नेतृत्व के मराठों का अब्दाली पर विजय पाना नितान्त असम्भव था।

भाऊ साहब का दिल्ली पर अभियान तथा शुजाउद्दौला का अब्दाली से जा मिलना—इस दुर्घटना के ३३ दिन बाद पेशवा ने भाऊ साहब को उदयगिरि से वापस बुलाकर उन्हें अपनी समस्त सेना के साथ अब्दाली के विरुद्ध अभियान करने तथा दत्ताजी की हत्या का शत्रुओं से प्रतिशोध लेने की आज्ञा दी। भाऊ साहब ने आगे बढ़ने से पूर्व निजाम से एक रक्षात्मक संधि कर ली किन्तु उससे मराठों को कोई लाभ न हुआ। तत्पश्चात् ७ मार्च १७६० ई० के दिन पतदुर के पूर्व निर्धारित स्थान पर उन्हें पेशवा स्वयं, रघुनाथराव तथा अन्य मराठे सरदार भी अपनी अपनी सेनाओं के साथ आ मिले। इब्राहीम खाँ गार्दी भी अपने तोपखाने के साथ मराठों की सहायता करने को भाऊ साहब की ३० सहस्त्र सेना में सम्मिलित हो गया। भाऊ साहब ने १४ मार्च को पतदुर से दोआब की ओर प्रस्थान करके अब्दाली की सेनाओं पर पीछे से आक्रमण करने का विचार किया। उन्होंने १२ अप्रेल को हण्डिया के

नर्मदा को पार किया और मई के अन्त तक वह सिहोर तथा सिरोंज होते हुए ग्वालियर आ गये परन्तु वहाँ से ७० मील दूर आगरा पहुँचने में उन्हें एक मास से भी अधिक समय लगा। इस समय में शत्रुओं को अपनी सैनिक तैयारी करने का अवसर मिल गया किन्तु भाऊ साहब ने मथुरा से आगे बढ़ कर दिल्ली पर अभियान किया, जहाँ उन्होंने अब्दाली के एक सैनिक पदाधिकारी याकूब अली खाँ को परास्त करके राजधानी पर अपना अधिकार कर लिया। (अगस्त १७६०)

इसके १० १५ दिन पूर्व अब्दाली ने नजीब खाँ को शुजाउद्दौला के पास भेज कर उसके माध्यम से अवध के इस नवाब को भी अपना समर्थक बना लिया था। भाऊ साहब सूरजमल जाट ने दिल्ली की शासन व्यवस्था करने का अधिकार मांगा, किन्तु उसे स्वीकृति न मिली जिससे[1] मराठों और जाटों में मतभेद हो गया। जाट राजा इस विषम परिस्थिति में भी मराठों का साथ छोड़कर भरतपुर लौट गया। अगस्त से लेकर अक्टूबर १७६० ई० तक का समय भाऊ साहब ने व्यर्थ में ही खो दिया, जिससे उन्हें एक ओर तो धन और भोजन-सामग्री के अभाव का सामना करना पड़ा और दूसरी ओर अब्दाली शाह को उनका अवरोध करने का भी समुचित अवसर मिला। तथापि अब्दाली सम्मानपूर्वक भारत से स्वदेश लौटना चाहता था, इस कारण वह पंजाब विजय से ही सन्तुष्ट रह सकता था किन्तु वह प्रदेश उसके अधिकार में देकर भाऊ साहब उससे सन्धि करने के विरुद्ध थे। इसी मध्य शाह अब्दाली को जो मराठों से सन्धि करने की दिशा में झुक रहा था, नजीब खाँ ने समझा-बुझाकर उस सन्धि के यत्न से रोके रक्खा। भाऊ साहब ने किसी प्रकार की धन की व्यवस्था करके ७ अक्टूबर को दिल्ली से कुंजपुरा की ओर प्रस्थान किया क्योंकि उन्हें सूचित हुआ था कि उस स्थान पर अफगानों ने भारी मात्रा में अपनी सैनिक सामग्री तथा रसद इत्यादि जुटा रक्खी थी। होल्कर, सिंधिया, गायकवाड तथा विट्ठल शिवदेव भी वहीं पर आ गये। वहाँ का अफगान सरदार अब्दुस्समद खाँ मौत के घाट उतार दिया तथा कुतुबशाह और नजाबत खाँ बन्दी कर लिये गये। कुतुबशाह से अब दत्ताजी सिंधिया की हत्या का प्रतिशोध लिया गया किन्तु नजाबत खाँ अपने घावों से पीड़ित होकर स्वतः मर गया। मराठों ने यहाँ से काफी मात्रा में लूट की सामग्री दो लाख मन गेहूँ तथा ५० हजार नकद धन प्राप्त किया।

इस पराजय का समाचार पाते ही अब्दालीशाह ने मराठों पर पीछे से आक्रमण करने की योजना बनाई। वह बागपत होता हुआ उसके समीप एक ऐसे स्थान पर आ गया जहाँ पर नदी (जमुना) की गहराई अधिक न थी। अस्तु यहाँ से उसने अपनी अश्वारोही सेना तथा हाथियों पर लदी हुई तोपों को जमुना के उस पार सोनीपत नामक स्थान पर सुरक्षित पहुँचा दिया। यद्यपि यह प्रस्थान अब्दाली ने गुप्तरूप

1 सर देसाई के कथनानुसार सूरजमल के भाऊ साहब का साथ छोड़ देने का मूल कारण यही था।

में ही किया था। तथापि इसकी सूचना भाऊ साहब को अपने गुप्तचरों से मिल गई और उन्होंने भी सोनीपत में स्थिति अफगान सेना की अग्रगामी सैनिक टुकड़ी के स्थान के समीप केवल ५ मील की दूरी पर स्थित पानीपत नामक स्थान पर आकर अपना डेरा डाला।

पानीपत का तीसरा युद्ध—अब्दाली शाह ने उस स्थान पर पहले से पहुँचकर अपनी पूरी सैनिक तैयारी और समीपवर्ती सभी मार्गों की नाकेबन्दी कर ली थी अत सदाशिवराव भाऊ को भी उपयुक्त अवसर की तलाश म वहा पर यथेष्ट समय व्यय म ही व्यतीत करना पड़ा। उन्होंने कुछ समय तक रक्षात्मक युद्ध ही किया जबकि इब्राहीम खाँ गार्दी को सम्पत्ति थी किन्तु उनकी सेना म असंख्य युद्ध न करने वाले लोगों तथा कुछ स्त्रियों की संख्या के कारण भाऊ साहब को अत्यधिक चिन्ता हुई तथापि वह निराश न हुए। ५ नवम्बर १७६० ई० को भाऊ साहब के एक कर्मचारी —कृष्ण जोशी—ने पानीपत से पेशवा को जो पत्र लिखा उससे भाऊ साहब की वस्तुस्थिति का समुचित ज्ञान हो सकता है। उसने लिखा था कि—

"भाऊ साहब कुजपुरा से पानीपत लौट आये हैं और दोनों पक्षों मे प्रतिदिन संघर्ष होने लगे हैं। मुसलमान हमारे शक्तिशाली तोपखाने से डरते हैं। अब अब्दाली के शिविर तक कोई अन्नादि भी नहीं पहुँच सकता है और उसमें अन्नाभाव की भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गई है। यदि अब वह अगले तीन चार दिनों में हमारे ऊपर आक्रमण करता है तो निश्चय ही वह हमारी बंदूकों द्वारा परास्त हो जायेगा। अब एक सप्ताह के अन्दर ही अब्दाली, नजीब खा तथा शुजा अपनी मृत्यु का आलिंगन करने को विवश कर दिए जायेंगे। उसके स्वदेश लौटने का मार्ग अवरुद्ध कर दिया गया है और उसे विजय की कोई आशा भी नहीं है और न ही अन्नाभाव म बेकार टिका रहा सकता है।"[1]

कालांतर मे अब्दाली ने अपना सैनिक शिविर ठीक जमुना नदी के तट पर ही लगा दिया और वहा से उसने दिल्ली, राजपूताना तथा जमुना के पूर्वी भागों की नाकबन्दी करना आरम्भ कर दिया। उधर भाऊ साहब ने अपनी सेनाओं को खाइयों म छिपा रखा था और कुजपुरा से उन्हें गोविन्द बल्लाल द्वारा रसद आदि सामग्री

---

1 Bhau Sahib has returned to Panipat from Kunjpura and daily skirmishes are occuring between the two oppnoents The Muslims fear our strong artillery No corn now reaches the Abdali s camp where there prevails extreme scarcity If he within the next three or four days advances against us he will be annihilated by our guns Abdali Najib Khan and Shuja will now meet with their ruin with in a week His road to his country is blocked and he has no hope of success in a fight and cannot afford to remain idle where he is for want of food (Bhau Sahib Bakhar)

उपलब्ध होती रहती थी। परन्तु अब्दाली ने अब युद्ध आगे बढ़ कर कुंजपुरा को अधिकृत करके वह मार्ग भी अवरुद्ध कर दिया, जिससे उसकी सैनिक स्थिति और बलिष्ट हो गई और साथ ही मराठा को भी वह चारों ओर से घेरा में समर्थ हुआ। नवम्बर १७६० ई० से जनवरी सन् १७६१ ई० तक भाऊ की सेनाएँ खाइयों में ही छिपी रहीं किन्तु शाह अब्दाली ने जो नादिरशाह[2] के शब्दों में हिन्दुस्तान ईरान तथा तूरान के अच्छे से अच्छे सेनापतियों से भी कहीं अधिक सुयोग्य सेनानायक था भाऊ साहब के विरुद्ध आक्रामक युद्ध करने से सदैव परहेज रखता क्योंकि उससे मराठों को अपनी गोरिल्ला युद्ध शैली का अनुकरण करने का स्वर्ण अवसर मिल सकता था। १६ नवम्बर १७६० से भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। २२ नवम्बर को मराठों ने दुर्रानी के वजीर शाह वली खाँ का घेर कर उसके प्राय सभी अनुयायियों को मौत के घाट उतार दिया। एक सहस्र रुहेले भी रणस्थल में पृथ्वी पर सुला दिये गये। ७ दिसम्बर को नजीब खाँ ने एकाएक मराठों पर धावा बोल दिया किन्तु उसे कोई सफलता न मिली और ३ सहस्र रुहेले मराठा तलवारों के शिकार बने तथापि इस समय में बलवन्तराव मामक एक कुशल मराठा सेनापति को गोली का शिकार बनकर अपने प्राणों का त्याग करना पड़ा। इस समय गाजियाबाद तथा जलालाबाद के आस-पास २० मील के क्षेत्र में गोविन्द पन्त तथा उसके अनुयायी निरन्तर यात्रा करके मराठा सेना के लिये धन तथा अनाज आदि की व्यवस्था कर रहे थे किन्तु अताई खाँ तथा करीम खाँ ने ५ सहस्र सैनिकों के साथ जमुना को लाँघ कर मरोशकर तथा उसके दल को तलवार के घाट उतार दिया। गोविन्द पन्त[1] भी १७ दिसम्बर के बाद जलालाबाद के समीप मार डाला गया।

ऐसी दशा में भाऊ साहब को अन्नाभाव की भीषण परिस्थिति का सामना करना पड़ा। उनका धन कोष भी अन्न की तेजी के कारण समाप्त हो चला था, अस्तु सिंधिया होल्कर तथा स्वयं भाऊ साहब ने अपने अपने शिविर के व्यक्तियों के आभूषणों को एकत्र करके सिक्के भी ढालने का प्रयत्न किया किन्तु यह धन दो सप्ताह से अधिक न चल सका। अब भाऊ साहब ने बुन्देल को जो पत्र लिखा उससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने उसे इस बात के लिए काफी डाटा-फटकारा था कि वह शीघ्रता

---

2 See S R Sharma— Mughal Empire in India Page 796
Of him the conqueror had said I have not found in Iran Turan or Hind any man equal to Ahmad Abdali in capicity and character This estimate of him was justified by Abdali s successes

1 Sardesai— New History of the Marathas Page 431
Essentially a no military man proficient in accounts and revenue matters he happened to be the only prominent Maratha in the North at the time of Bhau Shib s expedition

से अफगानों को भड़काकर उनमें खाइयों में छिपी हुई मराठा सेना पर आक्रमण कर वाने में असफल सिद्ध हुआ था। इस प्रकार जैसा कि गुलाम हुसैन खाँ का कथन है कि इस शोचनीय स्थिति में पड़े हुये भाऊ साहब ने अब्दाली शाह से अपना अन्तिम अनुरोध भी किया यह उनसे क्षतिपूर्ति लेकर उन्हें चुपचाप युद्ध स्थल से अन्यत्र चले जाने दे। किन्तु नजीब की कुचालों से शाह दुर्रानी ने उस समय मराठों की एक न सुनी। अस्तु भाऊ ने शुजाउद्दौला की मध्यस्थता का प्रयोग करके शाह से सन्धि करने का प्रयास किया और इसके साथ ही साथ उन्होंने अब आक्रामक युद्ध नीति को अपनाकर शत्रुओं पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। उनके अभियान की गति के साथ इब्राहीम गार्दी ने अपनी विशालकाय तोपों को चलाने में अत्यन्त असुविधा का सामना किया तथापि वह मैदान में पूर्ण धैर्य के साथ डटा रहा। उसने स्त्रियों तथा युद्ध में भाग न लेने वालों को बीच में करके उनके चारों ओर तोपें और बन्दूकों से सुसज्जित अश्वारोही सेना लगा दी। इस प्रकार यह एक वर्गाकार व्यूह बन गया जो धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। इस परिस्थिति का अब्दाली शाह ने शीघ्र ही रहस्य जान लिया और अब उसने लौटने के लिये अधीर हो रहे अपने सैनिकों को केवल एक दिन ही और मैदान में डटे रहने का निर्देश किया। उसके साथ ६० सहस्त्र सेना में आधे अफगान थे तथा आधे भारतीय थे। उसने शीघ्र ही अपनी सेना दक्षिण पार्श्व को बर्खुरदार खाँ तथा अमीर बेग के नेतृत्व में रखा तथा रुहेलों तथा अहमद खाँ बंगश की सेना को उसका वाम पार्श्व बनाया। उस प्रमुख सैनिक दस्ते के आगे ऊँटों तथा घोड़ों पर बैठकर युद्ध करने वाले योद्धा नियुक्त किये गये। मध्यवर्ती सैनिक दस्ते का नेतृत्व स्वयं वजीर शाहवली खाँ कर रहा था। अन्तिम वाम पार्श्व का नेतृत्व शाह पसन्द खाँ (शाह अब्दाली का विश्वास पात्र सरदार) को दिया गया। शाह अब्दाली ने भारतीय सेनाओं को बिल्कुल मध्य में रखा क्योंकि उसे इसके नेताओं शुजा, बंगश तथा नजीब खाँ पर कोई विश्वास न था। वह स्वयं सेना के ठीक पीछे-पीछे चलता था और सैनिकों को ढाढस दिलाते हुए उनकी युद्ध विषयक कमियों को बारम्बार सुधारता रहता था।

भाऊ साहब ने अपनी सेना को इस प्रकार खड़ा किया कि उसका वाम पार्श्व इब्राहीम खाँ गार्दी तथा उसके साथ में नियुक्त दामाजी गायकवाड़ के नियंत्रण में रहे। भाऊ ने स्वयं केन्द्रस्थ सेना का संचालन करना प्रारम्भ किया और उनके साथ हुजरात सेनायें (Huzrat Troops) भी नियुक्त थी। दक्षिण पार्श्व का नेतृत्व अन्ताजी मानकेश्वर तथा सत्योजी जाधव के हाथ में दिया गया किन्तु इसके सिर की पंक्ति में जनकोजी सिंधिया, यशवन्तराव पवार तथा मल्हारराव जैसे चुने हुए सेना

---

2 "Bhau's letters to Bundele are full of rage and railing for the letter's failure to goad Abdali Shah into an attack upon the Maratha Camp"

पति नियुक्त हुए। भाऊ साहब ने कोई सुरक्षित सेना समयानुसार प्रयोग के लिये न रखकर तथा जल्दबाजी के साथ आक्रमण युद्ध करके भारी भूल की। इसके विपरीत ६ सहस्र सुरक्षित सेना एक उपयुक्त स्थान पर अवस्थित कर रक्खी थी।

युद्ध की घटनायें—१४ जनवरी १७६१ के दिन ६ बजे प्रातः से युद्ध आरम्भ हो गया। कुछ घंटों तक मराठा सेना के केन्द्रीय दक्षिण एवं वाम दोनों दलों ने जम कर युद्ध किया। उन्होंने शत्रुओं का भीषण क्षति पहुँचाई। गार्दी दस्तों पर अग्नि वर्षा करने लगा भाऊ ने शाहवली खाँ से मोर्चा लिया और सिंधिया तथा होल्कर ने नजीब खाँ तथा शाह पसन्द खाँ पर अनेक भीषण प्रहार किये। इस अवसर पर शाह अब्दाली को अपनी उस सुरक्षित सेना से यथेष्ट लाभ हुआ। इब्राहीम खाँ गार्दी ने अब्दाली की सेना के वाम पार्श्व में युक्त अताई खाँ तथा उसके ३ सहस्र सैनिकों को मार गिराया। इसी प्रकार भाऊ साहब तथा केन्द्रस्थ पार्श्व के अन्य सेनापति पेशवा के विश्वासराव ने भी डटकर युद्ध किया और शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। मराठों को विजय मिलने की पूर्ण आशा थी। परन्तु ५ घंटों से भी अधिक समय से निरन्तर युद्ध करते करते मराठे थक कर इतना अधिक अस्त व्यस्त हो चुके थे कि अब उनका आगे बढ़ना अत्यन्त दुस्तर हो गया और उन्हें विश्राम दिलाने के लिये भाऊ साहब ने कोई सुरक्षित सेना भी न रक्खी थी। इसी समय शत्रु पक्ष के जम्बूरक ((Jamburak) द्वारा फेंका हुआ एक गोला विश्वासराव के लगा और वह उसी स्थान पर मर गया। भाऊ साहब ने अपने भतीजे की मृत्यु को सहन न कर पाने की दशा में युद्ध स्थल में शत्रुओं के दल को चीरते हुए किसी सुरक्षित स्थान पर जाने की चेष्टा की किन्तु वह अपनी रक्षा न कर सके। गार्दी तथा जनकोजी सिंधिया भी पकड़े गये और उन्हें शत्रुओं ने तुरन्त मौत के घाट उतार दिया। मराठा सेना के असंख्य योद्धा शत्रुओं के प्रहारों की चोट खाकर युद्ध क्षेत्र में ही सदैव के लिए सो गये। विट्ठल शिवदेव, मल्हारराव तथा दामाजी गायकवाड किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर भाग निकले। युद्ध भूमि मराठों और अफगानों की लाशों से पट गई। तथापि सबसे अधिक क्षति मराठों की ही हुई और उनके ३५ सहस्र योद्धा बन्दी कर लिए गये जिन्हें कालान्तर में तलवार की भेंट कर दिया गया। कुछ मराठे सूरजमल के राज्य में तथा कुछ (८ सहस्र) शुजाउद्दौला के शिविर में जा छिपे, जिनकी उन दोनों भारतीय सामन्तों ने रक्षा भी की। काशीराज (शुजा का कर्मचारी) के उल्लेख के अनुसार इस विनाशकारी युद्ध में ७५ सहस्र मराठों को अपने प्राणों का बलिदान करना पड़ा तथा उनके लगभग २२ सहस्र योद्धाओं ने अफगानों को क्षति पूर्ति देकर अपनी जीवन रक्षा की। ग्रान्ट डफ[1]

1 See J G History of the Marathas Page 157
The Marathas however on this terrible day fought valiantly, and no chief was reproachable except Mulhar Rao Holker and some do not hesitate to accuse him of treachery '

महोदय के कथनानुसार मल्हारराव होल्कर ने इस युद्ध में पेशवा के प्रति पूर्ण स्वामी-भक्तिपूर्वक शत्रु पक्ष से मोर्चा न लिया था क्योंकि उसे निजी-स्वार्थों की पूर्ति करने की ही अधिकाधिक चिन्ता लगी हुई थी।

इस प्रकार इस भीषण हत्याकाण्ड में युद्ध की इतिश्री और २९ जनवरी को ही विजेता ने दिल्ली में प्रवेश कर लिया। उसने दीवान-ए-खास में अपना दरबार किया और लगभग डेढ़ मास तक वह राजधानी में रहता रहा किन्तु यहाँ की जलवायु के अनुकूल न होने तथा अन्यान्य कठिनाइयों के कारण उसे २० मार्च को स्वदेश लौट जाना पड़ा। इस युद्ध की घटनाओं से भी कहीं अधिक रोमांचकारी तो इसके परिणाम हुए जिन्होंने आगामी ५०वर्षों तक भारतवर्ष की दशा को जर्जरित एवं शोचनीय बनाये रक्खा। इन परिणामों का विस्तृत उल्लेख आगामी प्रकरण में किया जायेगा।

सारांश—अहमदशाह अब्दाली ने सन् १७४८ से लेकर १७६१ ई० तक भारत पर पाँच बार आक्रमण किये। उसके आक्रमण के समय भारत की दशा यह थी कि बीजापुर राज्य तथा निजाम से मराठों तथा मुगल सम्राट के मध्य दीर्घ संघर्ष चल चुकने के कारण उनमें एक दूसरे से सहयोग करने की भावना समाप्त हो चुकी थी। मराठों ने चौथ के बहाने राजपूतों से भी शत्रुता मोल ले रक्खी थी। अस्तु इन शक्तियों ने दुर्रानीशाह के आक्रमण के समय मराठों के नेतृत्व में युद्ध करने से सदैव परहेज रक्खा।

मुगल दरबार में गृह युद्ध का सूत्रपात हो चुका था। अहमदशाह की हत्या करके आलमगीर द्वितीय को मराठों तथा उनके मित्र गाजीउद्दीन के हाथों में कठपुतली की भाँति रक्खा जारहा था। मराठों के बल पर वजीर गाजीउद्दीन ने राजधानी और शाही रनवास के लोगों पर अनेक अत्याचार ढाये। मलिका जमानी बेगम आदि ने अब्दालीशाह को भारत पर आक्रमण करके गाजीउद्दीन तथा मराठों के अत्याचारों का अन्त करने के लिए निमन्त्रित किया, यद्यपि यह सन्देश अब्दाली के पास भेजने वाला गाजीउद्दौला था। उधर पंजाब का क्षेत्र अब्दालीशाह के आक्रमण का मुख्य कारण बना हुआ था। वहाँ पर मुगलानी बेगम के शासन से गृह-युद्ध चल रहा था जिससे गाजीउद्दीन (वजीर) ने अप्रसन्न होकर वहाँ पर नवीन सूबेदार नियुक्त कर दिया था। अहमदशाह बंगश (पठान) तथा नजीब खाँ (रुहेला सरदार) ने भी शाह अब्दाली से उसके भारत आगमन के विषय में साँठ-गाँठ कर रक्खी थी। अक्टूबर १७६० से जनवरी (१४) १७६१ तक शाह अब्दाली ने अपने पाँचवें भारत आक्रमण के समय पंजाब से आगे बढ़ कर दिल्ली पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने के उद्देश्य से मराठों के विरुद्ध पानीपत के युद्ध में अविरल संघर्ष किया। उस युद्ध के अंतिम प्रहर में जबकि मराठा सेनायें निरन्तर युद्ध करते-करते अस्त व्यस्त हो गईं और उनके विश्राम की भी कोई व्यवस्था न हो सकी तो शाह अब्दाली ने अपनी

सुरक्षित सेना को भी युद्ध में सम्मिलित होकर शत्रुओं पर तीव्र प्रहार करने के लिये अपने योद्धाओं को साहस दिलाया। इसी मध्य विश्वासराव एक गोली का शिकार होकर धराशायी हो गया जिससे मराठों में निराशा छा गई। कालान्तर में भाऊ साहब भी शत्रुओं के हाथों मारे गये।

स्वयं सदाशिवराव भाऊ ने भी उस सामूहिक मृत्यु को सहन न कर पाने के कारण अपना धैर्य खो दिया। वह भी युद्ध करते करते रणस्थल में मारे गये। मराठों के लगभग ७५ सहस्त्र (अथवा ३५ सहस्त्र) योद्धा काम आये और कुल २० सहस्त्र व्यक्ति ही किसी प्रकार अपनी जीवन रक्षा करके घर लौट सके। इस युद्ध में ग्राण्ट डफ के कथनानुसार एक एक मराठा सैनिक ने शत्रुओं को परास्त करने में अपने प्राणों की बाजी लगा दी किन्तु मल्हारराव होल्कर ने पूर्ण मनोयोग एवं स्वामिभक्ति से संघर्ष न करके अपनी स्वार्थपूर्ति की ही अधिकाधिक चेष्टा की।

Q The defeat of the Maratha at Panipat "was due as much to bad generalship as to the inherent defects of the Maratha Military System" Discuss fully the causes of the defect of the Marathas (R U 1955)

Or

Analyse the causes of the defeat of the Marathas in the battle of Panipat (R U 1957)

Or

'It is a popular mistake of long standing to suppose that the third battle of Panipat destroyed the Maratha Power in the north or that it essentially shook the Maratha Empire of India' (R U 1959)

Examine this statement in the light of the significance of the battle of Panipat

Or

Discuss the causes of the defeat of the Marathas in the Third battle of Panipat What were its consequence? (R U 1962)

प्रश्न—पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय के लिये 'उनके दोषपूर्ण सेनापतित्व की भांति उनकी सैनिक प्रणाली के आन्तरिक दोष भी उतने ही उत्तरदायी थे।' इस कथन के आधार पर मराठों की पराजय के कारण स्पष्ट कीजिये। (रा० वि० वि० १९५५)

अथवा

पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय के कारणों का विश्लेषण कीजिये। (रा० वि० वि० १९५७)

अथवा

'यह दीर्घकाल से चली आने वाली एक सामान्य भूल है कि पानीपत के तृतीय युद्ध के फलस्वरूप उत्तर भारत में मराठा शक्ति का विनाश हो गया अथवा कम से

कम इसने भारत के मराठा साम्राज्य की जड़ों को तो अवश्य हिला डाला।' पानीपत के तृतीय युद्ध की महत्ता के आधार पर इस कथन का मूल्यांकन कीजिये।

(रा० वि० वि० १९५९)

अथवा

पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की पराजय के कारणों की व्याख्या कीजिये। इसके क्या परिणाम हुए ?

(रा० वि० वि० १९६२)

उत्तर—पानीपत के तीसरे युद्ध के कारण निम्नलिखित हैं—

(अ) सामान्य कारण—(१) दिल्ली सिंहासन के लिये मुगलों में भीषण गृह-युद्ध छिड़ा जिसके फलस्वरूप, सम्राट की शक्ति क्षीण हो गई और वह स्वयं अपने मंत्रियों निजामुल मुल्क तथा कमरुद्दीन खाँ और उनके साथ मीरबख्शी सादत खाँ के हाथों की कठपुतली से अधिक कोई महत्त्व न रखता था। उधर मराठों से सादत खाँ तथा निजाम दोनों ही तीव्र ईर्ष्या रखते थे और उनके विभिन्न प्रांतों में चौथ और सरदेशमुखी के अधिकारों के वे प्रबल विरोधी थे, किन्तु वे तथा उनके साथ ही सम्राट स्वयं समय समय पर अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाने के निमित्त प्रायः मराठों पर ही निर्भर करते थे।

(२) भारत में राजनीतिक असन्तोष व्याप्त था। मुस्लिम शासक हिन्दू प्रजा को घृणा की दृष्टि से देखते थे और उनका अधिकाधिक शोषण करने को इच्छुक रहते थे। उधर दूसरी ओर मराठे अब पुनः हिन्दू पादशाही के स्वप्न साकार करने की महत्वाकांक्षा भी करने लगे थे जिससे भारत के मुस्लिम जनता में वे स्वयं भी घृणा और असन्तोष के कारण बने हुए थे।

(३) भारत एक सुसमृद्ध देश था और सन् १७३९ ई० में इसे बर्बरतापूर्वक लूट-पाट कर नादिरशाह ने अपने साथ लाये गये अपने योग्यतम सेनानायक अहमदशाह (दुर्रानी) को उसकी धन समृद्धि की ओर आकर्षित कर दिया था।

(४) भारत के पठान शासक, नजीब खाँ अहमद खाँ बंगश, शुजाउद्दौला निजाम स्वयं मुगल रनवास की कुछ असन्तुष्ट महिलाओं जैसे मलिका जमानी आदि और पंजाब के मृत सूबेदार की विधवा मुगलानी बेगम आदि ने शाह अब्दाली के पास बारम्बार गुप्त रूप से आमन्त्रण भेजकर उसे देश पर चढ़ाई करने को प्रोत्साहन दिया।

(५) भारत पर पश्चिमोत्तर मार्ग से आक्रमण करने की उस समय पर काफी सुविधा थी और अफगानिस्तान तथा ईरान कहीं के भी शासक इस अबाधो मार्ग से आकर पंजाब में प्रवेश कर सकते थे। औरंगजेब आदि की भाँति परवर्ती शासकों ने उस सीमान्त देश की सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध भी न किया था।

(६) सम्राट आलमगीर द्वितीय की २९ नवम्बर १७५९ ई० को हत्या तथा नजीब खाँ मलिका जमानी तथा मुगलानी बेगम द्वारा भेजे गये आमन्त्रणों

तथा मनीरा बेगम की १७५८ में ही मृत्यु और फलत: दत्ताजी सिंधिया तथा पंजाब में एक हिन्दू सरदार गाजाजी सिंधिया को १७५६ ई० में दिल्ली से पानीपत के युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। यदि दत्ताजी सिंधिया अथवा रघुनाथराव ने स्वयं पंजाब में रहकर इस प्रदेश को स्थाई रूप से सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया होता तो शाह अब्दाली को पंजाब के मार्ग से दिल्ली में प्रवेश करने का सम्भवत: कोई अवसर न मिल पाता। यद्यपि उसका भारत पर पुनः अधिकार अवश्यम्भावी था तथापि उसका अवरोध करने की शक्ति मराठों के पास भी कम न थी और यदि इस राष्ट्रीय काल में उन्होंने भारत की अन्य शक्तियों के साथ संगठित होकर शाह अब्दाली का योजनाबद्ध प्रतिरोध किया होता तो वह सम्भवत: पंजाब से ही आगे न बढ़ पाता।

इन कारणों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि शाह अब्दाली को पंजाब में दिये गये क्षेत्राधिकारों का अतिक्रमण करके स्वयं वजीर गाजीउद्दीन ने अपनी ढिलमिल नीति का परिचय दे दिया था।

(७) शाह अब्दाली स्वयं एक महत्वाकांक्षी शासक था जिसकी सैनिक कुशलता की नादिरशाह जैसे अपूर्व विजेता ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। उसने काबुल तथा कन्धार पर अधिकार करके एक विशाल सेना रखने का निश्चय किया किन्तु इस सेना को व्यवस्थित करने की दृष्टि से उसने पंजाब के उपजाऊ क्षेत्रों को विजित करने की अपनी एक स्थाई योजना बना ली। सन् १७५८ ई० के बाद अदीना बेग ने लाहौर व अफगानों को चारों ओर से क्षति-ग्रस्त करने की नीति अपनानी प्रारम्भ करदी।

(ख) तात्कालिक कारण—सन् १७५८ ई० में पेशवा द्वारा भेजे गये मराठा सरदार रघुनाथराव ने सरहिन्द पर अधिकार करके वहाँ के अफगान सरदार अब्दुस्समद को अपनी आधीनता में कर लिया था और उधर शाह अब्दाली का चचेरा भाई अब्दुर रहमान मूसा [illegible] पेशवा के संरक्षण में रह कर उसे शाह अब्दाली को पंजाब से खदेड़ने को प्रोत्साहित करता रहा जिससे अब्दाली भी पूर्णतया सतर्क हो गया। इसके अतिरिक्त शाह अब्दाली ने पठानों को मिलाने में सफलता प्राप्त की।

पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय [illegible] कारण—(१) मराठों की पराजय का मूल कारण वस्तुत: उनकी नजीब खाँ के प्रति उदार नीति तथा उसके शाह अब्दाली से जा मिलने को रोकने में मराठों की असफलता का ही परिणाम था।

(२) दूसरा कारण मराठों की सैनिक अयोग्यता उदाहरणार्थ दत्ताजी सिंधिया जो १७५६ [illegible] ही मारा जा चुका था कि दीर्घकाल तक पंजाब में पहुँचकर वहाँ पर अपना सैनिक मोर्चा स्थापित करने की उपेक्षा में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त पेशवा ने सेना के साथ मराठों को अपनी स्त्रियों और अन्यान्य आश्रितों को भी ले जाने की अनुमति देकर बहुत बड़ी भूल की। तत्पश्चात् सदाशिवराव

भाऊ ने भी अब्दाली के विरुद्ध दीर्घकाल तक (मार्च १७६० से जनवरी १७६१) कोई सैनिक कार्यवाही न करके उसे अपना सैनिक संगठन करने का समुचित अवसर प्रदान कर दिया। भाऊ साहब ने नजीब खाँ से मित्रता करके इसके कथनानुसार उससे जमुना पर नौकाओं का पुल बनवाने तथा उससे सामाञ्जित होने की व्यर्थ आशा की। इसके अतिरिक्त नजीब खाँ ने मराठों को धोखे में डालने के लिए अनेक झूठी अफवाहें फैलाईं और फिर उसने शाह अब्दाली से गठबंधन करके अवध के नवाब शुजा को भी ओर नजीब खाँ की मराठों के विरुद्ध तीव्र प्रतिद्वंद्विता, शाह अब्दाली का भारत पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन देने के लिए पर्याप्त थी। उधर वजीर गाजीउद्दीन फिरोजजंग ने राजधानी में हो विद्रोह कर रक्खा था जिससे उसको शाही परिवार के सदस्यों पर अत्याचार करने का अवसर मिला। उसने दोआब के सूबेदार अदीना बेग को ही पंजाब का सूबेदार बनाकर (१७५६ ई०) मुगलानी बेगम तथा उसकी पुत्री को बंदी कर लिया था जिन्होंने शाह अब्दाली को पत्र लिखा कि "मैं भारतीय सरदारों के कुचक्रों से विनाश के गर्त में आ पड़ी हूँ। करोड़ों रुपये की धन-सम्पत्ति मेरे श्वसुर वजीर कमरुद्दीन के महल में ही मेरी जात में गड़ी हुई है जिसके अतिरिक्त कमरा में सोने और चाँदी के ढेर यूँ ही संग्रहीत हैं। यदि आप इस समय भारत पर आक्रमण करें तो भारत का विशाल साम्राज्य तथा इसकी सम्पूर्ण धन सम्पत्ति आपके ही हाथों में आजायेगी।'

अतः शाह अब्दाली ने १७५७ ई० में जब भारत पर एक बार सफल आक्रमण कर लिया तो उसका पुनः भारत पर सैनिक अभियान करने का हौसला और भी अधिक बढ़ गया। फिर १७५८ ई० में मराठों की सहायता से पंजाब के अफगान सूबेदार तैमूरशाह तथा उसके साथ नियुक्त जहान खाँ का लाहौर से निष्कासन, तथा आलमगीर द्वितीय की १७५९ ई० में वजीर गाजीउद्दीन के कुचक्रों से हत्या, ने शाह अब्दाली को भारत पर पुनः आक्रमण करके पंजाब पर अधिकार करने तथा मराठों की शक्ति को ध्वस्त करने के लिये और भी आकर्षित कर दिया।

(१) भाऊ साहब की सेना में युद्ध न करने वाले आश्रितों की संख्या पर्याप्त थी और फिर दीर्घकाल तक युद्ध न प्रारम्भ करने के कारण उनको धन और रसद का अभाव का सामना करना पड़ा। मराठों ने जमुना के उस पार दीर्घकाल से चौथ वसूली के बहाने वहाँ पर लूट मार कर की नीति अपना रक्खी थी, जिससे उस समस्त चारों ओर के क्षेत्र में जहाँ पर कि भाऊ साहब की सेना स्थित थी, मराठों को रसद एकत्र करने में भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसी मध्य नारो शंकर तथा गोविन्द बल्लाल को भी जो मराठा सेनाओं को रसद भेजने का महत्वपूर्ण दायित्व का पालन कर रहे थे। दिसम्बर १७६० ई० में शाह अब्दाली की अफगान फुफुक ने पकड़ कर मौत के घाट उतार दिया। परिणामतः

रसद के अभाव ■ भाऊ साहब को जनवरी १७६१ ई० में अपनी सेनाओं को मोर्चों से निकालकर उस अब्दाली के विरुद्ध धीरे धीरे आगे बढ़ाने की नीति पर चलने को विवश होना पड़ा। उनके साथ इब्राहीम गार्दी का तोपखाना भी चल रहा था अत सेना को रक्षात्मक युद्ध करते हुए धीरे धीरे सचालित करने की आवश्यकता थी परन्तु इसके विपरीत भाऊ ने अब्दाली से ही काम लिया जिससे गार्दी अपने तोपखाने को द्रुतगामी मराठा सेनाओं के साथ-साथ ले चलने में समुचित रूप से समर्थ न हो सका।

(४) सदाशिवराव भाऊ के दक्षिण जाने अथवा समाचार भेजने के मार्गों का शाह अब्दाली ने सफलतापूर्वक अवरोध कर दिया था जिससे उत्तर भारत की मराठा सेनाओं तथा पेशवा के मध्य समाचारों का आदान प्रदान भी दीर्घकाल तक बन्द रहा। उसे पेशवा की अस्वस्थता के कारण सैनिक सहायता भी न मिल पाई और उसको रसद की कमी के अभाव का भी सामना करना पड़ा जिससे वह अपने पास कोई सुरक्षित सेना न रख पाया।

(५) अब्दालीशाह के पास मराठों से अधिक सेना थी उसके साथ मुगलों तथा मराठों की भांति भारी भारी तोपें न थीं प्रत्युत वह हल्की तोपें ही रखता था जिन्हें वह हाथियों पर लाद कर सुविधापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जा सकता था। उसने अपने साथ ६००० योद्धाओं की एक सुरक्षित सेना[1] भी रखी थी जिससे सन् १७६१ के युद्ध मे १४ जनवरी को प्रातःकाल से युद्ध में बुरी तरह से अस्त व्यस्त सैनिकों को दोपहर के बाद विश्राम दिलाने के लिए सुरक्षित सेना का प्रयोग करने का अवसर न मिला।[2]

(६) मराठों की पराजय का छठा कारण था स्वय उनके सेनानायकों सिन्धिया और होल्कर की पारस्परिक फूट तथा रघुनाथराव की अदूरदर्शिता। मराठा सैनिक दस्तों ने इब्राहीम खां गार्दी तोपची द्वारा दिये गये निर्देशों की ओर न तो कोई ध्यान दिया और न ही उन्हें उनकी उपयोगिता का महत्व मालूम था। उन्होंने तोपखाने के साथ सेनाओं को सचालित करने की उपेक्षा की। उधर मल्हारराव होल्कर नजीब खाँ के पूरे प्रभाव मे था उसने जैसा कि ग्राट डफ ने लिखा है कि सम्भवत अपने स्वार्थों की पूर्ति का अत्यधिक ध्यान रक्खा।[3]

---

1 कजलबाश सैनिको की फौज जो गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न होने पर शत्रुओं पर एकाएक टूट पड़ने के लिए सुरक्षित रक्खी गई थी, शाह अब्दाली की विजय का तात्कालिक कारण सिद्ध हुई।

2 Bhau Saheb could not keep any portion in reserve as the whole camp was intended to force a passage through the Afghan ranks With this disposition Bhau Sahed attempted to rush through the enemy s ranks with his entire army (G S Sardesai) See His— New History of the Marathas Page 439

3 J G Duff's History of the Maratha Page 153

(७) मराठा की पराजय का तात्कालिक कारण था—पेशवा के पुत्र विश्वास राव के युद्धस्थल में धराशायी होने पर भाऊ साहब का निराश होकर और भी तीव्र वेग से अफगानों की विशाल सेना में प्रवेश करके अधाधुंध युद्ध[4] करना तथा अपने सैनिकों की दृष्टि से ओझल हो जाना।

(८) शाह अब्दाली को भाऊ साहब से कहीं अधिक सैनिक अनुभव था, उसने मराठों[1] को परास्त करने के प्रत्येक सम्भव उपायों का प्रयोग किया। उसने मराठों के विरुद्ध रक्षात्मक युद्ध उस समय तक जारी रक्खा जब तक मराठा ने रसद के अभाव से पस्त होकर खाइयों से निकल कर बिना कुछ खाये पिये ही अब्दाली शाह के विरुद्ध तीव्र गति से सैनिक अभियान न किया। शाह अब्दाली ने मराठों की गतिविधि पर गूढ़ दृष्टि रक्खी और साथ ही साथ अपने भारतीय सहायकों यथा नजीब खाँ तथा शुजाउद्दौला पर सन्देहात्मक दृष्टि भी। क्योंकि उसे शंका थी कि वे अवसर पाकर उनके शत्रुओं से भी जाकर मिल सकते थे।

(९) मराठों ने अपनी सुरक्षा के लिए युद्ध के समय कवच एवं शिरस्त्राण आदि का प्रयोग न किया था, किन्तु इसके विपरीत अब्दाली के सभी सैनिक मोटी रूई तथा चर्म के वस्त्रों से अपने शरीर ढके हुए थे जिससे वे शत्रुओं के आघातों को कुछ समय तक सहन करके उनसे सरलता पूर्वक युद्ध करते रह सकते थे। अब्दाली के सेनापतियों ने फौलादी कवच धारण करके मराठा सैनिकों को अपने प्रबल प्रहारों से क्षत विक्षत कर डाला।

(१०) भाऊ साहब अपनी सेना के विभिन्न दलों का समन्वय करके युद्ध संचालन करने में सफल न हुआ जबकि शाह अब्दाली की सफलता के मूलमन्त्र अर्थात् उसके द्वारा सैनिक दलों में पूर्ण सहयोग तथा समन्वय स्थापित रखने की सैनिक नीति ने अफगानों को मराठा सेना से जम कर युद्ध करने का अवसर दिया।

(११) शाह अब्दाली के सैनिक काफी लम्बे-चौड़े तथा हृष्ट-पुष्ट थे जबकि उनके विपक्षी—मराठे—दक्षिण भारत के निवासी होने के कारण छोटे कद के तथा दुबले-पतले ही थे। उनकी सक्रियता में यद्यपि कोई सन्देह न था और दक्षिण के पठारी इलाकों में वे दुर्जेय ही थे किन्तु पश्चिमोत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में वे उन

4 दे०—भाऊ बखर— "कौजेचा मनसुबा राहिला" अर्थात् १४ ता० के पहले रात्रि में बनाई गई वर्गाकार मोर्चे के आधार पर युद्ध संचालन की योजना त्याग दी गई।

1 See Sardesai— New History of the Marathas, Page 439

(ii) "In generalship also the superiority of Abdali was obvious as Bhau Saheb all his enthusiasm was inferior to the Shah in the military handing of a battlefield"

विशालकाय अफगानों के आगे अपने अनेकानेक[1] अभावों से ग्रस्त होकर देर तक टिक पाने में समर्थ न हुए।

इस प्रकार की परिस्थितियों में मराठों की शक्ति का अफगान सेना ने भीषण विनाश किया। उनके असंख्य सैनिक मारे गये और असंख्य बन्दी बनाये गये। कुछ ने सूरजमल जाट के यहाँ तथा कुछ ने शुजाउद्दौला के शिविर में भाग कर अपने प्राण बचाये। इस युद्ध ने मराठों द्वारा प्राय एक शताब्दी की कराई सारी व्यवस्थाओं (उत्तर भारत में) का अन्त कर दिया। उनको दिल्ली पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में आगामी कई वर्षों तक भयंकर प्रयास करने पड़े किन्तु उनके सफल होने तक नवीन शक्ति—अंग्रेजों ने भी मुगल दरबार में अपना प्रभाव विस्तार कर लिया और इस कारण अब मराठों को अपनी प्रभुता को सर्वोपरि बनाने के लिये अंग्रेजों से युद्ध करना पड़ा।

पानीपत के युद्ध की महत्ता—इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि पानीपत के निराशाजनक परिणामों के मध्य नाना फड़नवीस तथा महादजी सिंधिया येन-केन प्रकारेण अपने प्राण बचा कर भाग निकले थे और उन्होंने स्वल्प काल में ही पुन मराठों को सगठित करके पेशवा के झण्डे के नीचे एकत्र कर उन्हें पाश्चात्य शैली की युद्ध प्रक्रिया में प्रशिक्षित कर दिया हम निस्सन्देह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि दीर्घकाल तक इतिहास के विद्वानों का यह विश्वास भ्रमपूर्ण ही रहा कि पानीपत के तृतीय युद्ध ने उत्तर भारत की मराठा शक्ति को पूर्णतया ध्वस्त कर दिया अथवा कम से कम भारत में उनके साम्राज्य की जड़ों को ही हिला डाला। यथार्थत मराठा साम्राज्य की जड़ों को तो नहीं प्रत्युत मराठा जाति की राष्ट्रीय भावनाओं को अवश्य ही इस युद्ध के निराशाजनक परिणामों ने विकम्पित एवं प्रज्वलित कर दिया। प्रोफेसर सर देसाई ने स्वय यह उल्लिखित किया है कि पानीपत के युद्ध के अधिक समय पश्चात् नहीं, प्रत्युत उसके थोड़े ही दिनों में मराठों की शक्ति पुन पूर्ववत् बढ़ने लगी और ४० वर्षों तक अर्थात् जब तक कि १६ वीं शती में द्वितीय मराठा युद्ध के पश्चात् ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित न हो गया[2], यह अविरल रूप में बढ़ती रही। वास्तव में इस युद्ध से मराठों के जनधन की अत्यधिक हानि हुई किन्तु इसने मराठों के राज सत्ता हस्तगत करने के साहस को किसी प्रकार कम न किया। उन्हें पेशवा माधवराव के रूप में एक असाधारण राजनीतिज्ञ, सिंधिया (महादजी) तथा होल्कर के रूप में महानतम सेनापतियों तथा नाना फड़नवीस के रूप में कुशल कूटनीतिज्ञ का नेतृत्व

---

1 'The strength of the Maratha fighter was in his horse , But during the months of starvation most of the horses died ■ compelling all troopers to play the role of infantry for which they were not trained

2 See Gersons da Cunha s Origin of Bombay

उपलब्ध हो गया और यदि उस पेशवा को आकस्मिक मृत्यु न हो जाती तो सम्भवत अंग्रेजों को भी मराठों की आधीनता ही स्वीकार करनी पड जाती तथा व मुगल दरबार मे मराठों से अधिक प्रभाव विस्तार कर पाने मे किसी प्रकार भी सफल न हो सकते थे। मेजर इवेन्स बेल ने लिखा है कि पानीपत[1] का युद्ध मराठों के लिये गौरव तथा परोक्ष विजय सिद्ध हुआ उन्होंने 'भारत भारतीयों का ही है', इस आदर्श की प्राप्ति के लिय संघर्ष करना प्रारम्भ कर दिया।'

जिस समय मराठे तथा कुछ भारतीय मुस्लिम सामन्त सरदार कुरुक्षेत्र की उस प्राचीन युद्ध भूमि पर शत्रुओं द्वारा घेरे जा चुके थे भारत म ब्रिटिश साम्राज्य का प्रथम संस्थापक लार्ड क्लाइव तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री तथा सुप्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ लार्ड चथम के भारतीय साम्राज्य के स्वप्न को पूर्ण करने के लिय भारत की ओर समुद्र यात्रा करने म संलग्न था। अस्तु स्पष्ट है कि पानीपत के युद्ध ने भारतीय राजसत्ता को हस्तगत करने के संघर्षों में एक नवीन शक्ति को प्रवेश करने का अवसर प्रदान किया। इस युद्ध का सीधा परिणाम वस्तुत यही था कि इसने भारतीय राजनीति के रंगमंच प्रतिद्वन्दिताओं को कुछ दूसरी ही दिशा प्रदान कर दी।

इस भीषण महासमर के परिणामो न मराठों तथा वजीर गाजीउद्दीन की आँखों को इतना चकाचौंध करके रख दिया कि वे बगाल म प्लासी के युद्ध द्वारा उत्पन्न राजनैतिक परिवर्तनों का अवलोकन भी न कर सके। भारत के सामन्त-सरदारों तथा राजनीतिज्ञों ने अंग्रेजों की प्रक्रिया तथा उनकी राजनैतिक एव आर्थिक लाभ की महत्वाकांक्षा का प्रयोजन ही न समझा। इसी प्रकार कर्नाटक की भी युगान्तरकारी घटनाओं का ठीक ठीक मूल्यांकन करने म गौहरअली, शुजा गाजीउद्दीन नजीब खाँ रघुनाथराव तथा मल्हारराव होलकर सभी ने उपेक्षा ही की। १४ जनवरी की इस दुखान्त घटना के दूसरे ही दिन बगाल को मुक्ति दिलाने के लिये गये हुए शाहआलम[2] को सोन नदी के तट पर अंग्रेजों ने घोर पराजय दी। इस के पश्चात् फिर दूसरे ही दिन अर्थात् १६ जनवरी १७५७ ई० को अंग्रेजों को फ्रांसीसियों के विरुद्ध भी सफलता मिली और अब उनकी प्रतिद्वन्दिता करने वाला दक्षिण भारत में उस समय तक कोई भी न रह गया जब तक कि पेशवा को पानीपत के युद्ध मे प्राप्त क्षतियों को पूरा करने तथा मराठा को पुनर्गठन करने से छुट्टी न मिली। इसी प्रकार दक्षिण भारत में हैदरअली की नवीन शक्ति के विकास का भी प्रत्यक्ष कारण पानीपत के युद्ध म मराठो की पराजय ही था।

इस युद्ध में मराठो की पराजय ही उनके पुनरुत्थान का कारण सिद्ध हुई और

2 Marathas They fought in the cause of 'India for the Indians,' while "

1 मुगल सम्राट।

उन्होंने अपनी राष्ट्रीय नियुक्ति के क्षेत्र में इन अनुभवों से लाभ प्राप्त करके अब अधिक विवेक से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि शाह अब्दाली ने शाह आलम को पुनः सिंहासनासीन कर दिया था तथापि वह किसी प्रकार एक स्वतन्त्र एवं सशक्त शासक न सिद्ध हो सका और न ही उनके अधिकार से भारत के विभिन्न क्षेत्रों एवं दीवानी आय पृथक होते गये। प्लासी के युद्ध तथा कर्नाटक के गृह संघर्ष को रमायें इस बात को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है कि सम्राट की प्रभुसत्ता इस समय तक पूर्णतया जर्जरित हो चुकी थी। इसी कारण 'कामन्दार तथा शाह' ने अपने ग्रन्थ 'भारत में मुगल साम्राज्य का इतिहास' में यह उल्लेखित किया है कि 'मुगल शासन का जन्म और अन्त दोनों ही पानीपत के युद्ध में हुए थे।[2]

सारांश—पानीपत के युद्ध के कारण संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) पंजाब की अव्यवस्था, (२) केन्द्र में वजीर गाजीउद्दीन का कुशासन, (३) सम्राट आलमगीर द्वितीय की हत्या, (४) शाही परिवार के प्रति वजीर की अत्याचारपूर्ण नीति, (५) मराठों की १७५८ ई० में शाह अब्दाली के पुत्र तैमूर शाह तथा उसके अनुयायियों का लाहौर से निष्कासित करना के बाद पंजाब की अपूर्ण सुरक्षा-व्यवस्था तथा (६) नजीब खाँ, मुगलानी बेगम एवं मलिका जमानी द्वारा शाह अब्दाली को भारत आक्रमण का आमन्त्रण।

इसमें मराठा की पराजय के कारण ये हैं कि पहले तो मराठों की आपसी फूट उनकी दीर्घकाल तक उत्तर भारत में निष्क्रियता तथा उनके सैनिक दावों ने, शाह अब्दाली को पर्याप्त समय तक अपना सैन्य संगठन करने का अवसर दिया और दूसरे यह कि शाह अब्दाली ने मराठा की गतिविधि पर गूढ़ दृष्टि रखकर उनका चारों ओर से अवरोध कर लिया। मराठों को रसद भी न मिल पाई क्योंकि उन्होंने अपना सारा धन और भोजन गत कई महीनों तक निष्क्रियता में ही समाप्त कर दिया था। मराठों के पास रुपया न थे और उन्होंने अपनी सुरक्षित सेना भी न रखी थी। परिणामतः मराठों की इस पराजय ने अंग्रेजों को शक्ति वृद्धि का अवसर प्रदान किया दक्षिण भारत में हैदरअली के अभ्युदय का मार्ग दृढ़ किया तथा मुगल दरबार में सत्ता को हस्तगत करने की प्रतिद्वन्दिता में एक नवीन एवं विदेशी शक्ति—अंग्रेजों—को यथेष्ट सुअवसर दिया।

इस युद्ध के परिणामस्वरूप कुछ समय तक पेशवा को अपनी आन्तरिक स्थिति में सुधार करने में कठोर प्रयास करने पड़े। उसने प्लासी के युद्ध के परिणामों, चान्दासाहब की हत्या तथा फ्रांसीसियों के विरुद्ध अंग्रेजों की सफलता (१६ जनवरी

---

2 See Gersons da Cunha s ' Origin of Bombay —"The Muhgul rule began and ended on the field of Panipat

१७६१) आदि घटनाओं का ठीक ठीक मूल्यांकन भी न किया और न किसी शक्तिशाली मुगल राजनीतिज्ञ ने ही।

इस दुघटना का अन्तिम परिणाम था मराठो ▪ इस भीषण सहार के पश्चात् उनमें सहयोग तथा सगठन की भावना का विकास और अपने राष्ट्रीय गौरव म ही पुन प्राप्ति के लिये उनके ये प्रयास पेशवा माधवराव की अपरिपक्वावस्था में ही मृत्यु के फलस्वरूप अंग्रेजों के विरुद्ध सफल न हो सके और द्वितीय मराठा युद्ध मे उन्हे इन विदेशियो ने परास्त भी कर दिया।

Q Assets the advantages to the Muslims British and the Rajputs from the defeat of the Marathas in the battle of Panipat (R U 1958)

प्रश्न—पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय से मुसलमानों, अंग्रेजो तथा राजपूतों के होने वाले लाभों का मूल्यांकन कीजिये। (रा० वि० वि० १९५८)

उत्तर—पानीपत के युद्ध में मराठो की पराजय से सबसे अधिक लाभ की आशा मुसलमानों ने की थी, किन्तु अन्तत यह उनकी दुराशा मात्र ही सिद्ध होकर रह गई। यह युद्ध जो १४ जनवरी १७६१ ई० को पानीपत की ऐतिहासिक समर भूमि पर शाह अब्दाली और मराठा द्वारा लडा गया उसम इस अफगान विजेता न भारत के राजसिंहासन की लालसा न करके केवल पजाब पर ही अपने स्थाई प्रभुत्व की इच्छा की थी क्योकि विशाल सेना की व्ययपूर्ति का वह एक अच्छा साधन बन सकता था। शाह अब्दाली दिल्ली सिंहासन के प्रश्न म कोई हस्तक्षप न करना चाहता था और न ही उस सम्बन्ध मे मराठों के क्षेत्राधिकार को उसने अपनी ओर से कोई क्षति पहुँचाई यद्यपि वे उसके हाथों पराजित होकर सामान्यत सबसे अधिक क्षतिग्रस्त हुए थे। बालाजीराव का पुत्र माधवराव अभी १६ वष का ही था कि उसे एकाएक अपने पिता क सक्रिय उत्तराधिकारी के रूप मे महाराष्ट्र के विभिन्न शत्रुओ हैदरअली, निजामअली तथा अंग्रेजो से लोहा लेने की जटिल समस्या का सामना करना पड़ा। माधवराव २० जुलाई १७६१ के दिन मराठा छत्रपति द्वारा पेशवा घोषित किया गया। पेशवा माधवराव तथा उसके चाचा रघुनाथराव के परस्पर सम्बन्ध सन्तोषजनक न थे और रघुनाथराव किसी प्रकार स्वय पेशवा बन बैठने का कूटनीतिक प्रयास करना चाहता था। कालान्तर में उसने सलावतजग निजाम उल-मुल्क के भाई एव मुख्य परामर्शदाता निजामअली को भी इस सम्बन्ध म अपना समथक बनाने की एक असफल चेष्टा की। तथापि माधवराव के सत्तारूढ होने के पश्चात् निजामअली ने उदयगिरि की पराजय का बदला लेने की दृष्टि से रायचूर दोआब के कुछ सम्पन्न क्षत्रो की पुर्नविजय करने का प्रयास किया।

मुसलमानों को लाभ—

(१) निजामअली—यह उल्लेख हम पहले भी कर चुके है कि दक्षिण भारत

में मराठों व निजाम का मुस्लिम शक्तियाँ—निजाम तथा हैदरअली सफलता की किन्तु उत्तर भारत में भी मुगलों की उत्तरोत्तर क्षीण होती हुई सत्ता व अफगान नवाबों तथा जाटों और उनके साथ-साथ राजपूतों के पारस्परिक झगड़ों के कारण अशान्ति व्याप्त थी। इससे अंग्रेजों का अपना विस्तार [illegible] दैनिक लाभ करने का अनुकूल अवसर मिल गया था। माधवराव इन परिस्थितियों से भलीभाँति अवगत था और उसने इन विद्रोही तत्वों में एक एक को समाप्त कर देना [illegible] सफल कर लिया था किन्तु अपने शासनकाल के प्रारम्भिक २ वर्ष तो उसे अपने गृह युद्ध को ही शान्त करने में व्यतीत कर देने पड़े। यह महाराष्ट्र का महान् अहित तथा बड़ा दुर्भाग्य था।

निजामअली ने ६० सहस्र सेना लेकर सितम्बर तथा अक्टूबर १७६१ ई० में पूना तथा उसके आस-पास के मराठा ग्रामों को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। उसने इन स्थानों के धार्मिक मठों आदि को भी भीषण क्षति पहुँचाई। अन्त में अक्टूबर के अन्त तक माधवराव उसके चाचा रघुनाथराव के प्रयासों से अन्य भौंसले तथा अन्यान्य सरदारों ने पेशवा के झण्डे के नीचे एकत्र होकर निजामअली के विरुद्ध अभियान कर दिया। उनके सैनिकों ने निजाम की सेना से अहमदनगर, श्रीगोन्दा, मुलेश्वर तथा हिवरे आदि स्थानों पर छुट पुट संघर्ष भी किये, किन्तु दोनों पक्षों में कोई निर्णायक युद्ध न हुआ। निजामअली ने ८ दिसम्बर को पूना से २० मील उत्तर में स्थित 'घुस' के प्रदेश को अधिकृत करके 'उरुली' की ओर प्रस्थान कर दिया किन्तु वहाँ पहुँचते ही उसे मराठा सेनाओं ने बुरी तरह घेर लिया। ऐसी दशा में निजाम अली को पेशवा से संधियाचना करनी पड़ी क्योंकि उसके द्वारा किये गये धर्म स्थानों के विनाश से उसके समर्थकों में उसके विरुद्ध तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो गया था और चन्द्रसेन जाधव का पुत्र रामचन्द्र जाधव तथा स्वयं निजामअली का भाई मीर मुगल उसका साथ छोड़कर मराठों से आ मिले थे। ऐसी स्थिति में माधवराव तथा गोपाल राव पटवर्धन, जानोजी भोंसले, बापूजी नायक तथा त्र्यम्बकराव पेठे ने शत्रु को बन्दी करके उसकी सेना का विनाश कर देने का निश्चय किया किन्तु रघुनाथराव ने पेशवा को प्रभावित करके दोनों पक्षों में संधि करवा दी। उसने अपने विजित क्षेत्र मराठों को वापस लौटाने तथा उन्हें ४० लाख रुपये क्षतिपूर्ति देने का वचन दिया। यह संधि तो हो गई किन्तु इसने पेशवा,[1] उसके संरक्षक तथा चाचा रघुनाथराव के मध्य स्थाई मतभेद तथा अविश्वास जाग्रत कर दिया। जिसका उल्लेख दूसरे शीर्षक के अन्तर्गत किया जायेगा।

कालान्तर में रघुनाथराव तथा पेशवा के मध्य सीधे युद्ध संघर्षों के फलस्वरूप निजामअली ने पूना तथा नासिक और सतारा के आसपास के क्षेत्रों को पुन

---

1 माधवराव अभी वयस्क नहीं हुआ था।

आक्रान्त करना प्रारम्भ कर दिया। जनोजी भोसले इस अवसर पर रघुनाथराव तथा निजामअली के पक्ष में जा मिला था। तथा पेशवा माधवराव ने जून १७६२ ई० तक अपने कुछ विश्वासपात्र कर्मचारियों—गोविन्द शिवराम तथा सखाराम बापू को क्रमश गोपालराव तथा जनोजी भोसले के पास भेजकर उनके माध्यम से इन असन्तुष्ट मराठा सरदारों को अपना अनुयायी बनाने में सफलता प्राप्त कर ली। फलत अगस्त मास म जिस समय निजामअली 'राक्षस भुवन' मे अपनी के मुख्य भाग को पीछे छोडकर वहाँ से गोदावरी नदी की जो बाढ पर थी, पार कर रहा था एकाएक मराठों ने उस पर ऐसा भयकर आक्रमण किया कि इसके असख्य सैनिक मारे गये। अब निजामअली ने मराठों से उनके शिविर के बन्दी अपने भाई मुराद खाँ के द्वारा सधि का प्रस्ताव करवाया, किन्तु पेशवा माधवराव ने उसके उपलक्ष में निजाम से मेमरा नदी तथा औरगाबाद का मध्यवर्ती सम्पूर्ण क्षेत्र माँगा जिसके लिये निजाम तयार न हुआ। अत पहली सितम्बर को मल्हारराव होल्कर तथा जनोजी भोसले का सम्मिलित सेनाओं ने आगे बढकर औरगाबाद पर प्रबल आक्रमण कर दिया। शत्रुओं न कुछ देर तक तो उनसे युद्ध किया किन्तु बाद मे वे उनके आगे टिक न सके। अत पेशवा तथा निजाम के पक्षो म २५ सितम्बर को औरगाबाद की सधि हो गई। जिसके अनुसार निजामअली ने ८२ लाख की मालगुजारी देने वाला वह समस्त क्षेत्र पेशवा को प्रदान किया जो कि गत ४ वर्षों में मराठा से छीना गया था। इस विजय का सारा श्रेय वस्तुत पेशवा माधवराय का ही प्राप्त है, जसा कि प्रो० सरदसाई ने अपनी इतिहास पुस्तक म स्वय स्पष्ट[1] सकेत किया है।

(२) हैदरअली का उत्कर्ष—हैदरअली ने धीरे धीरे अपनी शक्ति सचय करके मराठों को तुगभद्रा नदी क उस पार तक खदेड दिया था। जिस समय पेशवा निजामअली के विरुद्ध सघर्षों म व्यस्त था, उस समय हैदरअली ने बेदनूर को विजय करके सेवानूर, कनरल कदप्पा के नवाबों को भी, जो दीर्घकाल पूर्व मराठा की आधीनता स्वीकार कर चुके थे, आतकित कर दिया। इसी मध्य उसने मुरार घोरपडे की जागीर को हस्तगत कर लिया था, जिससे मराठों मे घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया। तथापि मराठो का १७६४ ई० तक उसके इस अबाध प्रभाव विस्तार का अवरोध करने का कोई अवसर न मिल सका क्योंकि वे पानीपत के युद्ध म अपनी अपार जन धन की हानि के पश्चात निजामअली की शक्ति का दमन करने में ही सलग्न थे।

पेशवा के इस विषम स्थिति का सामना करने के उद्देश्य से माधवराव ने मुरार घोरपडे को आमन्त्रित करके उस अपने पक्ष स मिलाया और गोपालराव ने मुरार

---

1 "The battle of Rakshasbhuvan was won mainly through Madhavrao's own initiative and energy exhibited throughout the campaign

पटवधन के नतत्व म हैदरअली के विरुद्ध दो सहस्र सेना भेज दी। इस युद्ध म दोनो शक्तियो पेशवा तथा हैदरअली क वास्तविक बल का अनुमान लग गया। मराठो ने हैदरअली की सेना को ऐसी पराजय दी कि वह अपने १ सहस्र सनिको को पीछे छोडकर 'करवार' के जगलो म (अनावतो के सुरक्षित स्थान) जा छिपा। मुरारराव घोरपडे इसी समय मराठा राज्य का प्रधान सेनापति बना दिया गया। जुलाई म हैदरअली ने गोपालराव पर गुप्त ढग से आक्रमण करके सेवानूर के दुग पर पुन आधिपत्य करने पर प्रयास किया कि तु वह असफल रहा और पेशवा ने गोपालराव को और अधिक सनिक सहायता पहुँचाकर स्वय धारवार पर आक्रमण करन के लिए उस दिशा मे प्रस्थान कर दिया। वह बडे ही सनिक महत्व का दुग था और इसकी रक्षा करन का हैदर के एक सेनापति फजलअली खाँ ने दो मास तक निरन्तर भरसक किन्तु असफल प्रयास किया। तत्पश्चात् ६ नवम्बर को उसने दुग को खाली करके पेशवा के समक्ष आत्म समपण कर दिया।

इसके पश्चात् १ दिसम्बर १७६३ ई० के दिन सेवानूर (Sevanur as quoted by Sardesai in his New History of the Marathas) से कुछ दक्षिण में स्थित 'जादी अनवती (Jadi Anwati) के स्थान पर दोना पक्षो म एक निर्णायक युद्ध हुआ जिसमें हैदरअली की पराजय हुई और साथ ही साथ उसके १२०० सैनिक भी मराठों द्वारा मौत क घाट उतार दिये गय। इसके पश्चात् हैदरअली जो बेदनूर के घने जगलो में जा छिपा था वर्षाकाल भर मराठो के विरुद्ध मदान मे न आ सका। इस समय में वह मराठों क विरुद्ध शीत युद्ध ही चलता रहा और उसके साथ ही साथ वह उनसे सधि याचना भी करता रहा। हैदरअली को इस समय रघुनाथराव और पेशवा के मतभेदो से भी अपनी शक्ति वृद्धि करने का सुअवसर मिला।

रघुनाथराव ने अपने को राजनीति से पृथक् घोषित कर नासिक म रहना प्रारम्भ कर दिया था और हैदरअली के विरुद्ध अपने सैनिक अभियान के समय पेशवा ने अपने चचा को कई बार पत्र भजकर उनके प्रति अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की थी और साथ ही उससे युद्ध विषयक महत्वपूर्ण परामर्श लेते रहने की चेष्टा भी की थी। पेशवा ने अपने अनुपस्थिति-काल मे उससे पूना की सुरक्षा आदि का ध्यान रखने का भी अनुरोध किया था। मोरनारायण आबा, पुरन्दर दुग का प्रधान रक्षक था और उसके आधीनस्थ रक्षा सेना के कोली सरदारों ने दुगपति के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस अशान्ति के लिए रघुनाथराव ने पेशवा को और पेशवा ने कालान्तर म रघुनाथराव को उत्तरदायी ठहराया। रघुनाथराव ने इस सम्बन्ध म पेशवा के लिए और भी कठिनाई उत्पन्न करने की चेष्टा की किन्तु नाना फडनवीस ने इस सम्बन्ध में पेशवा माधवराव को जो कर्नाटक अभियान म व्यस्त था पूरी तरह से रहस्योद्घाटन कर दिया फलत रघुनाथराव को पेशवा माधवराव ने अपने सेवानूर के शिविर म चले आने की आज्ञा दी और वह २७ जनवरी १७६५ को वहाँ पहुँच गया।

हैदरअली के साथ संधि—पेशवा तथा उसके अनुयायी सेवानूर का नवाब मुरारराव घोरपड़े तथा पटवर्धन मसूर के राजा को पुनः सत्तारूढ़ करके हैदरअली की शक्ति को सदैव के लिये ध्वस्त कर देने पर कटिबद्ध थे किन्तु हैदरअली के दूत मराठा शिविर में संधि का प्रस्ताव लेकर आये हुए थे। परन्तु रघुनाथराव ने पेशवा के इस कण्टर प्रतिद्वन्दी को भी निजामअली की भाँति किसी प्रकार मराठा दमन चक्र से बाहर निकालने का ही प्रयास किया। उसने संधि वार्ता में हस्तगत करके हैदरअली के पक्ष में पेशवा द्वारा उदारतापूर्ण शर्तें ही स्वीकार कराने का सफल प्रयत्न किया। यह संधि ३० मार्च १७६५ को स्थाई रूप से दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार कर ली गई और इसकी शर्तें निम्नलिखित हैं।

(१) हैदरअली ने ३० लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में दिये और मराठों के हित में तुगभद्रा के उत्तरवर्ती सारे क्षेत्र भी त्याग दिये।

(२) उसने सवानूर के नवाब और मुरारराव घोरपड़े को मराठा सामन्त स्वीकार करते हुए उनके क्षेत्र भी वापस कर दिये।

यह संधि अनन्तापुर की संधि के नाम से प्रख्यात है। इस समय पेशवा ने इस सम्पूर्ण क्षेत्र का, जिसे उसने हैदरअली से वापस पाया, व्यवस्था के लिए गोपालराव, मुरारराव तथा रास्ते (Rastes) परिवार के सदस्यों की देखरेख में छोड़कर स्वयं धार्मिक स्थानों के दर्शनार्थ प्रस्थान कर दिया। इससे स्पष्ट है कि एक बार फिर उसके ईर्ष्यालु चचा को, उसके विरुद्ध एक नष्टप्राय शत्रु को आश्रय प्रदान करने का अवसर मिल गया जो कालान्तर में अंग्रेजों की ही भाँति मराठा राजतन्त्र का विनाश करने में पूर्ण सहायक सिद्ध हुआ।

अंग्रेजों से लाभ—जिस समय कुरुक्षेत्र के समरांगण में मुसलमानों तथा मराठों का घोर युद्ध हो रहा था, इङ्गलैंड के प्रधान मंत्री लार्ड चथम को प्रसन्न करने के उद्देश्य से लार्ड क्लाइव भारत विजय के लिये इङ्गलैंड से चल चुका था। पानीपत के युद्ध ने भारत की प्रभुसत्ता के लिये होने वाले संघर्ष में एक नवीन प्रतिद्वन्दी को प्रविष्ट होने का अच्छा अवसर प्रदान किया और वह था—अंग्रेज। सरदेसाई ने लिखा है कि उस ऐतिहासिक घटना का सीधा परिणाम यही था जो अपने महत्व की दृष्टि से भारतीय इतिहास की गतिविधि में एक स्पष्ट परिवर्तन समझा जाता है।[1] जिस दिन पानीपत के युद्ध का निर्णायक संग्राम हुआ, उसके दूसरे ही दिन मुगल सम्राट शाह आलम को उसके बंगाल अभियान में सोन नदी के तट पर, मेजर कार्नक के नेतृत्व में अंग्रेज सेनाओं ने घोर पराजय दी। सम्राट के फ्रांसीसी सनिक अफसर

1 This is indeed the direct out come of that historical event which on that account marks a turning point in the history of India —Sardesai

New History of India V 2, Page 455.

बन्दी बनाये गये और वह स्वयं भी अब अंग्रेजों के संरक्षण में रहने को विवश कर दिया गया। इसी घटना के ठीक दूसरे दिन पाण्डेचेरी का पतन हुआ और अंग्रेजों ने भारत में टिके हुए फ्रांसीसियों की सत्ता का मूलोच्छेदन करने का प्रथम प्रयास किया। तत्पश्चात पेशवा बाजीराव की असफलता से अंग्रेजों को कर्नाटक तथा बंगाल में अपने प्रभाव विस्तार का स्वर्णिम अवसर मिल गया। उन्होंने जिस समय पेशवा माधवराव हैदरअली का दमन करने में व्यस्त था, रघुनाथराव की ओर से सैनिक सहायता की माँग के संदेश को पाकर मराठों की दुर्बलता का आभास भी पा लिया था। तथापि रघुनाथराव ने उस सहायता के उपलक्ष्य में 'बसीन' के द्वीपों की माँग को अस्वीकार कर दिया और न ही उस सहायता का उपयोग करना उचित समझा।

२५ जनवरी १७६७ को अंग्रेजों ने कान्नपुर के छत्रपति के आधीनस्थ 'मालवान दुर्ग' को भी बलात हस्तगत किया। इसका नाम उन्होंने आगस्टस दुर्ग रक्खा। माधवराव अंग्रेजों को अपना सबसे पहला शत्रु समझता था और उनकी शक्ति को ध्वस्त करने के ही लक्ष्य से उसने निजामअली से मैत्री संधि की थी तथापि नागपुर के भोसले तथा स्वयं अपने चचा रघुनाथराव से उसे कोई आशा न थी और वे अंग्रेजों की ओर से थोड़ा सा भी प्रलोभन पाकर उनके ही पक्ष में आ मिल सकते थे। हैदरअली ही एक ऐसी शक्ति थी, कि जिससे अंग्रेज तथा मराठे दोनों ही तीव्र घृणा करते थे। अतः माधवराव ने सर्वप्रथम मैसूर के शासक हैदरअली को ही समाप्त करने का प्रयास किया। माधवराव से जब वह हैदरअली से १७६० ई० में पुनः युद्ध कर रहा था, अंग्रेजों ने समझौता करने का भी प्रयास किया किन्तु उन्हें उसमें कोई सफलता न मिल सकी तथा उनका प्रस्ताव लेकर गया हुआ अंग्रेज दूत मास्तिन (Mostyn) पूना में ही कुछ वर्ष तक और टिका रहा जहाँ से वह मराठों के विषय में अनेकानेक गुप्त बातों को सूचित करता रहा। यही नहीं मोस्तिन ने अंग्रेजों को परामर्श देकर सूरत में विद्रोही मराठा सरदार राघोबा को भी आश्रय दिलाया। इसी कारण मराठों तथा अंग्रेजों के मध्य सीधा युद्ध संघर्ष छिड़ गया, जो ७ वर्ष तक चलता रहा और जिसमें मराठों की पराजय हुई और उनकी राजनैतिक प्रतिष्ठा को भीषण क्षति पहुँची।

बक्सर का युद्ध—जिस समय मराठे दक्षिण की समस्या में ही बुरी तरह से व्यस्त थे बंगाल की नवाबी का अंग्रेज सत्ताधारी खुला क्रय विक्रय करने में लगे थे। उनके द्वारा बनाया गया वहाँ का नया नवाब मीरकासिम उनकी बढ़ती हुई माँगों को पूरा करने में असफल होने के कारण अब उनका कोपभाजन बन गया था। उसे अंग्रेजों ने घेरिया तथा ऊधोनाला के स्थानों पर परास्त करके अवध की ओर भगा दिया था। अंग्रेजों ने मीरजाफर को पुनः बंगाल का नवाब बनाया किन्तु वह उनके लिये पहले से भी अधिक निरर्थक सिद्ध हुआ। उसने अंग्रेजों के व्यापारिक हितों में प्रबल हस्तक्षेप करके उन्हें अपना कट्टर वैरी बना लिया। अन्ततः मीरकासिम नवाब

हुआ तथा शाह आलम की संयुक्त सेनाओं ने अक्टूबर १७६४ में अंग्रेजों पर तीव्र आक्रमण किया। दोनों पक्षों की मुठभेड़ बक्सर के स्थान पर हुई और संयोगवश अंग्रेज ही विजयी हुए। फलतः अंग्रेजों की सत्ता अवध पर भी परोक्ष रूप से स्थापित हो गई। यदि मराठों का इस अवसर की महत्ता का लेश मात्र भी आभास हुआ होता तो सम्भवतः उन्होंने इस ओर अपना ध्यान अग्रसर करके मुगल सम्राट को अंग्रेजों के हाथों बन्दी होने से किसी प्रकार बचाने का अवश्य सफल प्रयास किया होता। वे अपने ही संकटों से छुटकारा न पा सके थे और उसी मध्य दशा पर यह अचानक विपत्ति आ गई।

राजपूतों को मराठों की पराजय से लाभ—पानीपत के युद्ध में परास्त होकर मराठों ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और उनके पीछे राजपूताना तथा बुन्देलखण्ड के राजपूतों ने भी अपनी सत्ता को स्वतन्त्र कर लिया। डा० दीघे (Dr Dighe) ने लिखा है कि, 'जब तक मराठे अपनी आतंकपूर्ण शक्ति से अपने प्रभुत्व की रक्षा न करते, उनके उत्तर भारत के आधीनस्थ सरदार उनकी आज्ञाओं का आदर करने की लेश मात्र भी चिन्ता न कर सकते थे। उत्तर भारत के मराठों के प्रभाव क्षेत्रों—दिल्ली, आगरा, दोआब, बुन्देलखण्ड तथा मालवा में छोटे छोटे (राजपूत) राजाओं ने विद्रोह कर दिया। स्थानीय सैनिक दल उठ खड़े हुए। पर्वतीय जातियों ने अशान्ति उत्पन्न कर दी और आगामी कुछ ही वर्षों में मराठों की राज्य सीमायें चम्बल नदी के दक्षिण तक पीछे की ओर खिसक गई और उनका प्रभुत्व भी वहीं तक सीमित रह गया।'[1] सिक्खों ने तो १७६२ से १७६७ ई० तक पंजाब में शाह अब्दाली के विजय कार्य को भी पूर्णतया व्यर्थ सिद्ध कर दिखाया।

राजपूतों में सबसे प्रबल शक्ति जयपुर के माधोसिंह की ही थी, किन्तु १७६१ ई० में ही उसे मल्हारराव होल्कर ने कोटा के समीप मंगरोल के पास घोर पराजय दी। तथापि मराठों को अपनी शक्ति को उत्तर भारत में पूर्ववत् स्थापित करने में पर्याप्त लम्बा समय लग गया। पेशवा माधवराव हैदरअली द्वारा उत्पन्न की गई दक्षिण भारत की समस्या को ही सुलझाने में व्यस्त था अतः उसने उत्तर भारत की स्थिति को सुधारने के लिये सिंधिया तथा होल्कर को नियुक्त किया। इसी मध्य सिंधिया के उत्तराधिकार प्रश्न में रघुनाथराव ने हस्तक्षेप करके उसकी स्थिति को इतना संदिग्ध बना दिया कि वह उत्तर भारत सम्बन्धी अपने दायित्व का भली भाँति

1 'So long as Marathas could not support their authority by armed might the northern potentates were not going to respec their commands Maratha dominion in the north—Delhi Agra Doab Bundel Khand Malwa—became a flame with revolt of petty rulers rising of local militias and disturbances of hill tribes and the next few years witnessed the shrinking of Maratha frontiers and withdrawing of their rule to the south of the Chambal

पालन करने में समर्थ न हो सका। इस प्रकार होलकर तथा सिंधिया उस अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या का निराकरण करने में सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुए और मराठों का प्रभुत्व उत्तर भारत पर स्थाई न रह सका।।

उपयुक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर तथा दक्षिण भारत में १७३१ ई० के बाद से उत्पन्न हुई अशांति और अव्यवस्था का मूल कारण पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय ही थी। यदि इस युद्ध में पेशवा की शक्ति पर कुठाराघात न हो गया होता तो उसकी शक्ति और आतंक के सम्मुख सिर उठाने की क्षमता स्वयं निजाम में भी न थी और साथ ही मैसूर में हैदरअली की नवीन शक्ति का उदय भी सम्भव न हो पाया होता।

सारांश—१४ जनवरी १७६१ के दिन पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की घोर पराजय हुई जिसके परिणाम सारे देश के लिये घातक सिद्ध हुए। भारत के शासन तन्त्र पर मराठों का जमा जमाया प्रभुत्व समाप्त हो गया और साथ ही देश में आन्तरिक अशांति और विद्रोही कुचक्रों का बोलबाला हो गया। इस विद्रोहों के सूत्रपात में अंग्रेजों ने गुप्त सहयोग देकर अपनी स्थिति और भी दृढ़ कर ली। उदाहरणार्थ बंगाल की नवाबी तथा चाँदा साहब के उत्कर्ष में अंग्रेजों का ही प्रमुख हाथ रहा था। इसी प्रकार मुसलमानों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि का प्रयोग किया किन्तु वे इस दिशा में अंग्रेजों से पीछे ही रहे।

हैदरअली की शक्ति का उदय, मराठों में उत्पन्न हुए तत्कालीन आंतरिक मतभेद, उनकी शक्ति का पानीपत के युद्ध में ह्रास, तथा मराठा निजाम प्रतिद्वन्दिता के ही फलस्वरूप हुआ। उससे युद्ध करते करते मराठों ने अपने जन धन का विनाश कर लिया और फिर जब उनको अंग्रेजों से संघर्ष करना पड़ा तो उन्हें न तो राजपूतों से और न ही दक्षिण के मुसलमानों से कोई सहायता मिल सकी। राजपूत तो पानीपत की मराठा पराजय से ही मराठों से स्वतन्त्र होकर स्वयं उनके शत्रु बन चुके थे। वास्तविक लाभ तो न हुआ मुसलमानों का और न ही राजपूतों का, प्रत्युत उनके स्थान पर अंग्रेजों को असीम लाभ प्राप्त हो गया।

अध्याय 4

मराठे और अंग्रेज

Q By a tabular statement of the results of various treaties with the British, show how the power of the Marathas progressively declived

प्रश्न—अंग्रेजों के साथ मराठों द्वारा की गई विभिन्न सन्धियों के परिणामों का सूचीबद्ध विवरण देते हुए, यह स्पष्ट कीजिये कि किस प्रकार मराठों की शक्ति का उत्तरोत्तर पतन होने लगा।

उत्तर—अंग्रेजों का आगमन तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रगति—यह तो सर्व विदित ही है कि सन् १६०० ई० में इंग्लैण्ड की सम्राज्ञी ने 'चार्टर' की मान्यता देकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया था किन्तु इसके पहले भी अंग्रेज यात्रियों और व्यापारियों का भारत में प्रवेश आरम्भ हो चुका था। सन् १६५० ई० के बाद से इस व्यापारिक कम्पनी की अप्रत्याशित उन्नति होने लगी। कम्पनी के अफसरों ने भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर [illegible] मराठा हितों को भी क्षतिग्रस्त करना भी आरम्भ कर दिया था। यही नहीं उन्होंने शिवाजी के शत्रु राज्य बीजापुर की सहायता करने का भी साहस कर लिया।

(अ) शिवाजी का शासन काल

राजापुर की संधि—कम्पनी के फैक्ट्री अभिलेखों से विदित होता है कि सन् १६६० ई० में दभोल का बन्दरगाह बीजापुर राज्य के आधीन था जिस पर रुके हुए अफजलखां के तीन व्यापारिक जलपोतों को राजापुर के अंग्रेज व्यापारियों ने शिवाजी के आक्रमण से बचाने का प्रयास किया। इतना बड़ा साहस कर लेना कोई बच्चों का खेल तो नहीं कि वे दक्षिण के दिग्विजीय मराठा राजा के प्रभुत्व की अवहेलना कर पाते, किन्तु इससे हमें इस तथ्य का पूर्ण आभास मिल जाता है कि उस समय तक भारत में अंग्रेज व्यापारियों ने क्षेत्रीय नाम करने के स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया। परिणामत शिवाजी ने राजापुर पर जनवरी १६६० तथा मार्च १६६१ में भयंकर आक्रमण करके अनेक अंग्रेज अफसरों को बन्दी बनाकर लिया, किन्तु सूरत की अंग्रेजी कम्पनी के अध्यक्ष मि० रविंग्टन (Refingtun) की प्रार्थनाओं

पर १७ जनवरी १६६३ ई० को तहस नहस किया गया। कहा जाता है कि इस अवसर पर शिवाजी के एक पदाधिकारी रावजी पण्डित ने शिवाजी की मोहर लगाकर यह घोषणा प्रकाशित की थी कि—

"हमे अतीत को भूल जाना चाहिये। हमारा बीजापुर से संघर्ष चल रहा था जिसके लिये धन की आवश्यकता थी इसी कारण राजापुर को यह क्षति उठानी पडी।[1]

जनवरी १६६० ई० मे शिवाजी ने राजापुर पर आक्रमण मूलत कुछ राजनैतिक कारणो से किया था जिनकी ओर हम ऊपर सकेत भी कर चुके हैं। परन्तु ६ मार्च १६६१ ई० को उन्होने राजापुर को केवल इस कारण आक्रान्त किया कि वहा के अंग्रेज व्यापारियो ने १६६० ई० म जबकि सिद्दी जौहर ने बीजापुर की ओर से पन्हालगढ का घेरा डाला तो उन्होंने उसे शिवाजी के विरुद्ध बारूद तथा हथगोले आदि देकर उसकी सहायता करने की चेष्टा की थी। शिवाजी ने उक्त तिथि पर एकाएक आक्रमण करके जिन ४५ अंग्रेजो को बन्दी बनाया उनमे हेनरी रविंग्टन भी सम्मिलित था।

इस घटना के पश्चात् जनवरी १६६४ तथा अक्टूबर १६७० ई० मे शिवाजी के नेतृत्व में मराठो ने सूरत बन्दरगाह पर क्रमश दो सफल अभियान किये जिनका उद्देश्य था मुगलों के आधीन इस सुप्रसिद्ध बन्दरगाह को लूट पाट कर स्थानीय व्यापारियो से चौथ वसूल करना। इन आक्रमणो में सूरत की दूसरी लूट मे अंग्रेज व्यापारियों को भीषण क्षति पहुँची था और इस कारण वे अब मराठों से संधि करके [1]किसी प्रकार अपने व्यापारिक कलापों से ही सन्तुष्ट रहना चाहते थे। सर देसाई ने लिखा कि "इस बार शिवाजी सूरत से ६० लाख रु० का नकद धन एकत्र करने के पश्चात साल्हेर तथा मुल्हेर के मार्ग से वापस लौट गये।"

खन्डेरी द्वीप के लिये शिवाजी तथा अंग्रेजों का युद्ध (१६७९)—खन्डेरी का द्वीप बम्बई के ११ मील दक्षिण तथा जजीरा द्वीप के ६० मील उत्तर मे स्थित है। यह तत्कालीन सनिक महत्व की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। शिवाजी जजीरा टापू का हस्तगत करने का दृढ निश्चय कर चुके थे और इस उद्देश्य पूर्ति के लिये उन्हें किसी ऐसे सनिक स्थान की अत्यधिक आवश्यकता थी जहाँ पर वे अपने नाविक बेडे को सुरक्षित रोक कर जजीरा पर अभियान कर सकते थे। अत शिवाजी ने पहले खन्डेरी द्वीप जो अंग्रेजों के अधिकार मे था, को आधीनस्थ करने का ही सकल्प कर लिया किन्तु उनके इस इरादे को अंग्रेज पहले से ही

1 See Sardesai —New History of the Marathas
Let us forget the past We had on hand a war with Bijapur for which funds ware needed and so Rajapur had to Suffer
2 April 1672 See English Factory Records Surat 87

मराठों ने अंग्रेजों से १८ अक्टूबर १६७६ ई० को खण्डेरी में लिये दूसरी बार मोर्चा लिया। युद्ध की घटनायें बतलाने से विषय अत्यन्त बढ़ जायेगा अतः यहाँ पर यह जान लेना ही पर्याप्त होगा कि मराठों को अपने शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त हुई और उन्होंने खण्डेरी की किले बन्दी करने में सफलता पा ली। अंग्रेजों ने शिवाजी से इस समय पर संधि कर लेने में ही अपना कल्याण समझा, यद्यपि बम्बई का सहायक गवर्नर सूरत की प्रान्त परिषद (Surat Council) के इस प्रस्ताव के विरुद्ध मराठों को खण्डेरी से निकाल बाहर करना चाहता था। इसके पश्चात् सिद्दियों ने खण्डेरी से कुछ ही दूर पर स्थित एक अन्य टापू को जिसका नाम उन्डेरी था अधिकृत कर उसकी किले बन्दी कर ली। इस काम में अंग्रेज तथा सिद्दी एक दूसरे से मिले हुए थे। इस छोटे से द्वीप पर सिद्दियों का अधिकार हो जाने से, क्योंकि वे मराठा के कट्टर शत्रु थे, शिवाजी के खण्डेरी पर अधिकार का कोई विशेष महत्व न रह गया।

राजापुर कारखाने को पहुँचाई गई हानि की क्षतिपूर्ति के लिये वार्ता—अक्टूबर १६७० ई० में शिवाजी ने बम्बई के अंग्रेजों का दमन करने का केवल इस कारण निश्चय किया कि उन्होंने उन्हें (मराठा छत्रपति को) डंडा राजपुरी के सिद्दियों को हराने के लिये युद्ध सामग्री समुचित मूल्य पर देने से इन्कार कर दिया था। बम्बई के अंग्रेज अफसरों ने सूरत के फैक्ट्री अधिकारियों को १४ अक्टूबर १६७० ई० को इस सम्बन्ध में सूचित करते हुए लिखा कि "जब हम लोग बम्बई ग्राम में ईंधन की खोज में गये हुए थे तो कुछ मराठों ने (शिवाजी के लोग) [Shivaji's people] हमें मना किया। अतः हम वापस लौट आये। इसके पश्चात् सितम्बर १६७१ ई० में शिवाजी ने अंग्रेजों के साथ आवश्यक समझौता कर लेने के विचार से बम्बई को अपना एक राजदूत भेजा क्योंकि वे डंडा राजपुरी के सिद्दियों के विरुद्ध अंग्रेजों से समुचित युद्ध[1] सामग्री क्रय करना चाहते थे। इस राजदूत के माध्यम से अंग्रेजों ने मराठा छत्रपति को उनकी शस्त्रों की माँग के विषय में कोई निश्चित उत्तर तो दिया नहीं प्रत्युत अपनी राजापुर फैक्ट्री की हुई हानि की क्षतिपूर्ति के लिये ही बारम्बार बल दिया।

मराठों तथा अंग्रेजों की परस्पर विरोधी योजनाओं के कारण किसी निश्चय पर पहुँचना उन दोनों पक्षों के लिये सम्भव न था। अतः अंग्रेज अफसरों ने लेफ्टीनेण्ट स्टीफेन उस्टिक (Lieut Stephen Ustick) को सीधे शिवाजी के साथ संधि वार्ता करने के उद्देश्य से भेजने का निश्चय किया। इस अंग्रेज दूत की

1 See Sarkar's view in his Shivaji and His Times Page 340 'His chief motive was to secure English and against Danda Rajpuri, especially a supply of gerenadoes mortar pieces and ammunition"

भेजते समय कम्पनी के अफसरों ने उसे यह निर्देश किया कि वह मराठों द्वारा पहुँचाई गई क्षतियों के सम्बन्ध में पूर्ण सन्तोषजनक समझौता करके ही समस्या का अन्त करने की चेष्टा करे तथा शिवाजी से समूह २ प्रतिशत कर देकर उनके राज्य के समस्त बन्दरगाहों तथा द्वीपों से अंग्रेजों के व्यापार करने के अधिकार के विषय में स्पष्ट फरमान (कौल) अथवा आज्ञापत्र उपलब्ध कर ले। (फैक्ट्री रिकार्डस ८७)[1]

यह मराठा राजदूत बम्बई की अपने साथ ६००० रुपये की व्यापारिक वस्तुएं जिनमें सूरत के बन्दरगाह पर लूटा गया कपड़ा भी सम्मिलित था, अंग्रेजों से मिलने वाली युद्ध सामग्री के साथ विनिमय के लिये ले गया था किन्तु अंग्रेजों ने इसे स्वीकार न किया। अस्तु अंग्रेजों ने इस समय के लिये शिवाजी को १५००० रु० की युद्ध सामग्री नहीं देना निश्चित किया किन्तु वह भी ऋण रूप में जिसका कि उन्हें ६ मास के अन्दर भुगतान कर दिया जाना आवश्यक था। इस समाचार को लेकर मराठा राजदूत अपने स्वामी के पास चला आया। फैक्ट्री अभिलेखों से पता चलता है कि लेफ्टिनेण्ट उस्टिक १५ जनवरी १६७२ ई० को शिवाजी के दरबार में चला जाने वाला था किन्तु इसी मध्य शिवाजी ने बम्बई फैक्ट्री को सूचित किया कि वह इस समय पूना तथा बगलाना में मुगलों का प्रतिरोध करने में व्यस्त थे अतः उन्हें दूत से मिलने का समय शीघ्र मिल सकेगा। अस्तु वह १० मार्च १६७२ ई० के पूर्व शिवाजी से मिलने जाने की स्थिति में न हुआ।

१० मार्च को जब उस्टिक महाराष्ट्र आया तो शिवाजी कोली देश की विजय करने में तत्परता से संलग्न होने के कारण उसे अधिक समय न दे सके किन्तु उन्होंने उसे आश्वस्त किया कि राजापुर में की गई लूट के सम्बन्ध में जो भी वस्तुएं उनके सरकारी प्रपत्रों में दर्ज की गई हैं वे उन्हें लौटाने को तैयार थे। अन्ततः उस्टिक वहाँ से खाली हाथ वापस लौटा और उसकी यात्रा भी असफल सिद्ध हुई।

इतना होते हुए भी अब अंग्रेज लोग शिवाजी की शक्ति से भयभीत रहने लगे और इस कारण उन्होंने शनैः शनैः उनसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध ही बनाये रखने का निश्चय किया।

टामस निकोल्स का शिवाजी से मिलने आना—१९ मई १६७३ ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपना एक अन्य राजदूत टामस निकोल्स (Thomas Niccolls) शिवाजी के पास भेजकर राजापुर के विषय में समझौता करने का दूसरा प्रयास किया। इस समय शिवाजी तीर्थ यात्रा के लिये गये हुए थे अतः वह ब्रिटिश राजदूत से ३ जून १६७३ ई० के पूर्व न मिल सके। इस दिन भी शिवाजी

---

1 दे०—फै० रि०, सूरत ८७, १०६

"...they being not commodities proper for the Honiebl Company to deal in

ने उस दूत से कोई बातचीत न की और उसका सामान्य आदर सत्कार करने के पश्चात उन्होंने उसे यह कह कर विदा किया कि "वह कम्पनी के अध्याय को अपने भीमाजी पण्डित नामक कर्मचारी के हाथ स्वयं अपना पत्रोत्तर प्रेषित कर देंगे।"

दोनों पक्षों में दो तीन मास तक निरन्तर राजदूतों द्वारा पत्रों का आदान प्रदान होता रहा किन्तु स्थाई रूप से कोई निर्णय न लिया जा सका। अन्तत अंग्रेजों ने जून १६७४ ई० म शिवाजी के राज्यतिलक के समय हेनरी आक्सिडेन तथा उसके आधीनस्थ नारायण शनवी (Narain Shenvi) को रायगढ़ भेज कर स्थाई रूप से समझौता करने का निश्चय किया।

हेनरी आक्सिडेन का असफल प्रयास—१५ मार्च १६७५ ई० को शिवाजी तथा आक्सिडेन की भेंट मे कुछ आशा हुई कि वह अंग्रेजों की प्राय सभी मांगें स्वीकार कर लगे परन्तु इस सम्बन्ध में सरकारी तौर पर कोई लिखा-पढ़ी न की जा सकी क्योंकि शीघ्र ही शिवाजी को फोण्डा' की विजय के लिये बाहर चले जाना पड़ा।

इस प्रकार अंग्रेजों द्वारा शिवाजी के साथ राजापुर की क्षतिपूर्ति के विषय म किये गये सारे प्रयास एक एक करके विफल होते गये और दिसम्बर १६८२ अथवा जनवरी १६८३ ई० के लगभग यह फैक्ट्री बन्द कर दी[1] गई। तथापि सरदेसाई का मत है कि आक्सिडेन तथा शिवाजी के मध्य परस्पर व्यापार तथा मित्रता के सम्बन्ध मे अवश्य एक सन्धि हो गई और अंग्रेजों तथा मराठों के सम्बन्ध शिवाजी के जीवनकाल म मत्रीपूर्ण ही बने रहे[2]।' अंग्रेजों तथा मराठों के मध्य होने वाले इस सम्बन्ध-व्यवहार के विषय म जेम्स ग्राण्ट डफ महोदय लिखते हैं कि कुछ कठिनाई[3] के बाद ही शिवाजी से सधि की वे धारायें स्वीकार कराई जा सकीं जो

---

1 See F R Surat 91
'Shivaji never paid the promised indemnity in full as long as he lived and the Rajapur factory was closed in Shambhuji s reign in December 1682 or January 1683'
(Also see Sarkar s— Shivaji 5th Edition Page 350)

2 Sardesai— New History of the Marathas' Vol I Page 281—82
A treaty of mutual trade and friendship was then arranged between them and their relations remained cordial during Shivaji s life time

3 J G Duff—' History of the Marathas Vol I Page 217
It was with some difficulty that Shivaji was brought to consent to those articles which regarded the wrecks and coins

हुए हुए जहाजों तथा सिक्कों से सम्बन्धित थी, "अन्त में उन्होंने सभी धाराएँ स्वीकार[1] करली और मि० आक्सिडन को अंग्रेजों के विषय में शिवाजी के विचार अच्छे बनाने का सुअवसर भी मिला, किन्तु यद्यपि राजापुर की फैक्ट्री पुनः स्थापित कर ली गई तथापि इससे कोई लाभ न मिल सका और यह बात संदिग्ध ही है कि अंग्रेजों ने कभी भी उस संधि से तय की गई क्षतिपूर्ति का धन पाया हो।'

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि मराठा राज्य में अभी तक अंग्रेजों को कुछ व्यापारिक सुविधाओं के अतिरिक्त कोई भी अधिकार न प्राप्त हो पाये थे अतः जैसा कि प्रो० श्रीराम शर्मा ने लिखा[2] है कि 'शिवाजी के उपरान्त अंग्रेजों ने मराठों के सम्बन्ध में अधिक सावधानी की नीति का अनुसरण किया क्योंकि हर एक चीज बदलती हुई दिखाई दे रही थी।"

(ब) शाहूजी का शासन काल

ताराबाई के शासन में कान्होजी आंग्रे ने अपनी शक्ति का पश्चिमी समुद्र-तट पर अत्यधिक विस्तार कर लिया था और शाहूजी के महाराष्ट्र में सत्तारूढ़ होने पर उसने उनकी आधीनता स्वीकार कर ली। २० दिसम्बर १७१५ ई० को चार्ल्स बून (Charles Boon) ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बम्बई फैक्ट्री का अध्यक्ष बन कर आया। यह शाहूजी के आधीन मराठों की शक्ति वृद्धि से अत्यधिक ईर्ष्या रखता था। अतः उसने कान्होजी को परास्त करने के लिये नौ-सैनिक अभियान किया किन्तु क्लीमेन्ट डाउनिंग के संस्मरणों से विदित होता है कि वह कान्होजी आंग्रे वध प्रतिवर्ष अंग्रेजों के जहाजों को लूटता पाता रहा और उसके विषय में प्रो० एस० आर० शर्मा ने एक स्थान पर लिखा है कि 'अंग्रेजों पुर्तगीज तथा सिद्दियों के सम्मिलित विरोध के होते हुए भी अपने सुदृढ़ कोलाबा सुवर्ण-दुर्ग तथा विजय दुर्ग (घेरिया) के अधिकार के कारण वह समस्त[3] किनारे का स्वामी हो गया था।

बम्बई की समस्या—१२ मई १७३९ ई० में मराठों ने बसीन पर अधिकार करके उस स्थान से पुर्तगालियों को बाहर खदेड़ दिया। यह स्थान बम्बई के समीप होने के कारण वहाँ के अंग्रेज अधिकारियों ने चिमनाजी अप्पा के पास जो अभी बसीन में ही आवश्यक कार्यवश व्यस्त थे, अपने एक विश्वासपात्र व्यक्ति कप्टेन इञ्चबर्ड को भेजकर मराठों के साथ एक समझौता करने का सफल प्रयास किया। वह उनसे जून १७३९ ई० में मिला और दोनों पक्षों के मध्य सामान्य शान्ति एवं मैत्री बनाये रखने के सम्बन्ध में उसने संधि भी करा ली। तथापि बम्बई के अंग्रेज अफसर सन्तुष्ट न बैठ सके। उन्होंने मराठों की शक्ति वृद्धि को रोकने के अभिप्राय

1 See Orindens Narrative Mss and English Records

2, 3 "आधुनिक भारत का निर्माण' —प्रथम सं० पृष्ठ ११३,

से छत्रपति तथा पेशवा के मध्य स्थाई सघर्षात्मक परिस्थिति उत्पन्न कराने का स्वार्थ पूर्ण उद्देश्य लेकर कप्तान गोर्डन सतारा में ही रहा और इस बीच उसने महाराजा शाहू से कई बार वार्तालाप भी किया। उसने मराठों की केन्द्रीय सत्ता की शक्ति तथा दुर्बलता दोनों का निकट से अध्ययन किया। उसने १४ जुलाई को बम्बई पहुँचकर अपने अधिकारियों को तत्सम्बन्धी आवश्यक सूचना दी। इस प्रकार वस्तु स्थिति का अनुमान लगाकर अंग्रेजों ने मराठा पेशवा के साथ भी सम्बन्ध व्यवहार करने की आवश्यकता अनुभव की। इस कार्य के लिये उन्होंने कैप्टेन इंचबर्ड (Captain Inchbird) को अपना प्रतिनिधि बनाया। वह १४ जनवरी १७४० के दिन पेठन के समीप गोदावरी नदी के तट पर पेशवा बाजीराव से मिलने के लिये आया। दोनों के मध्य शान्ति एवं मैत्री की सधि हो गई। इस सधिपत्र में ८ अनुच्छेद थे और अधिकांशत मराठों तथा पुर्तगालियों के मध्य हुए गत युद्ध सघर्षों के परिणामों से ही सम्बन्धित थे तथापि इस सधि के फलस्वरूप जो ७ सितम्बर १७४० ई० को बालाजीराव द्वारा लागू की गई, थाल प्रदेश पर मराठों का अधिकार मान लिया गया।

'कान्होजी तथा उसका पुत्र सेखूजी दोनों ही मराठा सरकार के प्रभावशाली सदस्य थे और उन्होंने मराठा जल सेना का इतनी योग्यतापूर्वक सचालन किया कि महाराष्ट्र के पश्चिमी तट पर अवस्थित सभी विदेशी शक्तियाँ उनसे भयभीत रहतीं एवं उनका सम्मान[1] किया करती थीं "परन्तु पेशवा बाजीराव के पुत्रों ने जैसा कि प्रो० श्रीराम ने स्पष्ट किया है, नैतिक सिद्धान्तों तथा देशभक्ति की भावना की कमी से अपने शत्रुओं को आवश्यक अवसर दिया। सन् १७५५ ई० मे बालाजी बाजीराव ने विद्रोही तुलाजी आंग्रे के दमन के लिये अंग्रेजों की सहायता माँगकर सन्देहजनक बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया। मित्रों की सहायता के बदल मे काफी पारितोषिक (हर्जाना) मिला परन्तु इतना होते हुए भी मराठों के साथ उनके सम्बन्ध मित्रता पूर्ण न रह सके।'

इसी प्रकार सेखूजी की मृत्यु के बाद जब उसके भाइयों सम्भाजी तथा मनाजी के मध्य उत्तराधिकार सघर्ष उठ खड़ा हुआ तो शाहूजी की आज्ञानुसार बाजीराव को उनके मध्य समझौता कराने के लिये भेजा गया। उसने दोनों के मध्य राज्य का विभाजन तो कर दिया किन्तु वे एक दूसरे पर आये दिन आक्रमण करने लगे जिससे अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों दोनों को अपनी शक्ति वृद्धि करने का अच्छा अवसर मिला।

तुलाजी आंग्रे का विद्रोह—सन् १७५१ ई० मे ताराबाई तथा पेशवा बालाजी पन्त के मध्य पारस्परिक मत भेद एव सघर्ष का परिणाम और भी घातक सिद्ध हुआ। ताराबाई के प्रोत्साहन से तुलाजी आंग्रे ने पुर्तगालियों के साथ मिलकर वाड़ी के

---

[1] See Sardesai s 'New History of the Marathas' Vol 2 Page 177

सावन्त को अत्यधिक उत्पीड़ित किया और इसी मध्य अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों का युद्ध संघर्ष चल रहा था, जिससे स्थिति बिगड़ गई। पेशवा ने फ्रांसीसियों की सहायता करने की धमकी दी यदि अंग्रेज किसी भी रूप में तुलाजी आंग्रे का पक्षपोषण करने का साहस करते। इस समय पेशवा ने आंग्रे बन्धुओं की समस्या का हल करने का अधिकार रामजी पन्त को दे रक्खा था, जिससे तुलाजी आंग्रे को और भी अधिक असन्तोष हुआ। दोनों के मध्य भीषण शत्रुता उत्पन्न हो गई। परिणाम यह हुआ कि पेशवा के कर्नाटक अभियान व्यस्त होने के कारण उसकी अनुपस्थिति में रामजी पन्त ने बम्बई की कौंसिल से पत्र व्यवहार करके अंग्रेजों की नौ-सेना को तुलाजी के विरुद्ध प्रयोग करने के विषय में समझौता कर लिया। इस समझौते की शर्तें बम्बई के तत्कालीन गवर्नर बोरशियर (Bourchier) ने पेशवा द्वारा कौंसिल को ८ तथा ११ फरवरी एवं ८ मार्च १७५५ को भेजे गये पत्रों के आधार पर अपनी कौंसिल में तय की। संधि की शर्तें जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं निम्न लिखित हैं।—

(१) मराठों तथा अंग्रेजों की जल सेनायें अंग्रेजों के ही नियन्त्रण में रहेंगी।

(२) मराठों अथवा अंग्रेजों द्वारा आंग्रे बन्धुओं के पकड़े गये जल पोतों का दोनों के मध्य समान रूप में बटवारा कर लिया जाये।

(३) तुलाजी आंग्रे की पराजय के बाद मराठे अंग्रेजों को बनकोट, इससे सम्बन्धित हिम्मतगढ़ का दुर्ग तथा आस-पास के पाँचों गाँव सौंप दे।

(४) अंग्रेज लोग तुलाजी के पास समुद्र मार्ग से पहुँचने वाली प्रत्येक प्रकार की सहायता का सफल प्रतिरोध करें।

(५) यदि तुलाजी आंग्रे पर अंग्रेजों तथा मराठों को संयुक्त आक्रमण करना पड़े तो उसकी सफलता के उपरान्त खण्डेरी का द्वीप मराठे अंग्रेजों को क्षति पूर्ति के रूप में प्रदान करें।

इस प्रकार संधि करने के पश्चात् रामजी पन्त ने रत्नागिरि, अञ्जनवेल तथा ग्वाल कोट के दुर्ग तुलाजी आंग्रे पर सफल आक्रमण करके विजित कर लिये। परन्तु विजय दुर्ग को जीतने का विशेष महत्व था और इस कार्य में मराठों को अंग्रेजी की नौ-सैनिक सहायता लेना अनिवार्य हो गया, क्योंकि उनके पास आंग्रे को परास्त करने के लिये पर्याप्त जल सेना तथा उसको आवश्यक युद्ध सामग्री का सर्वथा अभाव था। वाटसन तथा लार्ड क्लाइव दोनों ही सामुद्रिक मार्ग से विजयगढ़ को जीतने के लिये चल दिये क्योंकि रामजी पन्त ने बम्बई की फैक्ट्री से इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार किया था। अतः मद्रास की अंग्रेजी सरकार ने इन सुयोग्य सैनिक आफीसरों को भेज दिया और उन्होंने १४ फरवरी १७५५ ई० के दिन विजय दुर्ग पर अधिकार करने में सफलता भी शीघ्र पा ली। इस दुर्ग को उन्होंने रामजी पन्त के हाथों में सौंपने से साफ इन्कार कर दिया।

तथापि कर्नाटक से लौटकर पेशवा ने अंग्रेजों के इस अनाधिकार कृत्य के लिये उन्हें २१ जुलाई १७५६ ई० को अत्यन्त कड़ा विरोध पत्र लिखा। उसने उन्हें इस बात से अवगत कराया कि यदि तुम लोग इस पत्र के सम्बन्ध में ठीक-ठीक काम नहीं करते हो, तो भविष्य का निर्णय ईश्वर के आधीन छोड़ दिया जायेगा।[1] फलतः इस समय अंग्रेजों ने पेशवा के पक्ष में विजय दुर्ग पर से अपना अधिकार त्याग दिया। परन्तु शीघ्र ही बम्बई से एक अंग्रेज दूत पूना भेजा गया जिसने आकर १२ अक्टूबर १७५६ ई० को पेशवा के साथ जो स्थाई संधि की उसके अनुसार विजय दुर्ग पर अपना अधिकार छोड़ने के बदले अंग्रेजों ने पेशवा से बनकोट तथा उसके आस-पास के १० गांव उपलब्ध कर लिये। इस प्रकार इस संधि के अनुसार मराठों के राज्य में अंग्रेजों ने क्षेत्रीय लाभ भी प्राप्त कर लिया और इसके पश्चात वह मराठों के समीप रहकर उनसे सम्बन्ध व्यवहार करने तथा समय समय पर उनको सामुद्रिक सहायता देकर उनकी गुप्त एवं महत्वपूर्ण बातों को जानने का सुअवसर मिलता रहा। यह तथा इससे पहले की संधि दोनों ही मराठों के लिये अत्यन्त क्षतिदायक सिद्ध हुई। इन संधियों के महत्वपूर्ण परिणामों के विषय में भारतीय इतिहास के विद्वानों[2] के कतिपय विचार थे कि पेशवा ने मराठों की ओर से अंग्रेजों की जल सेना की सहायता लेकर, अपनी मराठा जल शक्ति के बल को नितान्त प्रभाव शून्य एवं प्रगति हीन बना दिया। परन्तु सरदेसाई का मत तो यह है कि पेशवा पर इस प्रकार का आरोप लगाना[3] किसी सीमा तक त्रुटिपूर्ण भी है। उन्होंने पेशवा का पक्षपोषण करने के विषय में अपने कई एक तर्क भी प्रस्तुत किये हैं।

अंग्रेजों द्वारा मराठों से की गई संधियों का स्थाई परिणाम—मराठों के साथ अंग्रेजों ने समय समय पर जो विभिन्न संधियाँ की उनमें से शिवाजी के साथ की गई उनकी राजापुर की संधि से अंग्रेजों को कुछ व्यापारिक सुविधाओं के अतिरिक्त और कुछ भी न प्राप्त हो सका। परन्तु पेशवा बाजीराव तथा बालाजी राव के समय में उन्हें अपने प्रभाव विस्तार का अच्छा अवसर मिला। बालाजीराव ने आंग्रे बन्धुओं की शक्ति को ध्वस्त करके अंग्रेजों के साथ जो संधि की, उसका परिणाम मराठा जलशक्ति के लिये अन्ततः घातक ही सिद्ध हुआ, यद्यपि इस प्रकार

---

1 See Sardesai's—' New History of the Marathas ' Vol 2
'If you do not act up the future will lie in God's hands
2 इन विद्वानों में 'राजवाड़े' तथा उनके अनुगामी अन्य लेखकों के नाम ही उल्लेखनीय हैं।

3 In ascribing to the Peshwa unpardonable fatal indiscretion it seems we anticipate history and powerful as the Peshwa was certainly during the late fifties he had no reason to suspect that he could not control the action of the British power in Bombay

की सन्धि करने में पेशवा का कोई निजी स्वार्थ न था। वह केवल तुलाजी और मनाजी आंग्रे से अपनी आधीनता ही स्वीकार कराना चाहता था और यह मराठा शक्ति के एकीकरण के लिये उस समय पर अत्यधिक आवश्यक था।

सारांश—शिवाजी ने अंग्रेजों की राजापुर फैक्ट्री तथा सूरत बन्दरगाह पर दो दो बार सफल आक्रमण करके वहाँ के अंग्रेज व्यापारियों को भीषण क्षति पहुँचाई तथा बाद में खण्डेरी द्वीप के लिये दोनों में जो युद्ध संघर्ष छिड़ा, उसमें अंग्रेजों को ही अपमानित एवं पराजित होना पड़ा। तथापि अंग्रेज अफसरों को यो उसके पास राजापुर को पहुँचाई गई हानि की क्षति पूर्ति माँगने के लिये समय समय पर अपने दूत भेजे, उसका कोई वास्तविक परिणाम न निकल सका। अन्ततः अंग्रेजों को उनसे कुछ व्यापारिक सुविधायें ही प्राप्त करके सन्तुष्ट रहा जाना पड़ा।

शाहूजी के जीवन काल में और उनके मरने के बाद अंग्रेजों ने आंग्रे बन्धुओं की पारस्परिक फूट तथा उनके दोनों के पेशवा के साथ कटु सम्बन्धों के परिणाम से जो मराठा शक्ति को दुर्बल बनाने का मूल कारण सिद्ध हुआ, विशेष लाभ उठाया। तुलाजी आंग्रे का दमन करने के उद्देश्य से पेशवा के पदाधिकारी रामजी महादेव पन्त ने अंग्रेजों के साथ १७५५ में जो नाविक सन्धि की उसके फलस्वरूप मराठा जलशक्ति का विकास सदा सर्वदा के लिए रुक गया।

अध्याय 5 पेशवाओं की सामान्य शासन-व्यवस्था

Q. Give a brief description of the revenue administration of the Peshwas

प्रश्न—पेशवाओं के राजस्व प्रशासन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर—पेशवाओं ने शिवाजी द्वारा स्थापित की गई शासन नीति में आमूल परिवर्तन कर दिये। छत्रपति शाहू के सत्तारूढ़ होने के पूर्व ही औरंगजेब ने सारे महाराष्ट्र को जीतने का सफल प्रयास किया था किन्तु मराठा सरदार जैसे पंत अमात्य, धनाजी तथा बालाजी विश्वनाथ समय समय पर मुगल क्षेत्रों पर भीषण छापे-मारकर वहाँ से चौथ वसूल करते रहे। वे धीरे धीरे अपने विजित क्षेत्रों में ही अपनी शक्ति की स्थापना करने लगे। महाराष्ट्र में जागीरदारी प्रथा के पुन लागू करने में कितना दोष शाहू पर मढ़ा जा सकता है इसका पाठक स्वत ही अनुमान लगा लेंगे। श्री गोपाल दामोदर तामस्कर का यह वाक्य[1] इस स्थान पर विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि 'कुछ अंश तक जागीरदारी की प्रथा शाहू के पहले ही अमल में आ चुकी थी और उस समय महाराष्ट्र की रक्षा के लिये अनिवार्य थी।" तथापि यह भी सत्य है कि मराठा राज्य की काया पलट करने में इस जागीरदारी प्रथा ने ही सबसे अधिक योग दिया। शिवाजी द्वारा यत्नपूर्वक स्थापित किये गये एकतन्त्रात्मक राज्य के स्थान पर अब अनेकानेक मराठा सरदारों के साथ पेशवा की कुलीनतन्त्रीय सत्ता का अविर्भाव हुआ। उल्लेखनीय तो यह है कि इनमें से कुछ गर्वोन्नत सरदार जैसे कि आंग्रे, दाभाडे भोंसले तथा गायकवाड अपने को पेशवा के समकक्ष ही प्रभुत्वशाली मराठा सिद्ध करने का दावा करते थे किन्तु सिंधिया तथा होल्कर जैसे सुयोग्य सेनापतियों ने सदैव ही (प्रारम्भिक ३ या ४ पेशवाओं के समय में) पेशवा के स्वामिभक्त अनुयायियों की भांति आचरण करके उनकी अमूल्य सेवायें कीं। कालान्तर में धीरे धीरे वे भी गर्वोन्नत होते गये और अपनी

---

1 दे—गो० दा० तामस्कर कृत—'मराठों का उत्थान एवं पतन' पृष्ठ—४४२

जागीरों में ही वने रहकर स्वतंत्र शासकों की भाँति आचरण करने लगे, यद्यपि सिद्धान्तत ये सभी मराठा सरदार अन्त तक अपने को पेशवा का नौकर ही बतलाते रहे।

पेशवा-दफ्तर और उसकी व्यवस्था—पेशवाओं की शासन सत्ता स्थापित करने का सबसे प्रमुख साधन था—पेशवा दफ्तर जिसे कि मराठे लोग हुजूर दफ्तर की संज्ञा से अभिभूत करके देश का सर्वोच्च सरकारी कार्यालय (सिक्रेटरियेट) समझते थे। अष्ट प्रधानों के स्थान पर सीधे पेशवा द्वारा नियुक्त पदाधिकारी ही अब राज्य के प्रमुख कार्यकर्ता बन रहे थे। पहले का फडनवीस [Fadnavis] अब केवल फडनवीस ही न रहकर सारे हुजूर दफ्तर का प्रधान कार्यवाहक बन गया। यही नहीं वह अब पेशवा का भी प्रधान कारवारी था। उसकी स्थिति वर्तमान समय के चीफ सेक्रेटरियों जैसी ही थी। राज्य विषयक समस्त प्रकार का तथ्य दे सकने वाला यह पेशवा दफ्तर प्रत्येक प्रकार के राजकीय अभिलेखों की प्रतिलिपि संग्रहीत रखता था। इस समय में इस दफ्तर में कोई २०० कर्मचारी [लिपिक आदि] कार्य करते थे जिन्हें कारकुन कहा जाता था आगे चलकर नाना फडनवीस ने इस दफ्तर के कार्यों में अनेकानेक महत्वपूर्ण सुधार किये।

आय व्यय के साधन तथा भूमिकर की वसूली—पेशवाओं द्वारा स्थापित राजस्व प्रशासन का मराठा की मुल्की अथवा मुल्कगीरी व्यवस्था से विशेष घनिष्ट सम्बन्ध था इस व्यवस्था के फलस्वरूप अब लगान पटाने वाले कर्मचारियों की धीरे धीरे संख्या वृद्धि होने लगी थी। पेशवाओं ने इस बात का ध्यान रखकर कि जन साधारण की समृद्धि पर ही सारे राज्य की समृद्धि भी निर्भर थी रैयतों को मिलने वाली भूमिकर की दरों में एकाएक कभी भी परिवर्तन अर्थात् वृद्धि न होने दी। नई-नई भूमियों को कृषि उपयोगी बनाने के निमित्त अनेकानेक रैयतों को उनमें बसा कर प्रारम्भिक ६ ७ सालों के लिये उनकी सारी मालगुजारी माफ कर दी गई। इस अवधि के समाप्त हो जाने पर अगले ५ ६ वर्षों तक कृषकों से वास्तविक लगान वसूल होने लगता था। भारत के अन्यान्य भागों में खेती से मिलने वाला लगान ही राज्य की आय का प्रमुख साधन था। चौथ और सरदेशमुखी से मिलने वाली आय को छोड़कर राज्य की आमदनी के प्रमुख साधन कुल ५ प्रकार के थे—१—भूमिकर [व्यक्तिगत कृषकों एवं रयतों से मिलने वाली आय] तथा राज्य की निजी जमीन से होने वाली आमदनी, २—जकात एवं एक प्रकार का आय कर, ३—व्यय सम्पत्ति ४—टकसाल एवं ५—अर्थदण्ड इत्यादि। पेशवा की जागीर में उसकी कृष्योपयोगी भूमि का भी विभागीकरण किया गया था। इन्हीं विभागों को 'शेरी', 'कुरण', अमराई तथा वरोत्तर बाग कहकर सम्बोधित किया जाता था।[1]

1 दे०—'मराठों का उत्थान एवं पतन', पृ०—४४४

सामान्य कृष्योपयोगी भूमि के दो भेद थे—(१) 'पाटस्थल' एवं (२) मोट स्थल। मोटों आदि से सींची गई भूमि 'मोटस्थल' तथा नहरों द्वारा सिंचित भूमि को पाटस्थल कहा जाता था। बालाजी राव ने नये सिरे से कृष्योपयोगी भूमियों की नाप जोख कराई और लगान की दर निश्चित करने के लिए सरकारी अमीन नियुक्त किये। वे भूमि से उपजाई जा सकने वाली फसल का परीक्षण करके ही उसके लगान की दर निश्चित किया करते थे। उनके उस कार्य के औचित्यानौचित्य की देख रेख अथवा छान बीन करने के लिए पाहणीदार नियुक्त किए जाते थे जिनका दायित्व आजकल के रेवेन्यू इन्सपेक्टरों के ही अनुरूप होता था। प्रत्येक तर्फ में कृषि व्यवस्था एवं राजस्व वसूली की देख रेख करने के लिये एक एक 'तर्फ हवेली पाल' की नियुक्ति की गई। उस समय की लगान वसूली की प्रक्रिया का अनुमान बाजीराव के समय के एक सरकारी आज्ञा पत्र ■ ही लगाया जा सकता है। ये भूमि कर अधिकारी केन्द्रीय सरकार द्वारा नियत की गई दरों पर ही मालगुजारी वसूल कर सकते थे। इस सम्बन्ध में दिये गये सरकारी निर्देशों के अनुसार (१) धान (चावल) उपजाने वाली भूमियों के लिये प्रति बीघा कुल मिलाकर १० मन अनाज ही लगान के रूप में लिया जाता था। किन्तु इसमें से हवलदारों अथवा राजस्व एकत्र करने वाले कर्मचारियों को कोई भाग न दिया जाता था। (२) गन्ने की खेती से सम्बन्धित भूमियों पर प्रति बीघा ५ रु० लगान लिया जाता था, (३) शाक भाजी उपजाने वाली भूमियों के लिये, प्रति बीघा २ रु० ही लगान वसूल किया जाता था और (४) ग्रीष्मकाल में भी फसल दे सकने वाली जमीन पर डेढ़ रु० प्रति बीघा लगान ही लेने की अनुमति थी।

पेशवाओं द्वारा की गई जमाबन्दी की विशेषता यह थी कि पैदावार की घट बढ़ के अनुसार लगान की दरों में भी वृद्धि अथवा कमी की जा सकती थी। अस्तु ऊपर दी गई मालगुजारी की दरों के विषय में भी यही समझना चाहिये कि ये दर अधिकतम उपज देने वाली भूमियों के लिये ही उपयुक्त थीं और इनमें रयतों की आर्थिक स्थिति को दृष्टि में रखकर यथा सम्भव कमी भी की जा सकती थी।

पड़ती पड़ी हुई जमीनों को कृष्योपयोगी बनाने की व्यवस्था—पेशवाओं ने समय समय पर अपने अधिकारियों के लिये इस आशय के लिखित निर्देश प्रसारित किये कि वे पड़ती पड़ी हुई भूमियों को कृष्योपयोगी बनाने के निमित्त मराठा कृषकों को विभिन्न प्रकार की सुविधायें देकर प्रोत्साहित करते रहें। इस दिशा में लोगों को अग्रसर करने के लिये कभी-कभी इनाम की घोषणा भी कर दी जाया करती थी। रयतों को बहुधा आधी भूमि इनाम के रूप में दी जाती थी किन्तु शेष आधी के लिये उससे उदारतापूर्ण दरों पर मालगुजारी ली जाया करती थी। वस्तुतः जैसा कि हम पहले ही संकेत कर आये हैं ऐसी भूमियों पर कृषि करने वाले लोगों से कम से कम १२ वर्ष की अवधि के बाद ही नियमित एवं नियत दरों के अनुसार लगान वसूल

करना प्रारम्भ किया जाता था। यही नियम बागायत सम्बन्धी भूमियों के लिये लागू था। पेशवा शासक नारियल तथा आम के बगीचे लगवाने में विशेष रुचि लेते थे किन्तु सामान्यतः देश में हर प्रकार के बाग बगीचे लगाने की दिशा में भी वे यथेष्ट ध्यान देते थे क्योंकि महाराष्ट्र में बागायत का उस समय में विशेष अभाव था यद्यपि वे देशवासियों तथा राज्य दोनों को पर्याप्त आय प्रदान कर सकते थे।

दुर्भिक्षों तथा लूट मार आदि के संकटों में उपज नष्ट हो जाने की दशा में कृषकों को तकावी दी जाती थी और उनका लगान माफ कर दिया जाता था। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पेशवा शासन में भूमि सुधार के महत्वपूर्ण कार्य किये गये। ये शासक रैयतों की भलाई में अपनी अथवा राज्य की भलाई मानते थे तथा रैयतों की बुराई में अपनी बुराई। अस्तु उन्होंने यत्नपूर्वक देश में सिंचाई के विभिन्न साधन बनवाये जिनमें नहरों, तालाबों, बाँधों और कुओं का नाम उल्लेखनीय है। लगान सामान्यतः नकद ही लिया जाता था, परन्तु कभी-कभी और विशेष परिस्थितियों में यह धान्य के रूप में भी स्वीकार कर लिया जाया करता था।

मराठों की न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत अपराधियों से लिये गये अर्थ दण्ड से भी पेशवा सरकार को कुछ आय हो जाया करती थी।

पेशवाओं के समय में देश की छोटी से छोटी प्रशासनिक इकाई को 'ग्राम' कहते थे और उसकी शासन व्यवस्था करने के लिये प्रत्येक ग्राम में एक पटेल, एक कुलकर्णी तथा एक महार की नियुक्ति की जाती थी। ये लोग देशमुखों और देसाइयों को लगान वसूल करने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करते थे। महार बहुधा ग्राम की मालगुजारी के बाकीदारों को पटेल की चावडी में बुला लाता था जिससे पटेल को विशेष सुविधा मिलती थी। राजस्व प्रशासन के वास्तविक कार्य वाहकों—इन तीनों कर्मचारियों का देश में विशेष महत्व था। शनैः शनैः इनके पद भी पैतृक बन गये थे।

सुनार अथवा पोतदार—बहुधा २-३ ग्रामों के समूह अथवा एक अच्छे खासे ग्राम में एक एक पोतदार की नियुक्ति की जाती थी। वह जाति से सुनार होता था और सुनार का ही व्यवसाय किया करता था। इस स्थान पर राजस्व एकत्रीकरण में योग देने वाले पटेल एवं कुलकर्णी आदि की भाँति देश की अर्थ व्यवस्था में समुचित सहायता करने वाले उपयुक्त पोतदार नामक कर्मचारी के भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण दायित्व का उल्लेख कर देना श्रेयस्कर होगा। वह सिक्कों की धातु का परीक्षण का कार्य करता था जिसके लिये सरकार उसे नकद वेतन देने की व्यवस्था करती थी।

सारांश—पेशवाओं ने महाराष्ट्र की राजस्व व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। जागीरदारी प्रथा का प्रारम्भ तो पहले से ही हो चुका था किन्तु मुल्की व्यवस्था के विकास में पेशवा सरकार ने विशेष योग दिया। राज्य की आय का

प्रमुख साधन था—भूमिकर। किन्तु इसके अतिरिक्त जकात, आयकर, जगलों से मिलने वाली आय, अथ दण्ड इत्यादि से भी मराठा राज्य को समुचित आय उपलब्ध होती। राज्य म उस समय कुल मिलाकर २४-२५ प्रकार के करों का प्रचलन था। आपत्काल मे प्रजा के सारे कर माफ कर दिये जाते थे। इसी प्रकार पडती पडी हुई जमीन को कृष्योपयोगी बनाने के निमित्त भी रैयतों को अनेकानेक सुविधायें दी जाती थीं।

राज्य को प्रजा से मिलने वाले अन्यान्य कर—मराठा राज्य की आय के कुछ अन्य साधन भी थे। जिनमे विभिन्न प्रकार के राज्य कर आते थे।[1] प्रो० सुरेन्द्रनाथ सेन ने अपने इतिहास[2] ग्रन्थ के अन्तर्गत इनका सुविस्तृत उल्लेख प्रस्तुत किया है। इनके नाम गिनाने की अपेक्षा सक्षेप मे यह कहना ही वाछनीय होगा कि भूमि, उस पर पाई जाने वाली किसी भी वस्तु, सरकारी सुविधा अथवा उद्योग धन्धों आदि के लिये प्रत्येक देशवासी को कुछ न कुछ कर अवश्य सरकार को चुकाने पडते थे। इन करों मे 'जकात' का नाम विशेष उल्लेखनीय है और सकटकालीन स्थिति मे 'सरकार' यह कर भी जनता का माफ कर दिया करती थी। सम्भवत सरकारी कर्मचारियों से कोई जकात न ली जाती थी। धन की आवश्यकता के समय सरकार धनाढ्य लोगों से वतमान समय के आय कर की भाँति एक प्रकार का विशिष्ट कर वसूल करती थी कोकनस्थ ब्राह्मणों तथा प्रभुओं को भी राज्य करों से माफी मिली थी। जमाबन्दी के सामान जकात आदिक करों की वसूली के लिये भी कामविसदार आदि कर्मचारियों को नियुक्त किया गया था।

वन सम्पत्ति से मिलने वाली आय—महाराष्ट्र मे उत्तर भारत जैसे जगलों का तो अभाव ही था किन्तु पेशवा सरकार की देन मे जो कुछ भी वन सम्पत्ति उस समय में थी, उससे कुछ न कुछ आय अवश्य होती थी। सकटापन्न स्थिति को छोडकर सामान्य समय म जगलों से लकडी काटने, गोंद निकालने तथा अन्यान्य उपयोगी वस्तुयें उपलब्ध करने के उपलक्ष मे लोगों से कुछ न कुछ कर अनिवार्यत. वसूल किया जाता था। इस साधन से अन्यान्य साधनों की अपेक्षा बहुत ही कम आय प्राप्त हो पाती थी।

टकसालों से मिलने वाली आय—मराठा राज्य म सभी प्रकार के सिक्के प्रचलित थे चाहे वे देशी हों अथवा विदेशी। मराठी सिक्कों को ढालने के लिये कोई सरकारी टकसालें उस समय तक देश म न स्थापित हो पाई थीं। सिक्के बनाने का विशेषाधिकार राज्य के कतिपय जौहरियों तथा स्वर्णकारों आदि को ही प्राप्त

1 दे०—डॉ० दा० वामनकर गुप्त, मराठों का उत्थान एव पतन पृ०—४४६-४७ "ये कर कई प्रकार के थे, इनमे से मुख्य प्रकार के चौबीस-पच्चीस देख पडते हैं।"

2 See—Sen—' Revenue System of the Marathas

था किन्तु उन्हें अपने इस विशेषाधिकार के उपलक्ष में राज्य सत्ता को नियमित रूप में कुछ कर अवश्य चुकाना पड़ता था। पेशवा सरकार सिक्कों में धातु की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान देती थी। सभी प्रकार के सिक्कों का मूल्य उनमें मिलाई गई धातुओं के आधार पर ही नियत होता था। मराठा टकसालों में मोहर होन तथा रुपयों का निर्माण किया जाता था। १ होन का भार प्राय साढ़े तीन माशे के बराबर होता था और यह उस समय में सबसे अधिक लोकप्रिय स्वर्ण मुद्रा मानी जाती थी। महाराष्ट्र की टकसालों से बनाया गया रुपया अरकाट के रुपये के ही बराबर मूल्य पर चलता था। इसी प्रकार मराठों की मोहर भी शाही मोहर के बराबर समझी जाती थी। मराठा काल मुद्रा का सबसे छोटी इकाई थी तांबे का पैसा जो भार में १० माशे के बराबर होता था। इसके अतिरिक्त २२ माशे के भार के बराबर एक अन्य सिक्कों का प्रचलन भी महाराष्ट्र में पाया जाता था। उसे 'ढबू' कहते थे।

Q Write a note on Chauth and Sardeshmukhi showing how the Marathas justified it and why its victims denounced it?

(R U 1958)

OR

Discuss the historical significance of chauth and sardeshmukhi on the revenues of the free subas of the Deccan Were these claims morally justifiable? (R U 1961)

OR

Critically examine the origin and character of 'Chauth'. How did it influence the later history of the Marathas

(R U 1962)

प्रश्न—चौथ एवं सरदेशमुखी पर अपने विचार प्रकट करते हुए यह स्पष्ट कीजिये कि किस रूप में यह (कर) मराठों के लिये न्यायोचित एवं कर-दाताओं की दृष्टि में निन्दनीय थे ?

अथवा

दक्षिण के पाचों सूबों की मालगुजारी पर चौथ एव सरदेशमुखी के ऐतिहासिक महत्व की व्याख्या कीजिये। क्या ये मांगें नैतिक दृष्टि से उचित थीं ?

अथवा

चौथ एवं सरदेशमुखी के उद्गम एवं वास्तविक स्वरूप का अनुवीक्षण कीजिये। इसने मराठों के पश्चात कालीन इतिहास को किस रूप में प्रभावित किया ?

उत्तर—मराठों के चौथ नामक कर का उद्गम एवं वास्तविक स्वरूप— 'चौथ नामक शब्द मराठों के प्रसंग में अनेकों बार प्रयुक्त हो चुका है और इससे

सम्भवत उनके साथ ही मराठों के चौथ वसूल करने का संकेत मिलता है। इनके स्वरूप के विषय में चाहे भी जितना विचार वैषम्य हो परन्तु जहाँ तक इनके उद्गम के विषय में कोई प्रश्न उठता है मराठा इतिहास का कोई भी विद्यार्थी इस सम्बन्ध में पूर्णतया अवगत है कि यद्यपि शिवाजी स्वयं मुगल एवं बीजापुरी सेनाओं को आक्रान्त करके उनसे चौथ वसूल किया करते थे। तथापि अकेले मराठे ही इस कर को न वसूल करते थे और न शिवाजी ने ही यह कर वसूल करने की प्रथा चलाई। वस्तुतः भारत में इस सम्बन्ध में अनेक प्रमाण मिलते हैं।[1] परन्तु इसका स्वरूप अवसर अनुसार बदलता रहा। शिवाजी के समय में चौथ का रूप जो कुछ भी था पेशवा बालाजी विश्वनाथ के समय में वह न रह सका और बाजीराव के शासन में इसमें और भी अन्तर आया। चौथ वसूल करने की प्रथा पर अपने विचार प्रकट करते हुए प्रो० सरदेसाई ने एक स्थान पर लिखा है कि दीर्घकाल से दमन के पुर्तगालियों का कोलियों की लूटमार से सुरक्षित रखने की खातिर देने के उपलक्ष में रामनगर के राजा लोग उनसे चौथ अथवा भूमिकर का चतुर्थांश प्राप्त किया करते थे। कहा जाता है कि शिवाजी ने भी रामनगर वालों की भाँति विजित क्षेत्रों से चौथ वसूल करने की इसी रीति का अनुसरण किया शिवाजी की मृत्यु के बाद शीघ्र ही यह प्रक्रिया मराठों के शक्ति विस्तार की एक प्रबल साधन बन गई।[2] शिवाजी की चौथ वसूली के विषय में पीताम्बर सेनवी से महत्त्वपूर्ण ज्ञातव्य उपलब्ध हुआ था जिसे उन्होंने कालान्तर में अपने आधीनस्थ उच्च पद पर नियुक्त किया। इस कर को शिवाजी ने अपने स्वराज्य कार्यों के विकास कार्य में विशेष उपयोगी पाया शिवाजी ने इस कर को वसूल करने की प्रक्रिया उस समय से प्रारम्भ की जबकि उन्होंने स्वयं रामनगर के राजा को उसी युद्ध में परास्त कर दिया। वह चौथिया राजा के नाम से प्रख्यात था परन्तु शिवाजी के हाथों उसके परास्त हो जाने के बाद उसका चौथ वसूल करने का यह अधिकार भी उसके हाथ से निकल गया और फिर शिवाजी ही पुर्तगालियों तथा महाराष्ट्र के समुद्र तट पर स्थित अन्यान्य सेना पतियों से चौथ

---

1 Its character which varied according to circumstances may be likened to the variations of the chamelen s skin which are frequent by only skin deed

See Surendra Nath Sen s Military System of the Marathas P 28

2 Sardesai s— New History of the Marathas Page 200

The Rajas of Ram nagar had been receiving Chauth or one fourth of the land reveue from the Portuguese of Daman for long time past to ensure their defence against Koli raits Shivaji is supposed picked up this practice of exacting the levy of chauth on the model af Ram nagar It soon developed in to a formidable instrument for expansion of the Maratha power after Shivaji death '

वसूल करने लगे। उनके इस अधिकार के औचित्य के विषय में शिवाजी और पुर्तगालियों के मध्य पर्याप्त वाद विवाद भी चला, किन्तु अन्तत मराठों की बढ़ती हुई शक्ति के सामने उनके इन विरोधियों की एक न चली और शिवाजी ने पुर्तगालियो से ही नहीं अग्रेज व्यापारियो से भी चौथ वसूल की। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है मराठो द्वारा चौथ वसूल करने की इस प्रक्रिया का श्री गणेश शिवाजी ने ही कर दिया था। इस साधन से एकत्र की हुई धन सम्पत्ति सदव ही उनके द्वारा स्वराज्य विस्तार के गौरवशाली कार्य मे सतर्कतापूर्वक व्यय की गई जिसका परिणाम, भारतीय इतिहास में विशेष उल्लेखनीय सिद्ध हुआ।

- शिवाजी के समय में चौथ शत्रु देशो के असुरक्षित क्षेत्रों मे वसूल किया जाने वाला एक ऐसा कर था, जिसे प्राप्त करने के बाद मराठा सेनाओं को उन स्थानों पर बारम्बार लूट मार करने से रोका रखता जाता था। शिवाजी इस कर को सदव शक्ति के बल पर ही वसूल करने का दावा करते रहे और उसे उन्होंने अपनी बपौती अथवा वैधानिक माँग का रूप कभी भी न दिया। किसी स्थान का चौथ वसूल करने म असफल होने की दशा में वह इस आशय की राजाज्ञा भी, चौथिया राजा की भाँति न प्रसारित कर सकते थे कि वहाँ के लोगों को किसी नियम के अनुसार उन्हें चौथ देना ही पड़ेगी।

शम्भाजी द्वि० तथा राजाराम दोनो ने चौथ वसूल करने की नियम परम्परा का पूर्ववत पालन किया और उनके समय मे चौथ का स्वरूप ज्यो का त्यो बना रहा। उनके बाद शाहूजी के छत्रपति बनने पर चौथ के स्वरूप में विशेष परिवर्तन आ गया। शिवाजी जिसे कर के रूप मे प्राप्त करते थे, शाहूजी ने उसे मुगल राज्य से वृत्ति के रूप में उपलब्ध किया और उसके उपलक्ष में शिवाजी ने सभी उन करद क्षेत्रों के आक्रमणकारियों से बचाने का काम एक प्रकार की कृपा के रूप में करने का आश्वासन दिया था, शाहूजी ने उसी को अपना परम दायित्व के रूप मे करने रहने का वचन दे दिया। औरगजेब के समय में चौथ वसूल करने के इस अधिकार की माँग शाही सत्ता की अवज्ञा का सूचक थी किन्तु बहादुर शाह के शासनान्तगत यह सम्राट के प्रति मराठों की असन्दिग्ध स्वामिभक्ति की द्योतक मानी गई। शिवाजी के समय से लेकर अन्त तक मराठों ने दक्षिण म चौथ वसूल करने के अपने इस अधिकार को कभी भी न छोड़ा। इस सम्बन्ध में मुगल इतिहासकार खफी खाँ ने भी विस्तृत उल्लेख किया है, जिसका संकेत करना हम इस स्थान पर विशेष उपयोगी समझते हैं।

बड़ी-बड़ी सेनाओं के साथ वे [मराठे] दक्षिण के सूबों और अहमदाबाद तथा मालवा पर चौथ वसूल करने के लिये आक्रमण करते थे। नगरों और बड़े बड़े कस्बों में वे वहाँ के स्थानीय शासक अथवा जमींदार के पास चौथ की माँग करते

हुए अपने दूत और पत्रादि भेजा करते थे अथवा गाँवों और कस्बा के मुखिया और जमींदार स्वयं मराठा सेना का स्वागत करने के लिये शीघ्रता पूर्वक अपने स्थानों से बाहर निकलकर तत्काल ही चौथ देने का वादा करते थे और इस प्रकार आक्रान्ताओं से अपने जान माल का संरक्षण प्राप्त भी करते किया करते थे। इस प्रकार वे हिंसा और लूट मार से अपनी रक्षा कर लिया करते थे।

महाराज शाहू तथा मुगलों के मध्य चौथ एवं सरदेशमुखी वसूल करने के विषय में संधि---सतारा के छत्रपति शाहूजी तथा कोल्हापुर के दावेदार शम्भाजी दोनों ही मुगल सत्ता को अपने अपने राजत्व की मान्यता प्राप्त करने के आशार्थी थे जिसके सामान्य चिन्ह को वे दक्षिण के छः सूबों से चौथ एवं सरदेशमुखी वसूल करने के शाही फरमान का महत्व प्रदान करते थे। इन सूबों को मराठा शासक अपनी जागीर अथवा वतन का रूप दिया करते थे। इसी कारण मुगल सम्राट के मन्त्रिगण कुछ समय तक मराठों में फूट पैदा करा कर उनको इस आशय का वास्तविक शाही फरमान प्राप्त करने से वंचित किये रहे, परन्तु कालान्तर में मराठों की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाले सम्बन्धित व्यक्तियों को यह भली भाँति विदित हो गया कि बिना मुगल सम्राट और मराठों के मध्य इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ प्रत्यक्ष समझौता कराये तथा उपयुक्त प्रदेशों में शान्ति स्थापित करके कृषि की उन्नति किये हुये उनसे थोड़ी बहुत मालगुजारी प्राप्त करना भी दुष्कर हो जायेगा।

सयद हुसैन अली के प्रतिनिधि शंकर जी मल्हार तथा शाहूजी के पहले पेशवा के मध्य मराठों की मुगल सम्राट के आधीन सामन्तीय स्थिति के विषय में जो समझौता हुआ उसे कालान्तर में मराठों के प्रबल दबाव के कारण मुगलों को राजकीय मान्यता देनी पड़ी। सैयद बन्धुओं से मंत्री करके बालाजी पन्त ने सहज ही ही सन १७१६ ई० में १५ मार्च तक उपयुक्त प्रदेशों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के शाही फरमान प्राप्त कर लिये। उसकी इस माँग का मुगल दरबार में स्थित राजपूत सरदारों जयसिंह तथा अजीतसिंह ने भी समर्थन किया। मालवा और गुजरात के सम्बन्ध में पेशवा की चौथ एवं सरदेशमुखी वसूल करने की माँग को सम्राट ने कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण स्वीकार न किया। गुजरात की सूबेदारी अजीतसिंह स्वयं प्राप्त करना चाहता था अतः यह उस दे दी गई।

स्वराज्य की स्थापना तथा चौथ और सरदेशमुखी की वसूली करने के जो अधिकार शिवाजी ने अपनी तलवार के बल पर उपार्जित किये थे उन्हीं की दुबारा नियमानुकूल प्राप्ति करने का अधिकार पत्र (सनद) उपलब्ध करने में शाहूजी तथा बालाजी पंत दोनों का उद्देश्य यह था कि वे मुगल सम्राट के आधीन रह कर अपने न अधिकारों का अबाध उपभोग करना तथा साथ ही साथ इसी बहाने अन्याय

क्षेत्रों में अपने विजय कार्य करने का सुअवसर ढूंढ़ना चाहते थे। परन्तु इस समय मराठों की तत्सम्बन्धी वास्तविक क्रिया विधि में कोई अन्तर न आने पाया। मराठे इन करों को वसूल करने की प्रक्रिया में शम्भाजी अथवा राजाराम दोनों के कालों की अपेक्षा उस समय भी कम स्वतन्त्र न थे। यदि शाहूजी से पहले के ये दोनों शासक सीधे सम्राट से युद्ध करके शाही प्रदेशों से चौथ लेते थे तो शाहूजी और उसके पेशवाओं ने उसके प्रान्तीय सूबेदारों पर समय समय पर आक्रमण करके उसके अधीनस्थ प्रदेशों से कर वसूल किया।—महाराजा शाहू के नाम मुगल सरकार ने चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की जो सनदें प्रदान कीं उनके अनुसार खफी खाँ का कहना तो यह है कि "शाहू के कर्मचारियों को अमीनों करोड़ियों तथा फौजदारों द्वारा वसूल की गई मालगुजारी और सरकारी भूमियों तथा जागीरदारों द्वारा एकत्र की गई सायर (Sair) धन राशि में से चतुर्थांश उपलब्ध करना था। इसी को मराठी भाषा में चौथ का नाम दिया गया।" यह भी निश्चित हुआ कि इस चतुर्थांश के अतिरिक्त जो कि उन्हें जागीरदारों की आय में से प्राप्त होना था, मराठों को रैयतों से उनकी आय का १० प्रतिशत सरदेशमुखी के रूप में भी प्राप्त होता था। वे वैसे ही जैसा की मालगुजारी के समसम्बद्ध विवरण से ज्ञात होता है, कुल भूमिकर तथा फौजदारी नियदारी जियाफत (Zyafat), तथा दूसरे करों में से भी ३५ प्रतिशत प्राप्त करते रहते थे। इस विवरण के अनुसार सरकारी कर एकत्रीकरण विषयक पत्रों और खातों में दी गई कुल मालगुजारी में से आधा प्राप्त करते थे। यह व्यवस्था जिसके अनुसार मराठों का सभी प्रकार के कर एकत्र करने का अधिकार प्राप्त था, रैयतों (सरकारी मुगल) कर्मचारियों तथा जागीरदारों के लिये अत्यन्त दुस्सह थी क्योंकि प्रत्येक प्रान्त (जिले) में कर एकत्र करने के लिये दो कर्मचारी रहते थे जिनमें से एक को कामविसदार तथा दूसरे को सरदेशमुखी में सम्बन्धित गुमाश्ता कहा जाता था।

१. पुनश्च खफी खाँ ने लिखा है कि "कुछ स्थानों जैसे कि बरार और खानदेश में मराठे समस्त भूमिकर का दें आमीरदारों के लिये छोड़ देते थे। पहले उजाड़ छोड़ दिए गए गाँवों को पुनः कृष्योपयोगी बना दिया गया। तथापि कृषकों को प्राप्त मराठों का यह संरक्षण उन मुगल क्षेत्रों में रहने वाले शाही पदाधिकारियों के लिये अत्यन्त असन्तोषजनक सिद्ध हुआ। इसके फलस्वरूप मराठों के प्रभाव विस्तार में और भी वृद्धि होने लगी और चौथ देने वाले प्रदेश धीरे-धीरे मराठों के ही प्रभुत्व में चले गये। इसी कारण निजामुलमुल्क ने अपने सूबे के विषय में इस व्यवस्था में ऐसा हेर-फेर करने का सफल प्रयास किया कि कम से कम उसके क्षेत्रों से तो मराठा राजस्व अधिकारी दूर बने रहें। उसने सम्राट से इस आशय का आदेश प्राप्त किया कि हैदराबाद के सूबे से चौथ वसूल करने के स्थान पर, मराठों को उसके

कोष [illegible] से एक निश्चित धन राशि वार्षिक रूप मे दे दी जाया करे और रैयतों से ली जाने वाली १० प्रतिशत सरदेशमुखी उन्हे माफ कर दी जाय।

मराठों के दायित्व—मराठों ने ये सुविधायें इस शर्त पर पाई थीं कि दक्षिण स्थित मुगल सूबेदार की सेवा मे १५०० सैनिकों को भेज कर समय समय पर उसको सैनिक सहायता करते रहेंगे। यही नहीं शाही प्रदेशों मे चोरी और डकैती के दुष्कृत्य होने की दशा में अपराधी को पकड़वाने तथा उसे दण्डित करने का अधिकार एवं दायित्व छत्रपति शाहू को ही था। यदि लूट अथवा चोरी का माल बरामद न हो सके तो मराठा राजा को उसकी क्षति पूर्ति देने के लिये विवश किया जा सकता था। इस प्रकार अपने वास्तविक रूप तथा वसूली के ढंग दोनो की दृष्टि से शाहूजी के समय मे 'चौथ' एक प्रकार की राज्यवृत्ति (pension) ही प्रतिभासित होती थी जैसा कि कुछ समय पूर्व पुर्तगाली लोग राम नगर के चौथिया राजा के विषय में सोचते थे। तथापि व्यावहारिक रूप मे मराठे अपने उपयुक्त दायित्वों का यदा कदा ही पालन करते थे।

इसके अतिरिक्त यदि सम्राट अपने फरमान के निर्देशों का मराठों द्वारा पालन कराने मे लेशमात्र भी असफल होता तो इसका कुपरिणाम यह था कि उसके आधीन दूसरे शक्ति शाली मुगल सूबेदार भी स्वामि भक्ति हीन हो जाते। वस्तुतः कालान्तर में यही स्थिति सामने आई। खफी खाँ का मत है कि मराठा नेता अपनी ओर से मुगल क्षेत्रो मे लूट पाट करने से प्राय परहेज ही रखते थे और वे अपने द्वारा प्राप्त की जाने वाली चौथ की धन राशि का निश्चय मुगल पदाधिकारियों से मिल जुल कर शान्तिपूर्ण ढंग से ही करने की चेष्टा करते थे। परन्तु इस व्यवस्था के विपरीत मराठे सैनिक फिर भी मुगल प्रदेशों मे लूट-पाट मचाने के लिये सदैव ही उत्सुक बने रहते थे।

इस सम्बन्ध में एक दूसरा प्रश्न यह भी विचारणीय [illegible] कि क्या मराठे चौथ देने वाले प्रदेशों की सभी प्रकार के आक्रामक तत्वों [illegible] रक्षा भी करते थे अथवा उन्हें मुफ्त मे ही ये लम्बी धन राशियाँ जनसाधारण से वसूल करने का अधिकार प्राप्त था। इसके उत्तर में रानाडे महोदय की ये पंक्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं—

"सन् १६६८ ई० में बीजापुर के आदिलशाही राजाओं ने चौथ और सरदेशमुखी के रूप में ३ लाख रुपये देना स्वीकार किया और लगभग इसी समय गोलकुण्डा के शासक ने भी मराठों को ५ लाख रुपये अदा करने का वचन दिया। १६७१ ई० में खानदेश के मुगल सूबे से चौथ और सरदेशमुखी ली गई। सन् १६७४ ई० में उसी प्रदेश का एक भाग होने के कारण कोंकन के पुर्तगालियों को भी चौथ और सरदेशमुखी का भुगतान करना पड़ा। बीजापुर तथा गोलकुण्डा से कर वसूल करने के उपलक्ष में शिवाजी ने उन्हें मुगलों के आक्रमण से बचाने का वचन दिया और

उनके द्वारा प्रदान किये गये इस संरक्षण का दक्षिण भारत में होने वाले युद्धों पर विशेष प्रभाव पड़ा।

चौथ एवं सरदेशमुखी के विषय में मराठों की मौलिक धारणा शिवाजी की ही देन मानी जाती है। जिसे लगभग १२५ वर्षों के पश्चात् लार्ड वलैजली ने भी अपनी शक्ति वृद्धि एवं प्रभाव विस्तार के उद्देश्य से अपना लिया।

इसके विपरीत शाहूजी ने मुगल सूबा में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने तथा साथ ही साथ दक्षिण के सूबेदार को अपने १५,००० अश्वारोहियों द्वारा सहायता करने का वचन देकर अपने लिये एक नई उलझन यह पैदा करली थी कि उसके मुगलों की परराष्ट्र नीति पर आवश्यक प्रभाव के अभाव के फलस्वरूप मराठों की जनधन की सम्भाव्य हानि को रोकने का शाह जी के पास कोई साधन था पेशवा बालाजीराव तथा उसके उत्तराधिकारी के समय में 'खण्डनी' (Khandani) तथा मामलात (Mamlat) के जो अनेक उल्लेख मिलते हैं उनके अन्तर्गत मराठों के उपयुक्त करों से सम्बन्धित प्रायः सभी अधिकारों का वर्णन पाया जाता है 'मामलात' का सम्बन्ध कुछ छोटे छोटे प्रदेशों से था जैसे कि उदयपुर, जयपुर तथा जोधपुर की राजपूत रियासतें। 'खण्डनी' शब्द बड़ी-बड़ी रियासतों जैसे कि हैदराबाद तथा मैसूर आदि के विषय में प्रयुक्त हुआ है। मराठे प्रायः छोटे छोटे प्रदेशों में सुरक्षा का ध्यान रखते थे। उदाहरणार्थ सन् १७४६ अथवा १७४७ ई० में भन्दावर के सरदार (Chief of Bhandavar) के नाम बालाजी बालाजीराव ने इसी आशय की एक सनद प्रदान की थी। यह हिन्दी लिपि में है। इस सुरक्षा व्यवस्था के उपलक्ष में पेशवा ने उपयुक्त सरदार के राज्य का आधा भाग उपलब्ध किया था।

प्रो० सुरेन्द्रनाथ सेन ने लिखा है कि यह अपमान जनक कर (चौथ) स्वयं मराठों को भी एक बार चुकाने को विवश होना पड़ा था। सन् १७५५ ई० में पेशवा से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जो सन्धि हुई उसकी चौथी धारा के अनुसार यह तै हुआ कि चूंकि आगे सरकार तथा 'बनकट के मराठों' की पहले से यह परम्परा चली आती है कि सिद्दियों को कुछ चौथ दी जाये अस्तु मराठों को उन्हें यह धन राशि चुकानी होगी (दे० एचिसन ट्रीटीज प्रतिलिपि ६, पृष्ट १५)

चौथ और सरदेशमुखी में अन्तर—सरदेशमुखी का स्वरूप एवं मूलोद्गम चौथ से सर्वथा भिन्न है। चौथ पूर्णतया शक्ति पर आधारित होने के कारण भारत की किसी भी सत्ता से वसूल की जा सकती थी। परन्तु सरदेशमुखी का वैधानिक महत्व यह था कि यह कर केवल दक्षिणी मुगल सूबों से ही वसूल किया जा सकता था। शिवाजी अपने को महाराष्ट्र का परम्परानुगत पैतृक सरदेशमुख घोषित करते थे। सर्व प्रथम उन्होंने जैसा कि रानाडे का मत है, जुन्नर तथा अहमदनगर की सरदेशमुखी की मांग की थी।

कोष मे से एक निश्चित धन राशि वार्षिक रूप म दे दी जाया करे और रैयतों स ली जाने वाली १० प्रतिशत सरदेशमुखी उन्हे माफ कर दी जाये।

मराठों के दायित्व—मराठों ने ये सुविधायें इस बात पर पाई थीं कि दक्षिण स्थित मुगल सूबेदार की सेवा म १२०० सैनिकों को भेज कर समय समय पर उसको सनिक सहायता करते रहेंगे। यही नहीं शाही प्रदेशों मे चोरी और डकैती के कुकृत्य होने की दशा में अपराधी को पकड़वाना तथा उसे दण्डित करने का अधिकार एवं दायित्व छत्रपति शाहू को ही था। यदि लूट अथवा चोरी का माल बरामद न हो सके तो मराठा राजा को उसकी क्षति पूर्ति देने के लिये विवश किया जा सकता था। इस प्रकार अपने वास्तविक रूप तथा वसूली के ढग दोनों की दृष्टि से शाहूजी के समय मे 'चौथ' एक प्रकार की राज्यवृत्ति (pension) ही प्रतिभासित होती थी जैसा कि कुछ समय पूर्व पुर्तगाली लोग राम नगर के चौथिया राजा के विषय में सोचते थे। तथापि व्यवहारिक रूप म मराठ अपने उपयुक्त दायित्वों का यदा कदा ही पालन करते थे।

इसके अतिरिक्त यदि सम्राट अपने फरमान के निर्देशों का मराठों द्वारा पालन कराने म रंचमात्र भी असफल होता तो इसका कुपरिणाम यह था कि उसके अधीन दूसरे शक्ति शाली मुगल सूबेदार भी स्वामि भक्ति हीन हो जाते। वस्तुत कालान्तर म यही स्थिति सामने आई। खफी खाँ का मत है कि मराठा नेता अपनी ओर से मुगल क्षत्रा म लूट पाट करने मे प्राय परहेज ही रखते थे और वे अपने द्वारा प्राप्त की जाने वाली चौथ की धन राशि का निश्चय मुगल पदाधिकारियों से मिल जुल कर शान्तिपूर्ण ढगों से ही करने की चेष्टा करते थे। परन्तु इस व्यवस्था के विपरीत मराठ सनिक फिर भी मुगल प्रदेशों म लूट-पाट मचाने के लिय सदैव ही उत्सुक बने रहते थे।

इस सम्बन्ध में एक दूसरा प्रश्न यह भी विचारणीय है कि क्या मराठे चौथ देने वाले प्रदेशों की सभी प्रकार के आक्रामक तत्वों से रक्षा भी करते थे अथवा उन्हें मुफ्त म ही ये लम्बी धन राशियाँ जनसाधारण से वसूल करने का अधिकार प्राप्त था। इसके उत्तर में रानाडे महोदय की ये पंक्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं—

'सन् १६६८ ई० में बीजापुर के आदिलशाही राजाओं ने चौथ और सरदेशमुखी के रूप में ३ लाख रुपये देना स्वीकार किया और लगभग इसी समय गोलकुण्डा के शासक ने भी मराठों को ५ लाख रुपये अर्पण करने का वचन दिया। १६७१ ई० में खानदेश के मुगल सूब म चौथ और सरदेशमुखी ली गई। सन् १६७४ ई० में उसी प्रदेश का एक भाग होने के कारण कोंकण के पुर्तगालियों को भी चौथ और सरदेशमुखी का भुगतान करना पड़ा। बीजापुर तथा गोलकुण्डा से कर वसूल करने के उपलक्ष में शिवाजी ने उन्हें मुगलों के आक्रमण स बचाने का वचन दिया और

उनके द्वारा प्रदान किये गये इस संरक्षण का दक्षिण भारत में होने वाले युद्धों पर विशेष प्रभाव पड़ा।

चौथ एवं सरदेशमुखी के विषय में मराठों की मौलिक धारणा शिवाजी की ही देन मानी जाती है। जिसे लगभग १२५ वर्षों के पश्चात् लार्ड वेलेजली ने भी अपनी शक्ति वृद्धि एवं प्रभाव विस्तार के उद्देश्य से अपना लिया।

इसके विपरीत शाहूजी ने मुगल सूबों में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने तथा साथ ही साथ दक्षिण के सूबेदार को अपने १५,००० अश्वारोहियों द्वारा सहायता करने का वचन देकर अपने लिए एक नई उलझन यह पैदा करली थी कि उसके मुगलों की परराष्ट्र नीति पर आवश्यक प्रभाव के अभाव के फलस्वरूप मराठों की आगमन की सम्भाव्य हानि को रोकने का शाहू जी के पास कोई साधन था। पेशवा बालाजीराव तथा उसके उत्तराधिकारी के समय में 'खण्डनी' (Khandani) तथा मामलात (Mamlat) के जो अनेक उल्लेख मिलते हैं उनके अन्तर्गत मराठों के उपर्युक्त करों से सम्बन्धित ग्राम तथा अधिकारों का वर्णन पाया जाता है 'मामलात' का सम्बन्ध कुछ छोटे छोटे प्रदेशों से था जैसे कि उदयपुर, जयपुर तथा जोधपुर की राजपूत रियासतें। 'खण्डनी' शब्द बड़ी-बड़ी रियासतों जैसे कि हैदराबाद तथा मैसूर आदि के विषय में प्रयुक्त हुआ है। मराठे प्रायः छोटे छोटे प्रदेशों में सुरक्षा का ध्यान रखते थे। उदाहरणार्थ सन् १७४६ अथवा १७४७ ई० में भन्दावर के सरदार (Chief of Bhandwar) के नाम बालाजी बालाजीराव ने इसी आशय की एक सनद प्रदान की थी। यह हिन्दी लिपि में है। इस सुरक्षा व्यवस्था के उपलक्ष में पेशवा ने उपर्युक्त सरदार के राज्य का आधा भाग उपलब्ध किया था।

प्रो० सुरेन्द्रनाथ सेन ने लिखा है कि यह अपमान जनक कर (चौथ) स्वयं मराठों को भी एक बार चुकाने को विवश होना पड़ा था। सन् १७५५ ई० में पेशवा से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जो सन्धि हुई उसकी चौथी धारा के अनुसार यह तै हुआ कि चूंकि आगे सरकार तथा बनकट के मराठों की पहले से यह परम्परा चली आती है कि सिद्दियों को कुछ चौथ भी जाये अस्तु मराठों को उन्हें यह धन राशि चुकानी होगी (फॉरेस्ट वेस्टर्न इंडिया प्रतिलिपि ६, पृष्ठ १५)

चौथ और सरदेशमुखी में अन्तर—सरदेशमुखी का स्वरूप एवं मूलोद्गम चौथ से सर्वथा भिन्न है। चौथ पूर्णतया शक्ति पर आधारित होने के कारण भारत की किसी भी सत्ता से वसूल की जा सकती थी। परन्तु सरदेशमुखी का वैधानिक महत्व यह था कि यह कर केवल दक्षिणी मुगल सूबों से ही वसूल किया जा सकता था। शिवाजी अपने को महाराष्ट्र का परम्परागत पैतृक सरदेशमुख घोषित करते थे। सर्व प्रथम उन्होंने जैसा कि रानाडे का मत है जुन्नर तथा अहमदनगर की सरदेशमुखी की माँग की थी।

खफीखाँ तथा भीमसेन दोनों के उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि ताराबाई ने औरंगजेब से इसी शर्त पर संधि करने की चेष्टा की थी कि सम्राट उसे दक्षिणी सूबों की 'सरदेशमुख' अर्थात् देसाई नियुक्त कर दे। ताराबाई की यह माँग उस समय तो स्वीकार न हुई किन्तु पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने कालान्तर में मुगल सम्राट से उसे पूरा कराने में सफलता पाई। चौथ वसूल करने की शर्तें पूर्ववत ही रहीं परन्तु सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार पाने के लिए शाहू जी को ११७१६३६० रु० १२ आने पेशकश के रूप में (पहले) जमा करना आवश्यक था, किन्तु इसका ⅘ शाहू जी को तत्काल मुगल राजकोष में जमा करना पड़ा और शेष को उसे तीन बराबर किस्तों में ही देने की छूट दे दी गई।

सरदेशमुखी के विषय में प्रो० सरदेसाई ने यह स्पष्ट किया है कि इसकी परम्परा का स्रोत भी अतीत कालीन इतिहास में मिलता है। जब पहले पहल महाराष्ट्र में कृषि व्यवस्था के सुधार के लिए प्रयास किये गये तो शासकों ने देश को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित करके प्रत्येक में एक देशमुख रखने की व्यवस्था भी की गई। ग्राम की सम्भावित मालगुजारी का पूर्व निश्चय किया जाता था और उसका दशांश देशमुख को मिलता था। उस समय में भूमिकर एकत्रित करने का यही एक सुविधा जनक ढंग अपनाया जाता था। इसी व्यवस्था के सहारे देशमुख लोग नये नये परती पड़े हुए क्षेत्रों को कृष्योपयोगी बनाने को उत्सुक रहते थे। ये लोग ग्राम की सामान्य व्यवस्था एवं शान्ति के लिये उचित प्रबन्ध करते थे और इनसे रैयतों को भी समय समय पर यथावश्यक सहायता सुलभ हो जाती थी। यह व्यवस्था दक्षिण में मराठों के उत्कर्ष एवं मुगलों के प्रभाव विस्तार के पूर्वकाल में विशेष उपयोगी समझी जाती थी। काल क्रमानुसार महाराष्ट्र की बिल्कुल कायापलट ही हो गयी।

महाराष्ट्र के शासकों और सत्ता में अनेकानेक परिवर्तन आये, परन्तु वहाँ के देशमुखों की स्थिति ज्यों की त्यों ही बनी रही। सभी देशमुखों के ऊपर सरदेशमुख अपने सम्पूर्ण अधिकृत क्षेत्रों की सुरक्षा व्यवस्था करने को पूर्ववत उत्तरदायी बना रहा। ये कर्मचारी अपने 'वतन' को पैतृक समझते थे। शिवाजी ने सत्ता को हस्तगत करने के पश्चात् सम्पूर्ण महाराष्ट्र अथवा अपने स्वराज्य प्रदेशों की सरदेशमुखी का अधिकार स्वयं उपलब्ध करके अपने देशमुख नियुक्त करने आरम्भ कर दिये। इसी व्यवस्था को शाहू जी ने अपनाया और अपने तत्सम्बन्धी अधिकार की उन्होंने मुगल सम्राट से मान्यता भी प्राप्त करली (१७१९)।

जागीरदारों के दोष एवं गुण—चौथाई की-वसूली ने मराठा शक्ति विस्तार में महान योग दिया और मराठा प्रभाव विस्तार के साथ ही साथ जागीरदारी प्रथा भी पुनरुज्जीवित हो उठी। जिसमें अनेकानेक गुण एवं दोष परिलक्षित होते

है। मुगल सम्राट से पाई गई तीनों सनदों की शर्तों को कार्यान्वित करने में बालाजी पन्त तथा उसके नवयुवक पुत्र बाजीराव दोनों ने पूर्ण सतर्कता का परिचय दिया। बाजीराव को तत्कालीन प्रभावशाली मराठा सरदारों सिंधिया होल्कर पवार तथा कुछ अन्य सामन्तों का सहयोग भी सुलभ था। उसने इतनी सक्रियतापूर्वक अपना दायित्व संचालन किया कि कुछ ही वर्षों में मराठों की सत्ता दक्षिण के छहों सूबों को आवृत्त करने के बाद अन्य दूरवर्ती प्रदेशों में विस्तृत हो गई। उन्हें आधीनस्थ रखने के लिये उनमें क्षेत्रीय विभाजन करने के बाद प्रत्येक क्षेत्र में एक एक सर्वोच्च सत्ताधारी मराठा सामन्त की नियुक्ति की गई। यह व्यवस्था तत्कालीन दीर्घ युद्ध काल को विचार में रखकर विशेष लाभप्रद समझी गई थी परन्तु इस लम्बे काल में मराठा नेताओं ने अपने 'वतन' के सम्बन्ध में मनमानी करना प्रारम्भ कर दिया। वे सामने आयी हुई परिस्थिति का सामना करने के लिये स्वेच्छापूर्वक जो भी साधन दृष्टि गोचर होते थे उन्हें ही अपनाने लगे। राजाराम के समय में मराठा सरदारों विशेषकर धानाजी, सन्ताजी, परशुराम त्र्यम्बक, स्वेच्छाचारिता और भी बढ़ गई। उनकी केन्द्रीय व्यवस्था पूर्णतया शिथिल हो गई।

कालक्रमानुसार परिस्थितियों ने कुछ ऐसा रूप धारण किया कि मराठा सैनिक नेताओं ने देश के विभिन्न भागों को अधिकृत करके उनमें अपने वतन की भांति स्वतन्त्र रूप से रहना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि वे नाम मात्र को छत्रपति के ही आधीन रहे, परन्तु अब उनकी स्वेच्छाचारिता को विशेष बल मिलने लगा क्योंकि उनके प्रभाव क्षेत्र मूल-मराठा राज्य से पर्याप्त दूरी पर स्थित थे। इस प्रक्रिया के अनुगत घोरपड़े सरदारों ने कर्नाटक के अधिकांश क्षेत्रों को अपना केन्द्र बना लिया। इसी प्रकार कान्होजी भोंसले ने बरार नागपुर को अपना गढ़ बनाया। सर लश्कर निम्बाल्कर ने 'बगलान' को अपना प्रभाव क्षेत्र बना लिया तथा सेनापति दाभाडे ने खानदेश के पश्चिम तथा गुजरात के भी कुछ भागों पर अपना सिक्का जमा दिया।

पेशवा के सम्राट से चौथ, सरदेशमुखी तथा स्वराज्य सम्बन्धी तीनों सनदें प्राप्त करने के पूर्व नर्मदा नदी के दक्षिणी क्षेत्रों में मराठा नेताओं की उपर्युक्त प्रक्रिया पहले से ही प्रारम्भ हो चुकी थी। कालान्तर में शाहू की आधीनता में अन्य मराठे सरदारों ने और भी क्षेत्रों में अपनी शक्ति स्थापित की। पेशवा की दिल्ली से सफल वापिसी के फलस्वरूप मराठों की महत्वाकांक्षाओं को अत्यधिक बल मिला। उनमें नये-नये क्षेत्रों को जीतने की एक प्रकार से होड़ पैदा हो गई। जिसमें तत्कालीन उदार छत्रपति ने किसी प्रकार बाधा न पहुँचाना ही श्रेयस्कर समझा। शाहूजी ने हैदराबाद के नवाब पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से 'अकालकोट' में फतहसिंह भोंसले को नियुक्त कर दिया और उसके उत्तराधिकारियों ने उस प्रदेश में दीर्घकाल तक सत्ता का उपभोग किया। अपने 'प्रतिनिधि' को भी [illegible] राजधानी

के आसपास क क्षेत्र प्रदान किये। कोलाबा का सरखेल कान्होजी आंग्रे पश्चिमी समुद्रतट का नाविक का संरक्षक मान लिया गया। इन सभी नेताओं से यह आशा की जाती थी कि वे अपने आधीनस्थ क्षत्रों म सुरक्षा व्यवस्था एव मराठा राज्य की सेवा करते रहेंगे। इसके साथ ही साथ वे अपने निजी एव सनिक व्यय के बराबर समुचित धनराशि स्वय लेकर चौथ की शेष धनराशि नियमित रूप म छत्रपति के राजकोष मे जमा करते रहने के लिये भी निर्देशित किये गये थे।

मोटे तौर पर यही व्यवस्था की गयी जिसे कि पेशवा तथा शाहूजी समय को देखते हुए सुविधाजनक समझते थे। वे किसी नितान्त नवीन प्रबन्ध की कल्पना न कर सक। वे अपने राज्य का विकास इसी प्रणाली की उन दोषों का भास भी न हो सका जा कालान्तर मे इस व्यवस्था में उत्पन्न हो गय। स्थानीय जागीरदारों को आय दिन अपने पुराने शत्रुओं से मुठभेड लेनी पडती थी और इसके साथ ही साथ उन्हे चौथ वसूल करने मे भी अपने सनिक बल का प्रयोग अनिवाय था। अस्तु एक तयार एव स्थाई सेना का व्यय पूरा करने म उन्हे बहुधा कज भी लेना पडा क्योंकि चौथ एव सरदेशमुखी के कर तो वे फसल पर ही एकत्र कर सकते थ, जिसके विषय म पहले से बनाये गय आँकडे प्राय अव्यावहारिक ही सिद्ध होते थ। फलत कालान्तर में इनके आधीन विशाल सेनाओं के योद्धा समय पर अपना पारिश्रमिक पाने स भी वंचित रहने लगे।

अस्तु यह स्पष्ट है कि इस व्यवस्था क प्रयोग म मराठों के पतन के बीज भी विद्यमान थ। ये जागीरदार लोग समय पडने पर सेना भेजने के सम्बन्ध मे अनेकानेक बहाने करने लगे। वे अपने लिये पेशवा द्वारा निर्धारित की गई सख्याओं म सनिकों की भर्ती ही न कर पाते थे। कुछ तो निजी स्वार्थपरता के कारण और कुछ धनाभाव क कारण। उनम पार्थक्यवादी भावनाओं तथा निजी लोभ के कारण मूल मराठा राज्य के हितों को भीषण आघात पहुँचने लगे। उनके हिसाब किताब (राजस्व सम्बन्धी) की जाँच भी ठीक प्रकार से न हो सकती थी जिसके लिये अंशत पेशवा को भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

तथापि योग्य व्यक्तियों के हाथ में यह व्यवस्था भली भाँति सचालित रक्खी जा सकी—इसम भी कोई सन्देह नहीं है। पेशवा बाजीराव का नेतृत्व, व्यक्तिगत क्षमता एव सनिक बल इस व्यवस्था के लिय विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ और प्रो० सरदेसाई ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'मराठा राज्य को एकता के सूत्र में आबद्ध रखने के लिये विशेषकर उस समय में जब कि विभिन्न दूरवर्ती प्रदेशों जिनके आवागमन के साधन सर्वथा अवनत थ, को सैन्य बल के आधार पर नियन्त्रित रक्खा जा सकता था, कोई दूसरा उपाय इतनी श्रेष्ठतापूर्वक अपनाया जा सकता

था ।[1] इतना होने हुए भी इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष तो यह था कि जब विभिन्न मराठा सरदारों की स्वामिभक्ति प्राप्त करने की दिशा में पेशवा और छत्रपति के लेशमात्र भी असफल होने की स्थिति में, यह सारा प्रबन्ध ही प्रभावशून्य हो गया। शाहूजी के पहले तीनों पेशवा इस दुर्दमनीय स्थिति के अपवाद कहे जा सकते हैं। परन्तु मराठा दरबार के शिथिल होते ही (पेशवा नारायण राव की हत्या के बाद) चौथ और सरदेशमुखी के बल पर खड़ा किया गया मराठा प्रभुत्व भी छिन्न भिन्न हो गया।

सारांश—चौथ वसूल करने की प्रथा का शिवाजी के सत्तारूढ होने के पहले रामनगर के 'कोलिया' राजा ने सफलतापूर्वक प्रयोग करके पुर्तगालियों से भारी मात्रा में कर वसूल किये थे। शिवाजी ने सर्वप्रथम सूरत तथा उसके आस पास के मुगल क्षेत्रों से चौथ वसूल की। कालान्तर में उन्हें बीजापुर तथा गोलकुण्डा राज्यों से भी चौथ मिलने लगी और इसके उपलक्ष्य में उन्होंने इन देशों के मुस्लिम शासकों को मुगल आक्रान्ताओं के विरुद्ध सैनिक सहायता करके उनके राज्य की रक्षा का वचन दिया। शीघ्र ही शिवाजी की शक्ति में इतनी वृद्धि हो गई कि वे अपने को महाराष्ट्र का सरदेशमुखी घोषित करके आस पास के मुगल क्षेत्रों से भी चौथ वसूल करने लगे। यह सब उन्होंने अपनी तलवार के बल पर ही किया था। परन्तु शाहूजी के समय में देश की राजनीति में परिवर्तन आ गया। उसने हुसेन अली की सहायता से मुगल शासक से दक्षिण के मुगल सूबों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की सनदें प्राप्त करली और इसके उपलक्ष में वह मुगल सूबेदार (दक्षिण स्थित) की सेवा में अपने १००० सैनिक भी भेजने लगे। इन सूबों में उन्हें शान्ति व्यवस्था रखने का भी उत्तरदायी बनाया गया।

Q Describe the military organisation of the *Peshwas* and account for its success against Mughals and Rajputs and its failure against the foreigners

प्रश्न—पेशवाओं के सैनिक संगठन का वर्णन कीजिए और साथ ही मराठों की मुगलों तथा राजपूतों के विरुद्ध सफलता तथा विदेशियों के विरुद्ध उनकी पराजय के कारणों पर भी प्रकाश डालिए।

---

1 Sardesai's— New History of the Marathas", Vol II, Page—57
'shahu and his first three peshwas and after the third Peshwa death his son Madhav Rao succeeded in keeping the Jagirdars under proper check and in looking after the numerous concerns of a growing empire with strictness and justice But when disorders started *in the Maratha* Government after the murder of Peshwa Narayana Rao the edifice topped down for want of a competent master

उत्तर—पेशवाओं के सैनिक संगठन—पदाति एवं अश्वारोही—सन् १७०७ ई० में मराठा सेना का प्रधान सेनानायक धनाजी जाधव था। समकालीन बुन्देला इतिहासकार के कथनानुसार उसके आधीन २५,००० पदाति सेना तथा कुल ५,००० अश्वारोही सेना रहती थी।[1] कालान्तर में पेशवा के शासन सूत्र सम्हालने के बाद मराठा सेना में महत्वपरिवर्तन हुआ। बालाजी पंत नामक पहले पेशवा के विषय में यह पहले उल्लेख किया जा चुका है कि उसका उपर्युक्त मराठा सेनापति के उत्तराधिकारी उसके पुत्र चन्द्रसेन जाधव से पर्याप्त संघर्ष चला था। चन्द्रसेन जाधव की स्वामिभक्ति अत्यन्त सन्दिग्ध थी और उसकी उद्दण्ड कार्यवाहियों का नियंत्रित रखने के निमित्त ही छत्रपति शाहू ने सेनाकर्ते का नवीन पद स्थापित करके उस पर बालाजी विश्वनाथ को नियुक्त कर दिया था। सेनापति के पद से महाराजा शाहू ने १७११ ई० में चन्द्रसेन जाधव को मुक्त करके उसके भाई शम्भाजी जाधव की नियुक्ति की, और उसके भी अयोग्य सिद्ध होने का दशा में उसने उसे भी पदमुक्त कर दिया। तत्पश्चात अर्थात् १७१२ ई० में ही मराठा मारे को मराठा सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया गया। कालान्तर में उसके अस्वस्थ हो जाने के कारण उसे ११ जनवरी १७१७ ई० के दिन अपने पद से पृथक् हो जाना पड़ा और अब खाण्डेराव दाभाड़े को सेनापति बना दिया गया। उसके विषय में प्रो० सरदेसाई ने लिखा है कि "पेशवा की सैनिक योजनाओं को पूर्ण मनोयोग एवं तत्परता से कार्यान्वित करने में खाण्डेराव दाभाड़े के असफल होने के परिणामस्वरूप उसे अपने पद से वंचित होना पड़ा और इसी से भविष्य में नवयुवक बाजीराव का नेतृत्व करने के लिए शीघ्र ही श्रेष्ठ अवसर सुलभ हो गया।"[2]

सन् १७२४-२५ ई० में त्र्यम्बक राव मामलेदार मराठा सेना का सर लश्कर बनाया गया और इसी समय से महाराष्ट्र की सेना में भारत के अन्य भागों में रहने वाले सैनिकों और विशेषकर जयसिंह[3] (सवाई जयसिंह) के पास आये हुए योद्धाओं को भी भर्ती करने का क्रम प्रारम्भ हो गया। किन शर्तों पर और किस विभाग में पदाति अथवा अश्वारोही में उन्हें भर्ती किया गया—इसके विषय में कोई निश्चित ज्ञातव्य नहीं मिलता। इसके ७ वर्ष पश्चात तीसरे पेशवा ने ११ ई०

---

1 देखें—दक्षिण का इतिहास द्वि० प्रतिलिपि, पृष्ठ—११६ (लि०—स्काट)

2 "Khande Rao Dabhade's failure to enter whole heartedly into the plans and schemes of the Peshwa soon made him lose his ground and gave a welcome chance to the rising star of the future young Baji Rao"
(New History of the Marathas", Vol. 2 Page 38)

3 पेशवा डायरी —प्रथम प्रतिलिपि, पृ०—१२४

मासिक वेतन पर दो अरब सनिको को भर्ती किया।[1] 'पेशवा डायरी' तृतीय प्रतिलिपि को देखने से ज्ञात होता है कि बालाजी राव ने सन् १७५० ई० म अपनी सेना क एक विदेशी जमादार राजे मुहम्मद को खानदेश जाकर वहाँ से ५० पदल सनिको को मराठी सना मे भर्ती करने क लिए भेजा था। पशवा दफ्तर के आलेख पत्रों के अन्तगत १७५३ ५४ ई० में जग नामो गार्दी आफीसर क विषय म पहला उल्लख मिलता है। प्रा० सन महोदय क कथनानुसार 'इस समय तक पेशवा ने अपनी सेना में प्रशिक्षित सनिको को नियमित रूप में भर्ती करने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी था और इसी कारण उसमे मराठो क अतिरिक्त अ या य जातियों क योद्धाओं को नौकरी देन की आवश्यकता पडन लगी। [2] प्राप्त ऐतिहासिक सूत्रों म इस पशवा के समय में ऐसे सैनिकों को भर्ती करने की शर्तों म सम्बन्धित कोई भी उल्लेख नही मिलता। ये गार्दी सनिक यूरोपीय सनिक प्रणाली म प्रशिक्षित होते थे। गार्ड (guard) नामक अग्रेजी शब्द क अपभ्रश 'गार्दी' से हम ऐसे वग का सकेत मिलता है कि अग्रेजी, फांसीसी अथवा पुतगाली ढग की युद्ध पद्धति म दक्ष होते थे।

'हिन्दुस्तान मे सनिक प्रक्रिया (Military Transactions in Indostan) के लेखक मि० ओम के मतानुसार, वे (विदेशी सनिक जो मराठा सेना में सम्मिलित थे) साहस मे दक्षिण भारत क निम्न जातियो के सनिको स कुछ ही आगे हैं और उच्च वर्गों क भारतीयों तथा उत्तर भारत के मुगलों अथवा मूरो (Northern Moors of Indostan) की तुलना मे वे अत्यन्त ही पिछड़े हुए हैं ।'
राबट ओम न मराठा सेना मे गोआ से भर्ती किये गये ईसाई पुर्तगालियों के भर्ती होने के विषय मे लिखा है कि वे एक ओर ता मराठा पदाति सना म सवा करते थे और दूसरी ओर व साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशिक्षण प्राप्त सनिक दस्तो म भी सम्मिलित रहते थे। इन सनिको को भर्ती करन क लिये मराठा सना म सम्मिलित उनके सजातीय जमादारो का ही यथोचित प्रयास करन होते थे। उन्हें वे विदशी जमादार (मराठा सेना के) ही साज सज्जा प्रदान करत थे अ यथा इन्हें स्वत अपने अस्त्र शस्त्र जुटान पडते थ।

जहाँ तक मराठा की अश्वारोही सेना का प्रश्न है, प्रा० सन आदि भारतीय विद्वान का मत है कि, पेशवा की आधीनस्थ घुडसवार सेना उसके अन्यान्य *सरञ्जामदारो द्वारा भर्ती किये गये अश्वारोहियों की अपेक्षा कही अधिक समुन्नत* थी। उसम सीधे सरकार से ही वेतन पाने वाले 'चुने हुए योद्धा रहते थ। काशीराज पण्डित का कथन है कि पानीपत के मदान म खासगी पागा सेना मे ६,०००

1 पशवा डायरी —द्वि० प्रतिलिपि पृ०—१६९

2 About this time the Peshwa had probably organised the trained batallions of his army and this necessitated the further employment of non Marathas

अश्वारोहियों से अधिक योद्धा न पहुँचे थे, यद्यपि उन्हे मिलाकर अन्यान्य मराठा सरदारों के नेतृत्व में गई हुई अश्वारोही सेना मे योद्धाओं की कुल संख्या ३८ सहस्त्र थी। अश्वारोही सेना मे चार प्रकार के घुडसवार सम्मिलित रहते थे— १—खासगी पागा, २—सिलेदार, ३—एका अथवा एकण्डा (The Ekas or Ekandas) तथा पिण्डारी।

सन् १७४४ ४५ के एक सरकारी पत्राभिलेख को देखने से विदित होता है कि पेशवा की सम्पूर्ण मराठा अश्वारोही सेना का प्रधान सेनानायकत्व राणोजी भोंसला के हाथ मे था। वे सरकार से व्यवहारत वर्षाकाल के चार ही महीनो तक नियमित वेतन प्राप्त करते थे किन्तु उसके उपरान्त उन्हें लूट के माल पर ही निर्भर रहना पडता था। इस व्यवस्था के दोषों का पहले ही विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है। इसके फलस्वरूप सैनिको में अनुशासनहीनता तथा पारस्परिक फूट के अनेकानेक दोष आने लगे थे। यही नहीं मराठा सेनापतियों के साथ उसकी सेना में अनेकानेक असैनिक[1] व्यक्ति भी युद्ध अभियानो मे जाते थे। इसी कारण उन्हें शत्रुओं के प्रबल आक्रमण का सामना करने मे अवश्य कठिनाइयों मे पडने के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण सुविधा भी उन असैनिकों से न प्राप्त हो सकती थी।

सिलेदारों को 'नालबन्दी' के रूप मे कुछ अग्रिम धन राशि दी जाती थी, परन्तु वास्तविक युद्धों मे ऐसे सैनिक प्राय बहुत ही कम संख्या मे भाग लेने की चिन्ता करते और कानो में तेल डालकर चुपचाप बैठे रहते थे। तृतीय श्रेणी के अर्थात् 'एका' अथवा 'एकण्डा' घुडसवार अपने साथ अपने शस्त्रास्त्र और घोडे लाते थे और उन्हें उस घोडे के मूल्य के बराबर अर्थात् ४० से लेकर ६० रुपये तक का मासिक वेतन दिया जाता था। मराठे घुडसवार विशेष रूप से तलवारों और गोल फेंकने वाले शस्त्रो (Targets) का प्रयोग करते थे परन्तु वैसे वे छुरे भाले, गदा तथा धनुषबाण भी अपने उपयोग मे लाते थे। पाश्चात्य इतिहासकारों का विचार है मराठे आग लगाने वाले शस्त्रास्त्रों के प्रयोग मे विदेशियों की अपेक्षा बहुत कम दक्ष थे।

मराठे सैनिक अपने दिन प्रति दिन के प्रयोग के लिये बहुत कम सामग्री साथ ले जाते थे। इस सामग्री का तात्पर्य उनकी सैनिक साजसज्जा के अतिरिक्त सम्भवत उनके बिस्तर, वस्त्रों तथा रसद आदि वस्तुओं से ही है। पिण्डारी दल मराठा सेना के लिये कोई विशेष लाभदायक न सिद्ध हो सका। यह दल बहुधा प्रमुख सैनिक दस्तों से आगे जाकर शत्रु देश में 'लूट-पाट'[2] करने के लिये ही प्रयोग मे लाया

---

1 See Surendra Nath Sen—Military System of the Marathas' Page—81
Ranoji Bhonsla had with him no less than five clerks and 181 attendents

2 See Sen s— Military System of Marathas Page—89
The Pindharis were not employed for fighting but exclusively for plundering purposes

जाता था। उनके द्वारा लूटी गई वस्तुएँ राजकोष में जमा न की जाकर स्वयं उन्हीं के खर्च में आ जाती थीं। दत्ताजी सिंधिया की सेना में दोस्त मोहम्मद नामक पिंडारी के विषय में अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। ये पिंडारी ही बालाजी राव की सेना में भारी संख्या में सम्मिलित थे।

मराठा सेना में हाथी भी पर्याप्त संख्या में रहते थे। एक विदेशी लेखक का मत है कि सिखाये हुए लड़ाकू हाथी हिन्दुओं के लिये बड़े ही महत्व के थे किन्तु उसी समय तक, जब तक कि उनके विदेशी शत्रुओं ने भीषण अग्निकाण्ड मचाने तथा भयंकर आवाज करने वाले गोला बारूद का प्रयोग आरम्भ न किया था। इन हाथियों पर बैठकर बड़े-बड़े सामन्त सरदार युद्ध में भाग लेते थे और उनके साथ चुने हुए अनेक धनुर्धर भी उनके हाथियों पर बैठकर शत्रुओं पर बाण वर्षा किया करते थे।

मुगलों और राजपूतों के विरुद्ध मराठों की सफलता का कारण—मराठा सेना ही पेशवाओं के समय में दीर्घकाल तक भारत की सबसे अधिक प्रबल शक्ति बनी रही। मुगल शासन अपने अयोग्य शासकों, षड्यन्त्रकारी एवं पद लोलुप मुस्लिम सामन्तों और उनकी प्रतिक्रियावादी धर्मान्ध नीति के फलस्वरूप उत्तरोत्तर शिथिल होता जा रहा था। मराठा सैनिक डील डौल में हल्के होने के कारण तीव्रगामी अश्वों पर बैठकर अपने भारी भरकम राजपूत अथवा मुगल शत्रुओं के ऊपर जो गुरीला युद्ध शैली से नितान्त अनभिज्ञ होते थे, सरलता से आक्रमण करके उन्हें तितर-बितर कर देते थे। मुगलों के पास उतनी संख्या में सैनिक ही न थे कि वे मराठों की अपार सेना का सामना करने का साहस करते। इसी कारण नादिरशाह के आक्रमण के बाद मुगल सम्राट ने उस विदेशी सत्ता की अपेक्षा मराठों से ही गठबन्धन करके अपने शत्रुओं का दमन करने में अपने कल्याण की आशा की थी।

राजपूतों में भी सवाई जयसिंह तथा वीर दुर्गादास के बाद कोई ऐसा सुयोग्य नेता न हो सका जो मुगलों के विरुद्ध राजपूतों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में समर्थ हो पाता। ये लोग व्यक्तिगत वीरता के ही बल पर अपने भाइयों और समीपवर्ती क्षत्रीय राजाओं से संघर्ष करते रहते थे। इनके पास साज सज्जा तथा नवीन युद्ध शैली में दक्ष सैनिकों का सर्वथा अभाव था। इसके विपरीत चौथ और सरदेशमुखी के अधिकारों के सहारे उत्तरोत्तर शक्तिशाली और अर्थ सम्पन्न होने वाले मराठा सरदार अपने देशी शत्रुओं राजपूतों तथा मुगलों की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ रूप में अपनी सेना का संगठन कर सकते थे। ऐसी दशा में जब कि उत्तर भारत की शक्तियों के पास एकता तथा सैनिक साधनों का नितान्त अभाव था, उन्हीं जैसी युद्ध शैली तथा साथ ही गुरीला युद्ध-पद्धति में पारंगत मराठा सरदार यदि पाश्चात्य सैनिक नीति से प्रशिक्षित होने के फलस्वरूप राजपूतों और मुगलों दोनों को अनेकानेक युद्धों में परास्त करने में

सफल रहे तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। मराठों के पास तोपखाना था और पानीपत के युद्ध के समय उन्होंने मुगल तोपखाने का भी समुचित प्रयोग किया।

विदेशियों के विरुद्ध मराठों के युद्ध में सफल न होने के कारण—मराठों को शाह अब्दाली के सैनिकों ने स्थल पर तथा अंग्रेज नाविकों ने सामुद्रिक क्षेत्र पर परास्त करने में सफलता पाई। पुस्तक के एक अपर प्रकरण में पानीपत की निराशा पूर्ण पराजय के कारणों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। उन कारणों पर विचार करके हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि मराठों में योग्य सेना नायक के अभाव, उनकी सेना में असंख्य असैनिक तत्वों की उपस्थिति तथा सिंधिया और होल्कर की पारस्परिक फूट के फलस्वरूप मल्हारराव होल्कर की असावधानी ने अंतत शाह अब्दाली की सुसंगठित एवं सुसंचालित सेना को उन पर विजय प्राप्त करने का एक श्रेष्ठ अवसर दिया। दूसरी बात यह भी उल्लेखनीय है कि मराठा सरदारों में अपनी शक्ति पर इतना अधिक विश्वासातिरेक पाया जाता था कि वे समझते थे कि अपने देशी प्रतिद्वन्दियों मुगलों अथवा राजपूतों की भाँति वे अब्दाली की अफगान सेना पर भी सरलता से विजय प्राप्त कर लेंगे। यह निश्चित है कि शाह अब्दाली, मराठा सेना नायक सदाशिव राव भाऊ की अपेक्षा कहीं अधिक अनुभवी तथा चतुर सेनापति था और यदि मराठों को इस विदेशी आक्रांता से उस समय दक्षिण भारत के पठारी भाग में ही मोर्चा लेना पड़ा होता तो निस्सन्देह वे उस पर अपनी गुरीला युद्ध शैली के बल पर विजय प्राप्त कर लेते। प्रश्न यह उठता है कि दक्षिण की समर भूमि में ही वे कालान्तर में अंगरेजों के हाथ क्यों परास्त हो गये? बात यह थी कि उस समय तक अंगरेजों ने मराठों में फूट पैदा करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली थी यहाँ तक कि स्वयं पेशवा परिवार में भी नैतिक पतन आरम्भ हो गया था और इस कारण उनमें न तो सच्चे देशभक्त ही पर्याप्त संख्या में रह गये थे और न ही यथेष्ठ सैनिक प्रतिभा।

तुलाजी आंग्रे की सामुद्रिक शक्ति को ध्वस्त करने में स्वयं पेशवा ने ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उसके तथा भविष्य में अपने भी कट्टर बैरी अंग्रेजों का साथ दिया। तदुपरांत सामुद्रिक क्षेत्र में कान्होजी अथवा तुलाजी आंग्रे जैसा शक्तिशाली नौसैनिक योद्धा भी मराठों में न हो सका और उनकी नाविक शक्ति पर अंग्रेजों का ही अधिकाधिक प्रभुत्व स्थापित होने लगा। वैसे भी नाविक क्षेत्र में अंग्रेजों का समता करने वाली शक्ति उस समय क्या सारे विश्व में भी कोई न थी। यह दूसरी बात थी कि कुछ राजनैतिक कारणों वश व शेषकाल तक मराठों के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र में आने में परहेज करते रहे। परन्तु ज्यों ही उन्होंने अनेक विरुद्ध कूटनीतिक संधियाँ करना और उनमें सीधे युद्ध में भाग लेने के लिए अपनी शक्ति का केन्द्रीय करण करना आरम्भ किया मराठे उनके सामने सदा का हर प्रकार से निरुत्तर पाने लगे।

सारांश—मराठा सेना में पदाति तथा अश्वारोही ये दो प्रधान विभाग सम्मिलित थे। जिनमें से कुछ तो सीधे सरकार द्वारा भर्ती किये गये पागा अश्वारोही रहते थे और उन्हीं के अधीनस्थ बरगीरों तथा सिलेदारों का दल भी उसमें रखा जाता था। ये सिलेदार स्थानीय सरदारों द्वारा भर्ती किये जाते थे, जिनके व्यय के लिए वे अपनी जागीर की मालगुजारी में से समुचित धनराशि उपलब्ध करते थे मराठा सेना में हस्तिसेना तथा तोपखाने का प्रयोग भी शनैः शनैः अधिकाधिक रूप में किया जाने लगा।

मुगलों तथा राजपूतों के विरुद्ध उनकी बारम्बार विजयों के विरुद्ध उनकी एनस अधिक श्रेष्ठ तथा सभ्या में तीन सेना थी। इसके अतिरिक्त वे अपनी गुरिल्ला युद्ध नीति में सबसे अधिक कनिष्णात् होने के कारण भी विजयी होते रहे। परन्तु अब्दाली शाह की अफगान सेना के श्रेष्ठ प्रशिक्षण कठोर संगठन एवं अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर संचालन के कारण वे उसको परास्त करने में असफल रहे। मराठा सेना में अनेकानेक असैनिक तत्वों के भी साथ रहने के कारण उसे असफल होना पड़ा।

Q Estimate the achievements of the Marathas in ship building and hawal warfare during your period

प्रश्न—अपने अध्ययन से सम्बन्धित काल के मराठा इतिहास में मराठों के जलपोत निर्माण तथा उनकी नौसैनिक युद्ध कलों [redacted] विषय में उनकी विभिन्न सफलताओं का मूल्यांकन कीजिये।

उत्तर—शिवाजी ने कोंकण के समुद्री तट पर अपना अधिकार स्थापितकर नौसैनिक महत्व के अनेकानेक लाभदायक स्थान उपलब्ध कर लिये थे—इस सम्बन्ध में हम अपने पिछले प्रकरण में पहले ही विस्तृत प्रकाश डाल चुके हैं। तथापि इस स्थान पर उनके द्वारा मराठा जलशक्ति की उन्नति के लिये किये कतिपय महत्वपूर्ण प्रयासों का उल्लेख करना विशेष वांछनीय होगा। शिवाजी को अपने राज्य के समीप डाण्डा राजपुरी में अबीसीनियन जाति के बीजापुरी सूबेदारों से भीषण बाधका थी और इसके सैनिक जल और थल दोनों पर मराठों को आये दिन क्षतियाँ पहुँचाते रहते थे। फलतः शिवाजी ने विभिन्न तटीय-क्षेत्रों से अनेकानेक नाविक जातियों को अपने राज्य में आमन्त्रित करके उनकी सहायता से अपने एक शक्तिशाली और सुविशाल नाविक बेड़े का शीघ्र ही निर्माण कराया। १६६४-६५ में शिवाजी के नाविक सरदारों ने बसरा और फारस से आने वाले कुछ मुस्लिम जलपोतों को लूट-पाट कर काफी धन सम्पत्ति एकत्रित की। तत्पश्चात् पुरन्दर की संधि के बाद जंजीरा में अपना प्रभाव विस्तार करने के लिये शिवाजी ने एक सक्रिय योजना बनाई। इस उद्देश्य में सफल होने के लिये उन्हें अपने नाविक बेड़े का प्रयोग करना विशेष आवश्यक प्रतीत हुआ तथा इसे जीतने में १६७० ई० में उन्हें कोई सफलता न मिल सकी। परन्तु सत्य है कि जंजीरा के अभियान में शिवाजी ने

अपनी सारी शक्ति के साथ प्रयत्न किया था और उनके एक दुर्ग को उन्होंने अधिकृत भी कर लिया था जिसे शत्रुओं ने १६७१ ई० में उनसे पुनः हस्तगत कर लिया। तत्पश्चात् १६७२ से १६७५ ई० तक शिवाजी को मुगलों तथा अंग्रेजों से जलयुद्ध करना पड़ा। इसी मध्य भारत के सामुद्रिक तट पर स्थित कुछ उच्च तथा फ्रांसीसी नाविकों ने शिवाजी के हाथ कुछ बन्दूकें तथा बारूद बेचकर उन्हें पर्याप्त सहायता पहुँचाई।

शिवाजी के नौसैनिक पदाधिकारियों में दौलत खाँ तथा दरिया सारंग के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने १६७६ से १६८० ई० तक सिद्दियों के विरुद्ध भीषण जल युद्ध करके उन्हें यथेष्ट क्षति पहुँचाई। १६७६ ई० में शिवाजी ने खण्डेरी के द्वीप पर सफलतापूर्वक अधिकार कर लिया, किन्तु इस सम्बन्ध में उनका अंग्रेजों ने प्रबल प्रतिरोध करने के बावजूद भी कोई सफलता न पाई। उनकी देखा-देखी सिद्दियों ने भी आगे बढ़कर समीपवर्ती उण्डरी के द्वीप पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था जिससे मराठों के[1] खण्डेरी पर अधिकार से उन्हें अपने शत्रुओं के विरुद्ध स्थाई रूप से सफल होना और भी कठिन हो गया। उपर्युक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँच सकते हैं कि शिवाजी के समय में मराठा जलसेना की स्थापना हो गई थी और मराठों ने उसके बल पर अनेकानेक नाविक जातियों से मोर्चा लेने की अपनी प्रक्रिया में १६८० ई० तक कई एक स्थानों पर प्रशंसनीय सफलतायें भी प्राप्त कीं। तथापि यह स्वीकार करना पड़ता है कि शिवाजी को अपने नौ सैनिक प्रयासों की लक्ष्यपूर्ति में कोई स्थाई सफलता न मिल पाई और जंजीरा के द्वीप में सिद्दियों का जहाजी बेड़ा समय समय पर मराठा शत्रों को बराबर आक्रान्त करता रहा। मराठों का नाविक बेड़ा शिवाजी के प्रयासों से इस समय भारत के समुद्र तट पर स्थित अनेकानेक यूरोपियनों के नाविक बेड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक विशाल था परन्तु तोपों और नाविक प्रक्रिया की दृष्टि से यह उनसे कहीं अधिक पिछड़ा हुआ भी था। इस कार्य को सम्पन्न बनाने के लिये उन्हें जो २० वर्ष का समय मिला उसमें उन्होंने मराठा जल शक्ति के विकास का सराहनीय ढंग से सफल प्रयास किया किन्तु यह तो उनका प्रारम्भ मात्र ही था और इसको पूर्ण करने का कार्य शिवाजी के उत्तराधिकारियों को ही तत्परतापूर्वक करना चाहिये था। शम्भाजी तथा राजाराम दोनों के शासन कालों में मराठों ने अपनी जलशक्ति का सफल प्रयोग करके विदेशी जलपोतों के भारतीय समुद्र तट पर आगमन का सक्रिय प्रतिरोध किया। इससे अधिक वे कुछ भी न कर सके।

---

1 See 'Shivaji And his Times'—Page—275

शिवाजी के अधिकार में इस समय तक १६० बड़े-बड़े जहाज तथा इनके अतिरिक्त कुछ छोटी-बड़ी नौकाओं का उल्लेख मिलता है।

आंग्रे परिवार के लोगों के नेतृत्व में मराठा जलशक्ति (१) कान्होजी आंग्रे-जिस समय बालाजी विश्वनाथ शाहूजी के कृपापात्र के रूप में महाराष्ट्र के स्थल पर अपना राष्ट्रीय सगठन करने में सलग्न था कान्होजी आंग्रे पश्चिमी समुद्र तट पर अबाध गति से अपना प्रभाव विस्तार करता जा रहा था और उससे भयभीत समुद्रतट स्थित भारतीय तथा यूरोपीय सभी शक्तियाँ, उसे सम्मान की दृष्टि से देखने लगी थीं। कान्होजी आंग्रे का कर्नीमेट डार्लिंग जैसे विदेशी मल्लाहों ने तो अरबी सामुद्रिक डाकू ही सिद्ध करने की चेष्टा की है। इसी प्रकार ग्र्योवेन नामक एक अन्य पाश्चात्य व्यक्ति ने उसके पूर्वजों को सिद्दियों का वंशज बतलाया है किन्तु इस सम्बन्ध में उसने कोई निश्चित प्रमाण नहीं दिये हैं। इस परिवार के सरकारी वृत्तान्त से यही स्पष्ट होता है कि कान्होजी जन्म से एक मराठा क्षत्रिय ही था। उसके पूर्वज अपने नाम के आगे 'शंखपाल' का उपनाम जोड़ते थे। इस परिवार के लोग अंगरवाडी नामक गाँव में शिवकाल तक रहे थे अत वे आंग्रे कहलाने लगे। कान्होजी के पिता तुकाजी ने शिवाजी की स्वामिभक्तिपूर्वक सेवा की थी। परन्तु कान्होजी ने भी अपने पिता के ही पद चिन्हों पर चलकर मराठा छत्रपति की आधीनता में रहना श्रेयस्कर समझा।

प्रो० सुरेन्द्रनाथ सेन के कथनानुसार तत्कालीन मराठा चिटनिस मल्लाह रामराय का मत है कि जिस समय छत्रपति राजाराम ने मुगलों के घेरे से निकल कर जिंजी के दुर्ग में शरण लेने के लिये पलायन किया, मराठा जलसेना का प्रधान सिदोजी गूजर (Sidoji Gujar) भी उसके साथ गया था। वह कान्होजी को अपनी अनुपस्थिति में स्वर्णदुर्ग की देख रेख करने के निमित्त छोड़ गया था। यहाँ उसने जंजीरा के सिद्दियों के विरुद्ध अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त करने के फलस्वरूप कालान्तर में राजाराम से 'शरमदा' नामक क्षेत्र की सूबेदारी तथा साथ ही सरखेल (Sarkhel) की पदवी भी उपलब्ध कर ली। यह घटना किस समय में हुई इसका कोई पता नहीं चलता, तथापि इतना निश्चित है कि १७०३ ई० तक कान्होजी ने इतनी अधिक ख्याति प्राप्त कर ली थी कि गोआ के पुर्तगाली गवर्नर ने मैत्रीपूर्ण पत्र लिखकर उसे अपने भेंट उपहारों द्वारा सन्तुष्ट करने का प्रयास किया।

सन् १७१० ई० में कान्होजी ने एक डच जलपोत को अधिकृत कर लिया। १७१२ ई० में उसे साथ ही साथ तीन प्रकार के शत्रुओं से संघर्ष करना पड़ा—पुर्तगाली, सिद्दी तथा शाहूजी के पक्षपोषक उसके स्वयं अपने सजातीय प्रतिद्वन्द्वी। इस समय वह बड़ी ही भयकर परिस्थिति में पड़ गया क्योंकि उसके अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध भी अब कटु बनने लगे थे। तथापि कान्होजी आंग्रे का अपने इन सभी शत्रुओं से कोई क्षति न पहुँचने पाई। फलत एक पुर्तगाली लेखक ने कान्होजी आंग्रे की तुलना इस घटना के दो वर्ष बाद 'बारबरोसा (Barbarossa) के साथ करने में भी कोई अत्युक्ति न समझी। धीरे धीरे कान्होजी ने अपनी नाविक

शक्ति मे इतनी अधिक वृद्धि करली थी उसको देखादेखी शीघ्र ही उसके प्रतिद्वन्द्वियों की संख्या में भी वृद्धि होनी प्रारम्भ हो गई। कान्होजी को एक ही समय में अपने पाँच शत्रुओं की हुई शक्ति को प्रतिबाधित करने की भयंकर समस्या का सामना करना पड़ा। इनमे से सर्वप्रथम उसका ध्यान जंजीरा के सिद्दियों की ओर गया। सिद्दियो के अतिरिक्त अपने दूसरे चारों शत्रुओं वाड़ी के सावंतो बम्बई के अंग्रेजों बेनगर्ला के डचो तथा गोआ के पुर्तगालियो—से भी उसे एक एक करके निबटना था। कान्होजी ने महाराष्ट्र की पवित्र भूमि म सिद्दियों को निष्कासित करने में शीघ्र ही सफलता पाई और उनसे अनेकानेक मराठा क्षेत्रों को पुनः हस्तगत कर लिया गया। भविष्य में ये सिद्दी सामुद्रिक क्षेत्र म पहले की भाँति कभी भी उतने प्रबल न हो सके जितने कि ये किसी समय म रह चुके थे।

कान्होजी के मराठा जलशक्ति के प्रधान सेनानायक का पद प्राप्त करने के समय मराठो के नाविक बेड़े म 'जमा कि डॉ ड एरिसीरा' द्वारा ज्ञात होता है आठ दस छोटे छोटे जलपोतों के अतिरिक्त और कुछ भी न था। अत नये नये जहाजो का निर्माण कराने तथा सेना में और अधिक लोगो को भर्ती करने के निमित्त धन की आवश्यकता थी। इस उद्देश्य पूर्ति के लिये धन की प्राप्ति कान्होजी सामुद्रिक क्षेत्र पर अपना अबाध प्रभुत्व स्थापित करके ही कर सकता था। अत उसे शीघ्र ही पुर्तगाली शक्ति से शत्रुता मोल लेनी पड़ी। कान्होजी के पुर्तगालियों पर प्रथम आक्रमण की तिथि के विषय मे ज्ञात नहीं है। सर्व प्रथम उसने एक पुर्तगाली युद्धपोत रोककर उस पर बैठे हुये चौल प्रदेश के अवकाश प्राप्त पुर्तगाली गवर्नर को बन्दी कर लिया। इसे उसने ऐसी कठोर यातनायें दी कि वह बन्दीगृह में ही मर गया। तत्पश्चात् कान्होजी ने पुर्तगालियों के दो अन्य युद्धपोत (मन्चुओ Manchuas) को भी क्षतिग्रस्त करके उनपे मे एक पर बैठे हुये २७ पुर्तगालियों को बन्दी कर लिया। उनमें सभी लोग कान्होजी द्वारा मौत के घाट उतार दिये गये किन्तु एक नौसैनिक सरदार ने कान्होजी को १२००० पुर्तगाली रुपये (Xerafins) देकर किसी प्रकार अपने प्राण बचाये। पुर्तगाली जहाजों पर बैठकर यात्रा करने वाले अनेकानेक यात्रियों की भी कान्होजी ने यही दुर्गति की। परन्तु कान्होजी को सबसे अधिक धन लाभ हुआ सन् १७१२ ई० मे जबकि एक विशाल पुर्तगाली व्यापारिक जलपोत उसके द्वारा पकड़ा गया। यह जहाज उत्तर दिशा के बन्दरगाहों की यात्रा कर रहा था और मार्ग म ही उसकी मराठा जहाजी बेड़े से टक्कर हो गई। कान्होजी की इस कार्यवाही के फलस्वरूप गोआ के पुर्तगाली व्यापारियों को अपार क्षति उठानी पड़ी। परन्तु आगामी वर्ष पुर्तगालियों ने कान्होजी के जहाजी बेड़े से दो दिन और दो रात लगातार युद्ध करके उसे भी पर्याप्त हानि पहुँचाने में सफलता प्राप्त की।

कान्होजी आंग्रे की शक्ति इस समय तक इतनी प्रबल हो चुकी थी कि वह हीं सारे पश्चिम तट पर मछली मारने वाले पुर्तगाली मल्लाहो से कर वसूल करता और उनके तटीय गाँवों से चौथ वसूल किया करता था। १७१३ ई० मे उसने एक अन्य पुर्तगाली नाविक बेडे पर आक्रमण कर दिया तथापि उसे इस बार शत्रुओं के हाथो पुन परास्त होना पडा। गोआ के वाइसराय एन्टोनिओ कार्डिम फोज ने अपने पक्ष को विजयी होते देख कोलाबा म स्थित मराठा नाविक शक्ति को क्षति ग्रस्त करने का असफल प्रयास किया, परन्त इस बार कान्होजी ने पुर्तगालियो की तोपों की मार से अपने जहाजी बेडे को दूर हटाकर उसे क्षत विक्षत होने से बचा लिया।

ताराबाई के समर्थक के रूप मे कान्होजी आंग्रे ने भी शाहूजी के विरुद्ध युद्ध मे भाग लिया। उसने लोहागढ़, तुगे तथा तिकोना नामक दुर्गों का जीतकर महाराष्ट्र की भूमि पर भी अपना सिक्का जमा लिया था। तथापि इन गौरवपूर्ण विजयो से उसका मस्तिष्क लेश मात्र भी विकृत न होने पाया। वह अपनी शक्ति की वस्तु स्थिति से भली भाँति अवगत था, अस्त वह शाहूजी तथा अग्रेजो से सधि न करना चाहता था ताकि उसे सिद्दियो और पुर्तगालियों की सम्भाव्य सयुक्त शक्ति से अपने क्षेत्रों की रक्षा करने मे समुचित सुविधा सुलभ हो सके। अग्रेजों से सधि करके कान्होजी ने अपने जहाजो के लिये बम्बई म ठहरने की प्रवेशानुमति प्राप्त की और इसी प्रकार अग्रेजी जहाजों को भी उसने अपने सामुद्रिक क्षत्रो मे आने जाने की सुविधा प्रदान कर दी। परन्त शाहूजी से सधि करने के उपलक्ष में उसे महाराष्ट्र के स्वविजित विभिन्न क्षत्र मराठा क्षत्रपति को वापस देने पडे यह सधि १७१३ ई० क अन्त अथवा १७१४ ई० क प्रारम्भ मे हुई थी।

इन सधियो क फलस्वरूप कान्होजी आंग्रे के शक्ति कारक आक्रमणों से बचने के लिये सिद्दियो ने भी उससे शीघ्र ही सधि कर ली। अब आंग्रे का नाविक बेडा सामुद्रिक क्षत्र मे इतना दुर्जेय हो गया था कि उसके मराठा मल्लाहों ने बिना प्रवेशा नुमति प्राप्त किय हुए प्राय सभी विदेशी जलपोतो को लूटना प्रारम्भ कर दिया। पुर्तगालियों के तटीय स्थानों में से चौल प्रदेश के व्यापारियो को सबसे अधिक क्षति ग्रस्त होना पडा। अब आंग्रे ने अपने नौसैनिक बेडे में विभिन्न आकारा के ४० बडे बडे जलपोत और बढा लिये थे और विभिन्न देशों की नाविक जातियो के अनेकानेक साहसिक मल्लाह भी उसी की सेवा में सम्मिलित होने के लिये आने लगे थे।

अग्रेजों के साथ अपनी विगत सधि के अनुसार कान्होजी ने उनके अपने द्वारा पकडे गये दोनों जहाज उन्हें वापस दे दिये थे किन्तु उनमें लदा हुआ माल उसने जब्त कर लिया। इससे अग्रेज अफसरों को महान असन्तोष हुआ। उनकी आंग्रे से शत्रुता उत्तरोत्तर बढती ही गई और कालान्तर [illegible] उसने तीन अन्य अग्रेजी जहाजों को भी एक एक करके अधिकृत कर लिया। इन्हें वापस देने के लिये अग्रेजों ने आंग्रे से बारम्बार प्रार्थनायें कीं परन्तु उसकी एक न सुनी गई। फलत जून

१७१८ ई० तक दोनों पक्षों में शीत युद्ध चलता रहा। अन्तत १७ जून को बम्बई की अंग्रेजी सरकार ने कान्होजी आंग्रे के विरुद्ध प्रत्यक्ष युद्ध घोषणा कर दी। इस समय आंग्रे तथा पुर्तगालियों के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहे। परन्तु अंग्रेजों ने अब दृढ़ निश्चय के साथ कान्होजी की शक्ति का दमन करने की योजना बनाई। उन्होंने आंग्रे के विरुद्ध १७१७ से लेकर १७१६ ई० के अन्त तक कई एक नौसैनिक अभियान किये। बम्बई के सार्वजनिक विचार विमर्श[1] (Bombay public Consultations) सम्बन्धी संस्मरणों से हम आंग्रे के विरुद्ध अंग्रेजों द्वारा की गई कार्यवाहियों के विषय में समुचित ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उन्होंने आंग्रे की जागीर के नगर को ध्वस्त करने, वहां से १६ व्यक्तियों को बन्दी के रूप में लाने तथा उसके जहाजी बेड़े को भी कुछ क्षति पहुँचाने में सफलता पाई। इसी प्रकार के नौसैनिक अभियान जुलाई सितम्बर तथा अक्तूबर में भी किये गये किन्तु उन्हें साधारणतया कोई विशेष सफलता न मिल सकी। अतः बम्बई के गवर्नर मि० बून (Mr Boone) ने कान्होजी आंग्रे के विरुद्ध स्वयं ही एक प्रबल नाविक अभियान करने का निश्चय किया और उसका विचार तो यहाँ तक था कि बिना आंग्रे के कुछ प्रमुख प्रमुख नौसैनिक महत्व वाले दुर्गों को आधीनस्थ किये हुए कान्होजी को समुचित पाठ पढ़ाना अत्यन्त ही कठिन था। उसने अपनी नाविक प्रक्रिया का श्री गणेश करने के पूर्व कान्होजी तथा कोल्हापुर के राजा सम्भूजी[2] के पहले से कटु बने हुए पारस्परिक सम्बन्धों को और भी कटुतर बनाने की एक सक्रिय योजना बनाई।

अपनी इस उद्देश्य पूर्ति के लिये मि० बून ने करवार के एक ईसाई मि० जार्ज टेलर को पत्र लिखकर उसे यह निर्देशित किया कि वह सम्भाजी से मिलकर उसे यह शिक्षा दे कि वह कान्होजी आंग्रे की सामुद्रिक हरकतियों का गतिरोध करने हेतु उसकी शक्ति को ध्वस्त करने के ठोस पग उठाये अन्यथा यही कार्य स्वयं बून को ही करने के लिये विवश होना पड़ेगा। परन्तु म० १७१८ ई० अंग्रेजों की सम्भाजी

1 Bombay public Consultations, Range CCCXLI No 4 Pages 87 90

Sunday 25th May —Sailed our Galevats in order to madefurther depredation in the territories of Angria Mon day June 2nd —Last night sailed two Galevats with about 30 Sepoys to make descent in another Part of Angria s country

Wednesday 4th June 1718—This morning returned the two galevats from Angria s country having pillage one town and brought sixteen prisoners

2 See Surendra Nath Sen's— Military system of the Mara thas

Before embraking however, on any serious enterprise he tried to exploit the difference between Angria and his quon dom Sovereign the Raja of Kolhapur ’

के साथ उस संधि वार्ता का भी उसी प्रकार कोई सन्तोषपूर्ण परिणाम न निकला जिस प्रकार उसके साथ १७१६ ई० की पुर्तगाली संधि वार्ता का। उसके पश्चात् अंग्रेजों ने पुर्तगाली गवर्नर कोंडे डी एरिसीरा (Conde De Ericeira) से सम्पर्क करके उससे आंग्रे के विरुद्ध रक्षात्मक एवं आक्रमण दोनों प्रकार की संधि करने की असफल चेष्टा की। वस्तुतः इन दोनों शक्तियों के मध्य इस विषय में यथावश्यक कार्यवाही के प्रश्न पर मतैक्य ही न हो सका। नवम्बर १७१६ ई० में अंग्रेजों ने विजयदुर्ग के समीप रुकी हुई आंग्रे की जंगी नावों (Ghurabs) को जलाने का भी एक असफल प्रयास किया। फलतः पुर्तगाली शासक अंग्रेजों के सैनिक बल को अपर्याप्त समझकर और भी चुप बैठा रहा। परन्तु बून कब चुप बैठने वाला था। उसने अब १६७६ ई० शिवाजी के नाविक पदाधिकारी माई नायक द्वारा किले बन्दी किये हुए खुन्देरी द्वीप पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से गोलाबारी हुई परन्तु अंग्रेजों के पास स्थल-युद्ध में निष्णात् सैनिकों के अभाव के फलस्वरूप, उनका यह अभियान भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। उन्होंने अपनी इस असफलता के लिये बम्बई के हिन्दू रामजी कामथी पर तीव्र आरोप लगाये और सम्भवतः उसे देश से निष्कासित भी कर दिया, जिसके यथेष्ट प्रमाण भी न स्पष्ट हो सके। उनका कहना था कि इस व्यक्ति ने आंग्रे से पत्र-व्यवहार करके उसे अंग्रेजों का सारा भेद बतला दिया था। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने कोलाबा पर सामान्य गोलाबारी करके 'घेरिया' की दशा में प्रस्थान किया। यहां उसने आंग्रे के नाविक बेड़े पर आक्रमण करके उसकी चार लड़ाकू नावों (Prizes) पर अधिकार करने में सफलता पाई। अंग्रेजों का दमन करने के लिये कान्होजी ने अपनी कुछ नावें बम्बई की दशा में भेजी किन्तु जनवरी १७१६ ई० में उनकी अंग्रेजी नाविक बेड़े से जो मुठभेड़ हुई उसमें वे सामुद्रिक तीव्र अंग्रेजी जहाजों (frigates) विक्टोरिया रिवेन्ज फिग्रायन्स के सामने टिक न सकी और आंग्रे के सैनिकों को अपनी नावें पीछे हटा लेनी पड़ीं। इसी समय महाराजा शाहू की ओर से संधि के प्रयास होने के फलस्वरूप कुछ समय के लिये आंग्रे तथा अंग्रेजों का सामुद्रिक युद्ध स्थगित हो गया। अन्ततः इस संधि पर रक्खी गई शर्तें[1] आंग्रे द्वारा आंशिक

---

1 See—Surendra Nath Sen's—Military System of the Marathas pp 107

Kanhoji promised to send the English prisoners of nicely with one of his own officers but informed Boone that he had certain objections to the Articles sent to him What his objections were we do not know Some Articles along were discussed but the treaty was not ratified by Kanhojee Also See Robert Cowan's letter dated 3rd Jan 1721 22 to Baji Rao I

रूप में अस्वीकार हो जाने के कारण कोई समझौता सम्भव न हो सका। प्रो० सेन के मतानुसार इस संधि पर उसकी आपत्तियाँ क्या थीं—इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों में आंग्रे के विरुद्ध नाविक संधि—कान्होजी द्वारा संधि की शर्तों को अस्वीकृत होने के पश्चात् अंगरेजों ने कोलाबा के विरुद्ध पुनः नाविक अभियान किया जिसमें वे असफल रहे और उसी समय अर्थात् सन् १७२० ई० में उनका एक जहाज—चार्लोट (Chalotte) कान्होजी के सैनिकों ने छीन लिया। फलतः अंगरेजों ने पुर्तगालियों के साथ संधि वार्ता करना प्रारम्भ कर दिया। इस नौसैनिक संधि (२० अगस्त १७२१ ई०) का लक्ष्य आंग्रे की शक्ति को ध्वस्त करने के अतिरिक्त और कुछ न था। संधि में १४ धारायें थीं और उनका सम्बन्ध आंग्रे को परास्त करने के बाद उपलब्ध उसकी समस्त सामग्री (लूट) तथा विजित स्थानों को परस्पर समान रूप से बाँट लेने का ही था। इस संधि पर हस्ताक्षर करने के एक सप्ताह पहले ही सम्भवतः भारत स्थित पुर्तगाली अफसरों को यह विदित हो चुका था कि मराठों की नाविक शक्ति को विनष्ट करने के उद्देश्य से चार युद्धपोतों के एक नाविक बेड़े के साथ कमोडोर थामस मथिउ ने इंगलैण्ड से फरवरी १७२१ ई० में प्रस्थान कर दिया था। इस संधि का कोई फल न निकला क्योंकि पुर्तगालियों ने इसका सारा भेद ही मराठों को खोल दिया था और उन्होंने पठानों को भी अपनी नौसेना में भर्ती कर लिया जिसके कारण आंग्रे को इन विदेशी उपनिवेशवादियों की अपने लिये अत्यन्त ही घातक सभी गुप्त योजनाओं की पूर्व सूचना मिल गई। उसने पुर्तगालियों से संधि करने का भी असफल प्रस्ताव किया और उसके अस्वीकृत होने के पश्चात तत्काल ही सतारा के छत्रपति के पास सैनिक सहायता के लिए अपना प्रार्थनापत्र भेज दिया। सतारा से शाहूजी ने उसकी सहायता करने के लिये एक एक करके चिमाजी आप्पा तथा बाजीराव को विशाल सेनायें देकर कोलाबा को भेजा। अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों में तीव्र वैमनस्य पुनः सजीव हो चुका था क्योंकि उनके इंगलैण्ड से आये हुए उपयुक्त नाविक अफसर को आंग्रे ने परास्त करके भीषण हानि पहुँचाई और उनका साथ देकर पुर्तगालियों को भी अपमान का भागी बनना पड़ा। उधर आंग्रे इन पुर्तगाली विदेशियों पर निरन्तर यही दबाव डालता रहा कि वे उससे मैत्री संधि करलें। आंग्रे को अपने इस कार्य में नाममात्रेण सफलता भी मिली तदुपरान्त ९ जनवरी १७२२ ई० को अलीबाग के समीप पेशवा ने अंग्रेजों से आन्तरिक प्रतिद्वन्द्विता रखने वाले पुर्तगालियों से संधि करके यह घोषणा कर दी कि इन दोनों जातियों के अधिकार में सारे बन्दरगाह एक दूसरे के आवागमन के लिए खुले रहेंगे। पेशवा ने कोलाबा में पकड़े हुए पुर्तगाली जहाज भी आंग्रे से वापस लौटवा दिये।

अब कान्होजी आंग्रे का भारतीय समुद्र तट पर सबसे अधिक प्रभुत्व स्थापित हो चुका था और उसने मार्च (१४) १७२२ से लेकर अक्तूबर १७२२ ई० तक अपने नाविक अभियानों द्वारा अंग्रेजी जहाजी बेड़े से युद्ध करके उसे कई बार भयकर क्षति पहुँचाई। उसने पुर्तगालियों को भी उसमें सम्मिलित होने के लिये प्रेरित किया किंतु वे अपनी आर्थिक समस्याओं के कारण तथा मराठों पर अपने स्वाभाविक अविश्वास की वजह से अंग्रेजों के विरुद्ध आक्रामक संधि करने का साहस न कर सके।

१७२४ ई० में कान्होजी ने चार्ल्स बून के स्थान पर जनवरी १७२२ ई० से कार्य करने वाले नवीन अंग्रेजी गवर्नर विलियम फिप्स (William Phipps) को पत्र लिखकर उनसे संधि करने का विचार किया। अन्ततः कुछ टाल मटोल करने के बाद विलियम फिप्स ने इस संधि की शर्तें मानलीं और फलतः दोनों पक्षों में एक दूसरे द्वारा बन्दी बनाये गये व्यक्तियों का आदान प्रदान प्रारम्भ हो गया। आंग्रे अपने एक नाविक अफसर 'शिवाजी नायक' को अंग्रेजों के बन्धन से मुक्त कराना चाहता था और इसी उद्देश्य से उसने विलियम फिप्स को संधि करने के लिए अग्रसर किया था।

सन् १७२३ ई० में कुदाल के सावन्त से जो पुर्तगालियों और अबीसीनियनों का अब मित्र बन रहा था कान्होजी आंग्रे के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गये। इन दोनों में झगड़े का कारण उनके द्वारा विलेशियों का पकड़ा गया एक जहाज था, जिसे कान्होजी स्वयं अपने स्वामित्व में लेना चाहता था। फलतः सावन्त का जहाजी बेड़ा आंग्रे ने ध्वस्त कर डाला और वेनगर्ला (vingurla) के आस पास के उसके सारे गाँवों में आग लगा दी। १७२५ ई० में जंजीरा (जजपुरी) के सिद्दी ने भी आंग्रे की शक्ति का दमन करने का सक्रिय प्रयास किया और कोलाबा पर आक्रमण करने के लिए उसने अपनी कोई ११४ छोटी बड़ी लड़ाकू नावों के एक विशाल सामुद्रिक बेड़े के साथ अभियान कर दिया। इस बार आंग्रे ने सिद्दी से प्रत्यक्ष युद्ध करना उपयुक्त न समझ उसे धन इत्यादि का प्रलोभन देकर वापस लौटा दिया।[1]

इस प्रकार अपने शत्रुओं पर प्रबल आतंक स्थापित करके अथवा उन्हें सामान्य प्रलोभन द्वारा अपना मित्र बनाकर कान्होजी आंग्रे ने अपने जीवन के अन्तिम ३ ४ वर्ष शान्तिपूर्वक व्यतीत किये। प्रो० सुरेन्द्रनाथ सेन ने उसे ठीक ही "एक असाधारण प्रतिभा, सम्पन्न कूटनीतिज्ञ" कहकर सम्मानित किया है। वह

---

1 See Surendra Nath Sen's—'Military System of the Maratha' PP 212

For reasons unknown to us the Maratha Admiral considered it unsafe to face the Siddi on the Sea and as was usual in that age Silver served to avert a danger when steel offered little or no remedy

इस सम्मान के सर्वथा योग्य था। इसका प्रमाण हम उसके सतारा के दरबार में शाहूजी द्वारा गौरवपूर्वक सम्मानित एवं प्रशंसित होने की घटना से ही प्राप्त हो जाता है। कान्होजी आंग्रे अपनी मृत्यु के पूर्व अपने छत्रपति की सेवा में उपस्थित होकर उससे अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करने के निमित्त सतारा में कुछ दिन तक निवास करने के पश्चात कोलाबा वापस लौट आया। यहीं २० जून १७२६ ई० में वह परलोक सिधार गया।[1] उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकारों तथा पाश्चात्य विद्वानों किसी में मतैक्य नहीं मिलता। प्रो० सरदसाई के मतानुसार उसकी मृत्यु ४ जुलाई १७२६ ई० को हुई परन्तु ग्रान्ट डफ महोदय ने इसके विपरीत यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वह १७२८ ई० में ही मर गया था। इस मत की पुष्टि नरीन महोदय (Narine) ने भी की है। परन्तु ग्रोस तथा लो (Grose and Low) नामक दूसरे पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि कान्होजी आंग्रे की मृत्यु १७३१ ई० में हुई जो विश्वस्त नहीं प्रतीत होता। उसकी मृत्यु चाहे भी जब हुई हो परन्तु हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि उसने शिवाजी महान् की मृत्यु के कुछ समय बाद से १७२६ ई० में अपनी मृत्यु पर्यन्त मराठा राज्य की मूल्यवान सेवा की और जैसा कि प्रोफेसर सेन महोदय का मत है कि जिस प्रकार बाजीराव प्रथम मराठा साम्राज्य का दूसरा संस्थापक माना जाता है कान्होजी आंग्रे भी मराठा जलशक्ति का शिवाजी प्रथम के बाद दूसरा महान् संस्थापक था। उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों तुलाजी तथा मानाजी की पारस्परिक फूट ने मराठों की जलशक्ति को अंग्रेजों के हाथों छिन्न भिन्न होने एवं मराठा नौसेना के अंगरेज षडयन्त्रकारियों द्वारा नैतिक पतन के अनेकानेक अवसर प्रस्तुत किये उनका विस्तृत उल्लेख हम अपने पिछले प्रकरण में कर चुके हैं। वस्तुतः उसके पुत्रों सखोजी शम्भाजी, मानाजी, तुलाजी येसाजी तथा धोंधूजी (Dhonduji) के हाथों में मराठा नौसेना की व्यवस्था और उसका इतिहास उनके पारस्परिक संघर्षों का ही वृत्तान्त है और उनके नियन्त्रण में मराठा जलशक्ति धीरे धीरे पतनोन्मुखी ही होती चली गई। उनसे गुटबन्दियाँ करके अंगरेज तथा पुर्तगाली उन्हें परस्पर संघर्षरत बनाये रहे और अन्त में पेशवा बालाजी राव की आधीनता स्वीकार करने से इन्कार करके तुलाजी आंग्रे ने अपने आप ही अपना विनाश कर लिया और विजय दुर्ग के नौसैनिक किले के पतन १७५६ ई० का परिणाम मराठा जलशक्ति के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ और उसके उपरान्त पेशवा की अनुपस्थिति में रामजी पन्त (उसके अभिकर्त्ता) ने अंगरेजों से जो नाविक संधि की उसके फलस्वरूप उत्तर भारत के पश्चिमी समुद्रतट से मराठों

1 See Above writer's view on K. Angrey's death.

के प्रभुत्व का सदव के लिए मूलोच्छेदन हो गया। इसका उल्लेख आगामी पंक्तियों में दिया जायेगा।

पेशवा के हाथों में मराठा नाविक बेड़े की दशा—विजयदुर्ग के पतन के बाद पेशवा बालाजीराव ने जंजीरा पर अधिकार करने की योजना बनाई। परन्तु इस हेतु उसने अंगरेजों से नाविक सहायता लेकर अपनी महान् अदूरदर्शिता का परिचय दिया। सिद्दी और पुर्तगाली पहले से ही एक-दूसरे के मित्र बने हुए थे और पेशवा को जंजीरा पर अधिकार करने में सफलता न मिल पाई। तथापि अब पेशवा का नाविक बेड़ा दक्षिण भारतीय समुद्रतट के अपने सुविस्तृत प्रभाव क्षेत्र के समीप पहुँचने वाले समस्त विदेशी जलपोतों से कर वसूल करने लगा था। अभी तक वे केवल अंगरेजी जलपोतों को छोड़कर सभी विदेशी जहाजों को आक्रान्त करते रहे थे क्योंकि तुलाजी[1] की पराजय के बाद आंग्रेओं के विजयदुर्ग को पेशवा के दबाव के कारण खाली कर दिया था। परन्तु अंग्रेजों ने अब अपनी सामुद्रिक शक्ति को मालाबार के तटीय क्षेत्र पर विशेष प्रभाव विस्तार कर रक्खा था और वे मराठों से अत्यधिक आन्तरिक वमनस्य रखते थे।

सन् १७५८ से १७६४ ई० तक मराठा जहाजी बेड़े का अधिकारी आनन्द राव धुलप रहा। पेशवा की आज्ञानुसार मानाजी आंग्रे को कोलाबा में रहने दिया गया क्योंकि उसने पेशवा को दो लाख रुपये वार्षिक देते रहने का वचन दे दिया था। यही नहीं अब समय पड़ने पर पेशवा को अपनी नाविक सहायता प्रदान करने को भी तैयार हो गया। सन् १७५९ ई० में जब मानाजी आंग्रे की मृत्यु हुई तो उसके पुत्र रघुजी आंग्रे को बालाजी राव ने उसके पिता के पद तथा मुल्क का उत्तराधिकारी मान लिया।

सारांश—मराठों की जलशक्ति के संस्थापक शिवाजी ने कोलाबा तथा आस पास के सामुद्रिक स्थानों पर अपनी नौसेना तथा विशाल जहाजी बेड़े की स्थापना करदी थी। उन्हें राजपुरी (जंजीरा) को जीतने में कोई सफलता न मिल पाई परन्तु यह सत्य है कि उन्होंने मराठों को नाविक क्षेत्र में अग्रसर करके उन्हें इस क्षेत्र में उन्नति करने की महान प्रेरणा दी। इसी कारण कान्होजी आंग्रे ने

1 दे०—श्रीगोपाल दामोदर तामस्कर कृत "मराठों का उत्थान और पतन," पृ० ३३५

"पहले तो उसे वन्दन के किले में रक्खा वहाँ पर उसने बगावत करने का प्रयत्न किया इस लिये उसे वहाँ से लेजाकर शोलापुर में रक्खा। वहीं सन् १७६६ ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसके दो पुत्र भी कैद में थे। १४ वर्ष बाद वे बम्बई भाग गये और अंग्रेजों ने उन्हें अपने आश्रय में रक्खा।"

काला तर म अपनी सामुद्रिक शक्ति की वृद्धि करने का सामदायक अवसर पाया। उसक उत्तराधिकारी अयोग्य निकले। इसी कारण वे धीरे धीरे निबल होते गय।

Q Write a brief essay on various Maratha forts which contributed to the quick expansion and victory of the Marathas

प्र न—मराठो के उन विभिन्न दुर्गों पर एक सक्षिप्त निब ध लिखिये जिनके कारण उन्हें अपने शक्ति विस्तार एव देश विजय मे विशष योग मिला।

उत्तर—महाराष्ट्र के प्राय सभी पुरान दुग किसी समय शिवाजी के प्रभुत्व मे रहे थे। उनमे से कुछ को तो उ होन अधिकारियो का घूस देकर ही अधिकृत किया और कुछ को अपने कूटनीतिक प्रयासो स शेष किलो के लिये उ हे सुनियोजित सैनिक अभियान करने पडे थे। वह पुराने जीर्णकाय किलो से ही स तुष्ट न बठ गय प्रत्युत उ होने स्थान स्थान पर नये दुग भी निर्मित कराये। महाराष्ट्र की पहा डियो पर उ ह सनिक महत्व के अजेय दुग निर्मित कराने क लिय यथष्ट उपयुक्त स्थान मिला। मराठ किसी भी सुरग अथवा दर्रे को असुरक्षित न छोडत थ। और न उ होंने पहाडा का काई ऐसी चोटी ही खाली छोडी जिस पर कि उ होने काई न कोई दुग न खडा किया। पूना से सतारा की यात्रा करते समय दशकों को अपन चारो ओर दुर्ग ही दुग निर्मित दिखाई पड़त हैं। सिंहगढ को तानाजी मलूसरे क वीरोचित क्रिया कलापो क लिय स्मरण किया जाता है पुर दर तथा वज्रगढ़ के दुग मुरार बाजी की पुण्य स्मृति क प्रतीक है और इसी प्रकार सज्जन गढ का समथ गुरु रामदास क स्त म का राष्ट्रीय स्मारक माना जाता है। इन दुर्गों के अन्दर सनिक एव खाद्य सामग्री के अक्षय भण्डार रखे जाते थे और इनम एक बार आश्रय ग्रहण कर लने के बाद मराठा नेताओ और उनकी सेनाओ का परास्त करना उनके शत्रुओ के लिये अत्य त ही दुष्कर हो जाता था। हाँ रसद के अभाव की स्थिति उत्पन्न करके अथवा दुग कमचारियो को घूस इत्यादि देकर अवश्य ही किसी किले को विजित किया जा सकता था।

दुग निर्माण करते समय उसके उपयुक्त सनिक महत्व की जगह का चयन करने की विशेष आवश्यकता रहती थी। इसी दृष्टि से रायगढ़ का किला एक ऐसे स्थान पर बनाया गया था कि वहाँ तक पहुँचने के लिये एक सकीर्ण, एव ऊबड खाबड पगडण्डी के अतिरिक्त और कोई भी प्राप्य न था। इसकी सुरक्षा के लिये मराठा शासको ने सतर्कता पूवक हर प्रकार की व्यवस्था कर रखली थी। इसी प्रकार सोहगढ़ की स्थिति भी कम सबल न थी परन्तु उसक विषय मे लोड वलेशिया ने कुछ और ही विचार किये हैं। उनके मतानुसार यदि उस समय क तो परचा और खान खोदने वाले (Miners) कुछ अधिक प्रशिक्षित रहे होते तो व दुर्ग निर्माण क समय अपनी सनिक युक्तियो का प्रयोग करके किले को ऐसा दुगम्य बना सकते थे कि उसके समीप मनुष्यों की लेशमात्र भी पहुँच न हो सकती थी।

शिवाजी अपने दुर्गों के चारों ओर एक मजबूत प्रस्तर भित्ति का निर्माण करा दिया करते थे। दुर्ग के पहाड़ी की ओर का भाग काँटेदार झाड़ियों से वसे ही अगम बना दिया जाता था। इन किलों के अन्दर सैनिक टुकड़ियों को अवस्थित करने तथा योद्धाओं को विश्राम करने के निमित्त यथोचित व्यवस्था रहती थी। इसके अतिरिक्त उनमें एक दारू खाना अर्थात बारूद इत्यादि रखने के लिये स्थान, एक अम्बार-खाना अर्थात भण्डार गृह (रसद इत्यादि के लिये) भी होता था। पानी की व्यवस्था पर भी दुर्ग निर्माता विशेष ध्यान रखते थे। उदाहरणार्थ सतारा के छोटे से दुर्ग में ही कई एक कूप तथा तालाब बने हुये थे। रायगढ़ में तो अनेकों तड़ाग पाये जाते थे। इस दुर्ग का भ्रमण करते समय वूज नामक विदेशी यात्री का स्थानीय व्यक्तियों से यह विदित हुआ कि यह दुर्ग एक नितान्त अजेय स्थान था जिसे मुट्ठी भर सैनिक ही आक्रामकों की बड़ी-बड़ी सेनाओं के विरुद्ध रक्षित रख सकते थे। दुर्ग के अन्दर ही अन्न उपजाने वाले बड़े-बड़े खेत भी होते थे। पन्हालगढ़ के अम्बर खाने में गंगा, यमुना और सरस्वती के नामों से प्रसिद्ध तीन बड़े-बड़े अन्नागार बनाये गये थे जिन में कुल मिलाकर पच्चीस हजार खण्डी अनाज सुरक्षित रक्खा जा सकता था।

यही नहीं, दुर्ग रक्षा के निमित्त दैवी शक्तियों से भी प्रेरणा ली जाया करती थी। दुर्ग के प्रधान द्वार पर हनुमान जी की एक छोटी-सी मूर्ति का निर्माण कराया जाता था और उसके अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा शत्रु को परास्त करने की मनोकामना पूर्ण करने के निमित्त अलग-अलग पूजा स्थान भी होते थे। उदाहरणार्थ प्रत्येक दुर्ग में दर्शकों को प्राय एक मन्दिर तथा एक मस्जिद अवश्य देखने को मिलेगी। श्री सी० ए० किनकेड का कथन है कि लोहगढ़ की दीवारों की नींव के अन्दर कुछ मानव कंकाल भी पड़े पाये गये। इस इतिहासकार का मत है कि सम्भवतः दुर्ग को अविजेय बनाने के उद्देश्य से मराठा शासकों ने सम्भवतः कुछ मनुष्यों की वहाँ पर बली चढ़ाई होगी। इन दुर्गों की रक्षात्मक उपयोगिता के विषय में जो कुछ भी कहा जाय, वह थोड़ा ही है। कारण यह है कि मुगल सम्राट को एक एक मराठा दुर्ग पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में अपार जन धन एवं समय का व्यय करना पड़ा था।

शिवाजी ने इन सैनिक दुर्गों की उपादेयता के साथ ही साथ इनकी रक्षा करने में महाराष्ट्र जैसे पर्वतीय प्रदेश के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले अनेकानेक संकटों का भी पक्का अनुमान लगा रखा था। यदि वे देश रक्षा के अच्छे साधन बन सकते थे तो इनमें रहने वाले कर्मचारियों को डरा धमका कर अथवा आर्थिक प्रलोभन आदि देकर स्वयं मराठा छत्रपति के ही विरुद्ध शत्रुओं द्वारा अपने पक्ष में भी सरलता से मिलाया जा सकता था। इसी कारण शिवाजी ने महाराष्ट्र में व्यक्तिगत रूप में दुर्गों का निर्माण कराने पर प्रबल प्रतिबंध लगा रक्खा था। कथाओं के बस सम्बन्ध

मे विशेष व्यवस्था कर रखी थी कि ये दुर्ग किसी भी दशा में स्वयं उन्हीं के विरुद्ध प्रयोग न किये जा सकें।

दुर्गों की व्यवस्था करने में मराठा द्वारा अपनाई गई सावधानियाँ—मराठा शासकों ने दुर्गों में अवस्थित की जाने वाली सेनाओं और उनमें सम्मिलित विभिन्न मराठा अथवा आधीनस्थ अन्य सरदारों के विषय मे विस्तृत जाँच पड़ताल कराई। सैनिकों के चाल चलन के विषय में पुराने सेनापतियों से जमानत लेने की प्रथा तो शिवाजी के समय से ही चली आ रही थी। दूसरी सावधानी उन्होंने यह अपनाई कि जहाँ खुले युद्धों में भाग लेने वाली मराठा सेनाओं में नेतृत्व की इकाई को कायम रखना आवश्यक समझा जाता था वहाँ दुर्गों के अन्दर अवस्थित की गई सेना के संचालन के लिये एक से अधिक सेनाधिकारियों को समुचित दायित्व प्रदान किये गये। किसी भी दुर्ग का पूरा पूरा अधिकार एक व्यक्ति के हाथों में न सौंपा जाता था। अस्तु किले का उसके एक पदाधिकारी के राष्ट्र द्रोह की दशा में पतन करना भी सरल कार्य न था।

प्रत्येक दुर्ग में समान स्तर के किन्तु संयुक्त दायित्व रखने वाले तीन पदाधिकारी रक्खे जाते थे। हवलदार, सबनीस तथा कारखानीस तीनों का संयुक्त दायित्व रहता था किन्तु हवलदार को सबसे अधिक उत्तरदायी माना जाता था और वही दुर्गस्थ सेना का प्रधान होता था। उसी के पास दुर्ग की चाबियाँ रक्खी जाती थीं। रात्रि के समय दुर्ग के द्वार बन्द करना और प्रातः काल उन्हें खोलना हवलदार का ही कार्य था। सबनीस दुर्ग के आय व्यय का हिसाब किताब भी तैयार किया करता था। कारखानीस को दुर्ग से सम्बन्धित सभी प्रकार की लिखा पढ़ी करने का उत्तरदायी बनाया गया था। चिटनिस मल्हारराव ने एक स्थान में यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि हवलदारों की विश्वस्तता का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त मराठा छत्रपतियों और विशेषकर शिवाजी ने भेष बदलकर रात्रि के समय उनकी बहुधा जाँच कार्यवाही भी की। मौके पर असावधान पाये गये हवलदार कठोर दण्ड के भागी होते थे।

सबनीस को कारखानीस द्वारा प्रसारित की गई सभी आज्ञाओं पर अपनी मोहर लगानी होती थी किन्तु वे उस समय तक कार्यान्वित न की जा सकती थीं जब तक कि हवलदार भी उन पर अपने हस्ताक्षर न कर दे। सैनिकों का रजिस्टर सबनीस तैयार करता था किन्तु उसकी जाँच कारखानीस ही करता था। कारखानीस द्वारा सैनिकों को आवश्यक सामग्रियाँ बाँटने के समय सबनीस का एक अधीनस्थ कर्मचारी भी मौके पर मौजूद रहता था। दुर्ग के आय-व्यय की उच्चाधिकारियों द्वारा जाँच पड़ताल के समय सबनीस के साथ कारखानीस का भी उपस्थित रहना होता था। सबनीस द्वारा लिखे गये सरकारी पत्रों को उस समय तक कोई महत्व न दिया जा सकता था जब तक कि कारखानीस उसे अपने दैनिक खाते में दर्ज न कर ले।

सैनिक किलों म तीन प्रकार के प्रमुख पदाधिकारी नियुक्त करने को प्रथा दक्षिण भारत के शासकों के लिये कोई नवीन बात न थी। मराठा के उत्कर्ष के पहले मुहम्मद आदिलशाह ने स्वयं ऐसी ही व्यवस्था की थी। परंतु शिवाजी उससे भी एक कदम आगे बढ़ गये थे। उन्होंने इन कर्मचारियों की नियुक्ति के विषय में यह स्पष्ट आदेश दे रक्खा था, कि हवलदार के पद पर किसी सम्भ्रांत मराठा परिवार का ही व्यक्ति नियुक्त किया जाये सबनीस बनाया जाने वाला व्यक्ति छत्रपति के निजी कर्मचारियों का जाना पहचाना ब्राह्मण ही हो और कारखानीस के पद पर प्रभु परिवार का ही व्यक्ति रक्खा जाय। तथापि पेशवाओं के समय में सबनीसों के पद पर प्रभुओं की नियुक्ति के भी अनेक उल्लेख मिलते हैं। इन विभिन्न जातियों के कर्मचारियों में आन्तरिक एवं जातीय विरोधाभास[1] का शिवाजी तथा उनके अनुयायी अन्यान्य मराठा शासकों का समुचित लाभ उठाया। ऐसी व्यवस्था करने म शिवाजी का प्रधान लक्ष्य यह था कि इन दुर्गस्थ पदाधिकारियों को स्वयं छत्रपति के विरुद्ध ही एक होकर उठ खड़े होने से प्रतिबाधित रक्खा जाय। इन कर्मचारियों म भ्रष्टाचार के दूसरे कृत्यों को रोकने के लिये शिवाजी ने इनके पद को पैतृक कभी भी न बनने दिया। यही नहीं वे इनका समय-समय पर एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग को स्थानान्तरण भी कर दिया करते थे। वे राजा के प्रसाद पर्यन्त ही उसके दुर्गों के अधिकारी बने रह सकते थे, उन्हें अपदस्थ किया जा सकता था और उनके मरने पर उनके पुत्रों को इन पदों पर किसी प्रकार का उत्तराधिकार दिया जाना अनिवार्य न था। सैनिक पदों पर नियुक्तियां प्राप्त करने के निमित्त प्रत्याशियों को अपने में यथावश्यक योग्यतायें उत्पन्न करनी होती थीं। उपर्युक्त तीनों प्रमुख कर्मचारियों के अतिरिक्त मराठा दुर्गों म एक अन्य विशिष्ट कर्मचारी 'तातसर नौबत' भी रक्खा जाता था। वह दुर्ग रक्षा के निमित्त होता था और उसकी स्थिति किले के सबसे अधिक सुरक्षित स्थान पर होती थी। बड़े बड़े दुर्गों म एक से अधिक तातसर नौबत' भी रक्खे जाते थे।

1 Surendra Nath Sen s— Military System of the Marathas Page 98

_ The Brahman was not well disposed towards the Prabhu the Prabhu had no kindly feeling for the Brahman who had bitterly opposed his claims to Vedic rites and a Maratha could be ordinarily expected to be more loyal to the king of his own caste than to his collegues of superior castes Thus Shivaji utilized the best abilities that the three castes could provide at the same time that he exploited there dislikes and differences to his own advantage'

दुर्गस्थ सेना का रूप—दुर्ग की सेना में एक एक नायक के अधीन नौ-नौ सैनिक रहते थे। समय एवं स्थान का महत्व को दृष्टि में रखकर दुर्गस्थ सेना में सैनिकों की संख्या में आवश्यक परिवर्तन भी करना पड़ा करता थी। ये योद्धा तलवारों भालों तीरकमानों तथा बन्दूकों और गोला-बारूद इत्यादि से सुसज्जित किये रखे जाते थे जहाँ तक अग्नि शस्त्र चलाने वाले सैनिकों के लिये बहुधा दुर्भेद्य स्थानों पर ही स्थिर रहना पड़ता था। मराठा सरदार शत्रुओं के किलों पर चढ़ने के लिये कभी-कभी अपनी घोरपडी (मराठा भाषा में घोरपडे) का भी प्रयोग किया करते थे।

दुर्ग रक्षा के लिये चार दस चौकसी रखनी होती थी। यदि शत्रु सेना दुर्ग की खाइयाँ लांघने का प्रयास करे तो मराठों की रक्षा सेना को उसे तत्काल प्रभाव शून्य करने का यत्न करना पड़ता था। शत्रु आक्रमण को मराठे अपनी तोपों की मार से ही विफल कर देते थे।

शिवाजी की मृत्यु के समय मराठा राज्य की रक्षा करने के लिये २४० दुर्ग विद्यमान थे। उनके द्वारा बनाई गई दुर्ग व्यवस्था के लिये यह आवश्यक था कि नवीन मराठा सम्राट भी अपने पिता की भाँति दुर्गों पर अपना कठोर नियन्त्रण स्थापित रखता। शम्भाजी के समय में इन दुर्गों की ओर कोई ध्यान न दिया जा सका। उनकी मृत्यु के बाद दशा और भी शोचनीय हो गई। राजाराम द्वारा आरम्भ किया गया मुगलों के विरुद्ध युद्ध मराठा दुर्गों के लिये विशेष घातक सिद्ध हुआ। शासन के बड़े-बड़े पदाधिकारी और जागीरदार भी मराठों के दुर्गों के स्वामी बन बैठे। इस समय पुरन्दर के दुर्ग पर पेशवा का प्रभुत्व स्थापित था। [illegible] मराठा साम्राज्य से इनका अधिकार और [illegible] कि १८१८ ई० तक [illegible] १११ दुर्गों पर अधिकार हो गया। [illegible] सतारा और कोल्हापुर के दुर्गों के [illegible] है।

[illegible] दुर्ग व्यवस्था की अवनतिमुखी दशा — [illegible]

सुरक्षित रहते हुए पेशवा की केन्द्रीय व्यवस्था का अतिक्रमण करने का साहस करने लगे। यही नहीं दुर्गस्थ उपयुक्त तीनों प्रधान पदाधिकारी अब अपने-अपने पदों का परम्परागत रूप में उपभोग करने का अधिकार भी पा गये। सामान्य दशाओं में इनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र अथवा अन्यान्य निकट सम्बन्धी ही उनके पदों पर उत्तराधिकार तो पाते ही थे अब ये लोग अपने जीवन काल में ही अपने दायित्व से अनुपस्थित रहने लगे। ये प्राय अपने स्थान पर अपने मनोनीत अभिकर्ता की नियुक्ति करके स्वेच्छापूर्वक यथा स्थान आने-जाने लगे। इन लोगों के वेतन और भत्ते सौंपे गये दायित्वों के आधार पर निर्धारित होते थे और अब हवलदारों, सबनीसों तथा कारखानीसों को सैनिक किलों में ही अपने परिवार एवं स्त्रियों को रखने में छूट मिल जाने के कारण इन्हें अपने पारिवारिक व्यय के लिये भी भत्ता मिलने लगा। सन् १७६३ ६४ ई० में बहुला नामक दुर्ग के तात्सर नौबत तथा हवलदार प्रत्यक को १२५ रु० वार्षिक मिलते थे तथा सबनीस तथा फडनीस को २०० रु० वार्षिक दिये जाते थे। पेशवा के सरकारी संस्मरणों से ज्ञात होता है कि उस समय 'चावंद' नामक दुर्ग का हवलदार ३६० रु० वार्षिक प्राप्त करता था तथा अहमद नगर का हवलदार ३०० रु० वार्षिक। इस आधार पर यह न समझ बैठना चाहिये कि ये लोग बस इतना ही प्राप्त कर पाते होंगे। इन्हें समय-समय पर राज्य की ओर से वस्त्रादि भी दिये जाते थे और कोई कर्मचारी तो नकद वेतन प्राप्त करने की अपेक्षा इनाम के रूप में भूमियाँ भी सरकार से उपलब्ध कर लेते थे। प्रो० सेन महोदय का कथन तो यहाँ तक है कि सन् १७५० ५१ ई० में सिंहगढ के सबनीस को प्रतिवर्ष ६०० रुपये वेतन तथा १०० रुपये के मूल्य के बराबर राजकीय वस्त्रादि दिये जाते थे। उसे अपनी सेवाओं के उपलक्ष में गाँवों की माफी भी मिली थी।

यह कहना न होगा कि इन पदाधिकारियों का राजकीय महत्व पेशवाओं के शासन में अत्यधिक गिर चुका था। पेशवाओं ने सारे दुर्ग सम्बन्धित प्रान्तों के सूबेदारों के ही अधीन कर दिये। उनसे सम्बन्धित कुछ आस-पास के गाँवों की मालगुजारी ही इन दुर्गों के आय व्यय का साधन बन गई। पेशवाओं के शासन में कारखानीस नामक कर्मचारी को इतना कम वेतन दिया जाता था कि वह अपने दायित्व सम्बन्धी कर्तव्य पालन करने की भी परवाह न करता था। पेशवा दफ्तर के आलेख पत्रों से विदित होता है कि इस कर्मचारी के प्राय अनुपस्थित रहने के कारण पेशवा को कभी-कभी उनके दुर्ग की जाँच पड़ताल करने के लिये विशिष्ट निरीक्षक भी भेजने पड़ते थे। दुर्ग के अन्दर निर्माण कार्य करने के निमित्त समीपस्थ गाँवों के कारीगर बुलाये जाया करते थे और यह शिवाजी द्वारा चलाई गई नीति के सर्वथा विपरीत था। शिवाजी अपने दुर्गों के निर्माण कार्य के लिये बाहर से (अर्थात् दूरवर्ती देशों के) कारीगर और बढ़ई आदि बुलाया करते थे ताकि दुर्ग को यथा सम्भव गोपनीय रखा जा सके।

पेशवा काल में इन दुर्गों के अन्दर भारी मात्रा में गोला बारूद और तोपें आदि रखवा जाया करती थी। उनके तोपची बहुधा विदेशी लोग ही होते थे और वे सरकार की ओर से देशी कर्मचारियों की अपेक्षा कहीं अधिक लम्बी लम्बी तनख्वाहों पर ही नियुक्त होते थे। मराठे हथगोलों, रोकेटें (Rockets) तथा छोटी बड़ी बन्दूकों का प्रयोग करने लगे थे परन्तु ढीले-पत्थर अब भी उनके सामान्य प्रयोग में आते थे। बड़ी बड़ी बन्दूकों की सफाई वार्षिक रूप में की जाती थी और छोटी मोटी बन्दूकें हर महीने साफ की जाती थी। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मराठा सेना के उपर्युक्त प्रकार से अराष्ट्रीयकरण का कुपरिणाम उनके दुर्गों की व्यवस्था के लिये भी घातक सिद्ध हुआ। इस प्रकार दुर्ग व्यवस्था के शिथिल होते ही मराठों की सत्ता भी पतन की ओर अग्रसर हो गई।

सारांश—शिवाजी ने महाराष्ट्र को विदेशी आक्रमणों से बचाने के लिये पुराने किलों की मरम्मत कराई और समय समय पर अनेकानेक नवीन दुर्ग भी निर्मित कराये। उन्होंने बीजापुर गोलकुण्डा तथा दक्षिण के मुगल सूबों में भी कई एक किले अधिकृत कर लिये थे। उनके द्वारा की गई दुर्ग व्यवस्था यथेष्ट प्रशस्त थी। दुर्ग में तीन प्रमुख पदाधिकारी रहते थे—हवलदार, सबनीस तथा कारखानीस इनके अतिरिक्त एक 'सातसर नौबत नामक सैनिक अधिकारी भी दुर्ग की रक्षा करने के लिये उसमें रखा जाता था। परन्तु पेशवाओं ने दुर्ग-व्यवस्था की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया। दुर्ग के कर्मचारियों के पद भी शनैः शनैः पितृगत बना दिये गये। फलतः उन्होंने दुर्ग रक्षा के अपने दायित्व पालन में असावधानियाँ करना प्रारम्भ कर दिया। वे स्वार्थी बन गये और दुर्गों में अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये सेनायें रखने लगे।

Q Write what you know about the use and development of artillery in Maharashtra

प्रश्न—महाराष्ट्र में तोपखाने के प्रयोग एवं विकास के विषय में आप जो कुछ भी जानते हों उसका वर्णन कीजिये।

उत्तर—शिवाजी के समय में तोपखाने का एक पृथक विभाग भी सेना का अंग माना जाता था। उनके उत्कर्ष के पहले दक्षिण में मराठों के विदेशी प्रतिद्वन्दियों और विशेषकर पुर्तगालियों ने अपनी तोपों का सफल प्रयोग करने का एक प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर रखा था। कहा जाता है कि उन्हीं के सैनिक आदर्शों का अनुसरण करके शिवाजी ने भी अपनी सेना को तोपखाने से सुसज्जित करने की चेष्टा की। बन्दूकों और तोपों के लिये शिवाजी को सदैव ही यूरोपियन कम्पनियों के व्यापारियों का मुँह ताकना पड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने राज्य में तोपें और बन्दूकें बनाने के लिये कोई फैक्ट्री अथवा कारखाना न स्थापित किया था। उनका जीवन निरन्तर युद्धों के क्रम में ही भरा पड़ा था और इसलिये उन पर यह लांछन

देना सर्वथा अशोभनीय ही होगा कि इस दिशा में उन्होंने कभी भी कोई ठोस पग उठाने की परवाह तक न की।

यूरोप की भारत आयी हुई व्यापारिक कम्पनियाँ तोपों और बारूदों का व्यापार किया करती थी। अतः यह स्वाभाविक था कि अपने पड़ोसी राजाओं की भाँति शिवाजी भी उनसे ये उपयोगी शस्त्रास्त्र प्राप्त करने का यत्न करते। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने राजापुर में एक फ्रांसीसी को बारूद का कारखाना स्थापित करने की अनुमति दी थी। कालान्तर में जब अंग्रेजों ने राजापुर में पुनः अपना कारखाना खोलने की इच्छा प्रकट की तो शिवाजी ने उसे भी अपना शस्त्रास्त्रों की माँग के लिये हितकर समझा। सूरत के अंग्रेज व्यापारियों के एक पत्र दिनांक ३० सितम्बर १६७१ से विदित होता है कि मि० स्टीफेन उस्टिक तथा राम सिने (Mr Ustick and Ram Sinay) को अंग्रेजों ने शिवाजी के पास इसी उद्देश्य से भेजा था कि वे उन्हें मिलकर इस बात से अवगत करायें कि यदि वह हमें प्रोत्साहन देने को तैयार हैं कि हम उनके बन्दरगाह पर जाकर पुनः बसने की व्यवस्था करें, तो वह भी हमसे वे सुविधायें प्राप्त कर सकते हैं। जो कि दूसरी जातियाँ हमसे इस दशा में प्राप्त करती रही हैं कि हम उनके बन्दरगाहों के माध्यम से अपना व्यापार करते हैं।' हम अपने एक पृथक प्रकरण में इस आशय का पहले ही संकेत कर चुके हैं कि अंग्रेजों ने शिवाजी को यथावश्यक गोला बारूद आदि देने से न तो साफ इन्कार ही किया न उनके हाथ यह सामग्री ही कभी बेची। अन्ततः जैसा कि सूरत की फैक्ट्री अभिलेखों से ही प्रकट हो जाता है सन् १६७३ ई० में शिवाजी ने फ्रांसीसियों से २००० मन सीसा (lead) तथा लोहे की बनी हुई ८८ बन्दूकें क्रय की।

यद्यपि शिवाजी विदेशियों के साथ अपने इस प्रकार के आदान प्रदान को हर प्रकार से गोपनीय ही रखते रहे तथापि अंग्रेजों के पास यह बहाना मौजूद था कि वे दिल्ली सरकार को उसके शत्रुओं के हाथ युद्ध सामग्री बेचकर असन्तुष्ट नहीं करना चाहते थे। १६७४ ई० में शिवाजी ने बम्बई के प्रेसीडेन्ट के पास पुनः अपना दूत भेजकर उसके द्वारा उसे दैनिक प्रयोग की वस्तुओं के ५ गट्ठे भेंट करवाये। उन्होंने अंग्रेजों को सूचित किया कि वह राजापुर में अंग्रेजों को पूर्ववत् सुविधायें भी प्रदान कर देंगे और साथ ही साथ यह माँग भी कि वे उनके हाथ लोहे की बनी हुई ६० बड़ी-बड़ी बन्दूकें तथा काँसे की बनी हुई दो अन्य विशालकाय बन्दूकें बेचने की व्यवस्था करें। कहा जाता है कि उस समय अंग्रेजों के पास लोहे की बड़ी-बड़ी बन्दूकें तो थी नहीं। हाँ! उनकी काँसे की बनी हुई दोनों बन्दूकें अवश्य बेचने के लिये रक्खी हुई थीं। परन्तु मुगलों के भय के कारण वे उन बन्दूकों को भी शिवाजी के हाथों विक्रय करने को तैयार न हुए। अन्ततः शिवाजी ने अपने फ्रांसीसी तथा

पुर्तगाली अभिकर्ताओं के माध्यम से व बन्दूकें, जो कि उन्होंने १६७१ ई० में प्राप्त की थीं, उपलब्ध करने में सफलता पाई।

प्रो० सेन महोदय ने व्यक्त किया है कि यद्यपि भारतीय सागर तोपों तथा बारूद के गोला से गत १०० वर्षों से भी पहले से अवगत रहे थे। तथापि उन्होंने उनके सुधार तथा नवीन उत्पादन की दिशा में कुछ भी न किया। भारत की बनी हुई देशी बन्दूकें अत्यन्त ही घटिया किस्म की होती थीं। यूरोपियन कारीगरों द्वारा बनाई तोपों के अतिरिक्त शिवाजी देशी जम्बूरक अथवा शुतरनाल (Zamburak Or Shuternal) भी अपनी सेना के प्रयोग के लिये रखते थे। पत्थरों तथा लोहे के गोलों की वर्षा कर सकती थी। तथापि मराठों के पास पर्याप्त संख्या में बढ़िया तोपों और बन्दूकों का सदैव से ही अभाव बना रहा था। पन्हालगढ़ को शस्त्रों से लैस करने के लिये इसी कारणवश शिवाजी को अपने फोरन्च मित्रों से बन्दूकें मंगवानी पड़ी थीं और उनके अतिरिक्त उन्होंने उसी वर्ष कुछ पुर्तगालियों से ४० अन्य बन्दूकें भी खरीदीं।

अंग्रेजों और पुर्तगालियों से उपयुक्त महत्वपूर्ण युद्ध सामग्री प्राप्त करने में शम्भाजी द्वि० अपने पिता की अपेक्षा कहीं अधिक भाग्यशाली प्रतीत होता है। १० फरवरी १६८१-८२ ई० को सूरत के अंग्रेजों ने बम्बई के अपने आधीनस्थ आंग्ल कर्मचारियों को जो पत्र लिखा उससे विदित होता है कि उन्होंने उसमें यह निर्देश दिया था कि "यदि शम्भाजी राजा तुमसे कोई भी वस्तुएं मांगे तो हम तुम्हें उन्हें वे वस्तुयें प्रदान करने से न रोकेंगे परन्तु इस सम्बन्ध में उन्हें स्पष्ट रूप से इस बात से सचेष्ट किया गया था कि वे अपने इस व्यापार में हर प्रकार की सावधानी बर्तें।" इसी प्रकार पुर्तगाली अफसर भी शम्भाजी की मांगों को पूरा करने को तैयार थे। उन्होंने अपने २८ जुलाई १६८२ ई० के पत्र द्वारा शम्भाजी को सूचित किया कि मराठा राजा भारत के पुर्तगाली प्रदेशों से अपनी यथावश्यक सैनिक सामग्री का क्रय कर सकते हैं। परन्तु कालान्तर में शम्भाजी के पुर्तगालियों के साथ सम्बन्ध इतने कटु बन गये कि मराठों की आशा पर पानी फिर गया।

१८ वीं शती के दूसरे दशक में भी मराठे इन युद्ध सामग्रियों के लिये यूरोपियनों पर ही अवलम्बित बने रहे। राजाराम के अव्यवस्थित शासन में तो उन्हें अपनी बन्दूकों आदि का स्वयं निर्माण करने का और भी अवसर न मिल सका। तथापि इतना अवश्य था कि बन्दूकों में भरने वाली बारूद का आंशिक उत्पादन (इस समय तक) भारत में कभी से किया जा रहा था।

अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में शाहूजी ने बम्बई के तत्कालीन गवर्नर सर निकोलस वेट (Sir Nicholas Wait) के पास बन्दूकों तोपों और उनके बारूद के लिये अपना प्रार्थना पत्र भेजा। सन् १७१३ ई० में कान्होजी आंग्रे ने

ऐस्लेबी नामक गवर्नरों से भी इसी आशय की प्रार्थना की थी। तथापि उपर्युक्त दोनों प्रार्थनायें अस्वीकृत कर दी गई। कान्होजी इन विदेशियों के अपने द्वारा पकड़े गये जलपोतों को तो उन्हें वापस लौटा देने को तत्पर था परन्तु उनकी बन्दूकें वह स्वयं अपने प्रयोग के लिए अवश्य रख लेना चाहता था। सम्भवतः इसी कारण अंग्रेजों ने भी उसकी उपर्युक्त ढंग की प्रार्थनाओं पर कोई ध्यान न दिया।

पेशवाओं के शासनकाल में तोपों तथा बारूद आदि के देश में ही निर्माण की ओर कुछ प्रयास अवश्य किये गये। इस युद्ध सामग्री के उत्पादन के लिये बाजीराव प्रथम ने अपना एक निजी कारखाना स्थापित किया था। और उसका सन् १७३९ ई० में आंग्ल राजदूत कप्टेन विलियम गोर्डन ने स्वयं निरीक्षण भी किया। इस सम्बन्ध में उसने अपने अफसरों को ३० जून १७३९ के दिन भेजे गये निजी पत्र में जो सूचनाएँ दी इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मराठे लोहे के गोले ढालने की कला भी इस समय तक भली भांति जान गये थे। तथापि हम यह न समझना चाहिये कि मराठे विदेशी शस्त्रास्त्रों के प्रयोग को बन्द करने का कोई गम्भीर प्रयास कर रहे होंगे। इसके विपरीत वे इस प्रकार की समस्त सामग्री के लिये सदैव ही विदेशियों का ही मुँह ताकते रहे। इस सम्बन्ध में उन्होंने उन विदेशियों के साथ किये गये अपने समझौतों में स्पष्ट व्यवस्था रक्खी था।

पेशवा बाजीराव तथा पुर्तगालियों के मध्य ६ जनवरी १७३२ ई० के दिन जो समझौता हुआ उसके आधार पर उसे पुर्तगाली बस्तियों में गोला बारूद तथा तोपें खरीदने की अनुमति मिल गई। कालान्तर में जनवरी फरवरी १७३१-३२ ई० में कल्याण के मराठा सूबेदार कृष्णराव महादेव ने भी पुर्तगालियों के उत्तरी प्रान्त (Province of the North) में स्थित उनके प्रधान सेनानायक (Martive S lveirade Menezes) से एक समझौता किया। जिसके १० वें अनुच्छेद के आधार पर मराठों को पुर्तगालियों से गोला बारूद आदि खरीदने की दूसरी अनुमति प्रदान की गई।

मराठों की अपनी बन्दूकों के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए टोन

1 Bomby Public Consultations Range CCCXLI No 4 Consultation 14 th Feb 1712—13

"If I have occasion for powder and shott You shall supply on my paying the some I desire also make place to make powder for which I shall send salt petro and limestone "

2 See— Forest Selections from State Papers, Maratha Series Vol. I Page 79

'I vistited the foundry, where I saw many cochorns and bomb shells said to have been cast there and a form of a thirteen inch mortar I was told they make such with great ease and have learnt the art of running iron for making shot.'

(Tone) महोदय ने यह स्पष्ट उल्लेख[1] किया है कि वे श्रेष्ठ ढंग से ढाली गई अवश्य होती थी किन्तु कठिनाई यह थी कि उन्हे एक स्थान से दूसरे स्थानो को ले जाने के लिये प्रयोग की जाने वाली गाड़ियाँ अत्यन्त ही निकृष्ट कोटि की होती थीं और वे कुछ ही दिनो की यात्रा के बाद टूट फूट कर टुकडे-टुकडे हो जाया करती थी। उनकी तोपो की नालें तो और भी असावधानी पूवक ढाली जाती थीं। उनके आकार प्रकार का कोई ध्यान ही न दिया जाता था। इसी प्रकार उनमे प्रयोग किये जाने वाले गोले भी हथौड़ा से पीट-पीटकर निर्मित कर लिये जाते थे। उन्हें एक दो बार तोपो मे रखकर चलाने के पश्चात् उनकी नालें सवथा बेकाम हो जाती थीं। वस्तुत तोपो मे प्रयोग किये जाने वाले गोले भी ढले हुए एव सुडौल होने चाहिये थ, परन्तु मराठो मे इस ओर ध्यान देने की कोई प्रवृत्ति ही न थी और वे बहुधा किसी कठिनाई के समय मे सरलतम उपाय ही अपनाना चाहते थे।

स्वय शिवाजी के पास भी उनके दुर्गों तथा नाविक बेडे की रक्षा के लिये केवल थोड़ी सी ही बन्दूकें और तोपें थी किन्तु खुले स्थल युद्धों में ले जाने वाली तोपों का उनके पास सवथा अभाव था। तथापि उन्होंने जजीरा तथा फोंडा के दुर्गों को जीतने में अपनी तोपो का प्रयोग किया था। इस अभाव के कारण मराठो को अनेकानेक कठिनाइयो का दीघकाल पयन्त सामना करना पड़ा। 'दिल कुशा' के लेखक ने स्पष्ट किया है कि सन् १६६२ ई० दलपतराय बुन्देला ने मराठों को अपने से कहीं विशाल सेना को परास्त करने म जो सफलता पाई थी वह उसके पास एक छोटे से तोपखाने के ही कारण थी। बाजीराव प्रथम ने 'तल भूपाल' के स्थान पर जब निजाम हैदराबाद की सेना पर प्रत्यक्ष कूटनीतिक विजय प्राप्त की, तो उसकी सेना मे तोपखाने के अभाव का ही यह दुष्परिणाम था कि वह अपने उस पराजित शत्रु की शक्ति का विनाश करने मे असफल सिद्ध हुआ। इसके विपरीत उसके इस मुगल शत्रु ने अपने तोपखाने क बल पर अपनी तथा अपनी शेष सेना की रक्षा कर ली।

बालाजी बाजीराव के समय मे भली भाँति प्रशिक्षित पदाति सेना का महत्व समझा जाने लगा था क्योंकि इसकी तोपखाने के सफल सचालन के लिये विशेष आवश्यकता थी। इस पेशवा की सेवा में गर्दी सनिक दल के सम्मिलित हो जाने के फलस्वरूप मराठा सेना मे तोपखाने के अभाव को किसी सीमा तक पूरा करने

---

1 Tone—Illustrations of Some Institutions of the Maratha People p ▪ —54-57
The canons are never made of any precise calibre but are cast indifferently by all diameters and the ball afterwards adapted to the bone They never use cast shot, but there of wrought iron hammered to any dimensions the many angles, consequently on the surface of the shot in a very small course of service destroy the smoothness of the bore

में सुविधा मिली। अठारहवीं शती के मध्यकाल तक मराठे तोपखाने का प्रयोग करने की रीति से अवगत हो गये थे किन्तु जैसा कि ग्रोज (Grose) नामक पाश्चात्य यात्री का मत है मराठा तोपखाने में काम करने वाले लोग फिर अधिकांशतः पुर्तगाली और भारतीय ईसाई ही होते थे। सेना के इन अराष्ट्रीय तत्वों ने मराठा तोपखाने की प्रगति की ओर कोई ध्यान न दिया। सन् १७५३ ई० में श्रीपति बापूजी के नाम भेजे गये एक सरकारी प्रपत्र से ज्ञात होता है कि एक साधारण पुर्तगाली तोपची का मासिक वेतन १२½ रु० से लेकर ३० रु० तक होता था।

मराठों के सन् १७५४-५५ ई० में एक सरकारी अभिलेख पत्र से ज्ञात होता है कि उनके तोपखाना विभाग के प्रधान पदाधिकारियों का नाम माधवराव निम्बेव था। वही अपने आधीनस्थ दीवान, मजूमदार, फडनीस तथा सबनीस की सहायता से अपने उस विभाग की सार्वजनिक व्यवस्था भी किया करता था। उस विभाग में सम्भवतः आठ पदाधिकारी रहते होंगे परन्तु उपयुक्त सरकारी अभिलेख से उनके चार अधिकारियों का संकेत मिलता है। सन् १७६५-६६ ई० के एक दूसरे सरकारी प्रपत्र में मराठा तोपखाने के एक अन्य पदाधिकारी 'प्रोटनीस' के विषय में भी उल्लेख मिलता है। उसे १५० रु० वार्षिक वेतन दिया जाता था।

पानीपत के युद्ध में मराठों तोपों के कार्य का उल्लेख करते हुए काशीराज पण्डित ने स्वयं लिखा है कि वे काफी विशाल काय एवं भारी भरकम होने के कारण ठीक ठीक निशाने लगाने में सर्वथा असफल रहीं। इन तोपों द्वारा फेंके गये गोले अब्दाली शाह के सैनिकों के सिरों के ऊपर से निकलते हुए सारी सेना को लाँघकर उससे एक मील दूर पर भी जाकर गिरते थे। इसके विपरीत अब्दाली की सेना में अपेक्षाकृत छोटी छोटी बन्दूकें मराठा पर गोला-वर्षा करने में विशेष सफल सिद्ध हुईं। पानीपत के युद्ध में पराजय होने के बाद भी मराठों ने अपने तोपखाने और बन्दूकों में सुधार करने की ओर कोई ध्यान न दिया। इसका परिणाम यह निकला कि शीघ्र ही उनके आंग्ल प्रतिद्वन्दियों ने सैनिक क्षेत्र में उन्हें घुटने टेक देने को विवश करने में सफलता पाई। इस प्रकार सेना के अराष्ट्रीयकरण एवं तोपखाने की इस पतनोन्मुखी दशा ने मराठों का अपनी प्रभुसत्ता से भी वंचित करा दिया।

सारांश—शिवाजी को दक्षिण भारत में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने हेतु कई एक प्रबलतम शक्तियों जैसे कि बीजापुर, गोलकुण्डा, मुगल, पुर्तगाली तथा अंग्रेजों से मुठभेड़ लेनी पड़ी। इन्हें परास्त करने के लिये आवश्यक था कि वह अपने पड़ोसी राज्यों की भाँति स्वयं भी अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों अथवा फ्रांसीसियों से पाश्चात्य ढंग के नव सुधरे हुए शस्त्रास्त्रों जैसे कि तोपों, बन्दूकों, हथगोलों, राकटों आदि को खरीदने की चेष्टा करते। अंग्रेज व्यापारी मुगल सम्राट के भय के कारण उसके विरुद्ध शिवाजी को ये युद्ध सामग्रियाँ देने में बराबर टाल मटोल

करते थे। अतः शिवाजी के पश्चात् किसी को न चाहते हुए भी मराठे सैनिक लोगों को आज्ञा दे दी। अब भी वे प्रायः युद्ध का कार्य करने में मराठी सरदार सेना अपनी पुरानी एवं अपने ही अधिकारियों को लेकर उनके अनुसार वे युद्ध का तरीके की सेना करते थे। इसके बाद में भारत के अन्दर कोई भी सेना बाद पाया न होता था तथा कि जिसमें प्रकार नया होते बन्दूकें आदि काम में नहीं। इसके बाद बाजीराव ने अंग्रेजों से पुनः बन्दूकें तरीके में अपनाई गई। परन्तु योरोपों के विरोध का सबसे लोग एवं सम्मेलन सबसे द्वारा ही ... था। इसके पूर्व शिवाजी ने स्वदेश भाषा के लोगों आदि तथा न तुर्क आदि और इसके भी एक कारखाना स्थापन करने के लिये स्वीकार किया।

Q. Shivaji had organised a national army in Raja Ram's times the army was feudalised and it was left to Balaji Baji Rao to denationalise it." (Discuss)

प्रश्न— शिवाजी ने मराठा सेना का राष्ट्रीयकरण किया। राजाराम के समय में इसका सामन्तीकरण हो गया और बालाजी बाजीराव ने तो इसका अराष्ट्रीयकरण ही कर डाला।" इसकी समीक्षा कीजिये।

उत्तर—शिवाजी द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर सेना का संगठन—शिवाजी की सैनिक व्यवस्था का उल्लेख करते समय यह भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि उनके सैनिक नियम बड़े ही कठोर थे। उनके सैनिक[1] अधिकतर राजकोष से नकद धन पाते थे और विजित देशों को विजय करते समय जो कुछ भी वे लूट की सामग्री एकत्र करते थे उसे उन्हें राजकोष में जमा कर देना पड़ता था। वे अपने साथ दास दासियों तथा स्त्रियों को भी युद्ध स्थल में ले जाने अथवा साथ रखने की आज्ञा न पा सकते थे। इन सभी कठोर नियमों को सतर्कतापूर्वक पालन किये जाने के फलस्वरूप मराठा सेना में अनुशासन और एकता का वातावरण उत्पन्न हो गया फिर तो उस प्रथम राजवंश व असाधारण नेतृत्व के बल पर मराठा शक्ति भारत की एक अजेय सत्ता बन गई।

राजस्व किसी भी राज्य की प्रमुख आधार शक्ति होता था और इसे एकत्र करने के लिये शिवाजी ने सर्वत्र ही पृथक् माल विभाग कर्मचारी नियुक्त किये। उन्होंने यदि अपनी प्रांतीय आय ... की ... का निश्चित किया तो उसके लिये सर्वथा यह कठोर नियम रहा कि पहले प्रान्त का सारा भूमि कर वहीं का धन

---

1 'Shivaji's men and officers were paid either in cash from the central treasury or by Varat or assignments on the provincial revenue. In the latter case payment was made by the district officers by the assignee was not on any account to interfere with the revenue.

See Surendranath Sen's—' Military System of the Marathas" Page 18

धिकारी अपने सीधे नियन्त्रण में एकत्र कराने की व्यवस्था करें और तत्पश्चात् ही वह उस आय से राज्य के सैनिकों को नकद वेतन दे। यदि किसी विशेष स्थिति में सैनिकों में से कोई भी व्यक्ति सरकारी भूमि अथवा जागीर राजा से प्राप्त भी कर लेता तो उसका सार्वजनिक प्रबन्ध करने का ही उसे अधिकार था, न कि कृषकों से भूमि कर वसूल करते थे। वे जोगार की समस्त आय में से जागीरदार को वेतन पृथक निकालकर शेष धन राशि राजकोष में जमा कर दिया करते थे।

शिवाजी ने भूमि व्यवस्था करते समय अपने पुराने देशमुखों तथा देशपाण्डों पर कठोर नियन्त्रण स्थापित कर दिया था। उनके सारे विशेषाधिकार भी उन्होंने धीरे धीरे छीन लिये। यही नहीं अब भूमि की जोताई करके उस पर कृषि करने वाले व्यक्तियों तथा राज्य का सीधा सम्बन्ध स्थापित होजाने के फलस्वरूप नवीन अथवा नवविजित भूमियों की व्यवस्था आदि करने के लिये देशमुख नियुक्त करने की प्रथा भी शिवाजी ने समाप्त कर दी थी। इस व्यवस्था का भी लक्ष्य था सेना के अन्तर्गत सभी सम्भाव्य दोषों का अन्त करना और सैनिकों को समय पर उनका समुचित पारिश्रमिक नकद धन राशि के रूप में चुकाने का ठोस एवं स्थाई प्रबन्ध करना। शिवाजी अपने सैनिकों के सराहनीय एवं महान् साहसपूर्ण कार्यों के लिये उन्हें जागीरें तथा भूमियाँ न प्रदान करके उन्हें लूट में प्राप्त सामग्री में से बहुमूल्य भेंट उपहार तथा पद-वृद्धि प्रदान करके ही सन्तुष्ट करते। युद्ध में आहत सैनिकों की सरकार की ओर से देख रेख एवं सेवा-शुश्रूषा की जाती थी और यदि रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त कर लेने वाले अपने पक्ष के सैनिकों के कोई आश्रित आदि होते तो शिवाजी उन्हें राज्य वृत्ति देकर अपना स्वामिभक्त बनाये रहते थे। उनमें से योग्य व्यक्तियों को राज्य सेवा में सम्मिलित कर लिया जाता था। वस्तुतः सेना में नौकरी पाने के लिये किसी भी व्यक्ति को यह नितान्त ही अनिवार्य था कि वह अपने चाल-चलन के विषय में किसी पुराने सैनिक अथवा सैनिक नेता से मौखिक या लिखित जमानत प्रस्तुत कराये। शिवाजी स्वयं अपनी सेना का नियमित रूप में निरीक्षण किया करते थे तथा उनमें असावधानी अथवा स्वामिभक्ति हीनता के सामान्य चिह्न पाते ही उन्हें कठोर दण्ड देते और उन्हें वे पद मुक्त कर दिया करते थे।

राजाराम के शासन में सेना का सामन्तीकरण—राजाराम ने अपने भाई की अकाल मृत्यु के फलस्वरूप संयोगवश ही छत्रपति का महान उच्च पद प्राप्त कर लिया था, यद्यपि उसके उपयुक्त उसमें अपनी कोई भी निजी योग्यता न थी। हम पहले ही संकेत कर आये हैं कि राजाराम ने अपने पद पर बने रहने के लोभ से राज्य का सारा कार्य भार दो ब्राह्मण पदाधिकारियों—रामचन्द्र पन्त तथा प्रहलाद नीराजी के ही कन्धों पर डाल रखा था। परन्तु वे शिवाजी की भाँति देशवासियों की स्वामिभक्ति पाने में सफल न हो सके, तथापि उन्होंने उस समय पर मुगलों के प्रबलतम आक्र

मर्णों से देश रक्षा के कार्य में अनिवार्यत हाथ बटाना था। इस काम में उन्होंने सबन्ध अपने कर्त्तव्य पालन तथा योग्यता का परिचय दिया। और वे अपनी गुप्त योजनाओं द्वारा मुगल क्षेत्रों में लूट पाट करने हेतु मराठा द्वारा निरन्तर सशस्त्र अभियान कराते रहे। यह कार्य वे तभी सम्पन्न कर सकने थे जबकि वे महात्वाकांक्षी मराठा सरदारों को नई-नई जागीरें देकर उन्हें सन्तुष्ट कर पाते।

कालान्तर में सान्ताजी घोरपड़े की हत्या का परिणाम राजाराम की शक्ति के लिये और भी घातक सिद्ध हुआ। यद्यपि धनाजी जाधव के नेतृत्व से मराठा सेना में अनुशासन सम्बन्धी दोष उस समय में प्रबल न होने पाये, तथापि अब मराठों में दाव लाभ करने की ऐसी भयंकर प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी कि वे राष्ट्रीय हित को ताक में रखकर अपनी स्वार्थ पूर्ति के ही नये-नये साधन ढूंढने लगे। अब मराठा सरदारों ने षडयन्त्र करने तथा देश द्रोह के घृणित कार्यों में सम्मिलित होने में भी कोई संकोच न रक्खा। इस अराष्ट्रीय दोष का प्रभाव व्यापक एवं दूरगामी सिद्ध हुआ और बालाजी विश्वनाथ को महाराष्ट्र को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में जिन अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनकी मूल में हम पहले से उत्पन्न किये गये इसी सामन्तवाद को ही प्रायः पाते हैं। वस्तुतः राजाराम का स्वामिभक्त होने के कारण धनाजी जाधव जिस कुकृत्य को करने से बचा रहा, उसी को, उसकी मृत्यु के बाद स्वयं उसके पुत्र चन्द्रसेन जाधव ने कर दिखाया। यदि चन्द्रसेन जाधव के पास अपनी पृथक जागीर के रूप में यथेष्ट सैनिक तथा अर्थ बल विद्यमान न होता तो बहुत कम ही यही सम्भव था कि वह कभी भी तत्कालीन मराठा छत्रपति के शत्रुओं से न जा मिला होता। बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका पुत्र बाजीराव दूसरे पेशवा तथा मराठा राज्य के द्वितीय संस्थापक के रूप में स्वतः मराठा सेना का सफलतापूर्वक संचालन करता रहा। उसमें सेना नायकत्व के महान गुण थे और इसी कारण सेना को उसने सदैव ही अपने कठोर अनुशासन में रक्खा। मराठों को बहुधा मूल मराठा राज्य से दूर मुगल क्षेत्रों अथवा बीजापुरी अथवा निजामशाही प्रदेशों में ही जागीरें दी जाती थीं जिसके फलस्वरूप उन्हें अपनी मातृ भूमि में ही उत्पात मचाने से किसी सीमा तक दूर रक्खा जा सकता था। और इसी नीति को बाजीराव ने व्यवहृत करने का अथक प्रयास किया। इसी कारण सेना में राजाराम की कापुरुषता के कारण पहले से उत्पन्न सामन्तवाद के भीषण दुष्परिणामों को बहुत कुछ रोके रक्खा जा सका। इसके अतिरिक्त मराठों की सैनिक शक्ति का संचालन भार बाजीराव ने अपने सहोदर चिमनाजी अप्पा को दे रक्खा था। वह भी अपने ज्येष्ठ भ्राता की भाँति महाराष्ट्र में एक महानतम सफल तथा वीर सेना नायक के रूप में पूजित होता रहा और उसने स्थानीय जागीरदारों को सदैव ही अपने कठोर नियन्त्रण में रक्खा।

बालाजी बाजीराव के समय में मराठा शक्ति का अराष्ट्रीकरण—मराठा

शक्ति के विघटन का मूल कारण सामन्तवाद की प्रथा थी। उसको समूल नष्ट करने के पिछले पेशवा ने कोई ठोस पग तो न उठाये किन्तु उसके भयकर कुपरिणामों को रोक रहने में उसे संयोगवश अवश्य सफलता मिलती रही। बाजीराव के पूर्व समय से प्रचलित सरंजामी व्यवस्था में भी अब भयकर दोष आने लगे थे। सार्वजनिक शासन तथा सैनिक सगठन दोनों कार्य एक ही 'सरंजामदार' नामक पदाधिकारी को करने पड़ते थे।[1] दशा यह थी कि ये सरदार राज्य के स्वार्थों पर कोई ध्यान न देते थे और न ही अपने लिये पेशवा द्वारा नियत किये गए वेतन क्रम से अपने आधीनस्थ सैनिकों को पारिश्रमिक देते थे। निश्चित की गई संख्या की अपेक्षा वे कहीं अधिक कम सैनिक भर्ती करते और उन्हें भी समुचित साज सज्जा प्रदान करने की वे कोई परवाह न करते थे। सामन्तवाद का जोर बढ़ रहा था और पेशवा की ओर से इन सरंजामदारों को आधीनस्थ सेना का निरीक्षण तथा उनके आय व्यय की जांच कार्यवाहियों में अनियमितता एवं असावधानी का परिणाम यह हुआ कि मराठा सेना में अनुशासनहीनता, समुचित साज-सज्जा का अभाव तथा व्यापक असन्तोष के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। सिन्धिया तथा होल्कर दोनों ने अपनी अपनी आवश्यकता पूर्ति के हेतु अपनी जागीरों की भावी आय का धनिकों अथवा अन्य महत्वाकांक्षी व्यक्तियों के पास गिरवी रखना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु इससे भी पूरा न पड़ा। धीरे धीरे उनकी आर्थिक स्थिति गिरती गई और एक दिन यह आया कि ये मराठा सरदार अपने आधीनस्थ सैनिकों को नियमित वेतन देना तो दूर रहा उनकी भोजन वस्त्र की आवश्यकतायें ही पूर्ण कर पाने में अपने।को नितान्त असमर्थ पाने लगे। सिंधिया ने अपने आय व्यय के कागजात पेशवा दफ्तर में निरीक्षण के लिए एक बार सात। वर्ष के दीर्घकाल के बाद प्रस्तुत किये और उन्हें देखने से यही पता चला कि उस सरंजामदार ने सरकारी आय-व्यय का लेखा जोखा रखने में असावधानी बर्ती थी। (पाने— पत्रे या यादि वगैर')

पेशवा बालाजीराव ने सिंधिया होल्कर तथा दामाजी गायकवाड को तो मालवा गुजरात तथा बुन्देलखण्ड में स्वतन्त्र ढंग से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के निमित्त उन्हें वे दत्र प्रदान किये परन्तु रघुजी भोंसले को भी उसने नागपुर के प्रान्त में सत्तारूढ रखा। कालान्तर में उसने बंगाल तथा उड़ीसा में सैनिक अभियान करके वहाँ की सरदेशमुखी प्राप्त की। इस प्रकार पिलाजी जाधव, रामराजा

1 See Surendra Nath Sen's Military System of the Marathas Page 61
The burden of the civil administration and the military defence of the major portion of the empire was thrown on these Saranjam holders Their interest thus became or was expected to be strictly identified with the interests of the State'

के बहनोई तथा बाबूजी नायक को भी विभिन्न प्रान्तों में जागीरें देकर उन्हें अपनी आधीनता में पृथक पृथक सेनायें रखने के अधिकार प्रदान किये। इस व्यवस्था के परिणाम घातक सिद्ध हुए। होल्कर ने पानीपत के युद्धकाल के मध्य ही अपनी जागीर में जनता से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने में सारा समय नष्ट कर दिया और वह जयप्पा सिंधिया तथा अन्य मराठा सरदारों की सैनिक सहायता करने हेतु समय पर न पहुँचा। जयपुर के उत्तराधिकार संघर्ष के समय से इन दोनों सरदारों में ऐसी भयंकर फूट उत्पन्न हो गई कि वे विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध भी परस्पर मिलकर सम्मिलित प्रयास न कर सके। इस प्रकार पानीपत के युद्ध के समय स्वयं मराठों में ही राष्ट्र विरोधी अनेकानेक दुर्गुणों के चिन्ह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगे थे।

सारांश—शिवाजी ने अपनी सेना को राष्ट्रीय स्तर पर संगठित करके स्वराज्य की सुन्दर व्यवस्था स्थापित की। उन्होंने सेना को अनुशासित रखने के लिए अपने योद्धाओं को नकद वेतन देने की प्रथा आरम्भ की। यही नहीं वह सेना का स्वयं एक कूटनीतिज्ञ तथा महत्वाकांक्षी विजेता के रूप में नियमित ढंग से निरीक्षण किया करते थे।

कालान्तर में राजाराम के पदासीन होने पर महाराष्ट्र की दशा में महान् चिन्ताजनक अवस्था उत्पन्न हो गई। उसने अपना सम्पूर्ण दायित्व दो ब्राह्मण पदाधिकारियों को देकर शासन कार्यों की उपेक्षा करनी शुरू कर दी। इन कर्मचारियों ने लोगों को नई नई जागीर देकर सेना में भर्ती करने की दोषपूर्ण प्रथा पुनः आरम्भ करके सैनिकों में नैतिक पतन तथा स्वार्थ परता के घोर कुलक्षण ही जाग्रत किये। वे राष्ट्रीय हित को भूल कर निजी स्वार्थ को ही अधिकाधिक महत्व देने लगे। बालाजीराव स्वयं कोई सेनानायक न होने के कारण इन दोषों के कुप्रभाव को रोकने में सफल न हो सका। अन्तत उसे भी दूसरों का सहारा लेना पड़ा। इसी कारण सेना का विघटन होने लगा। उसके समय में सरंजामी व्यवस्था के कारण शनैः शनैः मराठों में राष्ट्रीयता का ह्रास हो गया और वे अपनी (आधीनस्थ) सेनाओं में अनुशासन, एकता तथा स्वामिभक्ति बनाये रखने में सर्वथा असफल सिद्ध हुए।

अध्याय 6 ⸾ मराठों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा

Q Write a short essay on the social and economic condition of Maharashtra during the first half of the eighteenth century
(R U 1960)

प्रश्न—१८ वीं शती के पूर्वार्ध में महाराष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक दशा पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये। (रा० वि० वि० १९६०)

उत्तर—१८ वीं शती के पूर्वार्ध में महाराष्ट्र की शासन सत्ता महाराजा शाहू के हाथ में रही। उसने उदार शासन में देशवासियों को स्वराज्य की यथेष्ट सुविधायें प्राप्त थीं—इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इस युग की सामाजिक दशा का हमें तत्कालीन संस्मरणों से समुचित ज्ञान प्राप्त होता है। इस युग में बालाजी विश्वनाथ तथा उनके दो अन्य उत्तराधिकारियों ने क्रमशः शासन किया और उनके प्रयासों से देश के आन्तरिक क्षेत्र में शान्ति एवं समृद्धि की तथा बाह्य क्षेत्र में मराठों के सैनिक गौरव की विशेष अभिवृद्धि हुई। ग्रांट डफ तथा विन्सेंट स्मिथ जैसे अंग्रेज विद्वानों के, जिनका समर्थन सरयदुनाथ सरकार भी करते हैं, मतानुसार मराठों का उदय प्राकृतिक ही था। इसका तात्पर्य यह है कि मराठा राज्य (Krieg-steat) होने के नाते मुसलमानी शक्ति के प्रभाव के परिणामस्वरूप उनके युद्धों में मराठा सैनिकों द्वारा की गई लूट-मार का परिणाम था। इस मत के विपरीत रानाडे आदि मराठा लेखकों का विचार यह है कि १८ वी सदी के पूर्वार्ध में मराठा राज्य का निर्माण उच्च राष्ट्रीय भावनाओं को लेकर ही किया गया था। तथापि इन दोनों प्रकार के मतों से हम समान रूप से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इस युग तक मराठा जाति ने अपने राष्ट्रीय राज्य का गठन कर लिया था और उसका सामान्य जन जीवन प्रभूत एवं सुखी था।

मराठों की सामाजिक एवं सामान्य दशा—मराठा समाज की जातीय विशेषता यह थी कि ये लोग परिवर्तन के अत्यधिक अभ्यस्त होने के कारण मूलतः प्रगतिशील थे, यद्यपि ऐसा विश्वास प्रायः बहुत कम किया जाता है और इस कथन को उनके शासन के विषय में तो सर्वसम्मति से सत्य माना जा सकता है। उनमें इस समय अनेकानेक अंध विश्वासों का प्रचलन था, जिनका आभास महाराष्ट्र में आज

फल भी दृष्टिगत होता है। इसी कारण वहाँ पर न्याय व्यवस्था कठिन परीक्षा द्वारा होती थी। दैवी विपत्तियों—भूचाल, महामारी तथा बिजली गिरने—की दशा में शांति पाठ तथा अनुष्ठान किये जाते थे जिनमें सकडों ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। यही नहीं सरकार की ओर से भी, इन्द्रजाल जादू तथा मंत्र तन्त्रादिक उपाय किये जाते थे। समाज, में कुछ वर्ग जाति पाति के भेदभाव अधिकाधिक रूप में मानते थे और रूढ़िवादी विचारों और परम्पराओं का उल्लंघन करने वालों के प्रति वे अत्यन्त असहिष्णुता का व्यवहार किया करते थे। सरकार की ओर से प्रजाजनों के सामाजिक जीवन में भी पर्याप्त हस्तक्षेप किया जाता था यद्यपि अधिकांश लोग इस सन्तापपूर्वक सहन करने को तैयार न थे। प्रगतिशील सरकार की भाँति पेशवा सरकार देशवासियों का सभी क्षेत्रों में सर्वांगीण विकास करने का लक्ष्यपूर्ति से अनेक विधि उपाय करती रही किन्तु समाज के विघटनकारी तत्वों का दमन करने में वह अत्यन्त असफल ही सिद्ध हुई।

मराठों की परम्परागत व्यावहारिक प्रवृत्ति के अनेक प्रमाण उनके आधुनिक भारतीय इतिहास में भी उपलब्ध हो सकते हैं। इस युग में मराठों का जो राजनीतिक उत्थान हुआ उसकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि हम उनके अतीत कालीन धार्मिक आन्दोलनों में मिलती है। कतिपय विद्वानों के मतानुसार इन धार्मिक आन्दोलनों की प्रमुख विशेषता थी—मराठों की धार्मिक रूढ़िवाद के विरुद्ध विद्रोहात्मक भावना। इस परिवर्तन ने जातीय रूढ़ियों को भी तोड मरोड डाला और प्रारम्भ में तो मराठा जनजीवन प्रगतिवादी विचारधाराओं से अत्यधिक प्रभावित था। संत ज्ञानेश्वर तथा एकनाथ के प्रयास इस दृष्टि से विशेष प्रशंसनीय हैं किन्तु जातीय रूढ़ियाँ कालान्तर में ब्राह्मण पेशवाओं के सत्तारूढ़ हो जाने के फलस्वरूप किसी सीमा तक कम न की जा सकी थी। ब्राह्मण होने के नाते उन्हें कट्टर हिन्दू समझा जाना तो स्वाभाविक ही था तथापि पेशवा बाजीराव ने मस्तानी को अपने ब्राह्मण परिवार में पूर्णतया सम्मिलित करने का असफल प्रयास किया, यह मराठों और उनके पेशवाओं की सुधार भावना का एक जीवित प्रमाण माना जा सकता है। सामान्यतः मराठा शक्ति विस्तार[1] के इस युग में मराठों में प्रगतिवादी सामाजिक परिवर्तन समय की माँग के सर्वथा अनुकूल थे और मराठा ब्राह्मण के सामाजिक जीवन में समयानुकूल आवश्यक परिवर्तन लाने गये।

इस युग की धार्मिक नीति की अधिकतम आश्चर्यजनक विशेषता मराठों में व्यापक धर्म-सहिष्णुता की भावना ही थी। हम यह कई बार संकेत कर चुके हैं

1 See G S Sardesai— New History of the Marathas Vol 2, P 169 Maratha society in general doubtless underwent immense transformation during the process of their expansion

कि मराठो ने मुस्लिम शक्तियो के विरुद्ध जो निरन्तर युद्ध समय किये उनका कारण धार्मिक न होकर पूर्णतया राजनैतिक ही था। पेशवाओं ने आन्तरिक क्षेत्र मे न तो मुस्लिम नागरिकों को अपनी सैनिक अथवा असैनिक सेवाओ में सम्मिलित होने से ही वंचित होने दिया और न ही उन पर किसी प्रकार के प्रतिबंध लगाये। वे उनके धार्मिक उत्सवो में निस्संकोच भाग लेते और मुस्लिम सन्त महात्माओं को सश्रद्ध मत मस्तक होते थे और उनके इस आदर्श ने सामान्य जनता को भी प्रभावित किया। इन मराठा शासकों ने प्रत्येक को उसकी वंशानुगत योग्यता के आधार पर राज्य सेवाओ में सहभागी होने का अवसर प्रदान करके सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति दिखलाई[1] जो कालान्तर में ब्राह्मण पेशवाओं के ब्राह्मणों के साथ पक्षपात के कारण क्षीण होती गई। इस पक्षपात और इसका फल भ्रष्टाचार, प्रो० सरदेसाई के अनुसार मराठा समाज में अन्तिम पेशवाओं के शासन में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

राज कर्मचारियों के लिये मादक द्रव्यों का प्रयोग करना सर्वथा अवैध था। देश मे गो वध का पूर्ण निषेध कर दिया गया था। कालान्तर में सिंधिया ने मुगल सम्राट से इस आशय का फर्मान भी प्राप्त कर लिया था जिससे यह कुप्रथा शाही क्षेत्रों में भी बन्द करदी गई थी। मराठों ने अपने उन क्षेत्रो में जहाँ उन्हें स्वराज्य की सुविधायें प्राप्त थीं सुरक्षा का अत्युत्तम व्यवस्था भी की था। पूना के विषय मे उल्लेख करते हुए 'टोन' महोदय ने यह स्पष्ट किया है कि, 'इसका प्रासिद्ध और किसी बात के लिये इतनी नही जितना कि उसको पुलिस के लिये है, जिसमे लगभग १ सहस्त्र व्यक्ति हैं। तोप दगने के उपरान्त जो प्राय रात के दस बजे दागी जाती है, कोई भी व्यक्ति बिना पहरेदार के टोक सड़क पर नहीं निकल सकता और उस रात्रि भर जेल मे रक्खा जाता है, और प्रात काल कोतवाल की आज्ञा से ही छोड़ा जाता है। अनुशासन इतना कठोर है कि एक बार अनुचित समय में रात्रि में बाहर निकलने पर, स्वयं पेशवा को भी रात भर जेल मे बन्द रहना पड़ा। इसी प्रकार

---

1 See, Sardesai s ' Main Currents of Maratha History P 176
' On the whole, I am not prepared to accuse the earlier Peshwas indiscriminately of showing any undue predilection for the Brahmans If we make a correct computation we shall find that during the rule of the Peshwas 75% of the families that attained brominence then were not certainly Brahmans It is doubtless true that a very large number of Brahman families rose to prominence particularly during the latter part of the Peshwa s negime

सन् १७९२ ई० मे पूना की यात्रा करने वाले एवं अन्य पाश्चात्य व्यक्ति-सेफ्टीनेट मूर ने लिखा है कि मराठों को पुलिस व्यवस्था "असाधारण रूप में सगठित थी।" मराठा समाज के विषय मे ग्राण्ट डफ[1] ने जो यह अत्यत आश्चर्यजनक बात कही है कि सामान्यत उनमे सत्य की स्वाभाविक अवहेलना की प्रवृत्ति के एक दुर्गुण को छोड़कर नैतिकता, दयालुता, मानवता और सहृदयता के सभी गुण विद्यमान थे, कोई विशेष तथ्य नही रखती। क्योंकि डफ महोदय ने उनके षडयन्त्रो से परिपूर्ण राजनीतिक जीवन का सम्भवत अधिक निकट से अध्ययन किया है। अन्तत हम एल्फिन्स्टन के इस उल्लेख द्वारा यह स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे कि पेशवाओं के शासन में उन्होंने "सम्पत्ति की अरक्षा की शिकायत कभी भी नही सुनी" और इस सम्बन्ध में यह तर्क प्रस्तुत करना उपयुक्त ही होगा सम्पत्ति और धन ही सत्य मार्ग से विचलित होने की परिस्थिति उत्पन्न करते हैं। अत ग्राण्ट डफ का मराठा जाति पर यह लांछन कि मराठे सत्य प्रेमी न थे, प्राय असगत ही माना जाता है।

पेशवाओं की पक्षपात रहित नीति का प्रमाण हम उनके इस कार्य से भी मिल जाता है कि उन्होंने सभी विद्वानों को समान रूप से सरक्षण प्रदान किया। प्रारम्भ में यह कार्य विवेक पूर्ण ढग से होता था किन्तु कालान्तर में ब्राह्मण दक्षिणा के पात्र बन गये। पेशवा शासकों की ओर से 'अधिक समृद्धिशाली नगरो की सीमा बढ़ाने के निमित्त उदार सुविधायें दी गई उन लोगो को जिन्होंने विदेशी बसन वालों को लाने, उन्हे नये घर बनाने तथा नये बाजार खोलने का वायदा किया, भूमि करों से मुक्ति तथा 'वतन प्रदान किये गये।' फलत भारत के सभी कोनो से अनेकानेक विद्वान पूना की ओर आकर्षित हुए और यह नगर विद्या एव व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया।

मराठों की आर्थिक व्यवस्था—मराठों की आर्थिक दशा के प्रसग मे हमे उनके स्वराज्य एव साम्राज्य के प्रदेशो का अन्तर अवश्य ध्यान मे रखना चाहिये। केन्द्रीय सरकार के आय के साधन थे—चौथ एव सरदेशमुखी। अत इन साधनों का संक्षिप्त उल्लेख इस स्थान पर अपेक्षित होगा। चौथ उस मालगुजारी का चौथाई

---

1 See J Grant Duff s History of the Marathas Vol 2 P 127

"The Maratha people, who have not followed the profession of arms and where families, unconnected with Camps and Courts have lived content in the simple enjoyment of their hereditary rights and fields are except in one respect their habitual disregard of truth which is strangely contrasted with their probity in dealings with each other a remarkably moral, kind humane and hospitable race

भाग होता था जिसे वे अपने विजित क्षेत्रों से वसूल करते थे। सरदेशमुखी भूमि कर का दशांश होता था। चौथ का प्रतिशत तथा सरदेशमुखी का भी कुछ अंश राजकोष में जमा कर दिया जाता था तथा शेष आय बालाजी विश्वनाथ की व्यवस्था के अनुसार राज्य के कर्मचारियों पर व्यय होती थी जिनमें स्वयं पेशवा भी सम्मिलित था। कर दाता क्षत्र मराठा शासकों की रक्षा प्राप्त करने के अधिकारी माने जाते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि लार्ड वेलेजली की 'सहायक प्रथा' से मराठों की उपयुक्त व्यवस्था पर्याप्त रूप में समानता रखती थी। इसके विपरीत अन्य लेखकों ने इस बात का कठोर विरोध किया है कि चौथ एकत्र करने के बाद मराठे उन क्षेत्रों की रक्षा का प्रबन्ध भी आवश्यक रूप में करते थे। इस स्थान पर यह उल्लेखनीय है कि मुगल सम्राट ने दक्षिण भारत के छः माही सूबों की सुरक्षा हेतु १५००० मराठों की सेना रखने के उपलक्ष में उन्हें उपयुक्त करों को न्याय पूर्वक वसूल करने के निमित्त एक सनद प्रदान की थी जिसे आसफजाह के समय में निजाम उल मुल्क की ओर से भी स्वीकृति मिल गई। सम्राट ने मराठा सेनापतियों द्वारा अधिकृत उत्तर भारत के विभिन्न प्रान्तों के विषय में भी मराठों के चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकारों को कालक्रमानुसार मान्यता प्रदान कर दी। प्रो० एस० आर० शर्मा ने लिखा है कि "इस प्रकार प्रारम्भ में जिसे आत्म रक्षा के लिये रिश्वत कहा जा सकता था, मराठा राज्य के नियमानुसार[1] मालगुजारी के साधन बन गये।"

उन स्थानों पर जहाँ मराठों ने नियमानुसार व्यवस्थित शासनतन्त्र स्थापित कर लिये थे, आय के प्रधान साधन मुख्यतः ७ थे, जिनमें राज्य की आय के साधन—भूमिकर, चुंगी, व्यापार कर, एकाधिकार कर टकसाल कर न्यायालीय अर्थदण्ड तथा विभिन्न छोटे-मोटे कर आदि थे। पहले महाराष्ट्र के कृषक अपने देशमुखों तथा देश पाण्डेयों की ही कृपा पर अवलम्बित रहते थे किन्तु शिवाजी तथा शाहू जी के उदार शासन में उनके साथ होने वाला मालगुजारी के स्वेच्छापूर्ण वसूली से सम्बन्धित अत्याचार पूर्ण व्यवहार समाप्त हो गया। उन्होंने कर निर्धारण में टोडरमल तथा मलिक अम्बर की नीति का अनुसरण किया। यह नीति न्यायपूर्ण एवं वैधानिक थी और उसके अनुसार भूमि की नियमानुकूल नाप जोख तथा उसकी किस्म और उपज की समयानुसार पड़ताल कराने के पश्चात ही भूमि का वर्गीकरण किया जाने लगा था। सभासद बखर में इस सम्बन्ध में एक स्थान पर यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि "इस प्रकार प्रत्येक गाँव का क्षेत्रफल पूर्ण रूप से मालूम कर लिया जाता था, फिर प्रत्येक बीघे की सम्भाव्य उपज का हिसाब लगाया जाता था जिसमें से तीन भाग तो किसान के लिये छोड़ दिये जाते थे, और शेष दो भाग राज्य ले लेता था।"

---

1 लेफ्टीनेण्ट कर्नल ब्लेकर के कथनानुसार पेशवा की वार्षिक आय दो करोड़ दस लाख रुपये थी।

नये बसने वाले लोगों को बीज तथा पशुओं के लिये धन देकर उन्हें महाराष्ट्र में आकृष्ट करने की प्रक्रिया भी चल रही थी। यह धन 'सभासद' के अनुसार दो अथवा ४ वार्षिक किश्तों में सरकार द्वारा वसूल किया जाता था मालगुजारी वसूल करने के मराठों द्वारा अपनाये गये उपायों का डा० सेन ने अपनी पुस्तक 'मराठों की शासन व्यवस्था' में विषद वर्णन किया है जिसके अनुसार हम तत्सम्बन्धी ज्ञातव्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

भूमिकर वसूली के समय करदाताओं को 'महार', 'चावडी' में बुला लाते थे, जहाँ 'पटेल' का दफ्तर रहता था। उसके साथ पोद्दार तथा कुलकर्णी भी वहीं उपस्थित रहते थे जिनसे पटेल को भूमि कर की वसूली में विशेष सहायता उपलब्ध होती थी। गाँव के आय-व्यय का लेखा जोखा रखने वाला कर्मचारी—कुलकर्णी—प्राप्त भूमिकर की रसीद देता था और पोद्दार मोहर लगाने का कार्य सम्पन्न करता था। डा० सेन के मतानुसार वसूली समाप्त हो जाने पर सारा रुपया, एक पत्र के सहित 'शौगुला' नामक कर्मचारी के संरक्षण में 'कामविसदार' के पास भेज दिया जाता था। उपर्युक्त पत्र की एक नकल 'महार' सम्बन्धित देशमुख के पास ले जाते थे। 'शौगुला' के संरक्षण में दिये गये धन की रसीद 'मामलतदार' देता था और इसे कुलकर्णी के गाँव के हिसाब किताब के पत्रों और प्रपत्रों के बन्डल में सुरक्षित रूप में संग्रहीत रक्खा जाता था। इस कार्य में पटेल को आवश्यक सहायता देने के लिये, जिले के अधिकारी की ओर से प्राय 'शिबन्दी' नामक एक विशिष्ट कर्मचारी भी भेजा जाता था। भूमिकर प्राय ४ किश्तों और कभी कभी तीन किश्तों में वसूल किया जाता था और इसकी वसूली अथवा कर निर्धारण में कृषि की उन्नति तथा कृषकों के सामान्य हितों को ध्यान में रक्खा जाता था। कृषि कार्य के लिये क्रीत बर्लों तथा भूमि को कृष्योपयोगी बनाने के कृषकों द्वारा प्रयुक्त साधनों के लिये किसानों को पाँच वर्षों के लिये चुंगी में छूट दे दी जाया करती थी। शिथिल तथा लोभी कर्मचारियों को जो कृषि की उन्नति करने के कार्यों में शिथिलता एवं असावधानी का परिचय देते थे राज्य की ओर से कठोर दण्ड देने की व्यवस्था थी। भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध सरकार स्वयं करती थी अन्यथा उसके लिये कृषकों को यथेष्ट धन दिया जाता था। न्यायमूर्ति रानाडे के शब्दों में—"जब किसी देश को इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता पड़ती थी इस्तवाम अर्थात धीरे धीरे बढ़ने वाले कर के आधार पर तीन से लेकर सात वर्ष तक के पटटे कर दिये जाते थे।"

प्रो० एस० आर० शर्मा लिखते हैं कि १,२५,००० होन की आय के महाल पर "एक सबैनार और एक मजूमदार" ये दो पदाधिकारी नियुक्त किये जाते थे। सबैनार की वार्षिक आय ४०० होन तथा मजूमदार की १००—१२५ होन थी। सौभाग्यवश इतिहास के विद्यार्थी के लिये पूना स्थित पेशवा दफ्तर में जो सहस्त्रों पत्र एवं प्रमाण पत्र मिलते हैं उनसे भी विभिन्न विभागों में मराठों के सार्वजनिक

शासन की कार्य-पद्धति पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। गाँवों में परम्परागत पटेल, कुल कर्णी, पोद्दार, कारकुन तथा कामविसदार एवं मामलतदार आदि रहते थे। इन कर्मचारियों से लेकर केन्द्र में (पूना) पेशवा दफ्तर तक राजस्व पदाधिकारियों का एक विशाल समूह बन जाता है। पेशवा दफ्तर के उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि भूमि को प्रायः तीन 'श्रेणियों—उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट—में बाँटा गया था। नहरों से सिंचाई होने वाली भूमि, कुआँ और तालाबों से सिंचाई होने वाली भूमि तथा बगीचों की भूमि का भी पृथक पृथक वर्गीकरण किया गया था।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि १८ वीं शदी के महाराष्ट्र में सामान्य जनता का जीवन प्रभूत एवं सुखी था, क्योंकि वहाँ पेशवाओं के नियन्त्रण में देश की राज-नीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का प्रबन्ध था। उनकी नीति के कुछ परिणामों पर प्रकाश डालते हुए कप्टेन विलियम शार्बन ने १७३६ ई० में लिखा था कि "बाजीराव के पास काफी लम्बा भूक्षेत्र है, जो उन अन्य सभी भागों से, जहाँ होकर मैं गया हूँ देखने में अधिक उपजाऊ एवं कीमती मालूम पड़ता है। उसके प्रदेशों में सघन जनसंख्या है गरीब किसानों को लगान में छूट मिलती है जिसके फलस्वरूप उसका सुविशाल राज्य विशेष सम्पन्न अवस्था में हो गया है।' इस स्थान पर यह उल्लेखनीय है कि पेशवाओं द्वारा की गई देश की कृषि व्यवस्था को कालान्तर में भारत विजय करने के पश्चात् अंग्रेज शासकों ने भी अपनाया।

इस प्रकार कृषि की सुन्दर व्यवस्था से लाभान्वित होकर मराठों ने देश-विदेश में अपने व्यापार को भी उन्नति प्रदान की। वे पूर्वी द्वीप समूह लंका, चीन, अरब तथा मिस्र आदि देशों से व्यापार करते थे और उनके व्यापारिक जलपोत इस युग में काफी बड़े तथा तीव्र गामी होते थे। मराठों ने उत्तर भारत के साथ घनिष्ट सम्पर्क प्राप्त कर लिया था और वहाँ पर प्रचलित दिन प्रति दिन की वस्तुओं तथा विलासिता आदि की सामग्री को वे अपने व्यापारिक माल के साथ आयात कर लिया करते थे।

मुद्रा-पद्धति—अपने वर्णनों में हमने 'होन' नामक मुद्रा का विस्तृत रूप में उल्लेख किया है। यह प्रायः मराठा सेना के पदाधिकारियों का वेतन देने में प्रयुक्त किया जाता था। यह स्वर्ण मुद्रा तोल में 3½ माशा थी किन्तु इसमें 2¾ माशा शुद्ध सोने के साथ ¾ माशा गुंजा सोना तथा कुछ चाँदी का अंश भी मिला रहता था। होन के अतिरिक्त एक अन्य स्वर्ण मुद्रा भी महाराष्ट्र में प्रचलित थी, जिसे मोहर कहते थे। मराठा मोहर, दिल्ली की औरंगजेबी मोहर जो 14½ रु० के बराबर थी और सूरत में प्रचलित 'सूरती' मोहर जो 15½ रु० के बराबर थी से अत्यधिक समानता रखती थी। महाराष्ट्र में चाँदी का रुपया भी चलता था, जो मद्रास में प्रचलित ब्रिटिश रुपये से पर्याप्त समानता रखता था। मराठों का सबसे

छोटा सिक्का 'पैसा' ही था। तोल में यह १० माशे के बराबर था और तांबे का बना होता था। महाराष्ट्र में इस समय भी शिवाजी द्वारा प्रचलित शिवरायी पैसे का अत्यधिक प्रचलन था।

मराठों ने आर्थिक क्षेत्र में विशेष सतर्कता से काय न किया उनकी टकसालों पर राज्य का एकाधिकार भी न था। मुद्रायें विभिन्न स्थानों पर, स्वर्णकारों तथा साहूकारों द्वारा ढाली जाती थीं। हाँ ! उन पर बनाने वाले का नाम और स्थान अवश्य अंकित रहता था। ऐसे तत्कालीन अनेक सिक्के उपलब्ध हुए हैं जिन पर शिवाजी शाहूजी अथवा पेशवा अथवा किसी स्थानीय शासक जैसे कि भोसले, गायकवाड़, होल्कर अथवा सिंधिया आदि की राजमुद्रा अंकित हैं। इन समस्त सिक्कों पर प्राय फारसी भाषा में मुगल सम्राट की कोई न कोई लोकप्रिय गाथा उल्लिखित रहती थी। इन समस्त सिक्कों का प्रचलन उस युग में एक ही साथ होता था अत इनके वास्तविक मूल्यों का निर्णय व्यापारियों द्वारा ही किया जाता था। सन् १७४४ ई० में बालाजी राव ने टकसालों तथा मुद्रा पद्धति का पुनर्व्यवस्था भी की थी जिसके अनुगत उसने कुछ नियमों एवं विशेषताओं के साथ सिक्कों का निर्माण करने के लिये लोगों को लाइसेंस प्रदान किये। करों के निर्धारण एवं वसूली का माध्यम होन नामक सिक्का ही था। इसी म सरकारी पदाधिकारियों का वेतन वितरण भी किया जाता था। अनेकानेक प्रकार के सिक्कों के प्रचलन तथा उनमें प्रामाणिकता के अभाव का मूल कारण एक ओर तो सरकार की उपेक्षा थी और दूसरी ओर प्रकाशन अथवा व्यवहार आदि की कठिनाई। मराठा मुद्रा-पद्धति तथा टकसालों के विषय में रानाडे के ये शब्द विशेष उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं कि— प्राय यह बात कही जाती है कि सोने के सिक्कों का चलन करने के लिये भारत बहुत गरीब देश था परन्तु इसके लिये कोई ठोस प्रमाण नहीं है जैसा कि मराठा के शासन में इस समय के इतिहास में पता चलता है।'

सारांश—अपने वक्तव्य का उपसंहार करते हुए लेखक का मराठों का तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशा के विषय में यही निष्कर्ष है कि मराठों ने अपनी स्वराज्य और साम्राज्य व्यवस्था का विकास करके देश को धन धान्य में किसी प्रकार अभाव ग्रस्त न होने दिया। पेशवा की दिग्विजय नीति से उत्तर और दक्षिण का विस्तृत आदान प्रदान सम्भव हुआ और देश में व्यापार आदि की उन्नति हुई। स्वराज्य प्रदेशों में आय के साधन भूमि कर, चुंगी व्यापार कर, एकाधिकार कर तथा अर्थ दण्ड आदि थे और भूमि की नाप जोख करके उसका वर्गीकरण करने के पश्चात् ही भूमि कर की धन राशि नियुक्त की जाती थी। केन्द्रीय सरकार को चौथ तथा सरदेशमुखी मिलती थी।

Q. Give in brief the changes brought about the character and outlook of the Marathas by their contact with the north? (R U 1958

प्रश्न —मराठों के दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय चरित्र में उनके उत्तर भारत के साथ स्थापित होने वाले सम्पर्क द्वारा लाये गये परिवर्तनों को संक्षेप में व्याख्या कीजिये। (रा० वि० वि० १९५८ ई०)

उत्तर —भारत के विभिन्न भागों के साथ महाराष्ट्र के सांस्कृतिक आदान प्रदान का इतिहास अत्यन्त ही विस्तृत है। यह इतिहास के विद्यार्थियों के लिये जो महत्वपूर्ण अन्वेषणात्मक सामग्री प्रस्तुत करता है वह भी अत्यन्त रोचक है। इस प्रकार का सम्पर्क जो शिवाजी के समय से ही प्रारम्भ हो चुका था, आगामी पचास वर्षों और विशेषकर दक्षिण भारत पर औरंगजेब के अन्तिम आक्रमण काल पर्यन्त अविरल रूप में चलता रहा। इसे सन् १७१८ ई० में पेशवा बालाजी पन्त द्वारा किये गये दिल्ली अभियान से और भी अधिक प्रोत्साहन मिला। मराठों के उत्तर भारत के साथ सम्बन्ध द्वितीय पेशवा के २० वर्षीय शासन काल में विशेष विकसित हुए। इस पेशवा ने अपने समकालीन राजपूत शासक एवं मित्र सवाई जयसिंह के राज दरबार के साथ अपने सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने में विशेष रुचि ली। राजपूत राजा ने अश्वमेध यज्ञ (Horse Sacrifice) भी किया था। इसमें उसने भारत के विभिन्न भागों से ब्राह्मण पण्डितों को निमन्त्रित करके उन्हें यथेष्ट दान दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया। जयसिंह का व्यक्तिगत गुरु पठन का रहने वाला एक मराठा पण्डित ही था। उसका नाम था—रत्नाकर भट्ट महाशब्दे। उसके भाई प्रभाकर भट्ट तथा उसका पुत्र वृजनाथ दोनों ही जयसिंह के पारिवारिक पुरोहित रहे थे। उन्हीं लोगों ने पेशवा बाजीराव द्वारा की गई जयपुर यात्रा को सन् १७३६ ई० में सफल बनाने हेतु अपना समुचित योगदान किया था। कालान्तर में जयसिंह का राजमन्त्री दीनानाथ भी सतारा आया। जयसिंह (सवाई) द्वारा शाहूजी के दरबार को भेजा गया मित्र मण्डल राजपूतों और मराठों के पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण समझा जाता है। यह मित्रमण्डल दीपसिंह के नेतृत्व में महाराजा शाहू तथा उनके पेशवा से मिला और देश विदेश के इन राजनीतिज्ञों ने एक स्थान पर एकत्र होकर मुगल सम्राट के साथ मराठों के सम्भाव्य राजनैतिक सम्बन्धों पर विचार विनिमय किया। दिल्ली दरबार में मुगल मराठा सम्बन्धों की नीति निर्धारण करने के प्रश्न पर दो दल बन गये थे। एक दल का नेतृत्व खान-दौरान तथा सवाई जयसिंह कर रहे थे और दूसरे का सादतखाँ, अहमदखाँ बंगश तथा अभयसिंह आदि। पहले दल के लोग चाहते थे कि मराठों को उत्तर भारत में भी समुचित सुविधायें दी जायें तथा मुगल साम्राज्य को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से उनके अपने राजनैतिक गौरव को भी सुरक्षित रक्खा जाये। इसके विपरीत अहमद खाँ तथा अभयसिंह आदि जो मराठों से शत्रुता मानते थे यही चाहते थे कि मराठों का दमन करने के लिये उत्तर भारत के सभी राजपूतों को मुगलों के झण्डे के नीचे एकत्र होकर संयुक्त कार्यवाहियाँ करनी चाहिये।

" दीपसिंह के नेतृत्व में राजपूत मित्र मण्डल —दिल्ली के दरबार ने अपनी समस्त पूर्वगत शक्ति से रहित होकर देशवासियों की लोकप्रियता से अपने सम्राट को भी वंचित पाया। यही नहीं वे आक्रामक युद्ध लड़ने में भी अपने को शिथिल पा रहे थे क्योंकि उनके देखते-देखते औरंगजेब, बहादुरशाह तथा सैयद बन्धुओं द्वारा लगभग ५० वर्षों से मराठों के विरुद्ध किये पराक्रम का कोई भी फल न निकल सका था। तथापि वे मराठों के सम्मुख अनायास अपने शस्त्र डाल देने को तयार न थे इस जटिल स्थिति में जयसिंह ने मराठों के साथ मुगलों के परराष्ट्र सम्बन्धों को ठीक करने का दायित्व संचालन करने का आश्वासन दिया क्योंकि अपने सुसम्बद्ध प्रयासों के फल स्वरूप वह शाहूजी से मन्दवगढ़ का क्षेत्र वापस लौटाने में इसने हाल ही में सफलता प्राप्त की थी। अतः उसने उदयपुर के राजा संग्रामसिंह से आवश्यक परामर्श करके दीपसिंह मसाराम पुरोहित तथा राना द्वारा मनोनीत किये गये दूत बागची (व्याघ्र जी) को मराठा छत्रपति एवं उसके सरदारों से मिलकर मुगल मराठा सम्बन्धियों की भावी नीति का निर्धारण करने के लिये प्रेषित करने का निश्चय किया। यह दूत मण्डल सन १८३० ई० को बसन्त ऋतु में सतारा आ पहुँचा तथा इसका वहाँ पर भव्य स्वागत किया गया। दूत मण्डल के नेतागण वहाँ से आवश्यक विचार विमर्श करने के बाद औरंगाबाद में निजाम उल मुल्क से भी मिलते गये। तत्पश्चात वे नवम्बर के प्रारम्भ में ही वहाँ से वापस लौट आये और जयसिंह से उन्होंने सारा हाल चाल बतलाया। बागची तो वापस लौटते समय अजन्ता के समीप ही परलोक सिधार गया और शेष राजपूत नेता मराठा दरबार तथा उसकी नीति से प्रभावित होकर स्वदेश लौटे। सतारा के जनजीवन तथा शाहू के आचार व्यवहार से मसाराम पुरोहित स्वयं इतना अधिक प्रभावित हुआ कि वह कालान्तर में शीघ्र ही शाहूजी के आश्रय में चला आया जहाँ उसने अपने जीवन के शेष दिन व्यतीत किये। दक्षिण भारत में उसका अत्यधिक समादर हुआ। दूतमण्डल के मतानुसार मराठों में सम्राट के विरुद्ध कोई दुर्भावना न पाई जाती थी। वे केवल अपने चौथ वसूल करने का अधिकार पाकर ही सन्तुष्ट रह जाना चाहते थे जिसके उपलक्ष में वे सम्राट की सेवा करने और उसकी सहाय आवश्यकता पड़ने पर तत्काल दौड़ पड़ने को कटिबद्ध थे। तथापि वे गुजरात की वार्षिक चौथ के रूप में ११ लाख रुपयों की माँग कर रहे थे और इसी प्रकार मालवा की चौथ के लिये भी उन्होंने १५ लाख रुपये वार्षिक लेने की माँग की। इन माँगों को पेशवा बाजीराव ने अपने पराक्रम के बल पर शीघ्र ही मुगल सम्राट द्वारा स्वीकार कराने में सफलता पाई। इस प्रकार मालवा, गुजरात और अन्यान्य उत्तरी सूबों में भी शनैः शनैः अपना प्रभाव क्षेत्र उपलब्ध करके पेशवा बाजीराव ने उत्तर भारत तथा दक्षिण के मध्य व्यापक सम्बन्ध व्यवहार प्रारम्भ करने का श्रेय लाभ किया इस दूत मण्डल की दृष्टि से ऐतिहासिक यात्रा प्रारम्भ हुई। बाजीराव

की भांति पेशवा की माता राधाबाई द्वारा उत्तर भारत में की गई धर्म यात्रा का भी राजपूत मराठा सम्बन्धों को विकसित करने में लाभदायक परिणाम निकला। इन्हीं सम्बन्धों का यह फल था कि हरिकवि नामक एक कनाडी ब्राह्मण को सवाई जयसिंह ने अपने राज्य का मुख्य न्यायाधीश बनाना पसन्द किया। वह इस पद पर दीर्घकाल पर्यन्त कार्य करता रहा।

जब उधर मुगलों के विरुद्ध पेशवा बाजीराव प्रबल संघर्ष कर रहा था किन्तु इसके साथ ही साथ उत्तर एवं दक्षिण भारत के सामान्य जनजीवन एवं दक्षिणांग सम्बन्धी विचारों और वस्तुओं का पारस्परिक आदान प्रदान भी चलता रहा। इस विषय पर गम्भीर विचार करने के फलस्वरूप यह ज्ञात हो जाता है कि सामाजिक जीवन एवं नवीन व्यापार विषयक पारस्परिक आदान प्रदान के कारण किस प्रकार देश के विभिन्न नगरों जैसे कि सतारा, पूना, भावनगर, जयपुर, बुरहानपुर, थानेश्वर, काशी तथा दिल्ली आदि में एक जैसा वातावरण विकसित होता जा रहा था। अब अनेकानेक मराठा परिवार दीर्घकाल से मालवा तथा बुन्देलखण्ड में स्थाई रूप से रहने लगे थे फलतः तीसरे पेशवा के शासन काल तक उत्तर तथा दक्षिण भारत के मध्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों में नवीन स्फूर्ति आने लग गई। अपने सैनिक कूटनीतिक एवं धार्मिक लक्ष्यों को लेकर असंख्य व्यक्ति अपने-अपने स्थानों से बाहर अपने उत्तरदायित्व एवं सुविधानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान को घूम फिर कर स्थाई रूप से रहने लगे। इस प्रकार उनके सामाजिक जीवन में महान् अन्तर आ गया। मराठा सैनिकों की निर्धनता भी अब पर्याप्त सीमा तक दूर हुई होती दिखाई पड़ती थी। इस प्रकार जनजीवन के विस्तार के साथ ही साथ उनकी आर्थिक स्थिति में भी सुधार हो गया। धीरे धीरे उनके बाह्य उत्तर के स्वतन्त्र व्यापार के फलस्वरूप उनकी भाषाओं वेषभूषा एवं आहार विहार में परिवर्तन आया। अब महाराष्ट्र में भी उत्तर भारत की भांति रहने एवं [illegible] को सम्पन्न करने के निमित्त ऊँची ऊँची अट्टालिकायें और राजप्रासाद [illegible] बनने लगे। उनके इर्द गिर्द अच्छे अच्छे बाग-बगीचे अवश्य लगाये जाते थे। जिनमें बहुधा विदेशी फल-फूल भी देखने को मिलते थे।

भावनाओं के विस्तार तथा इस सामाजिक परिवर्तन के विषय में दिनांक २२ दिसम्बर १७४२ ई० के दिन बुन्देलखण्ड से पेशवा द्वारा उसके मित्र नाना पुरन्दरे के नाम लिखे गये पत्र से समुचित ज्ञातव्य प्राप्त हो सकता है—

"यहाँ पर आप प्रत्यक्ष रूपेण आर्य सभ्यता संस्कृत भाषा में पारंगत ऐसे हिन्दू शासकों का दर्शन करते हैं जो न तो विषय भोग एवं मदिरा पान, संगीत एवं नृत्य विषयक रसिकता के व्यसनी ही हैं और न ही इन बातों की ओर लेश मात्र ध्यान देते हैं। ये लोग ही धर्म भावना से ओत प्रोत एवं ब्राह्मणों के प्रति सश्रद्ध होने के कारण जीवन के वास्तविक आनन्द की अनुभूति पा सकते हैं। यहाँ का जनजीवन सुसम्पन्न एवं पूर्ण है। यहाँ पर नाना प्रकार के पुष्प एवं कमल के फूलों से भरे हुए बड़े बड़े बाग बगीचे देखने को मिलते हैं। इस प्रदेशों की नदियों में स्वास्थ्यवर्धक मधुर जल प्रवाहित रहता है जिससे यहाँ की भूमियाँ एवं जनसमुदाय सम्पन्न हो जाते हैं और दक्षिण भारत की नदियाँ इनकी तुलना में अत्यन्त छोटी एवं संकीर्ण प्रतीत होती हैं। लोगों के शरीर की बनावट आकर्षक एवं सुन्दर है। मेरी आकांक्षा है कि यहाँ के अत्यन्त मनोमुग्धकारी जीवन का रसास्वादन करने के निमित्त आप भी यहीं पर आकर मेरे साथ निवास करते।"

पेशवा बालाजीराव की लेखनी से उसकी प्रभावशालिनी संस्कृत भाषा में लिखे हुए उत्तर भारत के जनजीवन की दशाओं से सम्बन्धित इन शब्दों का अंग्रेजी में भाषान्तर करते हुए विद्वान राजवाड़े ने आगे लिखा है कि जहाँ तक राजनीति का प्रश्न है मेरे पुण्यश्लोक पिता एवं पितामह ने विगत २४ वर्षों से उत्तर भारत से स्वदेश की ओर स्वर्ण की धारा प्रवाहित कर रक्खी[1] जिससे आज तक असंख्य व्यक्तियों को लाभ होता रहा है।

उपर्युक्त पंक्तियों से चौथ एवं सरदेशमुखी आदि साधनों द्वारा दक्षिण भारत में प्रविष्ट होने वाली अर्थ सम्पन्नता एवं समृद्धि का भी अच्छा परिचय मिल जाता है। इन राजनीतिक दशाओं द्वारा उत्पन्न सामाजिक काया पलट का दर्शन तो हमें तब प्राप्त होता है जबकि हम इस पेशवा द्वारा इस क्षेत्र में की गई व्यवस्थाओं का अध्ययन करने बैठते हैं।

मानव जीवन के नैतिक उत्थान को उसके सैनिक व्यवसाय से प्रायः बहुत ही कम योग उपलब्ध होता है। इस व्यवसाय में सफलता मिलते ही मनुष्य को ऐसी अनेकानेक बुराइयों एवं चरित्रनाशक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो उस समय विशेषकर उत्तरभारत में ही प्रायः देखने को मिलती थीं। प्रो० सरदेसाई के

---

1 See—Ring wade Vol 6 160
"As regards politics my father and grandfather of revered memory had made a river of gold run from the north to south now for 24 years"

इन न०ग में पेशवा बालाजी राव द्वारा ११ जून १७४४ ई० को दामोदर पन्त हिंगने का लिखे गये पत्र म उत्तर भारत को सामाजिक परिस्थितियों के दक्षिण स सम्बन्ध क विषय में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है—'मैंने आपके उत्तर भारत की ओर पयान करते समय आपसे उधर की दो लगभग १० वर्षीय सुन्दर हिन्दू कन्याओं का प्राप्त करके उन्हें यहाँ भेजने का अनुरोध किया था। कृपया इस कार्य को ■ भूलते हुए आप इन क याओं को यथा शीघ्र भेज दें।" हिन्दू कन्या भजने का अनुरोध करके पेशवा ने सम्भवत पूना स्थित अपने परिवार में मुस्लिम जातीय महिला—'मस्तानी'—द्वारा उत्पन्न की गई अशांतपूर्ण स्थितियों से छुटकारा पाने की आशा की थी। दक्षिण से उत्तर भारत मे रहने वाली सगीत एव नृत्यकला में पारगत प्राय असभ्य लड़कियों की ही माग होती रहती थी। इसी प्रकार अन्यान्य प्रकार की उपयोगी एव विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं जैसे कि पेशावर क इत्र एव लाहौरी काठियों आदि क लिये भी दक्षिण वाले उत्तर भारत से माग किया करते थे। दक्षिण में अनुपलब्ध प्रत्येक किसी भी वस्तु की तो यहा के विभिन्न लोग विशिष्ट रूप में माग किया करते थे।।

मराठा शक्ति के विस्तार-काल मे, उत्तर भारत के तीर्थों की यात्रा भी इसी प्रकार दक्षिणियों के लिये एक सामान्य सी बात बन गई थी। यात्रीगण माग म जिन किसी भी आवश्यकताओं का अनुभव करते उनकी पूर्ति दक्षिण से उत्तर को तथा उत्तर से दक्षिण की ओर आने जाने वाली सेनाओं के व्यक्तियों द्वारा ही हो जाया करती थी। इस सम्पर्क के फलस्वरूप शनै शन सेनाओं और सैनिक अभियानों में भी पारिवारिक स्त्रियों एव दासियों को ले जाने की प्रक्रिया का सूत्रपात हो गया। जिसका कुफल हमें पानीपत की दुघटना म प्रत्यक्ष त परिलक्षित होता है। स्वय पेशवा की माता काशीबाई ने भी उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा निरन्तर चार वर्षों तक की थी। यह उल्लेखनीय है कि इस समय मथुरा, प्रयाग काशी और अयोध्या तथा अन्यान्य सभी बड़े-बड़े तीर्थ स्थानों पर मुस्लिम जागीरदारों का ही आधिपत्य स्थापित था जो यहाँ के पयटकों एव भक्त-सन्तों आदि से कर वसूल करते थे। कर्नाटक यात्रा के समय काशीबाई के साथ बाबूजी नायक भी गया था। यहा से दर्शन-पूजन आदि कृत्य सम्पन्न करके पेशवा की माता सन् १७४२ ई० में पूना लौट आई किन्तु जब पेशवा ने अपनी दिल्ली यात्रा के समय बुन्देलखण्ड में पहुँच कर अपना पड़ाव किया तो उसकी मा काशीबाई भी तत्काल ही काशी की यात्रा करने के लिये चली गई। बनारस में वह ४ वर्ष रही जिससे वहा के आस पास के रहने वाले मुस्लिम कर्मचारियों को समय समय पर अनेक कठिनाइयां एव असुविधाओं का सामना करना पड़ा। उसकी देख रेख करने के लिये साथ म ही गया हुआ, उसका भाई कृष्णराव जोशी चासकर बड़े ही कठोर स्वभाव का व्यक्ति ■

और वह अपने को पेशवा का परम कृपा पात्र बतलाया करता था। उसने कई एक स्थानों पर अपनी स्वेच्छाचारितापूर्ण प्रक्रिया द्वारा ऐसी अशान्ति उत्पन्न की कि कुछ समय के लिये उत्तर के मुस्लिम सूबेदारों को यह अत्यधिक असह्य अनुभव होती रही तथापि पेशवा के भय के कारण वे उनका कुछ भी न बिगाड़ सके।

अवध के शासक सफदर जंग को भी सुनने को मिला कि काशीताई ने अपने पुत्र पेशवा बालाजीराव से किसी कारण असन्तुष्ट होकर ही अपने घर-बार को छोड़कर उत्तर भारत के तीर्थों की यात्रा करना प्रारम्भ किया था। कहा जाता है कि वह अपना पूजा पाठ समाप्त कर चुकने के बाद भी पूना लौटने को तैयार न थी, तथापि मई सन् १७४७ ई० में काफी परेशानी के बाद ही कहीं उसे समझा बुझाकर पूना वापस लाया जा सका (दे०पुरन्दरे दफ्तर तथा पेशवा दफ्तर के रिकार्ड)।

पेशवा बाजीराव के सत्तारूढ़ होने के पूर्व दक्षिणी ब्राह्मणों की परिपाटी तो यह थी कि वे अपने नामों के साथ 'पन्त' शब्द अवश्य जोड़ते थे, किन्तु अब शनै शनै वहाँ के सभी ब्राह्मण पन्त के स्थान पर अपने को राव कहने में ही गर्व का अनुभव करने लगे। इसी प्रकार वहाँ के पौरोहित्य का स्थान भी क्षात्र धर्म ने ले लिया था। इस समय तक परवर्ती आंग्ल शासन की भाँति महाराष्ट्र अथवा कहीं भी शिक्षा का इतना प्रचार न हो पाया था अतः स्पष्ट है कि इस देश के अधिकांश उन्नतिशील व्यक्ति भी अपने बाल्यकाल में समुचित शिक्षा दीक्षा न प्राप्त कर पाते थे।

दक्षिण भारत में भी तब कहीं कहीं पर कुछ व्यक्तिगत संस्कृत पाठशालायें पायी जाती थीं जिनमें वैदिक साहित्य तथा संस्कृत भाषा में उपलब्ध पुराण ग्रन्थों का पठन पाठन किया जाता था। इनमें केवल कुछ कुलीन वर्गों के नवयुवक ही विद्याध्ययन के लिये पहुँच पाते थे क्योंकि दक्षिण में शिक्षा प्रदान करना कोई अन्य राज सार्वजनिक दायित्व न समझा जाता था। प्रत्येक सम्पन्न परिवार अपने सदस्यों की शिक्षादीक्षा की व्यवस्था स्वतः किया करता था अतः यह कार्य व्यक्तिगत प्रेरणा के फलस्वरूप ही सम्भव था। वे गणित तथा हिसाब किताब का सामान्य ज्ञान एवं संस्कृत भाषा का प्रयोग करना इन्हीं पाठशालाओं के माध्यम से सीख लेते थे। कहीं कहीं बालिकाओं को भी पढ़ने का अवसर दे दिया जाया करता था। शिवाजी महान ने स्वयं कोई अधिक शिक्षा न प्राप्त कर पाई थी परन्तु उन्होंने अपने पुत्र शम्भाजी प्रथम को पढ़ा लिखा कर संस्कृत भाषा का पण्डित बना दिया।

अधिकांश कुलीन परिवारों में एक मुख्य पुरोहित रहता था। इसके साथ साथ वे लोग एक पुराणीक [Puranik] भी रखते थे। इस पण्डित के अतिरिक्त परिवार के आय व्यय का हिसाब रखने हेतु कुछ अन्य कर्मचारी भी मराठा सम्भ्रान्त परिवारों में रखे जाते थे। वे बच्चों को प्रारम्भिकाल में शिक्षा देने का कार्य भी करते थे। पुरोहित वेद मन्त्रों का अध्ययन अध्यापन करता तथा पुराणीक रामायण

और महाभारत की शिक्षा दिया करता था किन्तु उसे संस्कृत व्याकरण भी मराठों को पढ़ानी होती थी। परिवार की विधवायें संस्कृत भाषा में उपलब्ध दर्शन साहित्य का अध्ययन करने में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करती थीं। सगुनाबाई (नाहुजी की विधवा) के पास उच्चकोटि के संस्कृत ग्रन्थों से युक्त एक विशाल पुस्तकालय होने का उल्लेख भी ऐतिहासिक सूत्रों में मिलता है।

पेशवाओं के महल में राज्य के आय व्यय का हिसाब किताब रखने के लिये एक विशाल कार्यालय रहता था, जिसे वे 'फड' के नाम से इंगित करते थे। इसमें अनेकानेक नय-नये कर्मचारियों को अपरेंटिस के रूप में रखकर उन्हें महत्वपूर्ण आय व्यय के लेखा जोखा रखने, कूटनीतिक अथवा लिपिक का कार्य करने से सम्बन्धित भावी उच्च पदों पर कार्य संचालन करने का प्रशिक्षण दिया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि यह फड अथवा सेक्रेटेरियेट अद्वितीय महत्व का कार्यालय था क्योंकि इसमें मराठा प्रशासन की विभिन्न शाखाओं में काम करने वाले कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने का कार्य परिवार के वयोवृद्ध एवं अनुभवी व्यक्तियों द्वारा सम्पादित होता था।

नव युवक सवाई माधव राव को उसकी दादी गोपिका बाई ने जो कुछ भी शिक्षायें दीं अथवा माधव राव बढ़ाना तथा नागपुर की दरिया बाई द्वारा दी गई नैतिक आचरण से सम्बन्धित शिक्षाओं का मराठा विद्वान राजवाड़े ने अपने ग्रन्थ की प्रथम प्रति के ६९ वें पृष्ठ पर किया है। इनमें सामान्य मराठों से आशा की जाने वाली शिक्षा दीक्षा का वर्णन मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मराठा रहन-सहन सम्बन्धी क्रिया कलापों तथा अन्यान्य महत्वपूर्ण बातों पर उत्तर भारत के जन जीवन का अमिट प्रभाव पड़ा था।

सारांश—मराठों ने उत्तर भारत के चौथ एवं सरदेशमुखी देने वाले नये नये क्षेत्रों में अपना प्रभाव विस्तार करके धीरे धीरे उनमें रहकर रहन-सहन तथा खान-पान आदि से सम्बन्धित उत्तर भारत के ढंगों को अपना लिया था। इसके लिये उनके पास साधनों का बाहुल्य था। इसी कारण वे उत्तर भारत से सम्पर्क रखकर वहाँ के जन जीवन से प्रभावित हो गये। उसी प्रकार उन्होंने उत्तर भारत के लोगों को भी अपने प्रभाव से अछूता न छोड़ा।

Q. Attempt an estimate of the cultural legacy of the Marathas from the time of Shivaji to the death of Peshwa Balaji Baji Rao (omitting Architecture) (R U 1961)

प्रश्न—शिवाजी से लेकर पेशवा बालाजी बाजीराव के शासन काल तक मराठों की सांस्कृतिक देनों का समीक्षात्मक विवरण दीजिये।

उत्तर—महाराष्ट्र के कलात्मक विचारों के यत्र-तत्र बिखरे पड़े हुए कतिपय प्राप्य सांस्कृतिक आदर्शों का अध्ययन करके इतिहास का कोई भी विद्यार्थी सरलता

स इस निश्चय पर ही पहुँचता कि क्षेत्र म कदाचित ही कोई ऐसी महत्वपूर्ण वस्तु शेष रह गई होगी जिसे उन्होंने अछूता छोड़ा हो। मराठा इतिहास के कुछ विद्वानों की धारणा यहाँ तक रही है कि 'इस प्रकार के कार्यों के लिये उन्हें न तो समय मिला, न शांति और न धन।' ही सर यदुनाथ सरकार के साथ यदि हम भी यह स्वीकार कर लें कि अपने राष्ट्रीय चरित्र के गठन में मराठे एथीनियन तत्वों की अपेक्षा स्पार्टन तत्वों से कहीं अधिक ओत प्रोत रहे थे। मराठों की अधिकांश वास्तुकृतियाँ जो अपनी सरसता के लिये विशेष प्रसिद्ध थी, इस समय तक शत्रुओं की बर्बरता का आखेट बन चुकी हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति को प्राप्त मराठा समाज की अन्यान्य देनों का महत्व भी कुछ कम नहीं है। प्रो० श्रीराम शर्मा के शब्दों में मराठा-साहित्य के संसार में अन्य क्षेत्रों की कमियों को पूरा करने के लिये मनन की काफी सामग्री है। अस्तु सर्व प्रथम हम मराठों की कतिपय साहित्यिक देनों का ही उल्लेख प्रस्तुत करेंगे। मराठों के तत्कालीन साहित्य को हम तीन श्रेणियों—(१) सन्त काव्य, (२) वीर गाथाओं तथा (३) ऐतिहासिक सरचनाओं—में विभाजित कर सकते हैं और इनमें से प्रत्येक के विषय में अध्ययन की सुविधा के लिये हम पृथक पृथक उल्लेख ही प्रस्तुत करना श्रेयस्कर समझते हैं।

(१) संत काव्य—मराठा साहित्य के मूल में महाराष्ट्र धर्म तथा सामान्य हिन्दू धर्म की प्रेरणा अत्यधिक सजीव रूप में वर्तमान मिलती है। इस धर्म की प्रेरणा ने ही स्वाभाविक रूप में काव्य भाषा को अपना माध्यम बनाकर महाराष्ट्र के जन जन को अनुप्राणित करने में जो असाधारण सफलता पाई, उसके लिये भारतवर्ष उसका कल्पान्त तक चिर ऋणी बना रहेगा जिसमें कदाचित ही किसी को सन्देह हो। इस स्थान पर मराठा साहित्य के केवल उसी इतिहास पर प्रकाश डाला जाना वांछनीय प्रतीत होता है जिसका सम्बन्ध आधुनिक महाराष्ट्र तथा उसकी पृष्ठ भूमि से है। मराठी भाषा भाषी विद्वानों ने जिन साहित्य शैलियों को प्रादुर्भूत किया, उनमें अभंग तथा ओव्ही के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय समझे जाते हैं। अभंग साहित्य धार्मिक गीतों तथा सूक्तों से अत्यधिक साम्य रखता है परन्तु ओव्ही साहित्य अपने आधारभूत काव्यात्मक सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध माना गया है। ये छन्द आदि इतने सुगम तथा स्पष्ट हैं कि इन्हें संगीत की लय के साथ ही गाया अथवा बोला जा सकता है। इन साहित्यिक रूपों—ओव्ही तथा अभंग—का प्रचार तेरहवीं शती में सन्त कवियों—ज्ञानेश्वर तथा नामदेव से प्रारम्भ होकर एकनाथ, तुकाराम तथा समर्थ रामदास के समय तक निरन्तर होता रहा।

आगे चलकर १८ वीं शताब्दी में वामन पण्डित तथा मोरोपन्त पिंगले एवं अन्यान्य लेखकों ने दूसरी साहित्य शैलियाँ भी अपनाई यद्यपि इनका प्रधान रस धर्म के अतिरिक्त और कुछ भी न था। इन साहित्यकारों ने श्लोक तथा आर्या साहित्य शैली को अपना कर अपनी सरचनाओं में शुद्ध संस्कृत के प्रचलित शब्दों का भी समा

वेश किया। कालक्रमानुसार मराठा साहित्य में धर्म का स्थान लौकिक विषयों ने ले लिया और यही कारण है कि रघुनाथ पण्डित जैसे मराठा कवियों ने स्वयंवर यथा नल-दमयन्ती विवाह आदि विषयों पर भी लेखनी चलाई। एक आर्या के अन्तर्गत इस आशय का उल्लेख भी मिलता है कि 'श्रेष्ठ श्लोक वामन के हैं, श्रेष्ठ अभंग तुकाराम के हैं, श्रेष्ठ ओव्ही मुक्तेश्वर की तथा श्रेष्ठ आर्या मोरोपन्त की है।'

सुप्रसिद्ध मराठा सन्त कवि ज्ञानेश्वर को देवगिरि के यादव शासकों का संरक्षण प्राप्त था और उन्होंने उनके राज्य में रहकर अपने ओव्ही साहित्य की विशद संरचनायें लिपिबद्ध की। रघुनाथ पण्डित ने अपना साहित्यिक कार्य मराठा राज्य की अन्तिम सीमा तंजौर में रहकर ही सम्पन्न किया। सन्त ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी का महाराष्ट्र तथा उसके बाहर भारत के विभिन्न स्थानों में पर्याप्त प्रचार है। इस काव्य ग्रन्थ में ६,००० से भी अधिक ओव्हियाँ हैं। यह १२वीं शती में मराठी प्राकृत में लिखे गये, भगवद्गीता के भाष्य के रूप में एक महान धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। ज्ञानेश्वर का भारतीय भाषाओं में अनुवाद तो स्वाभाविक ही है; परन्तु अँग्रेजी भाषा में भी इसके अनुवाद की लोकप्रियता के कारण इसका महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है। तथापि हमें यह स्वीकार करना होगा कि आधुनिक मराठी भाषा भाषी स्त्री पुरुषों के सार्वभौम हृदय सम्राट नामदेव तथा सन्त तुकाराम का नाम भारतीय संस्कृति के इतिहास में सबसे अधिक उल्लेखनीय है। सिक्खों के धर्म ग्रन्थ— ग्रन्थ साहब —में भी नामदेव रचित कतिपय छन्दों का यथावत समावेश देखकर सरलता से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि नामदेव न केवल महाराष्ट्र के प्रत्युत समूचे भारत राष्ट्र के श्रद्धास्पद सन्त कवि थे। तुकाराम की गाथाओं अथवा अभंगों की लोकप्रियता बतलाते हुए प्रो० श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि उनके रूप में शताब्दियों का स्वर आज भी महाराष्ट्र की सड़कों, गलियों एवं झोंपड़ियों में सुनाई देता है। महाराष्ट्र का सबसे प्रसिद्ध तीर्थ स्थान पंढरपुर है। तुकाराम जी का ही जन्म स्थली होने के कारण अपने इस अखण्ड एवं महान् गौरव को प्राप्त हुआ। अस्तु पण्ढरपुर जाने वाले यात्री ही नहीं प्रत्युत सामान्य खेतिहर मजदूर तथा गाड़ी वाले ग्रामीण भी अपने दिन प्रतिदिन के कामों में लगे हुए तुकाराम जी के भजनों का ही रसास्वादन करते देखे एवं सुने जाते हैं। बाह्य काव्य शैली के प्रारम्भिक लेखकों में जिस प्रकार सन्त एकनाथ के भागवत महापुराण के भाष्य को आज तक सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ठीक उसी प्रकार अभंग साहित्य के प्रारम्भिक लेखकों में तुकाराम जी के भजन गीतों को भी श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त है जिनके विषय में रवरेण्ड मानक्ले के ये शब्द बड़े ही महत्व के हैं, उनकी (तुकाराम) कविता की लोकप्रियता आज भी ज्यों की त्यों बनी है और मराठों के सभी वर्गों में उनकी इतनी जानकारी है, कि उनमें से बहुतों का तो कहावतों के रूप में ही प्रचार हो चुका है। वे स्काटलैण्ड में रॉबर्ट

के प्रबन्ध गीतों अथवा बाद के गीतों की अपेक्षा सम्भवतः है कहीं अधिक [illegible] रूप से प्रभावित है।"

शिव जी के आध्यात्मिक गुरु समर्थ रामदास का नाम महाराष्ट्र में [illegible] उनके घर घर के लोगों में भी प्रचलित है। [illegible] अर्थात् [illegible] के लिये दासबोध तथा [illegible] जैसे धार्मिक ग्रन्थों की रचना की। [illegible] श्लोकों को रामदास के ये [illegible] पढ़कर [illegible] करते हैं। इन श्लोकों की [illegible] है कि इनका अध्ययन करने ही [illegible] आज भी मराठा जाति के बालकों के लिये [illegible] जाता है। रामदास द्वारा शिवाजी को लिखे गये [illegible] की [illegible] में जो [illegible] उनके [illegible] भेजा था [illegible] स्थान पर [illegible] रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

अनेक लोगों को इकट्ठा करो,
विचार करके कामों को [illegible] करो
परिश्रम पूर्वक आक्रमण करो
म्लेच्छ के ऊपर ॥१८॥
शिव राजा के रूप को याद रखो,
शिव राजा की दृढ़ भावना को याद रखो
शिव राजा की कीर्ति का स्मरण करो
भूमण्डल में ॥१९॥
सब सुख त्याग कर,
योग साध कर,
राज्य साधन में, जैसे वे
अपनी भागे बढ़ गये ॥२०॥
तुम उनसे भी अधिक करना
तभी तो तुम पुरुष कहकर जाने जाओगे ॥२१॥

१८वीं शताब्दी के अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आज तक प्रचलित काव्यों में श्रीधर कृत 'रामविजय', 'हरिविजय', शिव लीलामृत तथा 'पाण्डव प्रताप' के नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं। पाश्चात्य विद्वान एकवर्थ तक ने श्रीधर की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—'मराठों में दूसरा कोई भी कवि ऐसा नहीं है, जिसका कि सभी वर्गों के लोगों में इतना मान हो, जितना श्रीधर का है। और प्रत्येक दूसरे कवि को पसन्द करने वाले की अपेक्षा श्रीधर को ही पसन्द करेगा।" दूसरा अत्यधिक प्रसिद्ध कवि है—मोरोपन्त, जिसकी प्राय सभी रचनायें अपने माध्यात्मक आवरण के जादू के लिए समस्त महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं। इसी

कारण उसने १८वी शताब्दी के प्राय सभी कवियो से अधिक कीर्ति उपार्जित की। उनकी प्रसिद्ध रचना 'कोकावली' जो अपनी एव लय पंक्तियो के कारण सबसे अधिक लम्बी कविता मानी जाती है, वस्तुत काव्य कला को ही ध्यान म रखकर लिपि बद्ध की गई थी। 'भक्ति विजय' का साहित्यकार 'महीपति' भी सम्भवत इसी युग का मराठा कवि माना जाता है और उसके इस ग्रन्थ को जन साधारण मे अत्यधिक लोकप्रियता है।

(२) वीरगाथायें—मराठा जनजीवन को राष्ट्रीयता के त्यागमय पथ पर अग्रसर करने म मराठी 'पोवाडाओ' (गाथाओ) के रचयिताओ ने जो योगदान किया, उसके फलस्वरूप महाराष्ट्र के स्त्री पुरुष एव आबाल वृद्ध सभी को वीरत्व एव त्याग का अमय वरदान प्राप्त हुआ। इसका प्रचार आज तक ज्यो का त्यो चल रहा है और इस प्रबन्ध काव्य की रचना शैली मराठो की अपनी ही देन समझी जाती है। इनके रचयिता जो 'शाहिर' कहे जाते हैं, लोकप्रियता की दृष्टि से धार्मिक ग्रन्थों के साहित्य निर्माताओ से कम प्रसिद्ध नही हैं। ये असख्य रचनायें मराठा जन जीवन को आज भी सदव की भाँति अनुप्राणित करने म अग्रणी हैं मराठा इतिहास के चिरस्मरणीय वीर नायको के पराक्रमो का ही अधिकाश रूप मे गुणानुवाद करती हैं। इनमें से शिवाजी द्वारा 'प्रतापगढ' मे अफजलखाँ की दुदशा, शिवाजी के परम मित्र तानाजी मलूसरे, बाजाजी घोरपडे, मोरारबाजी देश पाँडे आदि के बलिदान पर लिखे मराठी पौवाडे रूखी सूखी चलताऊ भाषा मे होते हुए भी उत्साह वधक लय म गाये और सुने जा सकते हैं। इस काव्य शैली का प्रारम्भ वीर शिवाजी की आराध्य देवी दुर्गा भवानी क सम्प्रदाय वालो अर्थात् गोन्धालियो द्वारा किया गया था। वतमान काल म जहाँ कही भी महाराष्ट्र के लोग भारी सख्या में एकत्र हो जाते हैं, ये वीर गाथायें 'इकतारे' (एक प्रकार का वाद्य यन्त्र) पर गायी जाती हैं और यद्यपि किसी परदेसी को चाहे आकृष्ट न कर सकें, तथापि मराठो में सभी वर्गों के लोग इन्हें मन्त्र मुग्ध होकर निरन्तर सुनते ही रहना चाहते हैं। पौवाडा द्वारा उत्पन्न किये गए चित्ताकषक वातावरण का प्रस्फुटन किसी अन्य भाषा शैली म आत्मसात् करना प्राय असम्भव ही प्रतीत होता है। इन वीर गीतो क ग्रामोफोन रिकार्ड भी इस शताब्दी मे प्राप्य हैं और रेडियो कायक्रम म इनको भी समयोचित स्थान दिया जाता है। परन्तु जसा कि श्रीराम शर्मा का विचार है जब पौवाडा का गायन किसी समुत्सुक एव सहानुभूति रखने वाली मराठा भीड के समक्ष गोन्धालियों द्वारा किया जाता है तो इसके प्रभाव की नैसर्गिकता की प्रत्यक्षानुभूति होने लगती है। मलूसरे की अमर गाथा की अंतिम पंक्तियो का अनुवाद जो प्रा० एकवथ द्वारा अंग्रेजी मे किया गया है, उसके हिन्दी रूपान्तर की कुछ पंक्तियाँ नीचे प्रस्तुत की जाती हैं—

"और हे वीर मराठो कान लगाकर सुनो—
तानाजी के वीरतापूर्ण कार्यों को सुनने को भी भीड़ इकट्ठा हो गई है।
तुम्हारे समस्त साम्राज्य में भी,
ऐसा दूसरा वीर नहीं मिल सकता ?
ऊँचे-ऊँचे सात और बीस दुर्गों पर,
उसकी तलवार विजय करती हुई लहराती रही।

.... ..

जहाँ कहीं भी तुम इस गीत को गाओगे तथा सुनोगे—
तुम्हारे पाप क्षमा हो जायेंगे और स्वर्ग निकट आ जायेगा।'

इसी पोवाड़ा की भाँति १८वीं शती के उत्तर काल मराठा में लावनी अथवा प्रेम पूर्ण शृंगार प्रधान लोकगीतों का प्रारम्भ श्री रामजोशी नामक विद्वान द्वारा हुआ किन्तु इसका जन्म जैसा कि भारतीय विद्वानों का मत है मराठा शक्ति एवं समाज के काल क्रमागत नैतिक एवं भौतिक पतन का ही परिचायक माना जाता है।

(३) ऐतिहासिक साहित्य—भारत में ऐतिहासिक साहित्य का सृजन मुगल मानों के आगमन के पश्चात काल में ही अधिकाधिक रूप में किया गया—इस सम्बन्ध में *अधिकांश विद्वानों में मतैक्य मिलता है। तथापि उनके अनुसरण के* फलस्वरूप कल्हण राजस्थानी दरबारी भाटों तथा अर्वाचीन काल में मराठों ने जो अपने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे उन सब में मौलिकता, तिथिक्रम तथा घटनाओं की दृष्टि से मराठी भाषा में उल्लिखित इतिहास ग्रन्थों का ही सर्वोपरि महत्व माना जाता है।

महाराजा शिवाजी के दरबारी कवि परमानन्द ने शिव भारत नामक अपना संस्कृत काव्य लिखा है जो शिवाजी के समय के प्रारम्भिक वर्षों से प्रारम्भ होकर १६६४ ई० तक की समस्त घटनाओं का काव्य में समय समीचीन उल्लेख प्रस्तुत करने की दृष्टि से संस्कृत भाषा का अद्वितीय ऐतिहासिक ग्रन्थ माना जाता है। मराठा इतिहास का एक अत्यन्त महत्वशाली प्रकरण शिवाजी के समय में उनके नेतृत्व में मराठों द्वारा पन्हालगढ़ का आधीनस्थ करने हेतु, किये गये वीरोचित कार्यों से सम्बन्धित है। इस विषय पर जयराम ने संस्कृत भाषा में अपना जो ग्रन्थ प्रस्तुत किया उसका नाम 'अर्नाला पर्वत ग्रहणाख्यानम्' है। इन संस्कृत रचनाओं से कहीं अधिक उपादेय मराठी भाषा में उल्लिखित वे अनेकानेक इतिहास ग्रन्थ समझे जाने चाहिए जो समय-समय पर महाराष्ट्र के स्थानीय विद्वानों द्वारा गद्य में लिखे गये हैं। क्योंकि जैसा कि प्रो० एस० आर० शर्मा का मत है 'इतिहास लिखने के लिए काव्य कभी भी सुविधाजनक माध्यम नहीं हो सकता।

पूना के पेशवा दफ्तर से प्राप्त पत्रों एवं प्रपत्रों के रूप में उपलब्ध विस्तृत ऐतिहासिक सामग्री (पत्र, चल सम्पत्ति की विवरण तालिका तथा डायरी आदि जो इतिहासकार के लिए ज्ञान के प्रामाण्य साधन हैं) के अतिरिक्त मराठों ने 'बखरों' के रूप में अपना जो इतिहास प्रस्तुत किया है उनमें कुछ तो समकालीन हैं और दूसरे अर्थात् बखर परवर्ती भी हैं। समकालीन बखरों में सभासद बखर का नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त चिटनिस बखर, चित्रगुप्त बखर तथा पेशवा बखर आदि कुछ ऐसे ऐतिहासिक साधन भी प्राप्य हैं जो उपर्युक्त समकालीन सभासद बखर से अपनी मौलिकता की दृष्टि से पर्याप्त साम्य रखते हैं। ऐतिहासिक प्रमाणों तथा तिथिक्रम की दृष्टि से 'जेधे शकावली' नामक एक अन्य प्रकार के प्रामाण्य ग्रन्थ का भी भारतीय इतिहास में कम महत्व नहीं समझना चाहिए। तत्कालीन 'राज व्यवहार कोष' तथा 'आज्ञापत्र' जैसी ऐतिहासिक महत्व की रचनाओं का भी मूल्य अत्यधिक है। 'आज्ञा पत्र' का लेखक रामचन्द्र पन्त 'अमात्य' स्वयं था और उसने उसमें शिवाजी के उत्तराधिकारियों के राज्य विषयक मामलों के सम्बन्ध में निर्देशात्मक प्रस्तुत किये हैं, रघुनाथ पण्डित का लिखा हुआ राज व्यवहार कोष संस्कृत के उन तत्सम राजनीतिक शब्दों का संकलन है जो तत्कालीन फारसी इतिहास एवं राजनीति ग्रन्थों में पाये जाते थे। इसकी रचना ग्रन्थकार ने अपने आश्रयदाता छत्रपति शिवाजी की आज्ञा से ही की थी। यह व्यक्ति तंजौर में आविर्भूत १८ वीं शती के रघुनाथ पण्डित से भिन्न है। मराठों के लिए 'आज्ञापत्र' उनके राष्ट्रीय राजनीतिक कोष का महत्व रखता है और इसकी तुलना भारतीय विद्वानों ने मौर्यकालीन कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र से की है।

कुछ आधुनिक विद्वान उपर्युक्त मराठी भाषा में प्राप्य अनेकानेक बखरों को ऐतिहासिक संरचनाओं का महत्व देने के पक्ष में नहीं हैं। तथापि मराठी भाषा के ऐतिहासिक साहित्य ग्रन्थों के एक वर्ग के रूप में इन बखरों की अपेक्षा करना एक अशोभ्य पक्षपात ही माना जा सकता है। परन्तु हम इस बात को भी अस्वीकार नहीं कर सकते कि इन बखरों का उपयोग हम कुछ सावधानियों उदाहरणार्थ-अन्य भाषाओं में तद्विषयक अनेकानेक ग्रन्थों के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन एवं परीक्षण, आदि-को दृष्टि में रखकर ही करना श्रेयस्कर होगा। इस सम्बन्ध में ग्रान्ट डफ के पूर्ववर्ती इतिहास लेखक एडवर्ड स्काट वारिंग द्वारा प्रस्तुत किये गये बखर लेखकों के यथापूर्ण मूल्यांकन की ये पंक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

१ — 'मराठा इतिहास इस प्रकार के नहीं हैं। उनके इतिहासकार कुछ लोग उन्हें यह नाम न देना चाहेंगे। सीधी सरल एवं अकृत्रिम शैली में लिखते हैं वे बिना ठाट बाट की कल्पना अथवा यत्नपूर्ण भाषा के प्रयोग के ही व्यतीत होने वाली घटनाओं का यथार्थ शब्दों में वर्णन करके ही सन्ताप कर सकते हैं। मल्हार राव होल्कर द्वारा पेशवा को भेजे गये पत्र के सिवाय, कहीं पर भी सत्य को छिपाने की

ष्टा नहीं की गई है। उन्होंने निर्णय को न तो पक्षपात पूर्ण बनाने की चेष्टा की है और न भ्रम में डालने की, परन्तु उनमें काल निर्णय एवं ऐतिहासिक क्रमश की अवश्य कमी है।

मराठों की चिरस्थाई अमूल्य देन—स्वतन्त्रता की भावना—प्रो० एस० आर० शर्मा तथा सर यदुनाथ सरकार जैसे विद्वानों ने सत्य ही कहा है कि, मराठों का पतन उनकी सबसे अधिक प्रभावपूर्ण विशेषता—स्वतन्त्रता की भावना के—कारण ही हुआ। उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक जीवन इतिहास का अध्ययन करके हम इसी एक मात्र एवं अकाट्य निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह महान् राष्ट्रीय भावना ही उनके जीवन के प्राय समस्त क्षेत्रों को ओत प्रोत करती हुई दृष्टिगोचर होती है। उनकी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीय विद्रोहात्मक प्रवृत्ति जिसके प्रेरक वीर शिवाजी स्वयं थे के विषय में प्राय सभी इतिहासकारों में मतैक्य मिलता है। राघोबा के देशद्रोह एवं विश्वासघात के पश्चात् से महाराष्ट्र की इस व्यापक भावना का लोप होना अवश्य प्रारम्भ हो गया परन्तु बालाजी पन्त से पेशवा माधवराव के समय तक उनकी यह भावना अविरल रूप में बनी रही जिसके हमें उनके जीवन इतिहास में प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। मराठा सरदारों में एक बाजी राव द्वितीय को छोड़कर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ जिसने अपनी पराजय की सम्भावना का अनुमान लगाते हुए भी बिना अंग्रेजों से युद्ध किये हुए उनके सम्मुख अपने घुटने टेकने की कापुरुषता का लेश मात्र भी प्रमाण प्रस्तुत किया हो। मराठों की राष्ट्र स्वातन्त्र्य की भावना के अंतिम दृढ़ स्तम्भ नाना फड़नवीस का नाम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से ही लिखने योग्य है। उसे इस दिशा में अपने पूर्वजों से महानतम प्रेरणा उपलब्ध हुई थी। महाराष्ट्र के आन्तरिक संगठन के क्षेत्र में शिवाजी ने अपनी राजनीतिक स्थिति को सुरक्षित बनाने के लक्ष्य से उस समय में वर्तमान आदर्शों का अनुकरण अवश्य किया, उनके द्वारा शनैः शनैः किये गये अनेकानेक नवीन सुधार उनकी सुदृढ़ राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना के प्रत्यक्ष प्रमाण समझे जाते हैं युद्ध विषयक मामलों में भी मराठों ने तुच्छ अनुकरणात्मकता को नहीं प्रत्युत मौलिकता को ही समुचित महत्व प्रदान किया। परन्तु कालान्तर में मराठों ने अपनी इस परम्परागत भावना को त्याग दिया और नेतृत्व एवं नवीनतम शास्त्रास्त्रों के लिए विदेशी सहायता पर ही वे निर्भर रहने लगे फलत उनके राजनैतिक पतन की घृणित स्थिति हो गई। इस स्थल पर शिवाजी के विषय में यह उल्लेख कर देना अत्यन्त आवश्यक है कि उन्होंने बम्बई के अंग्रेजी फैक्ट्री के कुछ उच्चकोटि के अफसरों से बारूद आदि के लिये समय समय पर माँग की और यद्यपि वह सफल भी न हुई तथापि यह कहना असंगत न होगा कि वह (शिवाजी)

उस वाह्य सहायता पर कभी भी अवलम्बित नहीं रह सके जैसा कि उनका उत्तरोत्तर विजय से स्वयं सिद्ध है ।

राजनैतिक क्षेत्र की भांति मराठों के सामाजिक एवं बौद्धिक क्षेत्रों में भी कतिपय इतिहासकारों ने उनकी स्वतन्त्रता की भावना का जो किसी सीमा तक अत्यन्त मौलिक एवं महत्वपूर्ण थी, ठीक ठीक मूल्यांकन नहीं किया है। इस स्थान पर उल्लेखनीय है कि संत ज्ञानेश्वर तथा एकनाथ यदि सामाजिक नास्तिक ही कहे जायें तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। उन्होंने अपने कट्टर समकालीनों को भी तत्का लीन रूढ़ियों के विरुद्ध सतत् क्रान्ति करके, उत्तेजित करने से अछूता न छोड़ा। उस समय में प्रचलित पुरोहितों की विस्तृत कर्मकाण्ड विधि में भी धीरतापूर्वक अपने अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सुधारों को समाविष्ट कर दिखाया। इन मराठा संतों ने जिनमें, महार, दर्जी कुन्बी तथा माली आदि निम्न वर्गों के लोग भी सम्मिलित थे, उस समय की सामाजिक प्रतिक्रियावादी कुरीतियों से डट कर लोहा लिया, इस प्रकार उन्होंने यह प्रत्यक्ष करने का महान कार्य सम्पादित किया कि स्वतन्त्रता की भावना को कुछ कुलीन वर्गों के मुट्ठी भर लोगों तक ही सीमित नहीं रक्खा जा सकता है। इस नवीन सम्प्रदाय के प्रवर्तकों ने इसी कारण एवं उद्देश्य को लेकर, जन साधारण में प्रचलित बोलचाल की भाषा में ही अपने उच्चकोटि के नैतिक एवं अनुभूत विचारों का प्रस्फुटन किया। यह प्रक्रिया दक्षिण भारत के महानतम संत ज्ञानेश्वर एकनाथ तथा तुकाराम के समय से ही प्रारम्भ हो चुकी थी और महाराष्ट्र में किसी न किसी रूप में यह आज भी वर्तमान मिलती है।

तथापि यह अनुमान लगाना[1] अब प्रायः कठिन ही प्रतीत होता है कि संस्कृत पण्डितों के समय इन लोगों को कितनी हेय दृष्टि से देखा जाता था। तथा उन्हें अपने सुधार कार्यों में कैसी-कैसी कठोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा होगा। उदाहरण के लिये उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा के इस प्रभुत्व काल में मातृ भाषा (हिन्दी मराठी तथा बंगला आदि) के समर्थकों को 'आदरपूर्ण' स्थान प्राप्त करने में गत अनेकानेक वर्षों से लेकर आज तक कितने ही व्यक्तियों को कष्ट साध्य प्रयास करने पड़े एवं पड़ रहे हैं। इस सम्बन्ध में संत एकनाथ लोगों से क्रुद्ध मुद्रा में यही प्रश्न करते हैं कि यदि संस्कृत (अथवा आजकल अंग्रेजी) देवों से प्राप्त हुई है तो क्या मातृभाषा का जन्म चोरों से हुआ था ? उनके इस कटाक्ष से मातृ

1 क्योंकि यह देशी भाषाओं की साहित्यिक पदाभिवृद्धि का ही युग है, अतः इन भाषाओं के विकास के प्रभात काल में इनके माध्यम से प्रचार कार्य करने वालों को अवश्य ही कठिनाई का अनुभव करना पड़ा होगा।

भाषा के सम्बन्ध में मराठी साहित्य के निर्माताओं की स्वतन्त्र भावना कूट कूट कर भरी हुई है। इसके अतिरिक्त ग्रोवर द्वारा प्रमाणवश प्रस्तुत किया गया यह तर्क और भी अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है, कि यद्यपि पण्डितजन संस्कृत की प्रशंसा आकाश तक करते हैं तथापि उन्हें उसकी व्याख्या करने में लोकप्रिय मातृभाषा का ही अवलम्बन लेना पड़ता है।'

अन्त में अपने विषय का उपसंहार करते हुए प्रो० श्री राम शर्मा ने, मराठों की स्वतन्त्रता की भावना के उत्तरोत्तर लोप का कारण बतलाते हुए यह स्पष्ट करने की सफल चेष्टा की है कि, मराठों के "पतन के समय में जिसका प्रधान कारण अन्त यम था उनकी वीरता हद से आगे बढ़ गई थी।'[1] इसके फलस्वरूप देश में अवज्ञा, हठधर्मी तथा अनुशासनहीनता का प्राबल्य हो गया। उन्होंने आगे यह स्पष्ट कर दिया कि मराठों में 'आत्मसम्मान एवं विशिष्टता की भावनायें गुप्त रूप से बढ़ती रहीं और अन्त में इनके कारण राष्ट्रीयता छिन्न भिन्न हो गई।' यही नहीं उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक एकता का लोप हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं इतिहास नामक समाज शास्त्र मानव मात्र को चेतावनी तथा प्रेरणा देने का अपना कार्य अगणित वर्षों से करता आया है और यही कारण है कि आज भी भूतकाल की भांति महाराष्ट्र की महानता के विधायकों के कतिपय वंशजों में सामाजिक राजनीतिक एकता के गुणों का सर्वथा अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। अन्त में हम अपने इस कथन की पुनरावृत्ति करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करना चाहते कि मराठा 'स्वराज्य' एवं साम्राज्य के दृढ़ान्त विराम काल में नवीन प्रवर्तन साहसिकता एवं स्वातन्त्र्य सम्बन्धी विचार भावना अविरल रूप में उनकी अत्यन्त ही लोकप्रिय निर्माणकारी एवं उत्साहक शक्ति बनी रही जिसके लिये मराठे ही क्या समस्त भारत की अनेकानेक जातियाँ महाराष्ट्र जातीय जनजीवन के उस अप्रतिम देदीप्यमान प्रचण्ड मार्तण्ड छत्रपति वीर शिवाजी की चिरतन काल तक ऋणी रहेंगी।

सारांश—मराठी द्वारा भारतवर्ष को प्रदान की गई सांस्कृतिक देनों में महाराष्ट्र धर्म हिन्दू धर्म सन्तकाव्य ग्रन्थों पोवाडाओं (वीर गाथाओं) ऐतिहासिक साहित्य तथा उनकी चिरन्तन स्वातन्त्र्य भावना आदि का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी इस महान साहित्यिक पृष्ठ भूमि के निर्माता वीर शिवाजी सन्त तुकाराम, एकनाथ तथा समर्थ रामदास विशेष प्रसिद्ध हैं।

Q What do you understand by Maharashtra Dharma? How did it influence the political ideas and achievements of Shivaji?

(R U 1960)

---

1 दे०—एस० आर० शर्मा कृत— 'आधुनिक भारत का निर्माण" पृ०स० ३

Or

How far did the saints and prophets of Maharashtra prepare the ground for the rise of Shivaji? (R U 1962)

Or

What do you understand by Maharashtra Dharma? How did it influence the political ideal and achievements of the Marathas? (R U 1963)

प्रश्न—महाराष्ट्र धर्म से आप क्या समझते हैं ? इसने शिवाजी के राजनीतिक आदर्श तथा सफलताओं को किस रूप में प्रभावित किया ?

(रा० वि० वि० १९६०)

अथवा

महाराष्ट्र के संतों और महात्माओं ने किस सीमा तक शिवाजी के उदय की पृष्ठ भूमि तैयार की ? (रा० वि० वि० १९६२)

अथवा

महाराष्ट्र धर्म से आप क्या समझते हैं ? इसने मराठा जाति के राजनीतिक आदर्शों और सफलताओं को किस प्रकार प्रभावित किया ? (रा० वि० वि० १९६३)

उत्तर—मराठा जाति के लक्ष्य—स्वराज्य तथा प्राय २०० वर्ष तक उसे एक सूत्र में आबद्ध रखने वाली राष्ट्रीय शक्ति और उसके विकास की ओर महाराष्ट्र के बड़े बड़े विद्वानों का ध्यान दीर्घ काल तक आकर्षित रहा है। यह एक अत्यन्त व्यापक विषय है और इसमें मराठा साहित्य परम्पराओं तथा अनेकानेक मराठा संत महात्माओं एवं नेताओं के क्रियाकलापों का पूर्ण समावेश है। इस पर विचार करने वाले सुप्रसिद्ध आधुनिक विद्वानों के लेखों और संस्मरणों का अध्ययन करने से हमें बड़े लाभदायक एवं महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध हो सकते हैं। इस महाराष्ट्र धर्म की पृष्ठभूमि—मराठा इतिहास—पर विस्तृत विचार करने के पश्चात् हम उन मौलिक तथ्यों को क्रमानुसार लिपिबद्ध करने का प्रयास करेंगे जो कि इस क्षेत्र में महान् विद्वानों की खोजों द्वारा उपलब्ध हुए हैं। इन विद्वानों में महादेव गोविन्द रानाडे का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने अपनी महान् चमत्कारपूर्ण रचना—'मराठों की सत्ता का उदय' में स्वयं सर्वप्रथम व्यक्ति के रूप में दक्षिण राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया पर लेखनी चलाकर महाराष्ट्रवासियों के कर्तव्य—महाराष्ट्र धर्म के सिद्धान्तों को, जो कि उसके संचालन तत्व थे लिपिबद्ध करने का सफल प्रयास किया है। इस कथन का मूल अभिप्राय समझने के लिये कुछ अनुसंधानात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है और उसके बाद ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वस्तुत ऐसी कौनसी बात थी जिसके कारण भारत की वर्तमान समस्त जातियों में से केवल मराठों ने ही दीर्घ काल तक अपनी स्वतन्त्र राष्ट्रीय सत्ता को स्थापित रक्खा।

मुस्लिम प्रभाव का दक्षिण में सक्रिय न हो पाना—जिस प्रकार उत्तर भारत सरलता से मुसलमानों द्वारा आधीनस्थ कर लिया गया। जिसके विपरीत नर्मदा के

दक्षिणवर्ती प्रदेश—दक्षिण भारत को वे कभी भी पूर्णतया अपने नियन्त्रण न ला पाये। उत्तर भारत में हिन्दू राजकुमार—जयपाल और पृथ्वीराज चौहान से लेकर राणा सांगा—तक प्राय समस्त राजपूत कठोर सापपूर्वक मुसलमानों को पीछे धकेलने का यत्न करते रहे तथापि उन्हें कोई सफलता न मिल सकी। राजपूत राजाओं का पूर्ण दमन कर दिया गया, वे सम्राटों (मुस्लिम) के सेवक बने और उन्होंने उनसे विवाह सम्बन्ध कर लिये। उन्होंने अपने धर्म एवं अनुशासन सम्बन्धी सारे प्रश्न भी उन मुस्लिम शासकों के अधीन कर दिये। हिन्दुओं के धर्म स्थानों की अवहेलना होती थी मन्दिर गिराए जा रहे थे और उनके पूजा पाठ आदि में मुस्लिम हस्तक्षेप को रोकना सरल न था। कहीं कहीं तो पूरी जनसंख्या की जनसंख्या को ही धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बना लिया गया। हिन्दू मन्दिरों मूर्तियों तथा पुराने संस्कृत के लेखों को पहुँचाई गई अपरिमेय क्षति से अभिज्ञात होने के लिये किसी भी इतिहास प्रेमी को केवल उत्तर भारत के किसी महत्वशाली नगर का ही भ्रमण करना पड़ता है। ऐसे नगरों में धार तथा 'माण्डूगढ़' के नाम उल्लेखनीय हैं। महिकावती (बम्बई के पास माहिम') का एक प्राचीन बखर (Bakhar) की जो सन् १५७८ ई० में भगवान नद दत्त द्वारा सकलित हुआ, तथा जिसमें अनेकानेक अन्य शताब्दियों पूर्व लिखे गये हैं थे, अभी हाल ही में खोज की गई है। इसमें, सन् १३४८ ई० में कोंकन पर मुस्लिम प्रभुत्व स्थापित होने के पश्चात् वहाँ की पतनोन्मुखी धार्मिक स्थिति का उल्लेख इन शब्दों में मिलता है—

'धर्म का पूरा विनाश कर दिया गया, मित्रता और सम्बन्ध के सारे सूत्र समाप्त हो गये तथा क्षत्रियों ने तो देश की ओर अपने सारे कर्त्तव्यों को त्याग दिया था। कुछ लोग तो सामान्य लिपिकों का व्यवसाय करने लगे जब कि शेष सभी लोगों को दासों तथा शूद्रों की ही स्थिति में रहने को विवश कर दिया गया अथवा समाप्त कर दिया गया।[1]

तथापि जिस समय उत्तर भारत के हिन्दू मस्तिष्क ने बर्बरता के सम्मुख घुटने टेक दिये ठीक उसी समय दक्षिण ने मुस्लिम विजेताओं को आगे बढ़ने से बलपूर्वक रोकने में सफलता प्राप्त की और अलाउद्दीन तथा मलिक काफूर जैसे निरंकुश सत्ताधारी भी वहाँ पर अपना स्थाई प्रभाव न जमा पाये। मुहम्मद तुगलक उद्दण्ड हाथों को भी इतना बल न मिल पाया कि वह दिल्ली साम्राज्य के लिये दक्षिण विजय कर सके। तथापि हसन बहमनी ने आवश्यक गुलबर्गा में एक स्वतन्त्र मुस्लिम

---

1 All religion was destroyed ties of friendship and relationship vanished the Khsatriyas lost all sense of duty towards the country Some took up the profession of mere clerks and the rest were reduced to the humiliating position of slaves Shudras while a host of others were wiped out of existence See Sardesai s Main Currents of Maratha History P 10

राजवंश की आधारशिला रख दी किन्तु वह भी व्यवहारतः हिन्दू शासन की ही प्रतिमूर्ति थी, जिसमें मुस्लिम तत्वों का केवल नाम मात्रेण समावेश ही दृष्टिगोचर हो सकता था। दक्षिण में छत्रपति शिवाजी के जन्म के पूर्व पिछले २०० वर्षों में कुछ ऐसी शक्तियाँ सक्रिय रूप से अपना प्रभाव उत्पन्न कर रही थी जिनका कि मूलोद्‌भव था—हिन्दू जाति और धर्म की स्वतन्त्रता। शिवाजी ने तो केवल विघटित तत्वों को एकता प्रदान करने के लिये उत्तेजक सामग्री ही एकत्र करके उन धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर अपना राष्ट्र निर्माण का कार्य सम्पादित किया जो कि हिन्दू समाज में लोकप्रियता प्राप्त कर चुके थे। श्री राजवाडे ने महाराष्ट्र की इस भावना और भारत के दूसरे भागों की धर्म एवं जाति सम्बन्धी धारणाओं में प्रत्यक्ष विभेद करते हुए पहले वाली को 'जयिष्णु' अथवा विजय तथा बाद वाली को 'सहिष्णु अथवा 'उदासीन उत्पीडन' (Passive suffering) की संज्ञा दी है। यह जयिष्णु की भावना ही महाराष्ट्र के सन्त महात्माओं के उपदेशों तथा वहाँ के राष्ट्रनायकों और राजनीतिज्ञों के क्रिया कलापों में प्रत्यक्षतः ओत प्रोत मिलती है।

'महाराष्ट्र धर्म' की अभिव्यक्ति सर्व प्रथम लोकप्रिय मराठी रचना—'गुरु चरित्र' अथवा गुरु दत्तात्रेय का जीवन चरित्र के लेखक ने की। यह ग्रन्थ १५ वीं शताब्दी के लगभग मध्य में लिपिबद्ध हुआ था जबकि अनेकानेक मराठा सन्तों द्वारा इसके दीर्घकाल पूर्व से महाराष्ट्र धर्म के उपदेश दिए जा रहे थे। इतिहास के माने हुए विद्वान स्वर्गीय प्रोफेसर लिमाये की ये पंक्तियाँ इस विषय में उल्लेखनीय हैं कि—"मराठा सन्तों द्वारा जो कुछ भी किया गया उसका रहस्य एक ऐसी नैतिक शक्ति का सृजन करना था जो कि मराठा जाति की राजनीतिक भावना को पुष्ट और सौम्य बना सके। इस राष्ट्रीय चेतना के विकास में दो प्रमुख तत्वों ने योग दिया—एक वह जो पुनराधिक रूप में स्वाधीन जागीरदारों तथा देशमुखों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व की प्रतीक थी तथा दूसरी वह जो कि उस नैतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती थी, जिसे समर्थ गुरु रामदास तथा अन्यान्य सन्त महात्माओं के उपदेशों ने निसृत किया। इन्हीं दोनों विचार शक्तियों का समन्वय हमें शिवाजी के राष्ट्रीय कार्यों में उपलब्ध होता है। स्वयं एक शक्तिशाली मराठा सामन्त के पुत्र के रूप में यथेष्ट शक्ति और प्रभुत्व रखते हुए भी वे सन्तों की पवित्र वाणी द्वारा ही अधिकाधिक प्रभावित थे। उनके पवित्र आदर्शों द्वारा प्रेरित शिवाजी ने उन्हें अपने जीवन में मूर्त रूप प्रदान करने में घोर संघर्ष किया अतः उसकी उद्देश्य-पूर्ति में अपनी स्थिति और प्रभुता दोनों को भयग्रस्त करने को वे सदैव तत्पर रहते थे।"[1]

---

1 What the saints of Maharashtra did was to create the moral force, that would exalt and ennoble the political ideal of the Maratha. There were two main factors making up this national movement the one representing the political power wilded by the more or

यही शिवाजी के जीवन चरित्र का मर्म है और इसी कारण वे जितने महान तथा प्रतिभाशाली व्यक्तियों की कोटि के विस्मरणीय रहे।

शिवाजी से पैतृक तथा विजयनगरी परम्पराओं का समन्वय—शिवाजी अपने पथ के कोई पहले व्यक्ति न थे जिन्होंने राष्ट्र हित का कार्य किया हो। उनके पहले की तीन पीढ़ियों से उनके पूर्वजों ने पूर्ण कर्मठता और कौशल के साथ इस दिशा में अनेक स्मरणीय कार्य किये। वे दो प्रकार की विचारधाराओं से प्रभावित थे—एक वह जो १३ वीं शताब्दी में पंढरपुर के सन्तों और महाराष्ट्र के उत्तर से प्रारंभ हुई तथा जो शिवाजी को माता जीजाबाई के माध्यम से आई एवं दूसरी वह जो दक्षिण की ओर से विजय नगर के राजाओं द्वारा प्रारम्भ की गई तथा जो शाहजी अर्थात् शिवाजी के पिता के माध्यम से आई क्योंकि उनके राजनीतिक जीवन का अधिकांश भाग उन्हीं क्षेत्रों में व्यतीत हुआ था जो कि अतीत काल में विजय नगर राज्य के अन्तर्गत आते थे। उदाहरणार्थ, विजय नगर के शासकों द्वारा धारण की जाने वाली ऐश्वर्य सूचक उपाधियां—'प्रताप चक्रवर्ती' 'समस्त भुवनेश्वराय' 'सम्राट यो पृथ्वी वल्लभ' आदि तथा स्वर्णिम गरुड़ के चिह्न से युक्त उनकी राष्ट्रीय पताका—मराठा इतिहास में अपना मौलिक प्रभाव होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इसी प्रकार विजयनगर के राजाओं से प्रसिद्ध [illegible] ने अश्वारोहण कला की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करके गुरिल्ला युद्ध प्रणाली में जो प्रवीणता उपलब्ध की वह दक्षिण में मलिक अम्बर तथा शाहजी द्वारा मुगल आक्रमणकारियों की बाढ़ रोकने में पूर्ण सफलता पूर्वक प्रयोग किया गया। इसी के पश्चात काल में शिवाजी तथा उनके वंशानुगामी शासकों द्वारा अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिये कुशलता के साथ अपनाया गया। रामराय द्वारा तालीकोट के संग्राम में जाते समय अपनी माता से मांग गये आशीर्वाद के वचनों से हमें उस हिन्दू अस्तित्व का साक्षात्कार होता है जो कि शिवाजी के प्रादुर्भाव के दीर्घकाल पूर्व ही दक्षिण भारत के निवासियों को मुस्लिम अत्याचारियों के विरुद्ध उत्तेजना एवं साहस प्रदान कर चुका था। रामराय ने अपनी माँ से युद्ध स्थल को प्रस्थान करते समय विदाई लेते समय कहा था—हमारा यह देश देवताओं ब्राह्मणों धार्मिकों तथा त्यागियों का पवित्र निवास स्थल है और

---

less independent Jagirdars or Deshmukhs (of whom I am going to speak in a latter discourse) who opposed Shivaji in his early career and the other represented the moral force which the people derived from the preaching of Ram Das and other great saints Shivaji stands forth for the synthesis of the two Himself the son of a great Maratha noble man and as such possessed of power and influence he was thoroughly imbued with the spirit of the teachings of the saints Inspired by their high ideals he strove to realise them in his life and in doing so he was prepared to risk his power and position

कई एक मुसलमान राजाओं ने मिलकर इस पर चढ़ाई करनी है। माँ! मुझे इस भयकर विपत्ति से रक्षा करने के लिये अपनी सैनिक शक्तियों को साथ लेकर रण भूमि को जाने की आज्ञा दो।" इसी प्रकार शिवाजी की भी विद्रोही भावना विजयनगर की विचार परम्पराओं से प्रेरित हुई और उन्होंने अपने पिता शाहजी के उस कार्य का अनुसरण करना अनुचित समझा जो कि उन्हें बीजापुर के शाह की सत्ता में रहकर करना पड़ा था। वह कार्य था—हिन्दू प्रजा पर अत्याचार। शिवाजी द्वारा प्रचारित तथा उनके उत्तराधिकारियों द्वारा राजकीय मोहर के रूप में अपनाई गई इस उक्ति में भी शिवाजी और उनकी प्रजा जिसे वे अपनी प्रजा समझते थे – की राष्ट्रीय प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं—

'शुक्ल पक्ष के पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सदैव पूर्णता का ही प्राप्त होने वाली तथा विश्व के लोगों की स्वामिभक्ति उपलब्ध करने वाली शाहजी के पुत्र शिवाजी की यह मोहर विश्व कल्याण के लिये प्रकाशमान है।'[1]

महाराष्ट्र धर्म का मराठा विचार भावना को अन्त तक प्रभावित करना—महाराष्ट्र धर्म के स्वरूप की औरंगजेब के शासन काल में अभूतपूर्व परीक्षा हुई और इसी का भविष्य में पूर्णतया पोषण भी किया गया। पहले चारों पेशवाओं द्वारा महाराष्ट्र धर्म के आदर्श पालन के इतिहास में अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। उत्तर भारत में उनके द्वारा किये गये कार्यों और स्थापित किये गये सम्बन्धों तथा राजपूतों एवं अन्यान्य जातियों के साथ उनके व्यवहार सम्बन्धों में हम उनके उन देशव्यापी संघर्षों की प्रतिच्छाया देखने को मिलती है जो कि राज्य अथवा सत्ता की प्राप्ति से उतने सम्बन्धित न थे जितना कि मुसलमानों के हाथों से विभिन्न धार्मिक स्थानों जैसे मथुरा, कुरुक्षेत्र, काशी, हरिद्वार, गढ़मुक्तेश्वर, प्रयाग और पुष्कर आदि की मुक्ति से। अन्त में वे इनमें से प्रयाग और काशी को छोड़कर प्रायः सभी स्थानों को स्वयं अपने अधिकार में लेने में सफल भी हो गये। जिस समय शम्भूजी ने निज़ाम हैदराबाद से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये उनके पास शाहूजी द्वारा भेजे गये पत्र की पंक्तियाँ इस चेतना के उदय की दृष्टि से सदैव स्मरणीय रहेंगी—

"यह राज्य देवताओं और ब्राह्मणों का है। भगवान शंकर तथा देवी भवानी के आशीर्वाद ने ही हमारे महान् एवं पूजनीय पूर्वज शिवाजी को इसकी मुसलमानों से रक्षा करने में समर्थ बनाया। यह कितने दुःख की बात है कि तुमने अपने महाराष्ट्र धर्म की उपेक्षा करके उसके ही शत्रुओं के पास आश्रय ग्रहण किया है।"

शाहूजी का सबसे अधिक योग्य पेशवा बालाजी बाजीराव हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता की भावना से इतना प्रभावित था कि एक बार उसने सन् १७५२ ई० में

---

[1] प्रतिपच्चन्द्ररेखेव वर्धिष्णु विश्ववन्दिता।
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

निजाम के दरबार में नियुक्त अपने प्रतिनिधि का पत्र लिखकर उस निजाम को यह स्मरण दिलाने की आज्ञा दी थी कि वे और सभी मराठा लोग महान् छत्रपति शिवाजी महाराज के शिष्य थे तथा वे भारत के अन्य शासकों के साथ अपने सम्बन्धों में अपने धार्मिक सिद्धान्तों का ही अधिकतम महत्व देते थे। पेशवा ने उस पत्र में यह भी स्पष्ट कर दिया था कि वे शिवाजी के कार्य को सम्पन्न करने के लिये तन मन धन से कटिबद्ध थे।

१८ वीं शताब्दी के अन्तिम दशक के प्रारम्भ में सुप्रसिद्ध मराठा राजनीतिज्ञ गोविन्दराव काले भी जो दीर्घकाल पर्यन्त निजाम के दरबार में नियुक्त रहा इसी प्रकार के शब्द लिखता है। उसने नाना फड़नवीस को लिखे गये अपने पत्र में महादाजी सिंधिया की उस अतुलनीय सफलता का भूरि भूरि प्रशंसा की है जो कि उसने दिल्ली सम्राट की प्रशासकीय समस्याओं के सुलझाने तथा मराठा नीति की उद्देश्य पूर्ति में उपलब्ध की। गोविन्दराव के पत्रों से यह प्रकट होता है कि वह वस्तुतः महान् सिद्धान्तों तथा अपूर्व क्षमता का व्यक्ति था और तत्कालीन मराठा वायुमंडल के विचारों का प्रतिनिधित्व करता था। उस समय के मराठा लोग कैसे विचार तथा चर्चा किया करते थे इससे अभिज्ञात होने के लिये हमें गोविन्दराव काले के उस पत्र की इन पंक्तियों पर विचार करना श्रेयस्कर होगा—

मैंने जो कुछ आपके इस अत्यन्त भावनापूर्ण पत्र को पढ़कर अनुभव किया, जिसमें कि आपने दिल्ली में महादजी सिंधिया द्वारा प्राप्त की गई महान् सफलताओं का उल्लेख किया है, यदि मुझे उसकी भली भाँति अभिव्यक्ति करनी हो तो, मुझे पूरे-पूरे ग्रन्थ ही लिखने पड़ जायेंगे। मैं अपने उत्साह और लगन का दमन नहीं कर सकता और अब मैं अपने को सामान्य सीमा से ऊपर उठाकर इतना दृढ़ बनाता हूँ कि आपको अपने मस्तिष्क के कुछ उच्चतम विचार लिख रहा हूँ। भारतवर्ष का विस्तार सिंधु नदी से लेकर भारत के समुद्रतट तक है, सिन्धु नदी के उस पार तुर्किस्तान है। भारत की ये सीमायें महाभारत काल से हिन्दुओं के नियन्त्रण में रही हैं। परन्तु परवर्ती हिन्दू राजाओं ने अपनी प्राचीन सत्ता को खो दिया और यवनों के आगे अपने घुटने टेक कर अब वे पुनः प्रबल बन गये हैं। दिल्ली पर चगताई मुसलमानों ने प्रभुत्व स्थापित कर लिया जो औरंगजेब आलमगीर के समय में अपने चूड़ान्त विकास को पहुँच गया था प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी को ३ रु० ८ आ० जजिया कर चुकाना पड़ता था और दुकानों पर पराया हुआ भोजन विक्रय किया जाता था जिसे क्रय करने को लोगों को बाध्य किया जाता था। इस अत्याचार ने एक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी। युग पुरुष शिवाजी का आविर्भाव, हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिये एक छोटे से स्थान में हुआ था। भारतवर्ष पर हमारे प्रभुत्व के विषय में सभी शंकाओं को समाप्त कर दिया गया है। अब महा

मराठा सेनाओं को लाहौर के मैदानों में अवस्थित कर दिया जाना चाहिये, क्योंकि वहाँ ऐसे असह्य अत्याचारी रहते हैं जो कि हमारे दुर्भाग्य पर प्रसन्न होते और हमारे पतन की थाह लेना चाहते हैं। [1]

महादाजी सिंधिया को नाना फडनवीस ने ऐसे अनेक पत्र लिखे जिनमें उन्होंने उसे सम्राट से हिन्दू धर्म स्थानों को मुसलमानों से लेकर मराठों के शासन में दिये जाने का अनुरोध करने को कहा है। यही प्रयास मराठों ने सम्राट द्वारा गौवध निषेध की आज्ञा प्राप्त करने में भी किया। वस्तुत इस कार्य में महादाजी सिंधिया ने प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की।

महाराष्ट्र धर्म का अर्थ—जिस प्रकार यूनानियों के राष्ट्रीय हित विस्तार में उनकी सभ्यता का स्थान महत्वपूर्ण था उसी प्रकार की स्थिति भारत में महाराष्ट्र धर्म की भी रही है। किन्तु बहुत से विद्वान मराठा जाति के चरित्र और उसकी प्रक्रिया के माध्यम से मराठों के पवित्र आदर्श को समझाने में असमर्थ रहे हैं। तथापि रानाडे के समय से अनेकानेक मराठा विद्वानों ने इस विषय में समय समय पर नवीन

---

1 If I were to adequately express what I have felt, upon reading your most inspiring letter giving an account of the crowning glories achieved by Mahadaji at Delhi, I should have to write volumes still I can not repress my enthusiasm and make myself so bold as to transgress the ordinary limit and write some of the upper most thoughts of my mind India extends from the Indus to the southern ocean beyond the Indus comes Turkistan these limits of India have been under Hindu control since the days of the Mahabharat But some of the letter Hindu Kings lost their old vigour and yielded to the yavanas who therefore become powerful Delhi was captured by the chagtais the culminating point came in the reign of the great Emperor Alamgir Every sacred thread was subjected to a tax of Rs 3 50 nP for payment of Jajia ' Pucca or cooked food came to be offered for sale in shops and people were compelled to by it This oppression brought about a reaction The epoch making Shivaji rose in a small corner to protect the Hindu religion All doubts about our supremacy over India have been set at rest Grand Maratha Armies must now be stationed on the plains of Lahore for there exist countless evil doers, who rejoice at our reverses and try to compass our downfall
See Sardesai— Main Currents of Maratha History —
Page

उदाहरणों द्वारा इस महान सत्य के तत्कालीन अस्तित्व को सिद्ध किया है। महाराष्ट्र के सम्बन्ध में ऐतिहासिक खोजों द्वारा उपलब्ध सामग्री पर अनेक बार गम्भीर विचार विनिमय किया गया है और मराठा इतिहास में इस व्यापक विषय को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है। राधा माधव विलास चम्पू', महिकावती बखर, शिवा भारत परनाल-परवत-ग्रहण आख्यान, 'तालाकोट बखर, दादावला, रामचन्द अमात्य की राजनीति, शाहजी तथा उनके पूवजों के पत्र, एवं पत्रालख, पुरानी भाटों तथा सन्त महात्माओं की वाणी तथा मराठा और पूर्व मराठाकालीन समय के मन्दिरों तथा ब्राह्मणों को दिये गये दानों और अनुदानों से सम्बन्धित राज पत्रें और आलख दिन प्रति दिन खोजों में मिल रहे हैं तथा उनका महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। ये सभी प्रमाण साधन इस तथ्य को सुस्पष्ट करने में पर्याप्त हैं कि मराठा लोगों के मस्तिष्क में महाराष्ट्र धर्म की भावना अत्यधिक दीर्घकाल तक अक्षुण्ण बनी रही है। शाहजी कवियों और साहित्य के संरक्षक थे और उनमें जय राम तथा परमानन्द के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं जिन्होंने कई एक रचनाएँ लिखी हैं जो अभी हाल की ही खोजों में उपलब्ध हुई हैं। राजवाड़े के शब्दों में— महारा ष्ट्रिकों द्वारा आवासित देश महाराष्ट्र कहलाने लगा। ब्राह्मणों से लेकर अन्त्यजों तक देश की समस्त जातियों ने अपना एक नाम 'मराष्ट्र' अर्थात् मराठा उपलब्ध किया। इन मराठों का धर्म ही विस्तृत रूप में महाराष्ट्र धर्म कहा जाने लगा। इसमें चार तत्वों का समावेश है। उदाहरणार्थ—१—देवताओं के लिये किये जाने वाले कार्य तथा शास्त्र प्रतिपादित आचार व्यवहार अर्थात् देवशास्त्राचार २—देशाचार (स्थानीय रीति-परम्पराएं), ३—कुलाचार (वंशानुगत परम्परायें) और ४—जात्या-चार अर्थात् जातीय रीति परम्परायें। इन्हें प्रत्येक महाराष्ट्रवासी व्यक्ति का पालन करना अनिवार्य समझा गया है। इस कथन की पुष्टि में हम म० गा० रानाडे के ये विचार प्रस्तुत करते हैं कि—

वह संचालक शक्ति जो कि अपने बल पर इस देश के जन जन को प्रभावित करती है, वस्तुतः उनके धार्मिक विश्वास की ही अपील है। गत ३०० वर्षों से समस्त भारत प्रत्यक्षतः मुसलमानों के हिंसावादी सम्प्रदाय के साथ अपने नवीन सम्पर्क द्वारा प्रभावित रहा है और वहाँ तथा विशेष रूप से महाराष्ट्र तत्स म्बन्धी क्रिया एवं प्रतिक्रिया बहुत ही विशिष्ट कोटि की रही है।[1]

1 The only motive power which is strong enough to move the masses in this country is an appeal to their religious faith Dur ing the last 300 years the whole of India had been visibly moved by the new contact with the Mohammadan militant creed and there had been action and reaction of a very marked kind practi cally in Maharashtra

मराठा इतिहास को भली प्रकार समझने के लिए इसके समस्त साधनों का उनके मौलिक रूप में अध्ययन करना तथा उनको अच्छी तरह से समझना बहुत ही आवश्यक है।

पवित्र नदियों के किनारे किनारे मराठा प्रभाव के प्रत्यक्ष चिह्न—महाराष्ट्र धर्म के आदर्श के पोषक मराठा शासन के परिणामों को खोज करना बड़ा रुचिकारक है और हम वहाँ की जनता के सामान्य चरित्र की दृष्टि से उनका परीक्षण करना भी वाछनीय है। वस्तुत मराठों द्वारा छोड़े गये चिह्नों में हम व्यर्थ ही ताजमहल अथवा कुतुबमीनार जैसे स्मारकों का व्यय ही देखना चाहते हैं। उन्हें न तो इतना अवकाश सुलभ हुआ और न ही इतनी शान्ति कि वे ऐसे निर्माण कार्य कर सकें। इसके अतिरिक्त उनके पास इतना धन भी न था। तथापि यदि उन्हें ये सब वस्तुएं उपलब्ध भी होतीं तो भी मेरे विचार से उनमें ऐसे कार्यों की ओर कोई आकर्षण न था। मराठा जाति, जैसा कि उनकी भूमि और इतिहास ने उन्हें बना दिया, वस्तुत एक सम्पन्न, चुस्त बुद्धिमान स्वावलम्बी तथा व्यवहारिक जाति है। उनके मस्तिष्क की प्रवृत्ति में जीवन की व्यावहारिकता धैर्य कर्मठता अध्ययनशीलता तथा स्वाभाविकता दूरदर्शिता के लक्षण मिलते हैं जो भावुकता अथवा बाह्याडम्बरों से सर्वथा परे हैं। तथापि जो कुछ भी कोई उनके इस प्रकार के चरित्र से आशा की जा सकती है, उसका जीता जागता चित्र हम दक्षिण तथा अन्यत्र भी विस्तृत रूप में दृष्टिगोचर हो सकता है यदि हम उनके छोटे मोटे निर्माण कार्यों से लेकर दक्षिण की नदियों के तट पर उनके द्वारा निर्मित दुर्गों और मन्दिरों तक के स्मारकों का दर्शन एवं अवलोकन करने के लिए जायें।

जब कभी मराठों की चेतना बल शालिनी बनी तो उन्होंने मन्दिरों घाटों, कुओं, तड़ागों दुर्गों और भवनों का निर्माण कराया तथा जनता की सुरक्षा और संरक्षण के लिये सरायें और नहरें बनवायें। मन्दिर तथा उनकी समीपस्थ भूमियाँ विद्याध्ययन के स्थान थे, जहां वेद और शास्त्र पढ़ाये जाते थे। उनके व्यय के लिए भूमियाँ और अनुदान राज्यों की ओर से प्रदत्त होते थे जिन्हें अन्न छत्र कहा जाता था। मराठों के भवन किसी न किसी अभिप्राय से निर्मित हुए थे और यदि उनका निकट से अवलोकन किया जाये, तो हम उनकी रचना शैली में भाव-गाम्भीर्य तथा सरलता के लक्षण ही उपलब्ध पाते हैं। दक्षिण का काला पाषाण खण्ड गण्डकी नदी से से जाये जाते थे जिनसे निर्मित प्रस्तर मूर्तियाँ बड़ी ही रसपूर्ण होती थीं। ऐसे अधिकांश मन्दिर और मूर्तियाँ चालू मार्गों से काफी दूरी पर मिलती हैं जिसके फलस्वरूप आधुनिक यात्रियों की वहां पर पहुँच भी बड़ी कठिनाई से हो सकती है। आज से भी ३० से अधिक वर्षों पूर्व महाराष्ट्र की निजाम सेवा में मराठा तक पर्यटक कर्मचारी—राव बहादुर सन—का बम्बई प्रेसीडेंसी में पूना तथा कोलाबा जिलों के

लगभग प्रत्यक ग्राम का दौरा करने का अवसर उपलब्ध हुआ । वह निरीक्षण और अध्ययन मे विशेष रुचि रखते थ अत उन्होने डायरी के रूप म कुछ ससमरण लिपि बद्ध करके उन स्मारको के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला है । इन डायरियो के उद्धरण जो अभी हाल हो मे प्रकाशित कराये जा चुके हैं, प्राचीन मराठा शासन के नियमो का मूल्यवान एव रोचक विवरण प्रस्तुत करत हैं जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि वह शासन जसा कि प्राय लोग समझने लगत हैं । अपने ठोस एव महत्वपूर्ण परिणामो से रिक्त न था ।

मूर्तियाँ मन्दिर, कूप, तडाग, जलाशय और दुग उन्हीं सुदूर प्रदेशो म सेवा पदो पर नियुक्त सरदारो और सामन्तो द्वारा बनाये गये दृष्टिगोचर होत हैं जिन्होने दक्षिण भारत को एक प्रकार से अपनी घरेलू राजधानी बना रक्खा था । सिंधिया परिवार के लोगो का 'जम्बगाव, गायकवाडो का डावडी और निम्ब गाँव, तथा होल्करो का चन्दवाड और वफगाव जसे स्थान मराठो के अतीतकालीन निर्माण कार्यों की कला शालयो के उदाहरण प्रस्तुत करत हैं तथापि वे अब बहुत कम सख्या म ही अवशिष्ट बचे हैं । नासिक म पेशवा के भवनों में अब जिले का फौजदारी न्यायालय स्थापित है किन्तु वह स्मारक कला का एक अत्युत्तम उदाहरण है । एक पहाडी पर स्थित जेजुरी' नामक मन्दिर का जलाशय, जो पेशवा बाजीराव के सौजन्य से निर्मित हुआ था, पर्याप्त रमणीक तथा विशाल है । उसके घाटो के मार्ग तथा उन पर स्थित देवालय बडे ही सुन्दर ढग स बने हैं और उनकी रचना शैली में निर्माण कला और सौष्ठव का प्रत्यक्ष दर्शन होता है । पेशवाओ द्वारा निर्मित पन्ढरपुर, थ्योर, चिंचवाड गणपुर आलन्दी के मन्दिर अत्युत्तम कलाशालियो के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । पिम्पलनेर मे भीमा नदी के घाट, पाबल म मस्तानी का छोटा किन्तु सुन्दर मकबरा 'वास' नामक स्थान पर निर्मित सोमेश्वर मन्दिर कर जगाँव और विरुल के मन्दिर और तडाग विठ्ठल शिवदेव द्वारा निर्मित नरसिंह पुर म लक्ष्मी नरसिंह मन्दिर एव भोरगाँव का देवालय और यात्रियो के लिये विश्रामालय और उरन का विष्णु मन्दिर जो कि बिवालकरो' द्वारा बनाये गये थे, ऐसी प्रशसनीय कलाकृतियाँ हैं, जिनका यदि अवलोकन किया जाय तो वे इस बात के जीवित प्रमाण हैं कि मराठा लोग कला ममज्ञता और सौन्दर्य प्रेम क गुणों से सर्वथा विहीन न थे और न उनका शासन ही इतना प्रगति शून्य था कि उनके कोई स्थाई परिणाम न प्रगट हो गये हों ।

मराठा जाति के चरित्र के प्रधान लक्षण व्यवहारिकता एव स्वावलम्बन की छाप हम उनकी कलाकृतियों—मन्दिरो भवनों, पवतीय मार्गों और घाटों पर भी स्पष्ट रूप म मिलती है और मराठा लोग वस्तुत ऊपरी तडक भडक और व्यर्थ क अपव्यय से सर्वथा दूर ही रहे । उन्होंने अपन समस्त निर्माण कार्यों म उपयोगिता और सुरक्षा-क्षमता आदि का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा है जसा कि तत्कालीन सकट

प्रश्न किसी भी हिन्दू जाति के लिए नितान्त आवश्यक था। इसी प्रकार की मराठा प्रवृत्ति हम मराठों के उत्तर भारत म अनेकानेक प्रभाव क्षेत्रों म निर्मित वास्तु कृतियों म भी देखने को मिलती है। यथार्थत लोगों की इस सामान्य धारणा से भी मराठे तो विनाशकारी और लूट पाट के कामों मे ही रुचि लेने वाले लोग होते हैं, उन्हे उनकी कुछ अत्यन्त असाधारण कोटि की वास्तुकृतियों और उनके अवशेषों की ओर आकृष्ट होने से प्रतिबाधित किया है। अभी मराठा क्षेत्रों के अवशेषों की ओर अधिक खोज करने की आवश्यकता है जिससे कि उपलब्ध होने वाली वस्तुओं, पत्रालेखों तथा ऐतिहासिक महत्व के चिन्हों से पाठको और विद्वानों का परिचित होने मे कठिनाई का सामना न करना पड़े। इस सम्बन्ध मे सरदेसाई की पंक्तियाँ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं कि—' मैं अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूँ कि मराठा प्रभाव क्षेत्रों के सभी बड़े बड़े केन्द्रों म पत्रालेख तथा अन्य बहुत ही उपयोगी सामग्री के ढर के ढर उपलब्ध हो सकते हैं जो कि इस समय सच्चे कार्यकर्ताओं तथा सम्पन्न प्रकाशक महानुभावो की खोज तथा सहानुभूतिपूर्ण कार्यवाही की प्रतीक्षा करते हुए प्रतीत होते हैं। वई के 'रास्त मिरज और सांगली के 'पट्टवर्धन औंध और करहद के प्रतिनिधि शृंगारपुर के 'सर्व' तथा शिरके जाधव, मोरे, जेधे, निम्बालकर और घोरपडे सभी के अपने अपने कार्य क्षेत्र और प्रभाव केन्द्र बने हुए थे जो उनकी छोटी छोटी राजधानियों के रूप मे दृष्टिगत होते थे।' इन ऐतिहासिक परिवारों ने २०० वर्षों से भी दीर्घकाल तक अपने केन्द्रों म रह कर तन मन और जन धन से अनेकानेक त्यागपूर्ण कार्य सम्पादित किये थे, यह भारत का एक स्वयंसिद्ध राजनैतिक तथ्य है।[1]

---

1 But mere grandeur waste and lavishness were not in their grain temples rivers conveniences of water and residence hill paths and ghats spacious and convenient dwellings designed more for use and protection than show, have received every attention from the Maratha rules who cannot therefore be charged with the neglect of works of real public utility I can say from my personal experience that heaps of papers and *material of utility are still to be found in all* important centres of Maratha activity awaiting the search and sympathetic of earnest scholars and well to do publishers who care for our historical past The Rastes of Wai, the Patwardhans of *Miraj* and *Sangli the Pratinidhis of Aundh* and Karhad the Surves of Shingarpur, the Shirkes the Jadhavs the Moreys the Jedhes the Nimbalkars and Ghorpades had all their centres of work and influence small capitals so to say of these historical families wherein they concentrated all their attention money and labours for over 200 years

See—Sardesai— Main Currents of Maratha History P 22

मराठा धर्म और संस्कृति के स्मारकों की दृष्टि से गोदावरी और कृष्णा तथा उनकी सहायक नदियों की घाटियाँ बड़ी मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत करती हैं। गोदावरी का उद्गम स्थान—एक पवतीय चट्टानी स्थान 'त्र्यम्बक' पेशवाओं तथा सम्भ्रान्त मराठा परिवारों का एक पवित्र तीर्थ था जहाँ वे अधिकतर आया जाया करते थे। यहाँ से नासिक की ओर कुछ मीलों की दूरी पर हम 'आनन्दवल्ली' तथा 'गंगापुर' नामक स्थान मिलते हैं। इतिहास प्रसिद्ध 'रघोबा की धर्मपत्नी—बाई आनन्दी का निवास आनन्दवल्ली में ही था। इसी प्रकार गंगापुर में पेशवा बालाजी राव की पत्नी—गोपिका बाई—रहती थी जो तीन तेजस्वी किन्तु दुर्भाग्यग्रस्त पुत्रों विश्वासराव माधवराव तथा नारायणराव की माता थी जिनके विषय में अन्यत्र प्रकाश डाला गया है। नारायण राव तो, रघोबा जो उसका चचा था उसके ही कुचक्रों के कारण मारा गया था। अतः उनकी माता—गोपिका बाई—ने अपने गंगापुर के राज महल को त्याग कर नासिक के ठीक सामने पंचवटी में ही आश्रम बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया था क्योंकि वह पुत्र शोक से अत्यन्त सन्तप्त थी। नासिक और पंचवटी के अतिरिक्त सागवो कावरगाँव और कवस्वर आदि स्थानों पर *पश्चात् कालीन पेशवाओं के भवन अवशेष आदि मिलते हैं। इसी प्रकार गोदावरी* के क्षेत्रों में ही पुणतांम्बे, नवासे कायगाँव टोंक निवगाँव, पठन राक्षस भुवन शाहगढ पथरी ब्रह्मेश्वर तथा अन्य बहुत से स्थान भी मराठों के ऐतिहासिक भग्नावशेषों के केन्द्र स्थल माने जाते हैं। वस्तुतः मराठा जाति में पर्यटन तथा निरीक्षण की भावना के अभाव के कारण उसके ऐतिहासिक क्षेत्र में इन महत्वपूर्ण भग्नावशेषों की खोज में भी उनकी बहुत कम अभिरुचि का ही प्रमाण मिलता है अन्यथा ये इतिहास प्रसिद्ध स्थान इस प्रकार से अछूते न छोड़ दिये गये होते।

कृष्णा नदी जो महाबलेश्वर से निकलती है की घाटी और भी लाभदायक अनुसंधानों और सक्रिय अभिरुचि की सम्पादन सामग्री प्रदान करती है। वई, माहूली धाम सांगली करहाड कुरुदवाड तथा वाणी आदि क्षेत्रों में ऐतिहासिक खोज के कार्यों को सम्पन्न करने के लिये वस्तुतः सक्रिय अभियान करने की आवश्यकता है। मराठा जाति के उर्वर मस्तिष्क ने अपने महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन, अपनी नदियों की घाटियों और पर्वतीय चट्टानों पर ही रहकर किया है जिनकी सांगोपांग खोज करना ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से अत्यावश्यक है। मराठा संस्कृति तथा महाराष्ट्र धर्म का देशव्यापी प्रभाव देखने के लिये हमें धार इन्दौर, उज्जैन झाँसी सागर ग्वालियर बाँदा मथुरा, काशी और बिठुर में भी उनकी वास्तुकृतियों का अवलोकन करना पड़ता है जिससे उनके राष्ट्रवाद की सार्वभौमिक सत्ता का यथेष्ट अनुमान हो सकता है।

दक्षिण में शिवाजी के शासन काल में सर्व प्रथम अपनाई गई प्रादेशिक भाषा 'मराठी' को राजभाषा का स्तर प्रदान हो जाने से महाराष्ट्र धर्म के विकास में विशेष

योग दिया। शिवाजी के महान क्रिया कलापों को गद्य भाषा में लिपि बद्ध करके प्रचारित करने में मराठा भाटों तथा कुछ समय के लिये। उनके माध्यम से जीजाबाई के प्रयासों का कार्य भी सराहनीय रहा है। शिवाजी ने राज-व्यवहार कोष की रचना कराके मराठी भाषा तथा संस्कृत को जो लोकप्रियता प्रदान की उसके फल स्वरूप दक्षिण से फारसी भाषा का प्रभाव धीरे धीरे समाप्त ही होने लगा जो किसी समय वहाँ मराठों से भी उच्चस्तर पर पहुँचकर मुस्लिम शासकों की दरबारी एवं लोकप्रिय भाषा बनी हुई थी। इस प्रकार यह महाराष्ट्र धर्म अपने वास्तविक प्रवर्तक शिवाजी के समय से भविष्य में दीर्घ काल तक पल्लवित और पुष्पित होता रहा। महाराष्ट्र धर्म के विकास की जो पृष्ठभूमि दक्षिण के धर्माचार्यों जैसे संत तुकाराम, एकनाथ, रामदास, मोरोपन्त, राम पंडित तथा श्रीधर द्वारा पहले ही तैयार हो चुकी थी उसको राष्ट्रीय स्तर पर लोक प्रिय बनाने में शिवाजी उनके पूर्वजों और उनके अनुयायियों का ही योग रहा है।

सारांश—वस्तुतः महाराष्ट्र धर्म मराठों की उस राष्ट्रीय एवं नैतिक चेतना का ही दूसरा नाम है जो उत्तर मध्यकालीन दक्षिण भारत के राष्ट्रीय एवं धार्मिक पुनर्जागरण के रूप में विकसित हुई थी। इस देशव्यापी चेतना को मूर्त रूप प्रदान करने में संत तुकाराम और रामदास आदि मराठा मनस्वियों ने तन मन धन से त्याग किया। तदुपरान्त शाहजी भोंसले शिवाजी तथा पश्चात कालीन पेशवा शासकों ने स्वाधीन जीवन के स्वप्न को सत्य बनाकर उस चेतना को और भी शक्तिशाली और सार्वभौमिक बना दिया। स्पष्ट है कि महाराष्ट्र धर्म में 'जयिष्णु' की भावना की सर्वोपरि बनी और इसने उत्तर भारत की 'सहिष्णु' भावना से आगे चलकर कहीं अधिक महत्ता प्राप्त कर ली। मराठा इतिहास के स्मारकों में जो कृष्णा गोदावरी और उनकी सहायक नदियों की घाटियों तथा दक्षिण की पर्वत कन्दराओं में अवशेषों के रूप में भरे पड़े हैं, हमें उसी राष्ट्रीय एवं नैतिक अन्तर चेतना अर्थात् महाराष्ट्र धर्म के अमिट प्रभाव देखने को मिलते हैं। वस्तुतः यह एक नैतिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलन था जिसने मराठों को विश्व में एक महान जाति के रूप में संगठित होकर अपने धर्म और परम्पराओं से प्रेम करना सिखा दिया।

?

अध्याय 7

ताराबाई और छत्रपति रामराजा

Q. Skecth the character of Tara Bai

प्रश्न—ताराबाई का चरित्र चित्रण कीजिए।

उत्तर—ताराबाई की राजनीति विषयक असीम दूरदर्शिता—अपने दीर्घ एवं बहुमुखी जीवन के अन्तर्गत ताराबाई ने मराठों पर आयी हुई घोर विपत्तियों का एक लम्बा इतिहास उत्पन्न किया है। अपनी बाल्यावस्था के प्रारम्भ में उसने शिवाजी के गौरवशाली ऐश्वर्य को पूर्णान्त शिखर पर पहुँचते हुए देखा था। वह अपनी किशोरावस्था में ही शिवाजी के राजपरिवार में उनके पुत्र वधू के रूप में प्रविष्ट हो गई। देश में महाराष्ट्र के इस जनक की मृत्यु से फलस्वरूप उत्पन्न हुआ व्यापक शोक सन्ताप उसने अपनी आँखों से देखा था। उसने महाराष्ट्र-वासियों द्वारा मुगल सत्ता के विरुद्ध चलाई गई अन्तिम क्रान्ति का नेतृत्व किया तथा औरंगजेब सरीखे साम्राज्यवादी शासक के विरुद्ध राजनैतिक कूटनीतिक एवं युद्ध संघर्षात्मक प्रायः सभी क्षेत्रों में जो अप्रत्याशित सफलता पाई—उसके लिए उसका नाम भारतीय इतिहास में सदैव ही गौरव के साथ लिया जायेगा। पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की निराशाजनक पराजय का समाचार सुनने के लिए उसे अपने जीवन के अंतिम वर्षों में काल चक्र के बन्धन में फंसकर बन्दीगृह में ही निवास करना पड़ा। यही नहीं राष्ट्र के बढ़ते हुए संकटों तथा निराशा के वातावरण में उसकी ऐसी मृत्यु हुई कि उस पर कोई आँसू बहाने वाला तक न मिला। राजनीति के क्षितिज पर संकटकाल में उसका आशा और साहस के ध्रुव तारे के समान उदय तथा राजनीति के ही अन्तरिक्ष में उसका गौरवपूर्ण अस्त किसी भी राजनीतिज्ञ तथा देशभक्त के लिए असीम प्रेरणा का कारण हो सकता है—इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं।

ताराबाई निस्सन्देह ही भारत क्या समस्त विश्व के इतिहास की एक अद्वितीय महिला [redacted] रूप में न तो सर्वोत्तम न ही निकृष्टतम और न ही अपनी जाति में मध्यम श्रेणी की राजनीतिज्ञ कही जा सकती है। उसकी तुलना न तो आर्क की जोन (Jonn of Arc) से जो देश हित के लिये शहीद बन गई न ही आंग्ल सम्राज्ञी एलिजाबेथ अथवा रूस की जरीना कथेरैईन से और न ही अपने आदर्शों की शुद्धता

के कारण रानी दुर्गावती अथवा सुलताना चाँद बीबी से की जाने योग्य है। तथापि हमें यह मानना पड़ेगा कि सम्राट औरंगजेब अथवा पेशवा शासन के अन्तर्गत महाराष्ट्र के योग्यतम राजनीतिज्ञों एवं योद्धाओं के इतिहास के किसी भी सोपान पर वह एक ऐसी प्रबल महिला के रूप मे परिलक्षित होती है कि जिसकी वे किसी भी दशा में उपेक्षा न कर सके। इस स्थान पर प्रो० ब्रजकिशोर की ये पंक्तियाँ अत्यन्त ही रोचक एवं महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं कि अशान्ति अराजकता अथवा घोर असन्तोष के वातावरण में ही उनकी प्रतिभा का अधिकतम निखार हो सका किन्तु जबकि उसका हार्दिक राष्ट्रवाद तथा सत्ता के हस्तगत के लिये किया गया स्वार्थपूर्ण कर्तृत्व राजनैतिक क्षेत्र में एक साथ ही प्रस्फुटित होना प्रारम्भ हो गया तो राजमाता के मस्तिष्क का सन्तुलन स्थिर न रह सका। इस प्रकार वह धीरे धीरे षड्यन्त्रकारी जीवन व्यतीत करने की ही अधिकाधिक अभ्यस्त बनती गई।

यह स्वाभाविक है कि लोगों की सदैव से इस सम्बन्ध में जानने की विशेष लालसा रही है कि अन्तत इतनी अधिक योग्यतायें रखते हुए भी ताराबाई अपने राजनैतिक जीवन के आदर्श की पूर्ति में क्योंकर असफल सिद्ध हुई। इस स्थान पर सर्व प्रथम हमें यह स्वीकार कर लेना पड़ेगा कि उसकी समस्त राष्ट्रीय असफलताओं के लिये अकेले ताराबाई को ही दोषी ठहराना असंगत है। उसके कार्य संचालक मराठा सरदार सामन्त अबाध रूप से इतने स्वार्थ लोलुप बने रहे कि अन्ततः ताराबाई को भी उनके जैसे मार्ग का आश्रय लेना पड़ा किन्तु एक अबला के रूप में वह इन स्वार्थी सरदारों के मध्य अन्धा धुन्ध संघर्ष ही कर सकी। यदि ताराबाई के सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन में होने वाली एक एक घटना का निकट से अध्ययन किया जाय तो वह अपने मनोबल में वीर शिवाजी से द्वितीय श्रेणी की शक्ति ही परिलक्षित होती है। अपनी समस्त योग्यताओं के होते हुए भी वह वैधानिक रूप में देश का शासन सम्बन्धी कोई उत्थान न कर सकी।

मानव तथा उसके कर्तृत्व का मूल्यांकन करने में समय तत्व का ही सबसे बड़ा हाथ होता है। इसी कारण ताराबाई के समर्थक तथा उसके विरोधी भी समुचित अनुपात में दृष्टिगोचर होते हैं। सर्व प्रथम तो वह मुगल राक्षसों से देश की रक्षा करने वाली भद्र काली का अवतार मानकर पूजित हुई जिसके सम्बन्ध में समकालीन मराठा कवि—गोविन्द[1] ने अत्यन्त रोचक ढंग से अपनी राष्ट्रीय कविता

---

1 See—Sardesai s ' New History of the Marathas Vol I P 362
Our goddess Tulja is blessing us.
The Emperor s powers has come into our hands
Victory is garlanding young Shivaji s neck

लिखी। काला नर म जब शाहूजी का महाराष्ट्र म प्रत्यागमन हुआ तो उसका धूंघट ही उघर गया, वह अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों म अपने किये कराये सारे काय को ही अपनी क्रोधाग्नि म भस्मीभूत कर बैठी, और फिर अपने समकालीन समर्थकों एव शत्रुओं के मध्य इसकी ऐसी दुखद मृत्यु हुई कि अन्तत वह इतिहास मे महाराष्ट्र के जन जीवन को विकास के मार्ग पर अग्रसर होने से रोकने वाली एक दुर्पद महिला के रूप म कुख्यात की जाने लगी। भारतीय साहित्य के अमर प्रणेता सन्त तुलसी की लिखी हुई ये पंक्तियां इस स्थल पर स्मरण हो आती हैं कि—

> का नहिं पावक करि सक, का नहिं सिंधु समाइ।
> का न करे अबला प्रबल केहि जग काल न खाइ।"

आधुनिक मराठा इतिहासकारों में भी राष्ट्रीय इतिहास के अन्तर्गत ताराबाई के वास्तविक स्थान के प्रश्न पर गम्भीर मतभेद मिलता है। इसका कारण यह है कि पेशवा शासन म जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, कोरे राजनैतिक स्वार्थों अथवा उद्देश्यों के हित मे इस ताराबाई ने ही ब्राह्मण बनाम मराठा (Brahmans versus Marathas) का नारा ऊँचा किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की असन्तोष उत्पादक भावना महाराष्ट्र मे व्याप्त करने के उपलक्ष मे उसने अपनी समाधि (grave) म ही प्रवेश करके औरंगजेब से कुछ न कुछ रिश्वत अवश्य पाई होगी[1]। उसने राष्ट्रीय स्वार्थों तथा राष्ट्र सगठन की उपेक्षा करके जातीयता एव जातीय स्वार्थों की ही पुकार मचाई जबकि सम्राट औरंगजेब ने धम की आड में धन एकत्र करने का सफल प्रयास कर दिखाया। होल्कर तथा सिंधिया सरदारों की कौन कहे ताराबाई भोसलों को भी अपने आधीन सगठित न कर पाई। इसका मूल कारण तो यही था कि उसकी पुकार स्वय देश

Delhi is humbled
The Lord of Delhi has lost his lustre
Tara Bai the Rani of Rama is terrible angered
Remember you folks god Shanker commands all this
He has delivered into the hands of the great Destroyer
All the armies of the Lord of Delhi
Indra s court is now laughing
At the misery of Delhi s lord
The queen of Rama ranges in frown on th ebattle field
Take care oh ! Mughals The final end is near
The jewelled crest of the Bhonslas
The giver of good fortune Raja Shiva
Now shines of the throne

1 See—Dr Brij Kishore s Tara Bai and Her Times " P 29

वासियों को ही अजीब प्रतीत हुई क्योंकि उस समय तक उनमें जातीय पक्षपात की भावना न उत्पन्न होने पाई थी और वे अपने पदों वेतनों अथवा जागीरों को ही सर्वाधिक महत्व देने में अपना गौरव समझते थे। यद्यपि ब्राह्मण पेशवा, महाराज मनु के आदर्शों पर ही मराठा समाज का परिष्कार करना चाहते थे तथापि वे अपने जातीय अभिमान को राजनीति एवं रणक्षेत्र में प्रविष्ट होने से किसी प्रकार भी प्रतिबाधित न कर सके। वे ब्राह्मणों को भी समुचित स्थान न दे सके क्योंकि उनमें पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की मात्रा अत्यधिक थी और इनके साथ ही साथ वे भोंसलों से अपने आंतरिक वैमनस्य अथवा प्रतिद्वन्दिता के कारण उनमें भी गयी बीती जातियों को राजनैतिक महत्व देने को अग्रसर होने लगे। चितपावन शाखा के ब्राह्मण पेशवाओं के हाथ में स्थानीय अब्राह्मणों के हितों को कभी भी कोई क्षति न पहुँचने पाई और यही कारण है कि ताराबाई द्वारा ऊँचा किया गया नारा अरण्य रोदन मात्र बन कर रह गया। इस दशा का परवर्ती मराठा इतिहास पर अत्यधिक क्षतिदायक प्रभाव पड़ा।

तथापि ताराबाई के उन पक्षपोषकों की संख्या भी कम न थी जो मराठों की समस्त राष्ट्रीय असफलताओं के लिये देश के ब्राह्मणों पर ही लांछन लादते हैं। किसी भी राष्ट्रीय नायक का गौरव केवल भावनाओं अथवा पक्षपात के बल पर ही कभी भी उन्नत न किया जा सकता है। इसके लिये तो सजीव घटनायें ही वांछनीय होती हैं। कहना न होगा कि इसके लिये ताराबाई को महानतम सुअवसर भी सुलभ थे। यदि उसमें कुछ राजनैतिक विवेक होता तो वह इन्हीं अवसरों से लाभ उठाकर महाराष्ट्र की माता होने की अक्षय कीर्ति की भागी बन सकती थी।

शाहूजी की मुक्ति के पश्चात् उसे इस प्रकार का पहला अवसर प्राप्त हुआ। यदि उसमें उस समय यथेष्ट नैतिक उत्साह तथा त्याग की भावना रही होती तो उसने अवश्य ही शाहूजी के राज्याधिकार का समर्थन किया होता। इस प्रकार सतारा दरबार में वह निश्चय ही शाहूजी की वास्तविक संरक्षिका के रूप में गौरवान्वित हो सकती थी। तब तो छत्रपति परिवार की नैसर्गिक संरक्षिका की भाँति वह सारे महाराष्ट्र में ही लोगों से सम्मानित हो जाती। शाहूजी स्वयं उसके अनन्य भक्त बन जाते। इसके विपरीत उसने उद्दण्डतापूर्वक शाहूजी का अपहर्ता सिद्ध किया। उसने उसकी प्रतिद्वन्दिता करके पन्हाला में पृथक दरबार लगाना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार उसने सारे महाराष्ट्र में विनाशकारी कण्टकों का ही बीजवपन कर डाला। यदि उसने कहीं उस सरल स्वभाव वाले छत्रपति शाहूजी की ही परामर्शदात्री एवं संरक्षिका के रूप में प्रशासनिक कार्यों की देख रेख की होती तो जैसा कि कतिपय भारतीय विद्वानों का मत है पेशवाओं को सर्वोच्च सत्ता अपने ही हाथों में केन्द्रित कर लेने का लेश मात्र भी अवसर न मिल पाया होता। यही नहीं अष्ट प्रधानों को

सत्ता पर भी समय समय पर नियंत्रण एवं सन्तुलन स्थापित करके उसने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर देश की सत्ता को स्वयं अपने ही हाथों केन्द्रीभूत कर दिखाया होता। खेद का विषय है कि ताराबाई ने आवेश और जल्दबाजी में अधीर होकर अपना यह सुअवसर भी खो दिया। फलतः पेशवाओं का उत्कर्ष प्रारम्भ हो गया।

अंत में मुगल शासक के आधीनस्थ (परतन्त्र सामंत के रूप में) शाहूजी को ताराबाई द्वारा कुख्यात् किया जाना भी असफल सिद्ध हुआ। इससे ताराबाई के राजनैतिक सम्मान में कलंक का अत्यन्त ही घृणास्पद धब्बा[1] लग गया। इसके फलस्वरूप उस आपत्काल में भी न तो राष्ट्रीय साधनों का केन्द्रीयकरण ही हो पाया और न ही आन्तरिक प्रशासन में किसी दृढ़ नीति का पालन किया जा सका। अस्तु यह सिद्ध हो जाता है कि उस पूर्व सुसंगठित मराठा राज्य के विभिन्न परवर्ती कुलीन तन्त्रों के रूप में विघटन की उत्तरदायिनी स्वयं रानी ताराबाई ही थी न कि पेशवा। इसी समय कोल्हापुर दरबार की सतारा राजवंश का साथ छोड़ देने एवं उसके प्रति विश्वासघात करने वाले लोगों के प्रति अपनाई गई कुचक्र नीति ने भी कूटनीतिक स्वार्थी मराठा सामन्त सरदारों के लिये और भी अवसर उपस्थित कर दिये। अस्तु कोई आश्चर्य नहीं कि ताराबाई के ही मराठों के प्रति विश्वासघात ने दक्षिण भारत में निजाम को अपनी शक्ति को उत्कर्ष करने में सक्रिय योग दिया। पेशवा का पतन लाने के लिये उसने आंग्रे बन्धुओं नागपुर के भोंसलों, आंग्रे तथा गायकवाड़ सभी से सम्पर्क स्थापित करने का विचार किया। औरंगजेब की भांति ताराबाई की राजनीतिक दूरदर्शिता का भी मराठों के स्वतन्त्रता-संग्राम की पराकाष्ठा के समय दिवाला निकल गया—इसके महाराष्ट्रीय इतिहास में अनेकानेक प्रमाण मिलते हैं।

(२) ताराबाई बनाम औरंगजेब—दक्षिण में औरंगजेब के विजय कार्यों के लिये एक ताराबाई और उसकी मुगल विरोधी संघर्ष नीति ही सबसे अधिक बाधक सिद्ध हुई। वह दो बच्चों तथा एक असहाय[2] स्त्री के साथ ही साथ मराठों का रहा सहा शक्ति को भी ध्वस्त कर देने में सफलता प्राप्त करने के विषय में अपने को पूर्णतया समर्थ समझ रहा था। अतः अब ताराबाई ने उससे संधि याचना करने में ही अपना राजनैतिक कल्याण देखा। ऐसी चेष्टा करके उसने औरंगजेब को भ्रम में ही डाले रखा था। इसी मध्य ताराबाई ने एक और महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उसने मराठों पर दीर्घकाल पश्चात् मुगलों की ओर से आ पड़ने वाली

1 See Dr Brij Kishore Tara Bai and Her Times, P 220
It was Tara Bai who threw the nascent Maratha State born like phoenix out of the fire of Aurangzeb's war into a precarious condition not unlike that of England torn by the wars of king Stephen and Matilda

2 द० सफीर्खां पृष्ठ ४६८।

भयंकर विपत्ति से उन्हें सचेष्ट करते हुए इस दिशा में अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया कि वे वीर शिवाजी द्वारा स्थापित किये गये अपने पैतृक राज्य के न्याय एवं और प्रबलतम पुरुषार्थ करके अपने भाग्य का स्थाई निर्णय करलें। उनके इस पांचजन्य घोष ने, वीरों को शस्त्र धारण कराकर अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए प्रेरित किया और इसकी गूंज से महाराष्ट्र के पवनों पर बना हुआ एक एक दुर्ग मुखरित हो उठा। औरंगजेब से सतत् संघर्ष करने के लिए उस विलक्षण महिला ने अपने ही ढंग के साधन—रिश्वत तथा विनाश काण्ड—अपनाए। उसके पास धन तो था नहीं किन्तु दक्षिण में उसके अराजकता पूर्ण प्रभाव के आधीन ६ मुगल सूबे अवश्य ही विद्यमान थे जिनमें वह अपने लूट खसोट करने के अभ्यस्त मराठा सेनाओं को जागीरें दे सकती थी। उसकी सनदें औरंगजेब की ओर से शाहू को मिली हुई चौथ सरदेशमुखी तथा स्वराज्य से सम्बन्धित तीनों सनदों की भांति ही महत्वपूर्ण समझी जा सकती थीं जिनका प्रयोग केवल तलवार की नोक के बल पर ही किया जा सकता था। अन्यथा मराठा सरदारों को उसके (ताराबाई) द्वारा दी गई सनदों का कोई भी मूल्य न हो सकता था। औरंगजेब के वजीर के समक्ष प्रस्तुत समस्या के विपरीत ताराबाई की समस्या जटिल न थी। दक्षिण भारत से बाहर मालवा और गुजरात पर भी उसने अपनी गृद्ध दृष्टि डाली और उसने इन प्रदेशों में लूट पाट मचाने के लिए अपने साहसी सेनापतियों को प्रस्थित करके उस वयोवृद्ध एवं निस्सहाय मुगल सम्राट के अपने सारे साहस के साथ-साथ उसके हार्दिक मर्म स्थल को भी टूक टूक कर दिया। उसने शत्रु का नैतिक पतन लाने के लिए शिवाजी महान द्वारा अपनाई गई इस नीति का ही अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया कि युद्धों का व्यय, उनमें पाई गई लूट की सम्पत्ति अथवा चौथ के द्वारा ही चलाया जाए। मुगल सम्राट द्वारा व्यय की जन-धन की अपार क्षति प्रो० सरकार के शब्दों में 'सिसफस के श्रम'[1] की भांति ही विनष्ट होती रही। इसी समय ताराबाई ने अपने आधीनस्थ सरदारों को यह विश्वास दिलाने की सफल चेष्टा करली कि औरंगजेब की नीति उनके लिए कोई बोझ न होकर एक प्रकार का वरदान, भरण-पोषण का साधन तथा अर्थ प्राप्ति का अविरल स्रोत बन सकती थी किन्तु केवल उसी दशा में जबकि वे अपने साहस, और दृढ़ता से काम लेना सीखलें। फलतः मराठा दक्कन मुगल सम्राट के दीर्घायु होने की ही कामना करने लगे और मुगल क्षेत्रों से प्राप्त किये गये धन का कुछ अंश वे सहर्ष ही श्रीनी (Shrini) के रूप में मस्जिदों को दान करने में कोई संकोच न करते थे। ताकि सम्राट के प्रासाद से उत्तर भारत का सारा स्वर्ण दक्षिण की दिशा में ही प्रवाहित होने लग जाये यद्यपि इस प्रक्रिया में मराठों को कुछ न कुछ कष्ट अवश्य ही उठाने पड़ते।[2]

1 दे०—सरकार 'औरंगजेब' प्रति सं० ५ पृष्ठ—१४

2 'दिलकशा' पृ० १४१ (अ)।

घोर निराशा में पड़ा हुआ मुगल सम्राट कभी कभी शाहू को बन्दीगृह से मुक्त कर देने की बात भी सोचा करता था। वह उसे ताराबाई का प्रतिद्वन्द्वी बनाकर महाराष्ट्र मे गृह युद्ध की प्रबल अग्नि प्रज्वलित करना चाहता था। परन्तु इस सम्बन्ध मे उसने अपनी राजनैतिक अदूरदर्शिता का परिचय दिया। उसकी सारी कूटनीति विफल हो गई तथा उसके महाराष्ट्र मे जीवन के अन्तिम वर्षों के भीषण युद्धों से उजड़े हुए मराठा देश से ही आगे के कुछ ही समय में वहत्तर महाराष्ट्र का विकास सम्भव हो गया। इस प्रकार उसकी यह नीति जहाँ एक ओर सम्राट को तेजोहत करती रही वहाँ दूसरी ओर इसने ताराबाई के दूरदर्शितापूर्ण चरित्र को किसी सीमा तक प्रतिभाशाली ही सिद्ध करने का अप्रत्याशित कार्य सम्पन्न कर दिखलाया। ताराबाई द्वारा इस प्रकार प्रारम्भ किया गया कार्य पेशवाओं द्वारा पूरा किया गया तथापि इसके नीति निर्धारण में मूलतः उनका कोई प्रभाव न रहा था।[1]

इस सम्पूर्ण समय में महाराष्ट्र के राज्य की सर्वोच्च सचालक शक्ति कोई मन्त्री अमात्य या पेशवा न होकर वह सत्ता से युक्त रानी ताराबाई स्वत ही बनी रही। उसकी प्रशासकीय प्रतिभा एव चरित्र बल ने राष्ट्र को उस भयकर एव जटिल स्थिति में जा पड़ने से बचा लिया जो कि उसके पति राजाराम की मृत्यु के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी । वह एक ऐसी दुधर्ष महिला थी जो राजनीतिक बवडर से आप्लावित देश में चलने वाले प्रचण्ड तूफान पर इतनी सफाई से आरूढ होकर शासन सचालन किया करती थी कि उसके आधीन एक मराठा पदाधिकारी भी उसकी आज्ञा लिए बिना कोई कार्य न कर सका।' मराठा इतिहासकारों में अग्रगण्य प्रो० गोविन्द सखाराम सरदेसाई ने भी ताराबाई की योग्यताओं के विषय में खफी खाँ तथा भीमसेन बुरहानपुरी द्वारा कहे गये शब्दों का समर्थन करके उसके गौरव का ठीक ठीक मूल्याकन करने की चेष्टा की है। ताराबाई सगठन करने में आश्चर्यजनक प्रतिभा का प्रतीक थी और इसने जनसाधारण को राष्ट्र सेवा की ओर अदम्य भक्ति भावना से ओत प्रोत कर दिया था।'[3]

ताराबाई ने सामान्यत अपने श्वसुर वीर शिवाजी की शक्ति केन्द्रीयकरण' सम्बन्धी उसकी नीति का अनुगमन किया कि जिसके बल पर वह अपने पदाधिकारियों की मौलिक प्रतिभाओं को भी विकसित रूप में सभी के हित में उपयोग कर सकते थे। युद्ध कालीन स्थितियों ने उसे राजाराम के समय में प्रचलित सर अन्जामी व्यवस्था को जारी रखने को विवश रक्खा जिसके दूरगामी परिणाम अच्छे न निकले।

---

1 See J N Sarkar s 'Aurangzeb , Vol 5 p —200

2 See Dilkasha p —140 a

3 See G S Sardesai New History of the Marathas Vol, I p —348

ताराबाई का परवर्ती मराठा नीति पर प्रभाव—यदि औरंगजेब की मृत्यु के समय या आस-पास ही ताराबाई की भी मृत्यु हो जाती तो उसे अवश्य ही भारतीय स्त्रीत्व के रक्तिम शृंगार तथा सम्पूर्ण महाराष्ट्र की गौरवशाली कीर्ति के अमर प्रतीक के रूप में पूजित किया गया होता। परन्तु भाग्य चक्र को तो कुछ और ही चित्र दिखलाना स्वीकार्य था। अधिक समय तक जीवित रखकर ईश्वर ने उसके ऐश्वर्यशाली जीवन को ही सदैव के लिये अभिशप्त बना दिया। ईश्वर ने उसके कुछ स्वार्थ-लोलुपतापूर्ण एवं अविस्मरणीय कुकृत्यों के लिये उसको दण्डित करने के बहाने उसे गौरव की सभी प्रकार की शक्तियों से वंचित कर डाला। वह शाहूजी के महाराष्ट्र लौटने के पश्चात्कालीन प्रथम दशक में ही अपनी महत्वाकांक्षाओं के असीम उच्च गगन से गिर कर असफलता के अधिकतम गहरे पाताल में निमज्जित दृष्टिगोचर होने लगी थी। ईश्वरेच्छा से उसका एकमात्र सहारा उसका पुत्र, जिसके लिये उसने अभी तक शाहू के लिये निकृष्टतम कुचक्र करने से भी संकोच न किया था—शिवाजी तृतीय—भी उससे छीन लिया था। तथापि इस चेतावनी से भी वह अपने न्यायोचित एवं पुराने राष्ट्रीय मार्ग पर अग्रसर न की जा सकी। उसने कोई और उपाय सामने न देखकर शाहू से प्रतिद्वन्दिता करने के लिये अपने सौतेले पुत्र सम्भाजी अर्थात् कोल्हापुर राज्य के छत्रपति का अवमानना प्रारम्भ कर दिया क्योंकि इस बहाने वह दोनों मराठा राज्यों का एकीकरण कर लेने का स्वप्न देख रही थी। इस रूप से उसे पेशवा ने सतारा तथा कोल्हापुर दोनों ही राज्यों की समस्या में सबसे अधिक प्रभावशालिनी पाया। परन्तु यदि ताराबाई शाहूजी की संरक्षिका और चाची की भाँति ही रहती तो उसके पास छत्रपति का ठीक प्रकार से प्रभावित करके उसके माध्यम से पेशवा की बढ़ती हुई प्रभुसत्ता को नियन्त्रित करने का एक अच्छा साधन सुलभ रहता। शिवाजी के समय से प्रतिष्ठित अष्ट प्रधानों की संस्था पर नियन्त्रण एवं सन्तुलन स्थापित करके ताराबाई ने उसे प्रशासन का एक अधिकतम बलशाली यन्त्र बना दिया होता और साथ ही छत्रपति की सत्ता में भी किसी प्रकार की न्यूनता न आने पाती। उसके साथ उसकी सहधर्मिणी (सौत) तथा सौतेले पुत्र पुत्र दोनों ने उसे सतारा के बन्दीगृह में रहने के लिये विवश करके वस्तुतः ठीक ही व्यवहार किया क्योंकि अपनी महत्वाकांक्षाओं के आवेश में आकर ताराबाई देश हित को ही क्षतिग्रस्त करने लगी थी। प्रभुसत्ता प्राप्त करने का तीसरा अवसर राजमाता ने शाहूजी की मृत्यु के पश्चात उत्पन्न होने वाली उत्तराधिकार की समस्या में पाया। उसने एक अकिंचन व्यक्ति को रामराजा के नाम से प्रख्यात करके उसे अपना वंश पौत्र घोषित कर दिया। कुछ समय के लिये तो वह अपनी उद्देश्य-पूर्ति में सफल ही दृष्टिगोचर हुई किन्तु जब रामराजा ने उसके नियन्त्रण से मुक्ति पाने की असफल चेष्टा करनी प्रारम्भ कर दी उसने रामराजा को 'एक' बाहरी व्यक्ति ही

सिद्ध कर दिया। ० नत वह अपने जीवन के समाप्तिकाल पयन्त, इस सम्बन्ध म जन साधारण का भ्रम में ही डाल रही क्योंकि उस पर सक्रियतापूर्वक विश्वास अथवा अविश्वास करन का साहस उस समय किसी भी राजनीतिज्ञ म न था। इस प्रकार का आचरण करके वह पेशवा बालाजीराव क फ दे म फँस गयी क्योंकि अपनी विनम्र नीति पर चलकर वह राजमाता से कहीं अधिक चतुर एव दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ सिद्ध हो चुका था। सगोला की क्रान्ति का सचालक यह पेशवा ही था। महाराष्ट्र के सुसगठित राज्य का परस्पर विरोधाभास रखने वाले कुलीनतन्त्री म विकेन्द्रीकरण करने का सारा लाछन अ तत रानी ताराबाई पर ही मढ़ दिया गया।

सन्दिग्ध व्यक्तियों को राज्य म सर्वोपरि स्थान देकर ताराबाई ने एक ऐसी परम्परा को जन्म देने का कुकृत्य करने से सम्मान भी सकोच न किया, कि जिस पर चलकर कोल्हापुर के शासक शम्भाजी द्वितीय की पत्नी तथा अन्य मराठा सरदारों ने देश को जटिलतम स्थितियों म डाल दिया। पानीपत की दुर्घटना के बाद महाराष्ट्र म झूठे 'सदोबा भाऊ' का प्रतिष्ठित किया जाना ताराबाई द्वारा प्रारम्भ की गई परम्परा का ही प्रतिफल था।

सारांश—ताराबाई मराठा राजनीति में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक महिला मानी जाती है। उसने अपनी कूटनीति एव युद्ध नीति के बल पर औरगजेब सरीखे साम्राज्यवादी धर्मान्ध सम्राट को उसके जीवन के अन्तिम वर्षों म कई स्थानों पर घोर पराजय दी। राज्य सत्ता को प्राप्त करने क लोभ से उसने शाहूजी के साथ मत्रीपूर्ण सम्बन्ध न रख कर देश को पर्याप्त क्षति पहुंचाई। उसने उसके विरुद्ध शम्भाजी के सतारा पर उत्तराधिकारी की पुष्टि करके अपनी कोरी स्वार्थपरता का ही परिचय दिया। कालान्तर म उसन रामराजा या पेशवा बालाजी राव दोनों के साथ अपनी विश्वासघातपूर्ण नीति पर चलकर महाराष्ट्र के राष्ट्रीय हितों को तो क्षतिग्रस्त किया ही, साथ ही इसके सामाजिक विघटन की भी जटिलतम स्थिति मे भी योग दिया। अत म यह उल्लेखनीय है कि यदि ताराबाई अपने पति की मृत्यु के बाद जसी देश भक्त शासिका अर्थात् राजनीति विशेषज्ञा की भाँति मुगलों का प्रतिरोध करने मे अपनी बौद्धिक शक्तियों का अविरल गति स उपयोग करती रही होती तो निश्चय ही वह महाराष्ट्र की मुक्ति दात्री के रूप म पूजित होती। अपनी अवस्था की वृद्धि के साथ ही साथ ताराबाई ने अपनी स्वार्थपूर्ण पद लोलुपता को भी पल्लवित एव पुष्पित होने का अवसर देकर जीवन के अन्तिम वर्षों म दीर्घकाल से उपार्जित की हुई लोकप्रियता से हाथ धो लिया। वह भारत के मराठा इतिहास म एक पहेली बन गई और उसके द्वारा देश मे उत्पन्न किये गये वातावरण क प्रभाव अत्यन्त ही दूरगामी सिद्ध हुए।

Q Give a brief survey of Chhatrapati Ram Raja s political career

प्रश्न—छत्रपति रामराजा के राजनीतिक जीवन का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर—छत्रपति शाहूजी की मृत्यु के पश्चात् रामराजा जिसे मराठा नेताओं ने अपना शासक बनाने का निश्चय किया था, को राजधानी सतारा में अपने राज तिलक के निमित्त प्रवेश करने के लिये मृतक शाहूजी के अंतिम संस्कारों के आखरी दिन तक प्रतीक्षा करनी अनिवार्य थी। तत्पश्चात् उसे समारोह पूर्वक शाहूनगर में लाया गया और उसी दिन अर्थात् ८ जनवरी १७५० की शाम को वह समस्त श्रेष्ठ तम मराठा सरदारों के समक्ष राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उस समय प्रतिनिधि की उपस्थिति भी अपेक्षित थी। परन्तु जगजीवन परशुराम जो इस पद का वास्त विक अधिकारी था, उस समय बन्दीग्रह में था, अस्तु राजमाता ताराबाई ने पेशवा के एक साथी भवनराव को ही प्रतिनिधि के रूप में खड़ा कर दिया था। इसी प्रकार अमात्य के पद पर भी नवीन नियुक्ति की गयी। उसके द्वारा की गई रामराजा के गुप्त रूप में पालन-पोषण सम्बन्धी महत्वपूर्ण सेवा से प्रसन्न होकर ताराबाई ने अब उसी को अमात्य का पद प्रदान कर दिया। अष्ट प्रधान मण्डल में इन दो परिवर्तनों के अतिरिक्त कोई नवीन व्यवस्था न की गई। रामराजा को छत्रपति के रूप में मराठों का शासक बनाकर पेशवा ने महाराजा शाहू की इस अंतिम इच्छा को भी सम्पन्न कर दिया।

रामराजा के राजनीतिक जीवन का सेवजन्य प्रारम्भ—जिस दिन से राम-राजा मराठा सिंहासन पर आसीन हुआ उसे यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा था कि सतारा का सिंहासन उसके लिये कण्टकों की शय्या के अतिरिक्त और कुछ भी न था। उसकी पितामही ताराबाई ने अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिये उसे सिंहासन पर बैठाया था। उसकी महत्वाकांक्षा सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित करने की थी जैसा कि वह अपने पुत्र शिवाजी तृतीय को उत्तराधिकार दिलाने के बहाने पहले भी कर चुकी थी। इसका आशय तो यही होता कि गत तीन दशकों में चली आने वाली उस परम्परा का ही अन्त हो जाता जिसके अनुगत छत्रपति नाममात्र का शासक बना रहता था और उसके नाम पर शासन संचालन करने का कार्य पेशवा द्वारा ही होता था। प्रायः सभी आधुनिक इतिहासकार इस सम्बन्ध में अवगत हैं कि वह पिता की अपेक्षा मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों में कहीं अधिक[1] बढ़ा-चढ़ा था। यह

1 दे० पेशवा दफ्तर के आलेख पत्र जिनमें एक भगवन्त राव अमात्य को छोड़ कर प्रायः सभी पदाधिकारी उसे बौद्धिक शक्तियों से सम्पन्न स्वीकार करते हैं। उपर्युक्त अमात्य छत्रपति और पेशवा दोनों से असन्तुष्ट रहता था और उसे रामराजा के पदासीन होते समय ताराबाई ने अपदस्थ भी करा दिया था।

सत्य है कि उसे बाल्यकाल से ऐसे वातावरण में रहना पड़ा था कि उसकी शिक्षा दीक्षा भी न हो पाई थी, किन्तु यदि इस समुचित अवसर अब भविष्य में ही सुलभ हो सकता तो वह अपने इस अभाव की पूर्ति करने की क्षमता भी रखता था। उसकी महत्वाकांक्षा थी कि वह अपने स्वतन्त्र राजनैतिक जीवन का सूत्रपात करके पूर्वगामी छत्रपति के विश्वास पात्र सामन्तों और पदों की सहायता से शासन करता। इस उद्देश्य को ही ध्यान में रखकर उसने ताराबाई को समुचित राज्यवृत्ति दी जाने की व्यवस्था की और साथ ही साथ शासन सूत्रों को अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रारम्भिक पग भी उठाया।

रामराजा पेशवा तथा ताराबाई दोनों का सहयोग प्राप्त करने का इच्छुक था किन्तु इसी समय में वह इनमें से एक भी निर्देश का पालन करने का अवसर बनने को तैयार न था। ताराबाई तथा पेशवा के उद्देश्यों में कोई समन्वय न होने के कारण वसे भी वह इनमें से किसी एक पक्ष का ही अंगीकार कर सकता था। शाहू की मृत्यु पर्यन्त तो ताराबाई तथा पेशवा दोनों ही सुकवार बाई तथा उसके पक्ष पोषकों के विरुद्ध एकतापूर्वक कार्य करते रहे थे परन्तु रामराजा के सत्तारूढ़ होते ही उन दोनों के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गया। ताराबाई ने शाहू के अंतिम संस्कारों से छुट्टी मिलते ही अपनी पेशवा विरोधी प्रक्रिया का सूत्रपात कर दिया था। उसने सतारा के दुर्गपाल प्रयागजी प्रभु तथा अन्यान्य सरकारी अधिकारियों को शपथ ग्रहण कराकर अपना ही स्वामिभक्त बनाने की चेष्टा की उसने पेशवा की शक्ति को ध्वस्त करने के लिए सैनिकों की भर्ती करना भी प्रारम्भ कर दिया था। उसके प्रमुख समर्थक बापूजी नायक ने मल्हारराव होल्कर को भी अपने पक्ष में मिलाने का एक असफल प्रयास किया। होल्कर वस्तुतः पेशवा से उस समय कुछ असन्तुष्ट बैठा था। पेशवा के विरुद्ध निजामुलमुल्क की सहायता करने के लिये अब ताराबाई पुनः तैयार हो गई। उसने रघुजी भोंसले को भी तोड़ने की चेष्टा की किन्तु वह इस कार्य में असफल ही सिद्ध हुई।

उसके इन षड्यन्त्रकारी कुकृत्यों से पेशवा पूर्णतया सचेष्ट था और उसने अब अपने अनुयायियों को रानी ताराबाई पर कठोर एवं गूढ़ दृष्टि रखकर उसकी सभी गतिविधियों को देखते रहने के लिये तैनात कर दिया।

ताराबाई रामराजा को पेशवा के नियन्त्रण से मुक्त कराकर उसे स्वयं अपना ही अनुयायी बनाना चाहती थी। परन्तु इसके विपरीत पेशवा इस नवीन छत्रपति को महाराष्ट्र के संवैधानिक शासक के रूप में प्रतिष्ठित करने का इच्छुक था। राजाराम तथा शाहूजी दोनों ही नाम मात्र के शासक बने रहे थे और इसके परिणाम स्वरूप योग्य मन्त्रियों की देख रेख में मराठा राज्य अपनी राष्ट्रीय प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होने लगा था। परन्तु रामराजा के (दोनों) ताराबाई तथा पेशवा के

तिरेंशों के प्रति अ यमनस्क बने रहने का मूल कारण था—इन दोनों में पारस्परिक ममत्व था ! अतः उसने अब इन दोनों से किसी न किसी प्रकार छुट्टी ही पा लेने का निश्चय कर लिया था किन्तु इसके लिये आवश्यक युक्तियाँ को सोचने एवं उन्हें क्रियान्वित करने की उसमें लेशमात्र भी क्षमता न थी। पुरन्दरे के लेखपत्रों पर विहंगम दृष्टि डालने से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि "यदि राजा ताराबाई के साथ अकेले रहने के लिए ही कुछ समय के लिये छोड़ दिया जाता तो अवश्य ही उसने अपनी स्वेच्छा से उसे बन्दीगृह में डाल दिया होता[1]।" उसने अन्ततः ताराबाई तथा पेशवा दोनों को ही असन्तुष्ट कर दिया। यही नहीं गोविन्दराव (चिटनिस), बाबूजी नायक रघुजी भोंसले जैसे सम्भ्रान्त मराठा सरदारों को भी उसने अप्रसन्न करने में कोई संकोच न किया। अब उसकी परामर्शदात्री उसकी बहन दरयाबाई ही उसके पक्ष में रह गई थी।

उधर ताराबाई छत्रपति की इस उद्दण्डता से अत्यधिक व्याकुल होती जा रही थी, और उसे इस बात से अवगत होकर अत्यन्त ही क्रोध आया कि रामराजा उसके राजनैतिक प्रतिद्वन्दी पेशवा को अपदस्थ करने को तैयार न था। परिणाम यह निकला कि ताराबाई ने रामराजा को अपने पुत्र शिवाजी की वैध सन्तान मानना भी छोड़ दिया और अब वह उसे एक बाहरी व्यक्ति ही सिद्ध करके कुख्यात करने लग गई। इसके फलस्वरूप रामराजा की स्थिति चिन्तनीय बन गई और साथ ही साथ सतारा में अब अन-असन्ताप की एक ऐसी भीषण लहर दौड़ गई कि सैकड़ों मराठा सरदार रामराजा के श्वसुर बुरहानजी मोहिते के निवास स्थान पर एकत्र होकर भूख हड़ताल करने को तैयार हो गये। बुरहानजी मोहिते स्वयं इतना अधिक निराश हो गया था कि उसके विषय में यहाँ तक सूचना मिली कि वह आवेश में सीमा से परे जा रहा था और शीघ्र ही वह आत्म हत्या कर बैठेगा। इस सामाजिक संकट एवं गृह युद्ध की आशंका ने कुछ समय तक शाहू नगर की शान्ति भंग रक्खी और अन्ततः वहाँ पर उत्पन्न होने वाली सम्भाव्य भीषण परिस्थितियों को रोकने के लिये रक्षकों की सेना भी बुलानी पड़ गई।

पेशवा स्वयं गत ७ मास के समय से सतारा में ही रह रहा था क्योंकि वह रामराजा को पहले छत्रपति शाहूजी के दिखलाये गये मार्ग पर अग्रसर करने का अपना दायित्व सम्पन्न करना चाहता था। परन्तु उसे रामराजा की अनस्थिर बुद्धि तथा ताराबाई के कुचक्रों के कारण अपने काम में सफलता न मिल सकी। अन्ततः उसने राज्य के वैदेशिक मामलों को गम्भीर होते देख पूना चले जाने का निश्चय कर

1 See—"Purandare Diaries

If the Raja would live alone with her for any length of time, he is sure to keep her in confinement of his own accord."

लिया। परन्तु उसने रघुजी भोंसले को शीघ्र ही सतारा आने का आदेश भेजा, ताकि वह ताराबाई तथा रामराजा के मध्य कोई स्थाई समझौता कराने का सफल प्रयास कर सके। रघुजी यद्यपि पेशवा से कुछ असन्तुष्ट हो उठा था तथापि उसने इस गम्भीर स्थिति में ठण्डे दिमाग से विचार करके धैर्य से काम लिया। उसकी अपनी आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही शोचनीय बनती जा रही थी और उसे सुधारने के लिये वह बरार, गोंडवाना तथा उड़ीसा—बंगाल में नवीन विजय करके शीघ्र लाभ करने का विशेष इच्छुक था। यह तभी हो सकता था जबकि उसे इस सम्बन्ध में बालाजी राव की अनुमति मिल जाती। इसके अतिरिक्त उसने अपने विवेक से काम लेकर समय की गति के साथ ही चलते रहने में ही अपना कल्याण देखा। वह शीघ्र ही सतारा आ पहुँचा जहाँ उसने अप्रैल १७५० ई० के दिन पेशवा से भेंट करके उससे समझौता कर लिया। तत्पश्चात् १८ वें दिन पेशवा अपने पुत्र विश्वास राव के यज्ञोपवीत संस्कार तथा अपने चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊ के विवाह में सम्मिलित होने के लिये सतारा से पूना वापस चला आया। परन्तु ७ महीनों का यह दीर्घकाल उसने व्यर्थ में ही नष्ट कर दिया था—इसका उसे अत्यधिक खेद था।

ताराबाई पेशवा के सतारा से पूना जाने के पूर्व ही माघ १७५० में अपने दिवंगत पति का वार्षिक श्राद्ध करने के निमित्त सिंहगढ़ चली गई थी किन्तु यह तो उसका ऊपरी दिखावा मात्र था और वह वास्तव में पेशवा के प्रतिद्वंदियों विशेष नाजी नारायण सचिव आदि से बालाजीराव को अपदस्थ करने की अपनी योजना के विषय में आवश्यक परामर्श करने के लिये गई थी। उसने सिंधिया तथा होल्कर को भड़काने का प्रयास भी जारी रखा था। अतः वहाँ के चिटनिस गोविन्द राव मोरेश्वर ने उसकी मेनवा कुचाला का भेद ज्ञात करके उसकी सूचना पेशवा बालाजी बाजीराव के पास भेज दी।

रामराजा की सत्ता के हस्तगत करने के विषय में प्रयास—पेशवा तथा रानी ताराबाई दोनों के सतारा से चले जाने पर रामराजा ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने का एक अच्छा अवसर देखा। इसके लिये उसे तत्काल ही बहाना मिल गया और उसने बालाजी राव पर यह आरोप लगाया कि वह बिना उसकी अनुमति लिये ही पूना चला गया था। उसके बढ़ते हुये क्रोध को और भी प्रज्वलित करने में उसके अयोग्य परामर्श दाताओं जैसे कि घनश्याम मंत्री तथा दरियाबाई निम्बाल्कर दोनों ने अग्नि में घी डालने का काम किया। वह अपनी बहन को एक बड़ी सी जागीर देने को इच्छुक था किन्तु वह इस कार्य को स्वयं अपने ही आदेश के बल पर करने की अधिकार शक्ति से अपने को वंचित पाकर अत्यन्त ही शोकाकुल हो उठा था। अतः उसने अपने क्रोधावेश को किसी प्रकार शान्त करके

रघुजी भोसले को अपने पक्ष में मिलाने के लिये आवश्यक प्रयास करने प्रारम्भ कर दिए। परन्तु उस सरदार ने रामराजा की बात मानने से इन्कार करते हुये उलटे उस पर यह लाञ्छन रक्खा कि शासन अत्यन्त ही निन्दनीय बनता जा रहा था और इसके अतिरिक्त इसके प्रशासकीय उद्देश्यों में एकता का नितान्त अभाव था। उसने यदा-कदा रामराजा से भेंट करके उसकी अनस्थिर नीति के कारण उसकी भर्त्सना भी की। अस्तु अब रामराजा ने अपने पक्ष पोषण के लिये दूसरे सरदारों का मुँह ताकना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु उस ओर से भी उसे कोई सहानुभूति न मिल सकी।

ऐसी गम्भीरतम स्थिति में रामराजा ने अपने आधीन एक सेना सङ्गठित करके स्वयं अपनी ही जिम्मेदारी पर देश का शासन सञ्चालन करने की योजना बनाई, किन्तु इसके प्रबन्ध के लिये उसकी जेब खाली थी। वह स्वयं को प्राप्त होने वाले भत्ते से अपने दरबार का दैनिक खर्च उठाने में ही अनवरत कठिनाइयों का सामना कर रहा था। उस पर कर्जा भी कम न था और उसके निजी कर्मचारी बहुधा अत्यन्त ही विलम्ब से अपने वेतन प्राप्त कर पाते थे। अस्तु उसने दूसरे अनुचित साधनों से धन एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया और इस कुकृत्य में वह यहाँ तक आगे बढ़ चला कि उसने दिवंगत पूर्वगामी छत्रपति की अवयस्क पुत्रियों तक को लूटने की चेष्टा की। उसके कर्मचारी पेशवा से बराबर धन की माँग कर रहे थे और रामराजा ने अपने दरबारियों पर भी यह दबाव डाला कि वे लोग उसे रुपया उधार दे दें।

रामराजा ने पेशवा के विरोधियों—यामाजी शिवदेव, बाबूजी नायक, दादाबा प्रतिनिधि, चिमनाजी नारायण आदि—को भी अपने पक्ष में मिलाने की चेष्टा की ही परन्तु उसने कोल्हापुर के शम्भाजी पर भी दबाव डालने से सङ्कोच न किया। उसे इस बात का भी पता न था कि कोल्हापुर शासक वैसे ही निराश बैठा हुआ था क्योंकि शाहूजी का उत्तराधिकारी बनाने की योजना को राम राजा के पक्ष में त्याग दिया गया था। रामराजा ने यह अफवाह भी फैलाई कि वह ब्राह्मणों के शासन से महाराष्ट्र को मुक्ति दिलाना चाहता था किन्तु सब लोग जानते थे कि उसके पास इस प्रकार की क्रान्ति फैलाने के लिये कोई राष्ट्रीय उद्देश्य न था। अतः परिणाम यह निकला कि रामराजा के बहुत से दरबारी उससे अप्रसन्न होने लगे जिनमें बापूजी खाण्डेराव, तथा गोविन्दराव दाला ही उल्लेखनीय हैं। यह दशा नाना पुरन्दरे की भी हुई क्योंकि उसके छत्रपति को प्रसन्न करने के सारे प्रयास विफल होते जा रहे थे।

नाना पुरन्दर ने अब रामराजा के विरुद्ध पेशवा के कान भरने आरम्भ कर दिये और उसने पेशवा को सतारा की असन्तोषजनक स्थिति पर नियन्त्रण पाने तथा

वहाँ से दरियाबाई निम्बालकर को अविलम्ब हटा लेने के लिये कई पत्र लिखे।[1] तथापि पुरन्दरे के असन्तोष की ज्वाला इतनी अधिक भड़की कि उसने पेशवा को अन्त में अपनी यह चेतावनी भी दे दी कि यदि रामराजा को नियन्त्रण में रखने से सम्बन्धित उसके अपने इन परामर्शों पर न चला गया तो वह शीघ्र ही अपना त्याग पत्र दे देगा। इसी समय रामराजा ने एक ऐसा आचरण किया कि उसके फलस्वरूप वह अपने इने गिने समर्थकों की दृष्टि में भी गिर गया। सिंहगढ़ का षड्यन्त्रकारियों का अड्डा बनते देख पेशवा ने रामराजा से विनम्रतापूर्वक यह माँग की कि वह किला उसके अपने अधिकार में दे दिया जावे। रामराजा इसके लिये तैयार तो हो गया किन्तु शीघ्र ही उसका माथा ठनका और उसने तत्काल ही अपनी उस अनुमति को वापस लेकर सिंहगढ़ के किलेदार को आज्ञा दे दी कि वह पेशवा का उसमें प्रवेश न होने दे।

अन्तत जून १७५० ई० में परिस्थितियों ने अब अत्यन्त ही भीषण रूप धारण कर लिया और नाना पुरन्दरे ने पेशवा के विरोधी ब्राह्मण यामाजी शिवदेव पन्त से ही जा मिलने की घोषणा कर दी तो पेशवा बालाजी राव ने रामराजा की बहन दरियाबाई को सतारा के दुर्ग से बाहर निकाल देने के सम्बन्ध में छत्रपति पर बारम्बार दबाव डालना प्रारम्भ कर दिया। परिणामत रामराजा को अपनी बहन से विलग होना पड़ा किन्तु पेशवा दरियाबाई को अपमानित एवं असन्तुष्ट करने के पक्ष में न था, इसलिये उसने उसे शीघ्र ही प्रसन्न करने के लिये उसके पति निम्बालकर को सर लश्कर का पद देने का वचन दे दिया। वह उसकी समर्थक बन गई और उसने अब अपने भाई पर यह जोर डालना प्रारम्भ कर दिया कि वह पेशवा तथा ताराबाई दोनों से समझौता करके उनके परामर्शों का आदर करने की नीति अपनाये अन्यथा उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उधर ताराबाई के मुख्य परामर्शदाता भगवन्त राव अमात्य के उपदेशों का रामराजा पर कोई प्रभाव न पड़ा था अत अब उसने विवश होकर ताराबाई को यह प्रेरणा दी कि वह मराठा राज्य को पतन के गर्त से बाहर निकालने के लिये यथा शीघ्र रामराजा को बन्दी करने की योजना बनाये और उसे कार्यान्वित कर दे। रामराजा ने भी अब अपने को निरुपाय देख पेशवा के कथनानुसार पूना आकर अपने पारस्परिक मत भेदों का निवारण करने के सम्बन्ध में पेशवा को सूचित किया। उसने पेशवा को लिखा कि उसके राजधानी से बाहर जाने के पूर्व वह वहाँ की सुरक्षा व्यवस्था के लिये रक्षकों की एक सेना सतारा में शीघ्र ही नियुक्त करदे। पेशवा ने उसकी आज्ञा स्वीकार करते हुए सतारा की देख रेख करने के लिये अपने एक अनुयायी फतहसिंह भोसले की अध्यक्षता में एक रक्षक सेना भेज दी।

---

1 Peshwa Diaries

सगोला सम्मेलन—पूना में जून १७५० ई० तक देश के सभी माने हुए नेतागण तथा स्वयं ताराबाई भी पेशवा द्वारा आयोजित राजनैतिक सम्मेलन में भाग लेने हेतु उपस्थित हुए। इसे सगोला की वैधानिक क्रान्ति अथवा पूना सम्मेलन के नाम से प्रसिद्ध किया गया। इस सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ करने के पूर्व पेशवा ने राजमाता से भेंट करके उसे ५००० रुपये भेंट किये। वह अपने समर्थकों भगवन्त राव (अमात्य) चिमनाजी नारायण (सचिव) तथा कुछ अन्य विश्वासपात्र व्यक्तियों को साथ लेकर ही पूना आई थी। वहाँ उसे पेशवा से किसी भी कारणवश विरोध रखने वाले सभी व्यक्ति जैसे कि यशवन्त राव दाभाड़े चिमनाजी नारायण तथा बापूजी नायक आदि भी आ मिले। तत्पश्चात् अगस्त मास में जब रघुजी को साथ लेकर रामराजा भी पूना आ गया तो उससे भेंट करके पेशवा बालाजीराव ने उसके स्वागत में एक विशाल समारोह किया। उसे पेशवा ने रामचन्द्र बाबा के सत मंजिला भवन में टिकाया। रामराजा के पेशवा के प्रति क्रोध में परिवर्तन आने लगा। इस प्रकार व्यवस्था करने के पश्चात् सभा की कार्यवाही प्रारम्भ की गई। पेशवा ने सर्वसम्मति से छत्रपति के क्षेत्राधिकार की सीमा निर्धारित करते हुए उसे मराठा राज्य का नाममात्र का छत्रपति स्वीकार कर लिया और उसके प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रकट की। इस प्रकार उसने रघुजी भौंसले, यशवन्त राव, चिमनाजी नारायण तथा बापूजी नायक आदि के भी असंतोषों को निराकृत करने का यत्न किया। इस महासभा को सगोला सम्मेलन अथवा सगोला की क्रांति इसलिए कहा जाता है कि सगोला का एक छोटा सा किला, पेशवा बालाजीराव वहाँ के तत्कालीन सरदार दादबा प्रतिनिधि के प्रभुत्व से वापस लेकर स्वयं अपने अधिकार में करना चाहता था। इस उद्देश्यपूर्ति में उसे उपर्युक्त प्रतिनिधि तथा उसके मुतालिक यामाजी शिवदेव दोनों के विरुद्ध प्रबल जनमत प्राप्त हुआ था अतः पूना सम्मेलन में इस विषय को भी पर्याप्त महत्व दिया गया और इसी कारण पूना सम्मेलन को सगोला सम्मेलन भी कहा जाता है।

इस महासभा के सम्बन्ध में लेखक ने अपने एक विशिष्ठ प्रकरण के अन्तर्गत विस्तृत प्रकाश डाला है।

रामराजा का ताराबाई द्वारा बन्दीगृह में डाल दिया जाना—पूना सम्मेलन में सभी राज्य पदाधिकारियों की स्थिति के विषय में विस्तृत विचार विमर्श होने के बाद भी ताराबाई[1] रामराजा को इस बात के लिए बराबर धिक्कारती रही कि वह उसके प्रतिद्वन्दी पेशवा के हाथ में कठपुतली बनकर रह रहा था। रामराजा

1 See Brij Kishore s— Tara Bai and her Times' pp 193
'Like a wounded tigress Tara Bai left Poona and angrily wended her way to her stronghold at Satara visiting the temple of Shambhu Mahadev on her way'

नवम्बर १७५० ई० में सगोला पर पेशवा के कर्मचारियों का अधिकार स्थापित कराने के बाद समीपस्थ शिंगणापुर में शम्भू महादेव का दर्शन करता हुआ शाहू नगर को वापस लौट गया। अब उसने अपने भाग्य के निर्णय का सारा दायित्व पेशवा तथा सदाशिवराव भाऊ के ही कन्धों पर छोड़ दिया था। उधर ताराबाई ने पेशवा के विरुद्ध कूटनीतिक एवं सैनिक तैयारियाँ करना पुनः प्रारम्भ कर दिया था और वह अब रामराजा के राज भवन से उसकी दोनों रानियों तथा उसमें रखी हुई बहुमूल्य वस्तुओं को लेकर सतारा के दुर्ग में जा छिपी थी। यद्यपि रामराजा का अनुमान यही बना रहा कि वह शनैः शनैः स्वतः शान्त हो जायेगी अतः उसने तारा बाई पर अपना नियन्त्रण रखने की ओर कोई ध्यान न दिया। अन्ततः ताराबाई ने २२ नवम्बर १७५० ई० के दिन उसे भोंसला परिवार से परम्परागत देवता चम्पा षष्ठी की पुण्य स्मृति में मनाये जाने वाले समारोह में भाग लेने के बहाने आमन्त्रित करके उसको धोखा देकर अपने दुर्ग रक्षकों के द्वारा बन्दी करवा लिया। उस पर कठोर पहरा लगा दिया गया और इस समय से लेकर पेशवा माधवराव के सत्तारूढ़ होने के समय तक और ताराबाई के शेष जीवन भर रामराजा को बन्दीगृह की ही हवा खानी पड़ी।

अध्याय 8 मराठी कला-कौशल एवं साहित्य

Q. Write a short essay on the development of the Art and Literature in 17th and 18th century in the Maharashtra

प्रश्न—१७ एव १८वीं शताब्दी के महाराष्ट्र में कला और साहित्य के विकास पर सूक्ष्म निबन्ध लिखिये।

उत्तर—मराठों ने दिग्विजय करने म ही अपना अधिकांश समय व्यतीत कर दिया और इसी कारण वे अपनी कला कौशल की उन्नति करने म समुचित ध्यान न दे सके। राजकीय स्तर पर तो कलात्मक कृतियों का सृजन नाम मात्र ही हो सका किन्तु जन साधारण वग ने अवश्य ही अपनी कला-कौशल सम्बन्धी वस्तुओं का निर्माण करने की ओर यथासम्भव ध्यान अग्रसर किया। इनम उनके द्वारा मन्दिरों के रूप म निर्मित वास्तु-कृतियों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन वास्तु-कृतियों म एव इनके अतिरिक्त साहित्यिक कृतियों म भी हमें महाराष्ट्र धम की आत्मा के विशेष दर्शन होते हैं। अस्तु सवप्रथम हम उन्ही कृतियों का वणन करने का प्रयास, करेंगे जिन्हें वहाँ के राजा महाराजाओं और सेठ महाजनों ने महाराष्ट्र धर्म से प्रेरित होकर जन साधारण के लाभाथ निर्मित किया।

मराठा वास्तुकला—हिन्दू धर्म के आदर्शों स प्रेरित होकर मराठा सरदारों, महाजनों तथा अन्याय श्रणी के लोगों ने महाराष्ट्र मे स्थान स्थान पर सुन्दर एव भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। इस सम्बन्ध म श्रीगोपाल दामोदर तामस्कर ने लिखा है कि 'वाई में रास्तों ने, मीरज और साग्ली म पटदवर्धनों ने, चन्द्रचूड़ म मारोन्कर ने, नासिक मे ओन्कर ने कई स्थानों पर नाना फड़नवीस ने और प्रसिद्ध, अहिल्याबाई ने लगभग सब बड़े बड़े स्थानों मे मन्दिर बनवाये हैं।' कुछ पेशवाओं ने भी इस दिशा मे प्रशसनीय काय किया। आवागमन की सुविधा के लिये महाराष्ट्र मे व्यापारिक मण्डियों स लेकर बड़े-बड़ तीर्थ स्थानों तक सड़कें यात्रियों को आराम पहुँचाने के लिए धमशालाय एव सरायें बनवाई। जल के अभाव को निराकृत करने हेतु कूप-बावड़ी तथा तालाब इत्यादि तथा सिंचाई की सुविधा की दृष्टि से छोटे-बड़े बाँधों आदि का निर्माण इस शताब्दी (१८ वीं) में बड़े ही उत्साह के साथ कराया जाता था। मराठा शासकों ने बड़ी बड़ी नदियों पर पुल तथा उनके

किनारे किनारे मनोरम घाटों का निर्माण कराया। इस क्षेत्र में वे व्यक्तिगत सादृश्यों को विशेष रूप से अग्रसर करना चाहते थे। फलतः व्यक्तिगत रूप में कराए गये इन निर्माण कार्यों में बनावट की दृष्टि से पर्याप्त विभिन्नता परिलक्षित होती है। स्वभावतः मितव्ययी होने के कारण यहाँ के व्यक्तियों द्वारा निर्मित वास्तु कृतियों मे दिखावट के स्थान पर उपयोगिता की ओर ही अधिकाधिक ध्यान दिया जाता था। ये मन्दिर इन्होंने बहुधा ऐसे ही स्थानों पर बनवाये जहाँ जल तथा पूजा-पाठ की विभिन्न वस्तुओं को सरलता से प्राप्त किया जा सके। यही नहीं मन्दिरों के आसपास के क्षेत्रों का धन धान्य सम्पन्न होना भी वाँछनीय रहता था। वस्तुतः इन स्थानों की पवित्रता के कारण चोर लुटेरे आदि न फटक पाते थे। मराठे अपने इन छोटे बड़े मन्दिरों में ही बैठकर गाँव अथवा नगर अथवा राज्य से सम्बन्धित अपने सारे सामाजिक एवं धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न किया करते थे। इस सम्बन्ध मे आज भी अनेकानेक ऐतिहासिक एवं सजीव प्रमाण महाराष्ट्र मे देखे जाते हैं।

उनके प्राचीनतम मन्दिर तो अधिकांशतः प्रस्तर खण्डों के ही बने हुए पाये गये हैं। परन्तु उन्होंने ईंट चूने का प्रयोग करना बहुत ही देर में प्रारम्भ किया। मन्दिरो पर शिखर बनाने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। शिखर से जमीन तक लोहे की एक जंजीर भी लटका दी जाती थी ताकि उल्कापात या बिजली गिरने से मन्दिर को धक्का न लगने पाये और आवश्यकता पड़ने पर उस मन्दिर के शिखर पर चढ़ने में भी सुविधा मिले। वे कालान्तर में जबसे कि मन्दिरों को बनाने में ईंट चूने का प्रयोग होना प्रारम्भ हुआ अपने देवस्थानों पर गुम्बज भी बनाने लगे थे। यह प्रथा सम्भवतः मुस्लिम काल मे ही प्रारम्भ हुई थी। प्रायः सभी इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि मराठा वास्तुकला शैली मुस्लिम कला के प्रभावों से भी प्रभावित हुई थी। पेशवा शासकों के समय में वहाँ जितने भी मन्दिर बने उन सब में हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों प्रकार की कला शैलियों का सम्मिश्रण प्रत्यक्ष रूप मे देखा जाता है। मन्दिरो का नीचे का ढाँचा बहुधा प्राचीन ढंग का ही होता था किन्तु उनके ऊपरी भाग का ढाँचा नवीन कला शैली का होता था।

मन्दिरों की सजावट एवं उन पर मेहराब या कमान बनाने की प्रथा— हिन्दू कला शैली से ओत प्रोत इन मन्दिरो की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता—मेहराब अथवा कमान—प्राचीन काल मे किन्नर युग्म के नाम से जानी जाती थी। इनमे नीचे की ओर दो मानवी मूर्तियाँ बनी रहती थी जिनके ऊपर छोटे छोटे अर्धवृत्तों के आधार की मेहराब बनाई जाती थी। मेहराब बनाने की यह शैली हिन्दू वास्तुकला शैली का उदाहरण मानी जाती है। मराठे कभी-कभी मुसलमानी ढंग की मेहराबें भी अपने भवनो एवं मन्दिरों पर बनवा दिया करते थे तथापि इसका बनवाना अनिवार्य न था और ऐसे कई एक मन्दिर भी पाये गये हैं जिनमे मेहराब नाम मात्र के लिए

भी नहीं दिखाई पड़तीं। महाराष्ट्र वासी सदा से सादगी को ही पसन्द करते आये हैं और इसीलिये, उन्होंने ताजमहल जैसी अनुपम एवं ऐश्वर्यशाली इमारत बनवाने की ओर कभी भी ध्यान न दिया। व्यसन एवं शौक की बातें उनमें बहुत ही कम दिखलाई जाती हैं। उदाहरणार्थ नक्काशी एवं पच्चीकारी से युक्त भवन महाराष्ट्र में इने गिने ही दृष्टिगोचर होते हैं। शिवाजी, शाहूजी तथा महादाजी सिंधिया द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले छत्र अत्यन्त ही सादे थे। दिवंगत महापुरुषों की पुण्य स्मृति में वे बड़े बड़े छत्रों से युक्त समाधियाँ अथवा मकबरे बनवाने की अपेक्षा, मन्दिर बनवाने में ही अपने अर्थ एवं श्रम की सार्थकता समझते थे। यही नहीं कभी कभी मन्दिर के नाम के साथ अपने अथवा अपने श्रद्धास्पद के नाम भी जोड़ दिया करते थे। मन्दिरों में स्थापित की जाने वाली बहुतेरी मूर्तियाँ महाराष्ट्र के बाहर से ही मँगाई जाती थीं। वे बहुधा गण्डकी प्रस्तर मूर्तियाँ भी अपने मन्दिरों में प्रतिष्ठित करते थे।

बाड़े भवन प्रासाद एवं नगर :—इस देश में उत्तर भारत के समान बड़े बड़े बाड़े (अहाते) तथा विशाल भवन प्रासाद बनाने की प्रथा भी विशेष न थी। केवल बड़े-बड़े सामन्त सरदार ही इन्हें बनवा पाते थे। वे चतुर्भुजाकार ही होते थे और इनके चारों ओर एक ऊँची एवं विस्तृत दीवाल बनाई जाती थी। महाराष्ट्र में इस शताब्दी में (१८ वीं) बाह्य शत्रुओं का अत्यधिक भय होने के कारण पारिवारिक भवनों एवं मन्दिरों आदि में बहुत अधिक खिड़कियाँ तथा द्वार बनवाने की प्रथा से भी परहेज रक्खा गया। घरों के आसपास बगीचे बनवाना तथा उनमें सुन्दर-सुन्दर फव्वारों का निर्माण कराना धनी मानी व्यक्तियों के ही वश की बात थी। वे अपने भवनों के समीप सेवकों तथा रक्षकों के रहने के लिये पृथक घर बनवा दिया करते थे यहाँ के नगरों को बसाते समय किसी पूर्व निर्धारित योजना के आधार पर ही निर्माण कार्य करने की प्रथा भी न थी। कारण यह है कि ये नगर मूलतः छोटे अथवा बड़े बड़े ग्रामों के रूप में ही थे और शनैः शनैः उन्नति करते ये सुविशाल नगरों के रूप में विकसित हो गये। इनकी सड़कें तथा गली-कूचे टेढ़े मेढ़े एवं संकीर्ण थे और सामान्यतः बरसात समय में भी वसे ही हैं। इनमें से होकर काफी सावधानी के साथ ही निकलना पड़ता था। घरों से निकलने वाली नालियाँ सड़क के किनारों की नालियों को अपनी गन्दगी एवं दुर्गन्ध से दूषित करती रहती थीं। माधवपुर सांगली तथा झाँसी में कुछ नये शहर भी मराठों ने बसाये हैं। इन्हें उपयुक्त दोषों से रहित रखने की पूरी-पूरी चेष्टा की गई है। मराठा लोगों के मकानों के छप्पर भी बहुधा एक-दूसरे से सटे हुए होते थे। मराठों ने अपने कुछ नगर मुस्लिम शैली के नगरों की योजना व्यवस्था को भी ध्यान में रखकर निर्मित कराये हैं।

जल की व्यवस्था—मराठों ने अपनी बस्तियों में जल का अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। आजकल की भाँति उस समय भी बड़े बड़े नगरों में पानी की विशेष व्यवस्था करनी पड़ती थी। सतारा, पूना आदि में इस प्रबन्ध के अवशेषों को देखकर हम उनके द्वारा उस समय में की गई जल व्यवस्था का थोड़ा बहुत अनुमान स्वयं कर सकते हैं। उस समय आजकल के जैसे घर घर नल तो थे नहीं, हाँ! स्थान स्थान पर हौज अवश्य बनवा दिये जाते थे जिनमें से जन साधारण वर्ग के लोग पानी भर सकते थे। इन हौजों में बाँधों से नलिकायें काटकर पानी लाया जाता था। इस प्रकार के चार बाँधों का पानी अकेले पूना नगर में ही उपयोग में लाया जाता था। आजकल के इन्जीनियर लोग भी इस प्रकार के सुन्दर जल प्रबन्ध की प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार मा गाँव में भी दो छोटी छोटी नदियों को बाँधकर पानी का प्रबन्ध किया गया था। उसका कुछ अवशेष आज भी देखने को मिलता है जिससे उस समय की शिल्पकला का यथेष्ट अनुमान हो जाता है। महाराष्ट्र में इस प्रकार के अनेकानेक बाँध निर्मित कराये गये थे जिनमें से कई एक तो पुलों का काम भी करते थे। उस समय में कई प्रकार के पुलों का निर्माण भी कराया गया। उनमें पूना के कुम्भारे का पुल विशेष रूप में उल्लेखनीय है। वहाँ का लकड़ी का पुल भी काफी पुराना प्रतीत होता है। तथापि महाराष्ट्र में आजकल की भाँति ऊंचे ऊंचे पुलों की संख्या बहुत ही कम थी। बहुधा मत्स्य पद्धति के पत्थर के पुल ही उस समय में बनाये जाते थे।

महाराष्ट्र वासी उस समय भी नदियों में स्नान करने तथा उनके तटों पर अपने धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने में विशेष रुचि रखते थे। वहाँ भी नदियों के किनारे मनोरम घाटों का निर्माण करने की प्रथा प्रचलित थी। कृष्णा एवं गोदावरी नदियों के किनारे किनारे बसे हुए नगरों में घाट बनाये गये थे। नासिक नगर में नदी का घाट बनाने के लिये नदी का प्रवाह तक बदल दिया गया था। अहिल्या बाई ने अपने राज्य में कई एक घाटों का निर्माण कराया था। उसके बनवाये हुए घाटों की ख्याति भारत के कोने कोने में फैली हुई है। घाटों का निर्माण करने की प्रथा महाराष्ट्रियों ने उत्तर भारत के सम्पर्क में आने से और भी व्यापक रूप में प्रचलित की।

मराठी भाषा एवं साहित्य

मराठी भाषा की उत्पत्ति—भारतवर्ष में प्रचलित अनेकानेक प्रान्तीय भाषाओं में मराठी का स्थान भी विशेष महत्वपूर्ण है। यद्यपि देश में मराठी भाषा भाषियों की संख्या हिन्दी अथवा बंगला बोलने वालों की अपेक्षा बहुत ही कम है तथापि साहित्य एवं एक प्रान्तीय भाषा के महत्व को ध्यान में रख कर इसे हिन्दी अथवा बंगला से किसी भी रूप में कम न समझना चाहिये। वर्तमान सभी देशी भाषाओं की उत्पत्ति

के विषय में अभी तक प्रतिपादित किये गये मत मराठी भाषा पर भी लागू होते हैं। आर्यों की भाषा संस्कृत तथा भारत के मूल निवासियों द्वारा बोली स्थानीय भाषाओं के सम्मिश्रण के फलस्वरूप कई एक अपभ्रंश भाषाओं जैसे कि पंजाबी शौरसेनी मागधी एवं महाराष्ट्री आदि का जन्म हो गया। इन्हीं भाषाओं के कतिपय लोकप्रिय शब्दों से युक्त आर्यों द्वारा दैनिक बोल-चाल में प्रयोग की जाने वाली प्राकृत भाषा का जन्म भी इसी प्रकार हुआ था। ग ने ग ने शौरसेनी पैशाची, मागधी एवं महाराष्ट्री भाषाओं के भी अपभ्रंश बनते गये। उन्हीं से प्रभावित काल की प्रचलित भाषाओं की भी उत्पत्ति हुई। मराठी भाषा के जन्म के विषय में श्री राजवाड़े का मत तो यह है कि आर्य लोग जिस समय आर्यावर्त से दक्षिणी प्रदेशों में प्रविष्ट हुए, उस समय वे अपनी वैदिक संस्कृत के साथ ही साथ अपनी दैनिक बोल चाल में महाराष्ट्री भाषा के शब्दों को भी प्रयुक्त करते थे। उनमें से अधिकांशतः पढ़े लिखे सुसभ्य लोग तो वैदिक संस्कृत ही बोलते थे। किन्तु गवार तथा कम पढ़े लिखे लोग महाराष्ट्री ही बोल सकते थे। इसी महाराष्ट्री भाषा से मराठी की उत्पत्ति हुई है।

महाराष्ट्री का परिवर्तन होते होते उसका वर्तमान मराठी रूप किस समय में विकसित हुआ—यह निश्चय पूर्वक बतलाना अत्यन्त ही कठिन है। अनुमानतः उसका प्रारम्भिक स्वरूप तीसरी अथवा चौथी शताब्दी में ही सामने आया। वर्तमान समय में उस समय की मराठी भाषा में लिखे गये कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। किनारे किनारे तथापि इस अनुमान की निश्चितता के लिये कोई ठोस प्रमाण देना कठिन ही है और अनुमान के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना भी संगत नहीं प्रतीत होता कि ईसा की तीसरी अथवा चौथी शताब्दी में ही मराठी भाषा में ग्रन्थ रचना होने लगी होगी अथवा सुसभ्य भारतीय इसका लौकिक अथवा पारलौकिक कार्यों में उपयोग ही करते रहे होंगे। वस्तुतः कठिनाई यह है कि इस समय का कोई भी लेख उपलब्ध नहीं होता तथापि कतिपय शिलालेखों के आधार पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि बारहवीं शताब्दी में वर्तमान बम्बई प्रान्त से अधिकांश भाग में जनसाधारण वर्ग के द्वारा मराठी भाषा का आमतौर से उपयोग किया जाता था। इस समय से लेकर १५ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मराठी भाषा पर कोई विशेष बाह्य प्रभाव न पड़ सका। अतः इस भाषा की इस समय सर्वांगीण इतिहास इस स्थान पर न देकर हमें इसके पश्चात् कालीन विकास क्रम पर समुचित प्रभाव डाल देना ही उपयुक्त समझते हैं।

चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शती के मराठी कवि एवं मराठी भाषा में परिवर्तन

चतुर्दश शताब्दी के सन्त कवि 'महिरा पिसा' का इतिहास में विशेष स्थान माना जाता है। कहा जाता है कि उसका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त ही असन्तोषजनक बीता क्योंकि उसकी पत्नी उसे बड़े कष्ट देती थी।। अस्तु वह हार मान कर अपना घर द्वार छोड़ सन्यासी हो गया था। भागवत् महापुराण के दशम स्कन्ध की उसके

द्वारा लिखी गई टीका अत्यन्त ही उत्कृष्ट कोटि की मानी जाती है। मराठी के सुप्रसिद्ध कवि श्रीधर स्वामी ने भी कालान्तर मे जब भागवत की टीका लिखी तो उसने 'बहिरापिसा' की उपयुक्त टीका का ही अपने ग्रन्थ मे अधिकाधिक प्रयोग किया। उसकी इस रचनाकृति के साथ ही साथ 'बहिरापिसा' की टीका का भी देश में प्रचार हुआ जिसे पढकर न केवल महाराष्ट्र के भावुक व्यक्तियों में ही आनन्द का समुद्र लहरें मारने लगता है प्रत्युत अभावुकों को भी नसर्गिक आनन्दानुभूति होने लगती है। निमल पाठक नामक कवि ने पचतन्त्र का मराठी अनुवाद इसी युग में किया था। नाम पाठक ने भी कई छोटे छोटे मराठी ग्रन्थों की रचना की। उसका लिखा हुआ 'अश्वमेघ' नामक ग्रन्थ अत्यन्त ही विशाल होते हुए भी कुछ विशिष्ठ कारणों वश विशेष लोकप्रिय न बन सका। पचतन्त्र का अनुवाद (ओवी छन्दों में) एक अन्य कवि—महालिंगदास—द्वारा भी इसी युग मे किया गया था। इस कवि ने 'बैताल पचीसी' तथा 'सिंहासन बत्तीसी' नामक दो छोटे छोटे ग्रन्थ भी लिखे हैं। इसी काल मे विनोदराम ने भगवद्गीता पर अपना ओवीबद्ध भाष्य प्रस्तुत किया। 'थोमा' कवि द्वारा लिखा हुआ 'उषा हरण' नामक काव्य, भी जो दुर्भाग्यवश पूरा भी न हो सका, इसी युग की कृति माना जाता है। इसी प्रकार मैराल सतीदास नामक कवि द्वारा इसी युग में लिखा गया द्रोणपर्व भी पूरा न हो सका। इसकी कविता अत्यन्त ही उत्कृष्ट है। यह मराठी भाषाभाषी काव्य रसिकों को सन्त ज्ञानेश्वर की कविता के समान प्रभावित कर देती है। इस युग के अन्यान्य लेखकों मे 'पाताल काण्ड' लिखने वाले कान्हो विमलदास भागवत पुराण के दशम् स्कन्ध पर अपनी ओवीबद्ध टीका की रचना करने वाले भास्कर कवि तथा महाभारत महाकाव्य के शल्य एवं स्वर्गारोहण पर्वों पर अद्भुत कथायुक्त रचना प्रस्तुत करने वाले कवि 'नवरस नारायण' के नाम भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं।

चौदहवीं शताब्दी के अन्तर्गत दक्षिण में कुछ मुस्लिम राज्यो मे आविर्भाव के फलस्वरूप उधर के हिन्दुओं का अपने मुस्लिम पडोसियो के साथ थोड़ा बहुत सम्पर्क स्थापित हो गया। इससे वहाँ की स्थानीय भाषाओं मे मुस्लिम शब्दो का प्रवेश स्वाभाविक रूप मे होने लगा। मराठी मे भी मुस्लिम भाषाओं, जिनमे फारसी का नाम विशेष उल्लेखनीय है के अनेक शब्द आ गये। मुस्लिम प्रभाव का परिणाम मराठी पर इस सीमा तक हुआ कि इसके साहित्य का विकास हो पर्याप्त सीमा तक स्थापित हो गया। महाराष्ट्र म मराठा राज्य की पुनरावृत्ति के समय तक यहाँ की भाषा पर मुस्लिम प्रभाव किसी प्रकार भी कम न हो सका। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध म विटठल पतांडू नामी वैद्य ने अपना ओवी छन्दबद्ध ग्रन्थ मराठी भाषा में लिखा। उसने मराठी गद्य का भी उसम यथेष्ट प्रयोग किया है। पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त में अपने ज्ञान एव पौरुष के बल पर महाराष्ट्र म दो महान् सुविख्यात सत्यपुरुषों का

वह सारे महाराष्ट्र में ही नहीं प्रत्युत दूरस्थ देशों में विख्यात हो गये। जीवन के अंतिम वर्षों में उन्होंने भावार्थ रामायण नामक ग्रंथ को लिखना प्रारम्भ किया किंतु इस वह पूरा करने के पहले ही इस असार संसार से सदा सर्वदा के लिये मुक्त होकर परलोक चले गये। बाद में इस ग्रंथ को उन्हीं के शिष्य 'गावबा' ने पूरा किया।

एकनाथ जी के समकालीन कवियों में (१) विठा रेणुकानंदन, (२) जनी जनार्दन (३) रामाजनार्दन, तथा (४) दासोपंत—इन चारों सन्तों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी पर एकनाथ जी की कविताओं और उपदेशों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। जनीजनार्दन रचित 'महावाक्य विवरण' तथा निर्विकल्प ग्रंथ—दोनों ही कृतियाँ अध्यात्मशास्त्र सार गर्भित होने के कारण बहुत ही लोकप्रिय हैं।

परन्तु एकनाथ जी से प्रभावित चारों मराठी कवियों में सबसे अधिक साहित्य रचना करने का श्रेय दासोपंत ने ही प्राप्त किया है। वह बीदर के सुल्तान का राजस्व कर्मचारी रहा था। एक बार वह अपने ऊपर ईश्वर द्वारा की हुई एक दैवी कृपा से इतना अधिक प्रेरित हुआ कि उसने तत्काल ही वैराग्य ले लिया। उसने छोटे बड़े अनेक ग्रन्थों की रचना की है। अकेले गीता पर ही इसने ५—६ टीकाएँ लिखीं जिनमें गीतार्थबोध चंद्रिका सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसकी एक और महान् रचना है—गीतार्णव जिसमें सवालक्ष छन्द लिपिबद्ध हैं। वेदान्त शास्त्र के तत्वों से युक्त उसके लिखे हुए—अवधूत राज, वाक्य वृत्ति तथा ग्रंथ राज' जैसे ग्रंथ भी मराठी भाषा साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। रामाजनार्दन की रचनायें बहुत थोड़ी मिली हैं जिनमें कुछ आरतियाँ ही इस स्थान पर उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। एकनाथ काल में कुछ अन्य कवि भी हुए हैं। उनमें से विष्णु दास भारलिंग मृत्युंजय स्वामी, विट्ठलनंदन माधवदास, माधवदास त्र्यंबक राज, सिद्धपाल केसरी कृष्णा याज्ञवल्की, कृष्णदास, रंगनाथ मह कवि निरंजन तथा विट्ठलदास विशेष प्रसिद्ध हैं। विष्णुदास ने सम्पूर्ण महाभारत की रचना की है। यह मराठी भाषा में इस प्रकार का पहला ग्रंथ है।

एकनाथ कालीन कवियों में उनके नाती 'मुक्तेश्वर' कवि का स्थान मराठी साहित्य में अत्यधिक प्रसिद्ध है। लोगों की धारणा है कि मराठी साहित्य का इस कवि ने अपनी लेखिनी द्वारा अपार सामग्री प्रदान की होगी, किन्तु उसमें से बहुत कम रचनायें ही प्राप्त हो सकी हैं। उसने ज्ञानेश्वर तथा एकनाथ की आरतियाँ, पाण्डुरंग तथा दत्तात्रय आदि के स्तोत्र तथा इसी प्रकार के जो कुछ अभंग और पद लिखे उनमें उसकी कुशलता और रचना शैली का अच्छा परिचय मिलता है। उसने रामायण भी लिखी है किन्तु इसकी कविता अत्यन्त सरस एवं साधारण है। परन्तु अपने महाभारत' ग्रन्थ में उसने अपनी वास्तविक प्रतिभा का सुस्पष्ट परिचय

दिया है। उसकी वाणी की विशेषता तो यह है कि उसे सुनते ही श्रोतागण उसके वर्णित विषय से तद्रूपता प्राप्त कर लेता है।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्य मराठा कवि—सत्रहवीं शती के इस मुक्तेश्वर कवि के अतिरिक्त अन्यान्य कवियों में 'रामवल्लभदास' तथा शिव कल्याण के नाम भी स्मरणीय हैं। रामवल्लभदास ने शंकराचार्य रचित वृहत वाक्य वृत्ति नामक ग्रन्थ की टीका—वाक्य वृत्ति के नाम से लिखा है। उन्होंने भागवत् पुराण के आधार पर कृष्ण जन्म कथा का वर्णन भी किया। यही नहीं 'वष्णव गीत,' आदि दूसरे ग्रन्थ तथा अनेक फुटकर गद्य एवं अभग भी उसने लिपिबद्ध किये हैं। इसी प्रकार शिवकल्याण ने भी भागवत पुराण की अत्यधिक विस्तृत एवं लोकप्रिय टीका लिखी है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से संत ज्ञानेश्वर की भाषा का स्मरण हो आता है। इसमें एक लाख ओवियाँ (मराठी छंद) हैं। शिवकल्याण का समकालीन इसके उसी के समान भागवत के दशम स्कन्ध की टीका लिखने वाला साधु कवि लोलिम्बराज—भी इस युग का प्रसिद्ध कवि माना जाता है। कहा जाता है कि तरुणावस्था में यह अत्यन्त ही विषयी था। उसके लिखे हुए लोलिम्बराज आख्यान को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उसने किसी मुसलमान युवती से विवाह किया था। यह काव्यग्रन्थ इसलिये और भी उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण मराठी साहित्य में इस आख्यान के समान बीभत्स अन्य कोई ग्रन्थ प्राप्य नहीं है।

इसी समय के एक अन्य प्रसिद्ध कवि 'श्यामाराध्य' का नाम भी मराठी साहित्य में कम उल्लेखनीय नहीं है। उसने महाभारत, रामायण तथा भागवत आदि ग्रन्थ लिखे। यही नहीं ज्ञानेश्वर द्वारा अतीत काल में प्रयुक्त शब्दों का शब्दकोष भी उसने अपनी पद्यमाला के नाम से प्रस्तुत किया है। मराठी में उसने कुछ उपनिषदों पर भी कुछ टीकायें लिखी हैं। उसने अपने सतत श्रम से इस साहित्य को सम्पन्न बनाने का अपूर्व श्रेय प्राप्त किया और उसकी भाषा तथा रचना शैली की सरल ग्राह्यता उदाहरणीय है।

तुकाराम—सत्रहवीं शताब्दी के सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि संत तुकाराम का जन्म एक शूद्र परिवार में हुआ था, किन्तु इसके लोग अध्यवसायी होने के कारण सदैव ही सुसम्पन्न थे इसी कारण तुकाराम जी ने भी सुखपूर्वक अपना बालपन व्यतीत करने का सौभाग्य पाया। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते ही उसकी आर्थिक दशा पतनोन्मुखी बन गई। इससे निराश होकर हरिकीर्तन में ही अपना शेष जीवन व्यतीत किया और ज्ञानेश्वर, नामदेव तथा एकनाथ आदि संत कवियों के ग्रन्थों का मनन किया। धीरे धीरे उसमें काव्य प्रतिभा विस्फुटित हो उठी और उठते बैठते तथा चलते फिरते क्षण प्रतिक्षण नये नये भजन और कीर्तन गाता रहता था। उसके ये भजन अन्तरात्मा से निकले हुए होने के कारण अत्यन्त ही स्फूर्तिदायक एवं सार-

गर्भित होते थे। उसके उपदेशों को सुनते सुनते निम्न श्रेणी के हिन्दू लोग ही नहीं प्रत्युत अति शूद्र और मुसलमान लोग भी सफल अभंग रचना करने लग जाते थे और उसके प्राय सभी देशवासी उससे मिलने के लिये पण्ढरपुर की यात्रा करने में अपने जन्म का कृतकृत्य समझा करते थे। तुकाराम की मृत्यु सन् १६४६ ई० में इन्द्रायणी नदी के तट पर स्थित देहू नामक ग्राम के समीप हुई थी। तुकाराम से प्रभावित असंख्य हिन्दुओं के साथ ही साथ शेख सुल्तान तथा शेख फरीद जैसे कतिपय मुसलमानों के नाम भी हमें स्मरण रखने चाहिये। शेख मुहम्मद ने मराठी में पवन विजय निष्कलंक प्रबोध योगसंग्राम और 'ज्ञान सागर' नामक चार ग्रन्थ लिखे हैं। योग संग्राम सब से बड़ा है और इसमें २२०० ओवियाँ बद्ध की गई हैं।

दास पञ्चायतन—समर्थ गुरु रामदास से प्रभावित उसके चार पाँच शिष्यों के नाम जिन्होंने काव्य रचना की है इस स्थान पर देना विशेष वाछनीय होगा। रामदास जो वीर शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु कहे जाते हैं उनकी रचनाओं दासबोध तथा 'मनाचश्लोक' के अतिरिक्त, उनके लिखे हुए फुटकर अभंग तथा पदों आदि से प्रभावित (१) जयराम स्वामी, (२) रंगनाथ स्वामी (निगडी म रहने वाले) (३) आनन्द मूर्ति (ब्रह्मनाद वासी) तथा (४) केशव स्वामी (भागा नगर के निवासी)—इन चारों विद्वान ग्रन्थकारों तथा उनके उपर्युक्त प्रणेता को मिलाकर दास पचायतन कहते हैं। जयराम स्वामी द्वारा रचित भागवत के दशम स्कन्ध की टीका, 'सीता स्वयंवर' रुक्मिणि स्वयंवर तथा अपरोक्षानुभव विशेष प्रसिद्ध है। इसी युग में रघुनाथ स्वामी ने भी गजेन्द्र मोक्ष, गुरु गीता, सुकरमा सवाद', 'पंचीकरण, सुदामा चरित्र भानुदास चरित्र तथा योगवशिष्टसार नामक कई एक ग्रंथों की रचना की है। रामदास स्वामी एक महान राष्ट्र सेवी थे और उनके शिष्यों और शिष्याओं की संख्या अपार थी। इन्हीं रामदास के शिष्य देवीदास द्वारा लिखित 'स्वदेशस्तान' को सारे महाराष्ट्र में लोकप्रियता प्राप्त है। रामदास जी के शिष्यों जयराम बाबा तथा निरंजन स्वामी और उसके एक अन्य गुरु भाई शिवराम—द्वारा भारी संख्या में श्लोकों, पदों अभंगों आदि की रचना हुई। इसी समय में यहाँ पर मुकुन्द तथा कोकिला नामधारी दो अन्य सुप्रसिद्ध कवि भी हुए हैं। मुचकुन्द की कविता मुक्तेश्वर की कविता की समानता रखती है। उसका लिखा हुआ 'श्री भार्गव चरित्र' एक वीर रस प्रधान काव्य है।

महाराजा शाहूजी के समकालीन कवि —छत्रपति शाहूजी के समय अर्थात् अठारहवीं शताब्दी में उनके देश में जो अनेकानेक कवि हुए उनमें कवेश्वर तथा निरंजन माधव के नाम अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। कवेश्वर रचित असंख्य भजन-गीत उनके शिष्य समुदाय में आज तक प्रचलित हैं। उसके ग्रन्थों में सुदामा चरित्र' तथा मकरन्द मान' का मराठी साहित्य में विशेष महत्व है। उनकी शब्द व्युत्पत्ति नितान्त

घरेलू एवं प्रभावपूर्ण है। कहा जाता है कि सम्भवतः 'द्रौपदी वस्त्र हरण' नामक काव्य भी उसी ने लिखा था, परन्तु अधिकांश विद्वान उसे 'राम सुतात्मज' नामक एक अन्य समकालीन कवि द्वारा रचित सिद्ध करते हैं। इस कवि ने गोपीचन्द आख्यान भी लिखा है। इस कवि के समान ही काव्य रचना कर सकने वाले 'वस्तालिंग' नामक कवि ने, जो सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ भामाविलास 'उमा महेश संवाद' तथा 'गज गौरी वृत्त' जैसे काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। १८ वीं शती में ही अमृतानन्द कवि ने 'स्वरूपनिर्णय' तथा अवधूत निरंजन ने कपिल गीता पर अपना भाष्य लिखा है। परन्तु अपने गुरु से 'लक्ष्मी कालिदास' की उपाधि प्राप्त करने तथा पेशवा बाजीराव के आश्रय में रहने वाले कवि निरंजन माधव—का स्थान उपयुक्त सभी कवियों में श्रेष्ठतर है। उसने स्वतः नीतिमान तथा गायन वादन में परम निष्णात् होने के फलस्वरूप अपनी बहुमुखी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। उसके लिखे हुए ग्रन्थों—सम्प्रदाय परिमल, 'कृष्णानन्द सिन्धु', 'चिद्बोध रामायण' तथा रामकर्णामृत—का मराठी साहित्य में प्रमुख स्थान है। इनके अतिरिक्त उनकी दो अन्य रचनायें—'मन्त्र रामचरित्र', तथा 'निर्वोष्ट राघव चरित्र'—चित्र काव्य' के रूप में सारे देश में प्रख्यात हैं। छन्द शास्त्र पर भी निरंजन माधव ने वृत्तावतंस तथा वृत्त मुक्तावली नामक दो ग्रन्थों की रचना की है निरंजन माधव ने सारे भारत की यात्रा करके उसका वृत्तान्त भी 'प्रवास वर्णन' नामक रचना के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट होता है कि इसकी काव्य रचना शैली एवं प्रतिभा बहुमुखी थी। इसी कवि के समान अनेक विधि रचनायें करने वाले सामराज नामक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न मराठी कवि ने भी कोकशास्त्र से लेकर भागवत की टीका तक अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उसकी रचना रुक्मिणी हरण एक अत्यन्त ही सरस एवं सुविशाल कृति है।

सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में होने वाले दो महान कवियों—कृष्णदयार्णव और श्रीधर ने भी महाराष्ट्र में अपनी लेखनी द्वारा साहित्य के भण्डार को सुसम्पन्न बनाया। कृष्णदयार्णव को गृहस्थी में अनेकानेक असह्य कष्टों का सामना करना पड़ा और इसी कारण इस सन्त ने असहाय होकर ईश्वर भक्ति एवं भजन पूजन का ही आश्रय लेकर अपने जीवन के दिन काटे। उन्होंने ५४ वर्ष की वयोवृद्धता प्राप्त करने के उपरान्त साहित्य की सेवा करने की ओर अपना ध्यान अग्रसर किया। ७ वर्ष के अथक परिश्रम से उन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध की टीका लिखी जिसकी भाषा विद्वत्तापूर्ण सरल एवं अत्यन्त ही आकर्षक प्रतीत होती है। ग्रन्थ में लगभग ४२ ००० छन्द हैं। कृष्णदयार्णव का लिखा हुआ एक छोटा सा ग्रन्थ तिनमयानन्द बोध भी उपलब्ध है। महाराष्ट्र का सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रचयिता श्रीधर कवि ऐसा महान विद्वान एवं सुश्रुत रसिक साहित्यकार हुआ है कि सारे देश के लोग चाहे वे छोटे हो और चाहे बड़े बड़े ही चाव से पढ़ते हैं। स्त्रियों में भी यदि

गर्भित होते थे। उसके उपदेशों को सुनते सुनते निम्न श्रेणी के हिन्दू प्रत्युत अति शूद्र और मुसलमान लोग भी सरल अभंग रचना करने लगे। उसके प्राय सभी देशवासी उसके मिलने के लिये पण्ढरपुर की यात्रा जन्म का कृतकृत्य समझा करते थे। तुकाराम की मृत्यु सन् १ इन्द्रायणी नदी के तट पर स्थित देहू नामक ग्राम के समीप हुई थी प्रभावित असंख्य हिन्दुओं के साथ ही साथ शेख सुल्तान तथा शेख फरीद मुसलमानों के नाम भी हमें स्मरण रखने चाहिये। शेख मुहम्मद ने मरा विजय निष्कलंक प्रबोध, योगसंग्राम और 'ज्ञान सागर' नामक चार ग्र योग संग्राम सब से बड़ा है और इसमें २५०० ओवियाँ बद्ध की गई हैं।

दास पञ्चायतन —समर्थ गुरु रामदास से प्रभावित उनके शिष्यों के नाम जिन्होंने काव्य रचना की है इस स्थान पर देना विशे होगा। रामदास जो वीर शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु कहे जाते हैं उनके दासबोध तथा 'मनाचश्लोक' के अतिरिक्त, उनके लिखे हुए फुटकर पद्यों आदि से प्रभावित (१) जयराम स्वामी, (२) रंगनाथ स्वामी (निगडे वाले) (३) आनन्द मूर्ति (ब्रह्मनाल वाले) तथा (४) केशव स्वामी (भ के निवासी)—इन चारों विद्वान् व भक्तों तथा उनके उपयुक्त प्रणेता को दास पंचायतन कहते हैं। जयराम स्वामी द्वारा रचित भागवत के दशम की टीका, 'सीता स्वयंवर' रुक्मिणि स्वयंवर तथा 'अपरोक्षानुभव विनय हैं। इसी युग में रघुनाथ स्वामी ने भी गजेन्द्र मोक्ष, 'गुरु गीता', पुरूरवा पंचीकरण, सुदामा चरित्र भानुदास चरित्र' तथा योगवशिष्ठसार नामक ग्रन्थों की रचना की है। रामदास स्वामी एक महान राष्ट्र कवि थे और उनके और शिष्यों की संख्या अपार थी। इन्हीं रामदास के शिष्य देवीदास द्वारा लि 'व्यंकटेशस्तोत्र' को सारे महाराष्ट्र में लोकप्रियता प्राप्त है। रामदास जी के शि जयराम बाबा तथा निरंजन स्वामी और उसके एक अन्य गुरु भाई शिवराम— भारी संख्या में श्लोकों, पदों अभंगों आदि की रचना हुई। इसी समय म पर मुचकुन्द तथा कोकिला नामधारी दो अन्य सुप्रसिद्ध कवि भी हुए हैं। मुचकु की कविता मुक्तेश्वर की कविता की समानता रखती है। उसका लिखा हुआ ' भार्गव चरित्र एक वीर रस प्रधान काव्य है।

महाराजा शाहजी के समकालीन कवि —छत्रपति शाहजी के समय अर्था अठारहवीं शताब्दी में उनके देश में जो अनेकानेक कवि हुए उनमें कचेश्वर तथ निरंजन माधव के नाम अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। कचेश्वर रचित असंख्य भजन गीत उनके शिष्य समुदाय में आज तक प्रचलित हैं। उसके ग्रन्थों में सुदामा चरित्र' तथा गजेन्द्र मोक्ष का मराठी साहित्य में विशेष महत्व है। उनकी शब्द व्युत्पत्ति निता त

धरन् एवं प्रभावपूर्ण है। कहा जाता है कि सम्भवतः 'द्रौपदी वस्त्र हरण' नामक काव्य भी उसी ने लिखा था, परन्तु अधिकांश विद्वान उसे 'राम सुतात्मज' नामक एक अन्य समकालीन कवि द्वारा रचित सिद्ध करते हैं। इस कवि ने गोपीचन्द आख्यान भी लिखा है। इस कवि के समान ही काव्य रचना कर सकने वाले 'वस्थालिंग' नामक कवि ने जो सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ 'भामाविलास' 'उमा महेश संवाद' तथा 'गज गौरी वृत्त' जैसे काव्य ग्रंथ लिखे हैं। १८ वीं शती में ही अमृतानन्द कवि ने 'स्वरूपनिर्णय' तथा 'अवधूत निरंजन ने कपिल गीता पर अपना भाष्य लिखा है। परन्तु अपने गुरु से लक्ष्मी कालिदास' की उपाधि प्राप्त करने तथा पेशवा बाजीराव के आश्रय में रहने वाले कवि निरंजन माधव—का स्थान उपयुक्त सभी कवियों में श्रेष्ठतर है। उसने स्वतः नीतिमान तथा गायन वादन में परम निष्णात् होने के फलस्वरूप अपनी बहुमुखी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। उसके लिखे हुए ग्रंथों— सम्प्रदाय परिमल, कृष्णानन्द सिंधु, चिद्बोध रामायण', तथा 'रामकर्णामृत'—का मराठी साहित्य में प्रमुख स्थान है। इनके अतिरिक्त उसकी दो अन्य रचनायें—'मंत्र रामचरित्र' तथा 'निर्वोष्ट राघव चरित्र'—'चित्र काव्य' के रूप में सारे देश में प्रख्यात हैं। छन्द शास्त्र पर भी निरंजन माधव ने वृत्तावतंस तथा वृत्त मुक्तावली नामक दो ग्रंथों की रचना की है निरंजन माधव ने सारे भारत की यात्रा करके उसका वृत्तान्त भी 'प्रवास वर्णन' नामक रचना के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट होता है कि इसकी काव्य रचना शैली एवं प्रतिभा बहुमुखी थी। इसी कवि के समान अनेक विधि रचनायें करने वाले सामराज नामक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न मराठी कवि ने भी कोषशास्त्र से लेकर भागवत की टीका तक अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उसकी रचना रुक्मिणी हरण एक अत्यन्त ही सरस एवं सुविशाल कृति है।

सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में होने वाले दो महान कवियों— कृष्णदयार्णव और श्रीधर ने भी महाराष्ट्र में अपनी लेखनी द्वारा साहित्य के भण्डार को सुसम्पन्न बनाया। कृष्णदयार्णव को गृहस्थी में अनेकानेक असह्य कष्टों का सामना करना पड़ा और इसी कारण इस सन्त ने असहाय होकर ईश्वर भक्ति एवं भजन पूजन का ही आश्रय लेकर अपने जीवन के दिन काटे। उन्होंने ५४ वर्ष की वयोवृद्धता प्राप्त करने के उपरान्त साहित्य की सेवा करने की ओर अपना ध्यान अग्रसर किया। ७ वर्ष के अथक परिश्रम से उन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध की टीका लिखी जिसकी भाषा विद्वत्तापूर्ण सरस एवं अत्यन्त ही आकर्षक प्रतीत होती है। ग्रंथ में लगभग ४२,००० छन्द हैं। कृष्णदयार्णव का लिखा हुआ एक छोटा सा ग्रंथ 'तिनमयानन्द बोध' भी उपलब्ध है। महाराष्ट्र का सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रंथ रचयिता श्रीधर कवि ऐसा महान विद्वान एवं बहुश्रुत रसिक साहित्यकार हुआ है कि सारे देश के लोग चाहे वे छोटे हों और चाहे बड़े, बड़े ही चाव से पढ़ते हैं। स्त्रियों में भी यदि

किसी कवि की अधिकतम रचनायें पढी जाती हैं तो वह श्रीधर ही है। इसके ओवी बद्ध ग्रन्थ पौराणिक तत्वों से ओत प्रोत हैं। इन्होंने 'हरि विजय', 'शिव लीलामृत', पाण्डव प्रताप, वेदान्त सूय', जमिनी अश्वमेघ, 'मल्हारी विजय तथा श्री पण्ढरी महात्म्य जसे अलौकिक ग्रन्थों की रचना की है। इस कवि ने अपनी जीवन लीला सन् १७२९ ई० मे समाप्त की। श्रीधर के समकालीन कवि गिरधर स्वामी ने भी 'शब्द रामायण', 'संकेत रामायण, सुन्दर रामायण, 'मंगल रामायण', तथा छन्दो रामायण' आदि ग्रन्थो की रचना की है। ये सम्भवत समथ गुरु रामदास के सश्रद्ध अनुयायी थे। इन्होंने अपने ग्रन्थो—करुणा राम में राम की करुणा की भीख मांगी है और 'करुणा रुद्र' में श्री हनुमानजी के चित्र का वर्णन किया है। इन्होंने 'समथ करुणा भी लिखी, जिसमें समर्थ गुरु रामदास स्वामी की स्तुति अत्यन्त ही आकषक एव आनन्दपूण शैली म अकित है। निरंजन माधव की भाँति इस कवि की रचनायें भी प्रसाद गुण प्रधान होती हैं। भीमस्वामी के एक शिष्य नरहरि ने भी कुछ रचनायें लिखी हैं। वह भी अत्यन्त विद्वान एव अध्ययनशील मनुष्य था। य सभी कवि जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये है आध्यात्म तत्व के ही दर्शक थे।

अठारहवीं शती के एतिहासिक कवि'—महाराष्ट्र के जगन्नाथ कवि ने बोध वभव, 'ज्ञान बत्तीसी वाक्य सुधार' तथा भगवद्गीता पर टीका आदि ग्रन्थो की रचना १८ वी शताब्दी के मध्यकाल म की। उसरा शशि सेना नामक काव्य अनुचित शृगार वणन से युक्त होते हुए भी साधारण शैली का है। १६९८ ई० म शम्मा जी के समकालीन और उनके राज दरबारी कवि कलुष के विषय म हम पहले ही आवश्यक वणन दे चुके हैं। इसी समय के आस पास माध्वाचाय के प्रिय शिष्य—अमलराय ने जो नाना साहब पेशवा का समकालीन था, बडी ही मधुर एव सरस रचनायें प्रस्तुत की हैं। इसकी कवितायें सस्कृत एव हिन्दी के शब्दों से युक्त हैं।

मयूर पण्डित तथा वामन पण्डित महाराष्ट्र के ऐसे महानतम कवि इस युग मे हुये हैं। जिनकी रचनाओं से स्पष्ट परिलक्षित होना है कि सरस्वती उन्हें पूणतया सिद्ध थी। ये भक्त कवि होने के साथ राष्ट्र प्रेमी कवि थे। इन्होंने वामन पण्डित सिद्धान्त विजय', 'अनुभूति श्लेष, समश्लोकी, 'कम तत्व', 'यथाथ दीपिका, *'गीतार्णव सुधा', 'चरण गुरु मंजरी,, उपादान आदि ग्रन्थों को लिखकर सरस्वती* की वास्तविक सेवा की है। 'यथाथ दीपिका' म २२००० से भी अधिक ओवियाँ हैं। इनकी भाषा अत्यन्त प्रभावपूण है। इस ग्रन्थ के माध्यम से उन्होंने देशवासियो म गीता को रहस्यपूण रूप मे व्याप्त करने की असफल चेष्टा की है। इनके अन्यान्य आध्यात्मिक सौष्ठव प्रधान ग्रन्थों की सरसता एव माधुय उल्लखनीय हैं। इनके

किसी कवि की अधिकतम रचनायें पढ़ी जाती हैं तो वह श्रीधर ही है। इसके ओवी बद्ध ग्रंथ पौराणिक तत्वों से ओत प्रोत हैं। इन्होंने 'हरि विजय', 'शिव लीलामृत', पाण्डव प्रताप, वेदान्त सूर्य, जैमिनी अश्वमेध, मल्हारी विजय तथा 'श्री पण्ढरी माहात्म्य' जैसे अलौकिक ग्रंथों की रचना की है। इस कवि ने अपनी जीवन लीला सन् १७२९ ई० में समाप्त की। श्रीधर के समकालीन कवि गिरधर स्वामी ने भी 'शत' रामायण 'संकेत रामायण, सुन्दर रामायण, 'मंगल रामायण' तथा 'छन्दो रामायण' आदि ग्रन्थों की रचना की है। ये सम्भवतः समर्थ गुरु रामदास के सच्चे अनुयायी थे। इन्होंने अपने ग्रंथों—करुणा राम में राम की करुणा की भीख माँगी है और 'करुणा रुद्र' में श्री हनुमानजी के चित्र का वर्णन किया है। इन्होंने समर्थ करुणा भी लिखी, जिसमें समर्थ गुरु रामदास स्वामी की स्तुति अत्यन्त ही आकर्षक एवं आनन्दपूर्ण शैली में अंकित है। निरंजन माधव की भाँति इस कवि की रचनायें भी प्रसाद गुण प्रधान होती हैं। भीमस्वामी के एक शिष्य नरहरि ने भी कुछ रचनायें लिखी हैं। वह भी अत्यन्त विद्वान एवं अध्ययनशील मनुष्य था। ये सभी कवि जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं आध्यात्म तत्व के ही दर्शक थे।

अठारहवीं शती के ऐतिहासिक कवि'—महाराष्ट्र के जगन्नाथ कवि ने बोध समय, 'ज्ञान बत्तीसी 'वाक्य सुधार तथा भगवद्गीता पर टीका आदि ग्रन्थों की रचना १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल में की। उसका शशि सेना नामक काव्य अनुचित शृंगार वर्णन से युक्त होते हुए भी साधारण शैली का है। १६९८ ई० में शम्भा जी के समकालीन और उनके राज दरबारी कवि कलुष के विषय में हम पहले ही आवश्यक वर्णन दे चुके हैं। इसी समय के आस पास माध्वाचार्य के प्रिय शिष्य—अमृतराय ने जो नाना साहब पेशवा का समकालीन था, बड़ी ही मधुर एवं सरस रचनायें प्रस्तुत की हैं। इनकी कवितायें संस्कृत एवं हिन्दी के शब्दों से युक्त हैं।

मयूर पण्डित तथा वामन पण्डित महाराष्ट्र के ऐसे महानतम कवि इस युग में हुये हैं। जिनकी रचनाओं से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि सरस्वती उन्हें पूर्णतया सिद्ध थी। ये भक्त कवि होने के साथ राष्ट्र के भी कवि थे। इन्होंने वामन पण्डित सिद्धान्त विजय, अनुभूति लेश, समश्लोकी, 'कर्म तत्व', 'यथार्थ दीपिका', 'गीतार्णव सुधा' 'वरद गुरु मंजरी', 'उद्दाम' आदि ग्रन्थों को लिखकर सरस्वती की वास्तविक सेवा की है। 'यथार्थ दीपिका' में २२००० से भी अधिक ओवियाँ हैं। इनकी भाषा अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। इस ग्रन्थ के माध्यम से उन्होंने देशवासियों में गीता को रहस्यपूर्ण रूप में व्याप्त करने की असफल चेष्टा की है। इनके अन्यान्य आध्यात्मिक सौन्दर्य प्रधान ग्रंथों की सरसता एवं माधुर्य उल्लखनीय हैं। इनके

शिष्यों ने भी इनके साहचय से लाभ उठा कर महानतम ग्रंथों की रचना करने में अपूर्व सफलता पाई है।

मयूर पण्डित की रचनाओं को पढ़ने वाले ही उसके विषय में समझ सकते हैं कि उसमें कितना अलौकिक पाण्डित्य, विचार गाम्भीर्य एवं भक्ति रस प्रभाव है। उसने अपनी रचनाओं में शृंगार एवं हास्य आदि की मात्रा पूर्णतया तौल कर अत्यन्त ही परिमित रूप में प्रस्तुत की है। तथापि यह स्वाभाविक ही है कि उनकी कविता में स्फूर्ति का अभाव विशेष परिलक्षित होता है। यह कवि महान् शास्त्र कोविद एक वेदज्ञ पण्डित था। इसके लिखे हुये 'ब्रह्मोत्तर खण्ड', 'भस्मासुर' आख्यान', 'सीता गीत', लवकुशाख्यान', 'हरिश्चन्द्राख्यान', 'प्रल्हाद विजय', 'अम्बरीश चरित्र', 'देवी माहात्म्य', 'रुक्मिणी गीत', 'कृष्ण विजय', मदालसाख्यान, आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। मयूर पण्डित की लिखी हुई १०८ रामायणों के विषय में उल्लेख मिलते हैं जिनमें से १०६ रामायणें प्राप्य भी हैं। इन कवियों के महानतम सिरमौर ने जितने अधिक ग्रन्थ लिखे, उतने महाराष्ट्र में किसी भी कवि ने न लिखे होंगे।

मयूर कवि के अनुसरण करने वाले नरहरि कवि ने अपने 'राम जन्म' नामक काव्य और 'चतुर रामायण' में मयूर कवि से भी अधिक पाण्डित्यपूर्ण, मनोमुग्धकारी काव्य-चमत्कार का परिचय दिया है।

इसी प्रकार सुसमृद्ध मराठी गद्य में भी अनेकानेक विद्वान लेखकों ने इस युग में अपनी रचनायें प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार की साहित्यिक रचनाओं में ऐतिहासिक बखरी संस्मरणों राजकीय प्रपत्रों और चरित्र चित्रण सम्बन्धी ग्रन्थों का नाम उल्लेखनीय है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मराठी साहित्य अत्यन्त ही सुसम्पन्न एवं भक्ति आन्दोलन प्रधान है। इस भाषा की सेवा करने वाले व्यक्ति भक्त-शिरोमणि तथा सरस्वती के अद्वितीय उपासक थे।

सारांश—१७ वीं तथा १८ वीं शताब्दियों में मराठी कला कौशल में तो कोई ऐसा चमत्कार पूर्ण विकास न हुआ क्योंकि मराठा शासक तथा जन साधारण निरन्तर युद्धों की संकट कालीन स्थिति में ही पड़े रहने के कारण इस ओर अधिक ध्यान न दे सके। तथापि इस दिशा में उन्होंने उन्नति करना द्रुतगति से प्रारम्भ कर दिया था।

इस युग में मराठी साहित्य में आश्चर्य जनक उन्नति हुई। मराठी भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग पुनः बहुलता के साथ प्रारम्भ कर दिया गया। इस युग के कवियों में एकनाथ युगीन संत कवियों—मुक्तेश्वरी, तुकाराम, वामन पण्डित तथा मयूरेश्वर आदि—ने अपनी काव्य रस की नैसर्गिक धारा प्रवाहित करके मराठी साहित्य के माध्यम से भारत के नव जागरण आन्दोलन तथा जन जन की भक्ति भावना और राष्ट्र प्रेम को शक्ति प्रदान की है।